# प्रकाशक का वक्तव्य



बहुत दिनों से हमारी हार्दिक अभिलाषा थी कि पूज्य श्री गुरुदेव के त्रय ताप-हारी पावन चरणरेणु से अपने नगर को पवित्र करूं और गत वर्ष हमारी वह लालसा सफलीभूत भी हुई। गुरुदेव ने अपने शुभागमन तथा वर्षावास से हमारी मनोकामना पूरी करदी। चातुर्मासके वे सारे दिन जिस आनन्द, उल्लास एव उत्साह केसाथ बीते और उससे मुझको जिस तरहकी खुशी प्राप्त हुई उसको मूर्त रूपमें स्मृति पट पर अंकित करने के लिए मैंने पं० श्री दु:खमोचनजी 'झा' से अपने भाव प्रकट किए कि पूज्य गुरुदेव की कोई कृति मिले तो मैं उसका प्रकाशन कर पाली चातुर्मास की सुखद स्मृति को अचल और अटल बनाऊं। पंडितजी की कृपा से प्रश्न व्याकरण की नूतन प्रति जो गुरुदेव की गंभीर गवेषणा और सतत सच्छास्त्र चिंतन के परिणाम हैं मुझको मिली, जिसको प्रकाशित करते हुए आज मुझे कितना आनन्द मिल रहा है वह वर्णन से बाहर है।

हमारी आन्तरिक अभिलाषा है कि इसी तरह भविष्य में भी पूज्य गुरुदेव की कोई भी कृति मुझे मिलती रहेगी तो मैं उसके प्रकाशन से अपने जीवन को सार्थक और सफल बनाऊंगा। भविष्य ही बताएगा कि हमारी यह कामना कहा तक और किस अंश तक सफल होती है ?

इस पुस्तक को मैं अमूल्य उपहार के रूप में वितरण करना चाहता था किन्तु बिना मूल्य की वस्तु का योग्य आदर नहीं होता है, अत. इसका अल्प मूल्य रखा गया है। इसके विक्रय से जो भी आय होगी वह साहित्य प्रकाशन में ही लगायी जायेगी।

अन्त में, मैं पंडित श्री दु:खमोचनजी 'झा' का महान आभारी हूँ जिनके सहयोग से मुझको गुरुदेव के निकटतम सेवा लाभ का सौभाग्य प्राप्त हुआ, साथ ही उनके सुपुत्र प० शशिकान्तजी 'झा' ने इस चातुर्मास में अजमेर रह कर इस सारे

प्रकाशन कार्य को शीघ्र और सुचारु रूप से सम्पादन करने में पूर्ण सहयोग दिया है। अगर उनकी यह निरन्तर सहायता प्राप्त नहीं होती तो प्रकाशन इतना शीघ्र और इस रूप में कदाचित् संभव नहीं होता अतः उनको भी धन्यवाद है।

जिस अभिलाषा से मैं इस ग्रन्थ को प्रकाशन करवा रहा हूँ वह तभी सार्थक होगी जब कि विद्वद्-वर्ग इसको अपनाकर कुछ लाभ उठायेंगे।

प्रार्थी—
हस्तिमल्ल सुराणा
(पाली मारवाड़)



# प्रबन्धक के दो शब्द

पूज्य श्री हस्तिमल्लजी महाराज साहिब कृत भाषाटीका तथा विशिष्ट परिशिष्ट सहित यह प्रश्न व्याकरण सूत्र, जो बन्ध और मोक्षके तत्व का पथ प्रदर्शक है, प्रकाशित हो गया। पुस्तक कैसी बनी तथा इसकी कैसी उपयोगिता और विशेषता है? आदि विविध प्रश्नो का समाधान तो इसको अच्छी तरह अवलोकन करने वाले विज्ञ पाठकको अनायासही होजायगा,मगर जहांतक मेरी जानकारी है मैं भी इतना निस्संकोच कह सकता हूँ कि यह एक ऐसे उज्ज्वल व्यक्तित्वकी गवेषणापूर्णकृति है, जिनका अनवरत समय विविध शास्त्रावलोकन, गंभीर चिंतन और तत्वगवेषण तथा तदनुकूल आचरण में ही बीतता है। वर्ष महीने और दिन का ही नहीं जहा घटे, मिन्ट और सैकेण्ड का भी ज्ञानपुरस्सर कभी दुरुपयोग नही होता। मात्र मेरे इतने निवेदन से भी विज्ञ पाठक प्रस्तुत पुस्तक की प्रबल प्रामाणिकता को हृदयङ्गम कर सकते हैं।

इस पुस्तकके प्रकाशनमे आवश्यकतासे अधिक देर हुई। वि०स० १९९३के अजमेर चातुर्मासमें ही समिति सम्पादित प्रति के आधारपर पूज्यश्री ने इसका कार्यारम्भ कर दिया किन्तु उसी बीच पूज्य श्री रत्नचन्द्रजी महाराज के सम्प्रदाय पूर्ववर्ती धर्माचार्यों की जीवनी कारण विशेष से तैयार हुई, जो इन दिनो जयपुर में छपी है। इसके साथ ही बृहत्कल्प सूत्र का अनुवाद तीर्थङ्करों के जीवनचरित्र तथा तत्वार्थाधिगम सूत्र का पद्यानुवाद हुआ। इसतरह पूज्य श्री का ध्यान भिन्न भिन्न आवश्यक कार्यों में बट गया फिर भी पूर्वारब्ध प्रश्न व्याकरण की प्रेस कापी भी तैयार की गई। वि० सं० २००२ के जयपुर चातुर्मास में सातारा के दीवान बहादुर श्रीमान् शेठ मोतीलालजी मुथा की इच्छा इसको पूना के आर्य भूषण प्रेस में छपवाने को हुई किन्तु किसी कारण से ऐसा नहीं हो सका। इस तरह कई वर्ष तक इसका मुद्रण कार्य स्थगित रहा। इसी बीच बल्लू चातुर्मास में पं॰ रत्नकुमारजी से इसका

शब्द कोष लिखवाया गया। ब्यावर चातुर्मास में विराजमान उपाध्याय कवि श्री अमरचन्द्रजी म० सा० को इसकी प्रेस कापी दिखायी गयी।

वि० सं० २००६ का चातुर्मास पाली में हुआ। यहां पर देवगुरु धर्म में महा भक्ति सम्पन्न श्रीमान् सेठ हस्तिमलजी सुराणा ने अपना अभिप्राय प्रकट किए कि इस चातुर्मास की स्मृतिका अमिट बनानेके लिए पूज्यश्री की कोई कृति मिले तो मैं प्रकाशित करूं। चातुर्मास पूरा होने पर आया था, फिर भी दुर्गा प्रेस अजमेर में मुद्रण का कार्य प्रारम्भ किया गया, किन्तु एक तो प्रेस में टाइप की कमी थी दूसरे तात्कालिक संशोधक बीमार होकर देश चले गए, जिससे कार्य व्यवस्थित रूप में आगे नहीं बढ़ सका। मध्य में पं० धर्मपालजी ने कार्य भार उठाया किन्तु अत्यन्य अशुद्धियां रह जाने के कारण कार्य को रोक दिया गया।

इस वर्ष चौमासेमें वह अस्तव्यस्त कार्यभार मेरे माथे आया, और भाद्रकृष्णमें अजमेर आकर मैंने उसटूटी पुरानी शृङ्खलाको जोड़कर कार्यवाही प्रारम्भ करदी। कार्यकी अधिकता और समय की कमी तथा पूज्य श्री के दूराधस्थित होने के कारण मुद्रणयोग्य आवश्यक ज्ञातव्यादेश प्राप्तिसे मैं वंचित रहा फिर भी किसीतरह और किस किसी रूप में उस चिरप्रारम्भ कार्य का इति कर पाया इससे भी मुझे कुछ कम सन्तोष नहीं। विशेष विश्लेषण तो नीरक्षीरविवेकी विज्ञ पाठक ही करेंगे।

अन्त में हम अपने कृपालु पाठकों को बिना किसी संकोच के यह बतलाने को प्रस्तुत हैं कि इस पुस्तक की सारी अच्छाइयों का एकमात्र श्रेय परम प्रतापी पूज्य श्री का है तथा इसकी त्रुटियों तथा अस्तव्यस्तता आदि समस्त दोषों का एक मात्र श्रेय प्रबन्धक और संशोधक होने के नाते मुझ पर और अंश रूप में दुर्गा प्रेस के जीर्णाक्षरवर टीराकारों पर भी है, जिनके सहयोग से त्रुटियों की मात्रा चाहते हुए भी कम नहीं हो पायी।

मुझे हर तरह का सहयोग देकर मेरी प्रबन्धकता को कायम रखनेवाले उदार हृदय बन्धुद्वय श्री जीतमलजी सुराणा व श्री उमरावमलजी साहब ढढ्ढा अजमेर को मैं नहीं भूल सकता। साथ ही दुर्गा प्रेस के कमठ मैनेजर बाबू भूपेन्द्रसिंहजी का आभार मानना ही पड़ेगा जिन्होंने रात दिन एक बनाकर नियत समय पर इस विशाल कार्य को पूरा किया। इतिशिवम्।

प्रार्थी—

शशिकान्त झा "शास्त्री" व्या० आ



श्रीमान शेठ हस्तिमल्लजी "सुराणा" पाली ( मारवाड )

# प्रकाशक का संक्षिप्त परिचय

मारवाड़ का अतिशय प्राचीन नगर "पाली" चिरकाल से व्यापार का केन्द्र रहा है। वहां 'फतेहचन्द मूलचन्द' नामका फर्म सौ वर्षसे भी अधिक समयसे आज तक अपनी व्यवसाय प्रामाणिकता और नीति कुशलता तथा धर्म प्रमुखता के साथ चलता आ रहा है। फर्म के आदि संस्थापक फतेहचन्दजी के देवलोक वासी होने पर उनके सुपुत्र मूलचन्दजी साहब फर्म के अधिष्ठाता बने और जीवन पर्यन्त व्यवसाय में वृद्धि के साथ साथ धर्मवृद्धि में भी जी खोलकर हाथ बटाए। सं० १६५१ मे मूलचन्दजी ने पाली निवासी बस्तीमलजी को गोद लिया तथा व्यवसाय का सारा काम उनके जिम्मे कर दिया। आपने भी देव गुरु धर्म में निष्ठा रखते हुए व्यापार को आगे बढाया और पूर्वजों की परम्परा कायम रखने में रत्ती भर भी कसर नहीं की। सं०,१६७५ में बस्तीमलजी साहब ने श्रीमान हस्तिमलजी साहब को जिनका जन्म स्थान "आउआ" है गोद लिया। श्रीमान् हस्तिमलजी साहब का स्वभाव बचपन से ही धार्मिक तथा बुद्धि व्यवसायात्मिका थी, फलत उन्नति के साथ साथ ख्याति फैलने में कोई विशेष देर न लगी। कार्य दक्षता और व्यवहार कुशलता एवं अदम्य उत्साह तथा अटूट लगनसे सफलता आपकी दासी बनी और देखते २ आप एक बड़ी धनराशि के अध्यक्ष बन गए। कपड़ा, कमीशन, ऊन और आढत के कामों मेंआपकी गहरी दिलचस्पी है। योंतो आपके व्यवसाय मारवाड़के छोटेबड़े अधिकतर शहरों में किसी न किसी रूप में प्रसारित हैं ही लेकिन प्रमुख रूप में पाली और बम्बई दो जगहों में प्रचलित है जिसमें पाली फर्म का नाम 'फतेहचन्द मूलचन्द' तथा बम्बई का 'मूलचन्द बस्तीमल' ताम्बाकाटा हनुमान बिल्डिंग ३ फ्लोर बम्बई है।

अधिकतर देखा जाता है कि लोग लक्ष्मीपात्र बनकर धर्म के प्रति विमुख हो जाते हैं किन्तु आप बराबर इस नियम के अपवाद रहे। जैसे जैसे व्यापार बढ़ता वैसे वैसे धार्मिक लगन भी बढ़ती गयी और यही कारण है कि आप आज पाली के एक प्रमुख व्यापारी ही नहीं किन्तु समाज के कुशल एवं अग्रगण्य कार्यकर्ता हैं। पाली में सम्भव ही ऐसा कोई पारमार्थिक काम होगा जिसमें आपने हाथ न बंटाया हो। आत्म कल्याण के लिए व्रत, तप के साथ [illegible]

प्रमाद नहीं करते और जब जहां जैसा आवश्यक समझते हैं मुक्त हस्त होकर दिया करते हैं। विभिन्न संस्था और समाज को बड़ी बड़ी रकमें दे कर आपने अनुप्राणित किया है। वि० २० ३ में पूज्य श्री हस्तिमलजी व पूज्य श्री गणेशीलालजी महाराज के पाली सम्मिलन में भी आपने बहुत बड़ा हाथ बटाया था।

आपका हृदय स्वच्छ, मुखाकृति प्रसन्न तथा मस्तिष्क सूझ बूझ से भरा हुआ है। स्पष्टवादिता, मिलनसारिता तथा निरभिमानता एवं सहृदयता आपमें कूट कूट कर भरी हुई है। जो बात हृदय में जंच जाय उसको पूरी करने में शायद ही कसर करते हों।

परिवारके प्रति भी आपका प्रेम सराहणीय है और इसीकारणसे आपके परिवार तथा व्यवसायिक कार्यकर्त्ता आपमें पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। आप छोटे छोटे बच्चों के साथ भी अक्सर विनोद किया करते हैं जिसमें आपकी विनोद प्रियता की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। आप अपने छोटे भाई श्री कस्तूरीमलजी साहब को दिल से चाहते हैं और हर छोटे बड़े कामों में उनकी सम्मति का सम्मान करते हैं। आपका यह भ्रातृ-प्रेम देखकर राम और भरत का स्मरण हो आता है।

धर्म और गुरु के प्रति आपकी आस्था असीम है। गत वर्ष आपने पूज्य गुरुदेव श्री हस्तिमलजी महाराज साहब का चातुर्मास पाली में करवाया और उसको जिस सुन्दर ढंग से निभाया वह चिर स्मरणीय रहेगा। चातुर्मास की स्मृति को अमर बनानेके लिए प्रस्तुत पुस्तकका प्रकाशन किया है तथा भविष्यके लिए भी आश्वासन दिया है कि ऐसी कृतियों का जिनसे समाज का कल्याण संभव है लोकोपयोगी बनाने में यावज्जीवन दत्त चित्त रहूँगा।

आपका भविष्य महान है। समाज को आपसे बड़ी बड़ी आशायें हैं। आपकी उम्र अभी केवल ४० वर्ष की है अतः इस पर कुछ अधिक कहना सभव नहीं लेकिन आपके वर्तमान व्यवहार को देखकर कोई भी आशा कर सकता है कि समाज के उन सभी विकलांगों का सुधार आपके कर कमलों से होना निश्चित है जिस पर आपकी दिव्य दृष्टि एक बार पड़ जावेगी। शासन देव आपकी धर्म निष्ठा, सहिष्णुता और जीवन को दीर्घतम एवं सफल बनाए रखें।

इसी अमर कामना के संग—
शशिकान्त 'झा'

---

# "आगमज्ञ मुनिराजों से आवश्यक निवेदन"



तीर्थङ्करों व अतिशयज्ञानियों के अभाव में आज समस्त श्वेताम्बर जैन सङ्घ का आधार प्रमुख रूप से आगम ही है। हमारे मन्दपुण्य के कारण प्रथम तो आगमों का पूर्ण अंश ही प्राप्त नहीं। फिर यथा तथा करके पूर्वाचार्यों की कृपा से जो भी अंश हमें प्राप्त हैं उसमें लेखन व संशोधनों के प्रमाद ने बहुत से स्थलों में बुद्धि भेद के कारण उत्पन्न कर दिए हैं। प्रश्न व्याकरण का काम करते समय हमें भी ऐसा ही अनुभव हुआ है। इतने पाठ भेद अन्यत्र कम मिलेंगे। इस कार्य में संस्कृत टीका के अलावा आगम मन्दिर से प्रकाशित प्रति का भी पाठनिर्णय में हमने साहाय्य लिया जो आगम के विशिष्ट अभ्यासी स्वर्गीय सागरानन्द सूरि द्वारा संशोधित है। इसमें कई स्थल ऐसे हैं जिनकी संगति नहीं होती। विद्वानों के ज्ञानार्थ वैसे पाठों की तालिका प्रस्तुत करके आशा की जाती है कि आगमज्ञ विद्वान् इनका उचित समाधान करेंगे।

(१) प्रथम आस्रव सूत्र न० २ में हिंसा के नामों में 'विणासो, शब्द प्रयुक्त है, प्रसंगानुसार इसका अर्थ नाश होने से यह सगत है, किन्तु आ० म० में यहाँ 'विसाणो, पद छपा है, इसकी संगति कैसे होगी ?

(२) सूत्र ३ 'सरीसृप के प्रकरण में 'वाउप्पिय, पाठ आता है जिसका संस्कृत नाम वायुप्रिय बन सकता है। आ० म० ने 'वाउपइय' ऐसा पाठ माना है। यह किस तरह ?

(३) सूत्र ७ द्वितीय आस्रव के मृषावादी प्रकरण में—'भणंति अलियाहि संधि सन्निविट्ठा' के स्थान पर आ० मं० की प्रति में—'भणंति अलिया हिंसति सन्निविट्ठा, पद प्रयुक्त है, पहिले के वाक्य में 'अलियाहि संधि सन्निविट्ठा, पद मृषावादीका विशेषण होने से सङ्गत है किंतु 'अलिया हिंसंति सन्निविट्ठा,' पद में 'हिंसंति' क्रिया के साथ इसकी संगति कैसे होगी ?

(४) इसी प्रकरण में 'गामघातिभाओ' के स्थान पर गामघायणाओ आ० म० में प्रयुक्त है प्रसंग से इसकी संगति कैसे होगी ?

(५) सूत्र १५ चतुर्थ आस्रव द्वार के युगलिक वर्णन प्रकरण में 'रुइल निद्धनक्खा' ऐसा पाठ है। इसके लिये आ० मं० की प्रति में 'रुइल निद्धलनक्खा' प्रयुक्त है जो अशुद्ध ज्ञात होता है, क्योंकि 'नक्खा' में द्वित्व विधान व्याकरणिक नहीं है।

(६) सूत्र १९ में पञ्चम आस्रव के परिग्रह संचय प्रकरण में 'सत्य सत्य इसत्यच्छरूपयाम,' के स्थान में आ० म० ने 'सत्य इसत्यच्छरुप्पवायं' माना है, सो क्या 'सत्य' पद छूटा है ? या इसी पाठ को संगत माना गया है ?

(७) सूत्र २३ प्रथम संवर द्वार के भावना प्रकरण में 'मणोण पावएणं' के स्थान पर आ० मं० की प्रति में 'मणेण अपावएणं' प्रयुक्त है। इसी प्रकार तीसरी भावना में 'वतीते पाविभाते' के स्थान पर आ० मं० की प्रति में 'वतीते अपाविगात' पाठ प्रयुक्त है। सो किस तरह ?

(८) प्रथम संवर के भावना प्रकरण में 'निक्खियव्वं' पद आया है आगम मन्दिर में इसके स्थान पर 'निक्खिवियव्वं' प्रयुक्त है। पहला प्रयोग जहाँ स्वार्थ में है वहाँ दूसरा प्रेरणार्थ में प्रयुक्त है प्रसंग प्रधान से पहला प्रयोग ही उचित मालूम होता है किन्तु दूसरे प्रयोग की संगति कैसे हो सकती है ? इसका आशय स्पष्ट करें।

(९) द्वितीय संवर द्वार के सत्य निरूपण प्रकरण में 'चारणगण समण सिद्ध विज्जं' पद आया है जिसके स्थान पर आ० मं० में 'चारण गमण समण सिद्ध विज्जं' प्रयुक्त है। अर्थ दृष्टि से पहला पाठ ही संगत है। टीकाकार ने भी ऐसा ही माना है। फिर आ० मं० में 'चारण समण' के बीच में 'गमण' पद का प्रयोग किस आशय से किया गया है ?

(१०) तृतीय संवरद्वार के चतुर्थ भावना प्रकरण में-"अविरति वाण वय नियम वेरमणं एवं" के स्थान पर आ० म० की प्रति में अविरति वाण (विरमण वय नियमणं अव नियम वेरमणं पाठ) एवं" प्रयुक्त है। दोनों पाठों में अर्थ अस्पष्टसा रहता है। इनमें संगत और शुद्ध कौन पाठ है ?

(११) सूत्र २५ में चतुर्थ संवरद्वार-ब्रह्मचर्य उपमा निरूपण प्रकरण में- 'हिमवंतो चेव ओसहीणं, के स्थान पर आ० म० की प्रति में-'हिमवंतो चेव नगाणं, वम्मी ओसहीणं ऐसा पाठ प्रयुक्त है। इस लिखित प्रतिमें हिमवान को औषधियों के

स्थान मे उत्तम मानकर आठवीं उपमा मे इसको माना है और रथिको मे सांग्रामिक महारथी को ३२ वीं उपमा में प्रयुक्त किया है। आ० मं० की प्रति के अनुसार हिमवान पर्वतो में उत्तम और ब्राह्मी औषधियों में उत्तम मानकर पृथक् दो उपमायें दी गई हैं। इस प्रकार महारथिक की अन्तिम उपमा अधिक होती है। इसलिये इसकी संगति किस प्रकार करनी चाहिए ?

(१२) सूत्र स० २७ चतुर्थ सवरद्वार ब्रह्मचर्य निरूपण प्रकरणमे 'वेलंवक जाणिय' के स्थान पर आ० म० की प्रति मे 'वेलंवकजाणिय, प्रयुक्त है। ह० लि० प्रति में 'वेलबक, को स्वतन्त्र मानकर आगे 'याणिच, माना है, आ० मं० की प्रति मे 'वेलं-बक, को कार्य मानकर 'वेलंबक जाणिय'' प्रयोग किया हो ऐसा सभव है।

(१३) सूत्र सख्या २६ के पञ्चम सवर द्वार 'अपरिग्रह व्रत निरूपण प्रकरण मे 'गय गवेलग च न जाण जुग्ग' आदि के स्थान पर आ० म० की प्रति में 'गय ग ळ कबल जाण जुग्ग, प्रयुक्त है। प्रथम पाठ प्रसगानुसार उचित मालूम होता है, किन्तु आ० म० की प्रति मे -'गवेलग कबल, पाठ माना है। गवेलग और कबलको पृथक् मानना प्रसङ्ग से उचित नहीं दीखता, लेकिन 'गवेलगक और बल इस प्रकार क को स्वार्थ में मानकर 'बल, पदका सैन्य अर्थ मे प्रयोग माना जाय तो किसी तरह सगत हो सकता है।

(१४) सू० स० २९ पञ्चम संवरद्वार के अपरिग्रह व्रत निरूपण प्रकरण मे 'वेढिम वर सरक* चुन्न' के स्थान पर आ० म० की प्रति मे 'वेढिम वसरक चुन्न, प्रयुक्त है। ह० लि० प्रति का प्रयोग जहा वेष्टिम वर सरक चूर्ण रूप खाद्य पदार्थ के अर्थ में प्रयुक्त है, वहा आ० म० की प्रति मे 'वसरक चूर्ण मानने पर अर्थ क्या माना जायगा।

( १५ ) सू० सं० २९ के पञ्चम संवर द्वार अपरिग्रह व्रत निरूपण प्रकरण मे 'वल विउल कक्खड पगाढ दुक्खे के स्थान पर आ० म० की प्रति में 'वल विउल तिउल कक्खड पगाढ दुक्खे, प्रयुक्त है। यहां 'तिउल पदका प्रयोग किस अर्थ मे किया गया है ? विपुल के साथ अर्थ सगति कैसे ?

(१६) सू० स० २९ के पञ्चम सवर द्वार के भावना प्रकरण में 'एवमादिएसु फासेसु, के स्थान पर आ० म० की प्रति में 'एवमादितेसु गिज्झियव्व न फासेसु,

---

* ग–सारक,

प्रयुक्त है। यहां 'गिण्हियव्व, का प्रयोग अस्थानीय है, इसका प्रयोग मुञ्चियव्वं आदि क्रिया पदों के साथ होना चाहिए।

(१७) सू० सं० ६ के पञ्चम संवर द्वार के भावना प्रकरण में 'मणुण्ण महएसु' के स्थान पर आ० सं० की प्रति में 'मणुम्म महएसु' अनुपयुक्त है। ज्ञात होता है कि ण के स्थान पर भूल से म प्रयुक्त हो गया है।

(१८) सू० सं० ७ द्वितीय आस्रव के इसी प्रकरण में 'गाम घातियाओ' के स्थान पर आ० सं० की प्रति में 'गाम घातघाओ' ऐसा प्रयुक्त है। प्रसंग के अनुसार अर्थ में इसकी सगति कैसे होगी ?

(१९) सू० सं० ७ द्वितीय आस्रव के इसी प्रकरण में "दासी दास भयक भाइल्लका" के स्थान पर आ० म० की प्रति में १ 'दासिदास भयक भाइल्लका' प्रयुक्त किया है इसमें दासि को ह्रस्व विधान किस नियम के अनुसार होगा।

विद्वान् मुनिराजों और आगमाभ्यासी श्रमणोपासकों से निवेदन है कि उपरोक्त पाठ भेदों में जहां असगति है उनके लिये अपनी बुद्धि और धारणा का उपयोग करें इससे ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के साथ ही महती आगम सेवा भी होगी। तथा होनवाले प्रकाशन भूल से बचेंगे और मुद्रित संस्करणों में संशोधनार्थ मार्ग दर्शन होगा। अतएव इस आगम सेवा के कार्य को उपेक्षा की वस्तु नहीं समझें। आशा है स्था० मू० और श्वे० स्था० दोनों समाज के आगम रसिक इस ओर लक्ष्य देंगे।

सुज्ञेषु पल्लवितेनालम्

अनुवादक



---

१ समास में दीर्घ का ह्रस्व होता है प्राकृ० पाठ

# प्रति परिचय

## संशोधन में प्रयुक्त प्रतियां



श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र के संशोधन मे निम्न लिखित मुद्रित एव हस्त लिखि प्रतियों का उपयोग किया गया है।

१--श्री वर्द्धमान जैन आगम मन्दिर पालीताणा द्वारा प्रकाशित एवं आग मन्दिर के शिलालेखों की प्रतीक स्वरूप जो कि तपोगच्छीय श्री सागरानन्द सूरि द्वारा सशोधित है। यह लम्बे साईज पत्राकार में मुद्रित पृष्ट संख्या १९ है। 'त' श्रु का विशेष प्रयोग है। अनवधानता एवं मुद्रण दोष से कई स्थलों पर पाठस्खल दृष्टि गोचर होती है।

२--आगमोदय समिति, सूरत से प्रकाशित सटीक प्रति पत्राकार रूपमें मुद्रित यह प्रति प्राय. शुद्ध है।

### हस्त लिखित प्रतियां—

३—प्रश्न व्याकरण हस्त लिखित 'अ' प्रति इसमें १०४ पत्र हैं। सार्थ होने प्रत्येक पत्रके दोनो बाजू ६-६ पक्तिया हैं। इसकी लम्बाई करीब १०इंच और चौड प्राय' ४ इंचकी है लिपि सुवाच्य होनेपर भी पूर्ण शुद्ध नहीं है। इसकी प्रशस्ति' स १८४६ ना भाद्रपद मासे कृष्ण पक्षे सप्तमी भृगुवासरे। लिपिकृत सा जोइतादा मेवासा ज्ञाती पोरवाड वृध सारत।

४--प्रश्न व्याकरण हस्तलिखित 'ब' प्रति का लेखन दो हिस्सों मे समाप्त कि गया है। प्रथम हिस्से में पांच आस्रवद्वार का वर्णन है। सार्थ होने से प्रत्येक पत्र दोनो बाजू ६-६ पक्तिया हैं। पत्रों की लम्बाई लगभग १० ईंच और चौडाई प्रा ४ ईंच है। लिपि सुवाच्य है एव पाठ प्राय. शुद्ध है। प्रथम हिस्से की पत्र सख्या ३ और द्वितीय हिस्से की २८ है। द्वितीय हिस्से में संवरद्वार का वर्णन है। इस

लेखन कार्य मेड़ता नगर में पूर्ण किया गया है। इसकी प्रशस्ति निम्न प्रकार से है—"संवत् १८५६ रा वर्षे मिति आसोज सुद अष्टमी बुधवार लिपि कृत्वा चतुर्मास रिष दुरग शासेण आत्मार्थे।" निम्न लिखित तीन प्राचीन हस्त लिखित प्रतियाँ श्री श्वे० स्था० जैन ग्रन्थ भण्डार, जयपुर से प्राप्त हुई। इन प्रतियों के संकेत क ख और ग प्रति रक्खे हैं। इन प्रतियों का उपयोग अन्य प्रतियों में विशेष पाठ भेद दृष्टिगत होने पर किया गया है।

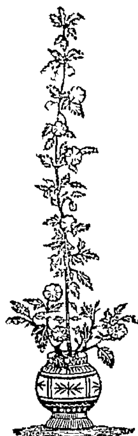
४—हस्त लिखित 'क' प्रति—इस प्रति में अणुत्तरोववाइ के उपसंहार-पाठ के बाद 'णमो अरिहंताणं' से सूत्रारम्भ किया गया है। यह मात्र मूल पाठ की प्रति है। पत्र सं० २१ है। प्रति पृष्ठ में प्राय १६–१७ पंक्तियाँ हैं। लिपि सुवाच्य और कई जगह पड़ि मात्रा के प्रयोग वाली है। स्थान स्थान पर पद विभाग के चिन्ह किए हुए हैं। लेखक के प्रमाद की स्खलना के अलावे प्रति बहुत कुछ प्रमाण में सने योग्य है। इस प्रति का प्रशस्ति लेख निम्न प्रकार है 'संवत् १६०७ वर्षे कार्तिक सुदी पंचमी रविवासरे श्री प्यारु पुत्र सांवला शासन लिखित गौडान्ये।'

५—हस्त लिखित 'ख' प्रति—यह प्रति संवत १६९० की लिखी हुई है। इसमें मात्र मूल पाठ है। लिपि सुन्दर सुवाच्य एवं पड़ि मात्रा की होते हुए भी प्रायः शुद्ध है। कहीं कहीं अर्थ सम्बन्धी टिप्पणियां अङ्कित की हुई हैं। पत्र संख्या ५६ हैं। प्रति पृष्ठ में ११ पंक्तियाँ हैं। लेखक की प्रशस्ति निम्न प्रकार है—"संवत १६९० वर्षे शाके १५८६ प्रवर्तमाने महा मांगल्य प्रद। वैशाख सुदी ११ शनि दिने। महा ऋषि ऋषिराय ऋषि श्री नानजी प्रसादात् मावर मुनि पठनार्थं। वीरजी मुनिना लिखितं। श्री शुभं भवतु लेखक पाठकयो। कल्याण मस्तु श्री रस्तु।।

७—हस्त लिखित 'ग' प्रति—यह प्रति सटीक और सर्व श्रेष्ठ है। लिपि की सुन्दरता के साथ साथ पाठ प्रायः शुद्ध है। त्रिपाठी होने से प्रति पृष्ठ में मूल पाठ और ऊपर नीचे टीका लिखी गई है। पत्र संख्या ६२ हैं। प्रति पृष्ठ में ४–६ और कहीं न्यूनाधिक मूल पाठ की पंक्तियां हैं। पत्र की लम्बाई चौड़ाई प्रायः १०×४ इंच है। अन्तिम पृष्ठ नहीं होने से प्रशस्ति लेख नहीं मालूम किया जा सकता फिर भी प्रति का पड़ि मात्रा में लेखन एवं कीट कवलित हाल देखते हुए लेखन-समय कम से कम ४००–५०० वर्ष पूर्व ज्ञात होता है।

मुद्रित प्रतियों में एक ज्ञान विमल सूरि कृत टीका की सटीक प्रति है जो मुक्ति विमल जैन ग्रन्थमाला के ग्रन्थाङ्क ७ में अहमदाबाद से प्रकाशित है। अभय

देव सूरि की टीका से इसमें विशेषता है कि प्रति शब्द देकर कुछ सहूलियत की गई है। मूल पाठ आगमोदय समिति के आधार पर है। केवल उसको छोटे छोटे विभाग कर के प्रकाशित किया है। इसके दो खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में पांच आस्रव और दूसरे भाग में संवर इस प्रकार दो भागों में छपा है। कहीं २ टिप्पण में कठिन शब्द का गुजराती नामान्तर भी किया है। इति।



श्रीगुरुचरणा प्रसीदन्तु

# प्राक्कथन—

श्रुतसेवा—

यह एक निर्विवाद सत्य है कि श्रुत सेवा बड़े पुण्य का कार्य है। सत्योदय के बिना श्रुत सेवाका अवसर प्राप्त नहीं होता। मेरा अतिशय शुभोदय है कि गुरु कृपा से मुझे ऐसा अवसर प्राप्त हुआ तथा रुचि एवं श्रद्धाके साथ विद्वानों का भी सहयोग मिलता रहा जिससे प्रस्तुत कार्य में बड़ा बल मिला है। मैं अनुभव करता हूँ कि श्रुत सेवा संसार के तापत्रय से सन्तप्त प्राणियों को शान्ति प्रदान करनेवाली है। जो रोग, शोक एवं दुःख को भूलना चाहें उनको अवश्य विधि पूर्वक श्रुताराधन करना चाहिए। शास्त्र ने इसी को बन्धन मुक्ति का प्रधान कारण कहा है। जैसे कि—ज्ञान का[1] प्रकाश होने पर अज्ञान एवं मोह सूर्य किरण में अन्धकार की तरह विलीन हो जाते हैं और मोह के अभाव से जब राग, द्वेष का विच्छेद हो जाता तब एकान्त सुख रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह महिमाशाली ज्ञान प्रकाश श्रुत सेवा का ही परिणाम है। स्वर्गीय विभिन्न वैभव का मनमोहक वर्णन, भयङ्कर यमयातना का रोमाञ्चकारी वर्णन तथा निगूढ़ गुहानिहित सम आत्मतत्त्व, सिद्ध गति आदि का प्रदर्शन सिवाय श्रुत सेवा के दूसरा कौन कर सकता था करा सकता है? बिना श्रुत सेवा के ऐसा ज्ञान प्रकाश सुलभ नहीं।

श्रुत ग्रन्थ या शास्त्र किसी नाम से कहें, इसके दो प्रकार हैं। एक सम्यक् श्रुत और दूसरा मिथ्या श्रुत। अल्पज्ञों के द्वारा जो स्वेच्छापूर्वक केवल बुद्धि और कल्पना के बल पर लिखे गये हैं। जिनको पढ़ने व सुनने से काम, क्रोध, मोह की वृद्धि हो जैसे कामशास्त्र अर्थशास्त्र या कथा उपन्यास आदि सत् शास्त्र नहीं है। इनको पढ़ने या सुनने से श्रुत सेवा का लाभ नहीं होता क्योंकि ये राग द्वेष की वृद्धि के कारण होने से कुशास्त्र हैं। लौकिक कला और अपने विषय की जानकारी के अतिरिक्त इनसे कोई आत्मिक लाभ प्राप्त नहीं होता। करोड़ों ग्रन्थ पढ़ लेनेपर भी

---

[1] ज्ञानस्य सर्वस्य प्रकाशनाय अज्ञानमोहस्य विवर्जनाय।
रागस्य द्वेषस्य संक्षयेण एकान्त सौख्यं समुपैति मोक्षं। उ० ३२।२।

ये सुशास्त्र के एक श्लोक के बराबर भी नहीं होते। कहा भी है--'श्लोकोवरं परम-तत्त्व पथ प्रकाशी, न ग्रन्थ कोटि पठनं जनरंजनाय। सजीवनीति वरमौषधमेकमेव, व्यर्थश्रमस्य जननो न तु मूलभार. ॥१॥ अर्थात् परम तत्त्व को प्रकाशित करनेवाला एक श्लोक भी अच्छा किन्तु जनरञ्जन के हेतु करोड़ों ग्रन्थो का पठन अच्छा नहीं। संजीवनी जडी का एक टुकडा अच्छा परन्तु व्यर्थ श्रम देनेवाला मूला गाडी भर भी अच्छा नहीं। सुशास्त्र की कितनी महिमा है? मनोरंजक साहित्य करोडो भी सुशास्त्र के एक पद की तुलना में नहीं आ सकते। सुशास्त्र का वह एक श्लोक आत्म-जागरण करता है, जो अन्य साहित्यो से नहीं होता। ऐसे परम पदो का पठन मनन ही मंगलमय श्रुत सेवा है।

## जैन साहित्य में आगम—

यो तो अधिकांश जैन साहित्य ही 'परमतत्त्व पथ प्रकाशी, इस उक्ति के अनुसार त्याग विराग की शिक्षा देनेवाला है, क्योकि इनके प्रणेता प्राय त्यागी साधु थे। अत इनको सुशास्त्र कह सकते हैं, फिर भी इन सब साहित्यों में आगम का स्थान बहुत ऊंचा है। वैदिक साहित्य मे वेद और इस्लाम साहित्य में कुरान शरीफ की तरह जैन साहित्य मे आगम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आगम का अर्थ है विधि-पूर्वक जीवादि तत्त्वो को समझानेवाला प्रामाणिक शास्त्र। अन्यत्र कहा गया है--'आप्तवचन मागम, आगमश्चोपपत्तिश्च सम्पूर्णं दृष्टिलक्षणम्। अतीन्द्रियाणामर्थाना सद्भाव प्रतिपत्तये ॥१॥ आगमोह्याप्तवचन--माप्तं दोषक्षयाद्विदु'। वीतरागोऽनृतं वाक्यं न ब्रूयाद्धेत्वसभवात् ॥२॥ दश०। अर्थात्—अतीन्द्रिय पदार्थो की सत्ता समझने के लिये आगम और उपपत्ति ही सम्पूर्ण दर्शन का लक्षण है।॥१॥ आप्त वचन को आगम कहते हैं और जिनके दोषों का क्षय हो चुका वे आप्त हैं। दोप नहीं रहने से वीतराग असत्य वचन नहीं बोलते, क्योंकि वहा असत्य का कोई कारण नहीं रहा।॥२॥ उपरोक्त विचार से पाठक समझ गये होंगे कि वीतराग वाणी को आगम कहते हैं। अतीन्द्रिय विषयों का प्रामाणिक निर्णय आगम से ही हो सकता है। अत धर्म मार्ग मे* इसी को प्रामाणिक पद प्राप्त है। समस्त साहित्य मे आगम की विशिष्टता इसलिये है कि--"आगम युक्ति विरुद्ध नहीं होता और सद्-

---

* जम्हा न धम्ममग्गे, मोत्तूणं आगम इह पमाणं
विज्जइ छउमत्थेणं, तम्हा एत्थेव जइयव्व ॥

युक्ति भी आगम से विमुख नहीं जाती। एक-दूसरे का अनुगमन करते हुए आगम और युक्ति ये दोनों सत्य के ज्ञान को स्थिर करने में समर्थ होते हैं। जैसे कि--सुचीए अविरुद्धो सत्वागमो, सावि तय विरुद्धत्ति। इय अन्नोन्नाणुगयं, उभयं पडिवत्ति हेउत्ति। पंचाशक ॥४५॥

इस प्रकार का गुणसम्पन्न आगम वीतराग वचन ही हो सकते हैं अन्य नहीं।

## शास्त्र का नाम

प्रश्नव्याकरणानि—पण्हावागरणाइं या पण्हावागरण दसा है। नन्दी और समवायाङ्ग सूत्र में पण्हावागरणाइं नाम रक्खा गया है। प्रश्न का अर्थ पूछना और व्याकरण का अर्थ उत्तर है। बहुतसे प्रश्नोत्तर होने से इसका नाम प्रश्न व्याकरणानि ऐसा बहुवचनान्त पद रक्खा गया। जैसा कि टीकाकार अभयदेव सूरि ने लिखा है—प्रश्नः प्रतीत, तन्निर्वचन–व्याकरणम्। प्रश्नानाञ्च व्याकरणानाञ्च योगात् प्रश्न व्याकरणानि, (सम० १४५) नन्दी और प्रश्नव्याकरण के टीकाकार ने भी इसी अर्थ को माना है।

दूसरा नाम है पण्हा वागरणदसा, इसका प्रयोग स्थानाङ्ग में मिलता है। स्थानाङ्ग के दशम स्थान में कहा है कि पण्हावागरण दसा के दश अध्ययन हैं, "टीकाकार भी इसी नाम से अर्थ करते हैं, जैसे-प्रश्न व्याकरण दशा इहोक्त रूपा न। दोनों नाम प्राचीन हैं फिर भी ज्ञात होता है कि प्रश्न व्याकरण दशा यह नाम प्रश्न व्याकरणानि से कम प्रसिद्ध था। कारण भगवती समवायांग और नन्दी में प्रश्न व्याकरण नाम का ही उल्लेख मिलता है। इसके ५ आस्रव और ५ संवर रूप से दश अध्ययन मिलते हैं। अतः इसका नाम प्रश्न व्याकरण दशा अधिक ठीक लगता है किन्तु श्वेताम्बर परम्परा के आचार्यों में प्रायः प्रश्न व्याकरण नाम ही प्रामाणिक माना है। अधिकांश शास्त्रीय प्रयोग और दिगम्बर साहित्य में भी 'पण्ह वायरण' तथा व्याकरण है, अतः प्रश्न व्याकरण नाम ही उपयुक्त समझना चाहिए। आप कहेंगे कि इसमें प्रश्न विद्या का सम्बन्ध नहीं है, फिर प्रश्न व्याकरण यह नाम कैसा ? उत्तर यह है कि सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य जम्बू के प्रश्न पर आस्रव, संवर का प्रतिपादन किया है, इसलिए इसको प्रश्न व्याकरण कहने में बाधा नहीं है। इसलिए—शास्त्रकार की टीका में आचार्य ने लिखा है कि-शिष्य प्रश्नानुरूपतया अपारभूतविधा व्याक्रियन्ते यस्मिन्—तत्-प्रश्न व्याकरणम्।

# प्रश्न व्याकरण का स्थान

प्रस्तुत प्रश्न व्याकरण शास्त्र में उपरोक्त आगम लक्षण मिलते हैं इसलिये इसको आगम कहने में कोई बाधा नहीं है। अब यह विचारना है कि प्रश्न व्याकरण का आगम में कौनसा स्थान है? वह कितना महत्त्व रखता है? (दशवैकालिक सूत्र की भूमिका में यह बता दिया गया है कि) श्वे० सम्प्रदाय की मूर्ति पूजक और अमूर्ति-पूजक दोनों सम्प्रदायों के मान्य आगम ३२ हैं। आवश्यक से अतिरिक्त अङ्ग, उपाङ्ग, मूल और छेद के विभाग से ३१ आगम होते हैं। उनमें अङ्ग का स्थान सर्व प्रथम है। सामान्य रीति से देखा जाय तो सभी आगम अङ्ग प्रविष्ट और अङ्ग बाह्य इन दो भेदों में आ जाते हैं। कालिक एवं उत्कालिक रूप से अङ्ग बाह्य शास्त्रों को दो श्रेणी में विभक्त कर नन्दी सूत्र में अङ्ग प्रविष्ट १२ कहे गये हैं। जैसे कि--से किं त अग पविट्ठं? दुवालसविहं प० तं०--"आयारो १ सूयगडो २ ठाणं ३ समवाओ ४ विवाहपन्नत्ती ५ नायाधम्मकहाओ ६ उवासगदसाओ ७ अंतगडदसाओ ८ अणुत्तरोववाइयदसाओ ९ पण्हावागरणाइं १० विवागसुयं ११ दिट्ठिवाओ १२" इनमें प्रश्न व्याकरण का स्थान दशम है। गणधरों के मङ्गलमय शब्दों में तीर्थंकर भगवान् की वाणी का इसमें संग्रह है। इसका मूलरूप समवायाङ्ग सूत्र और नन्दी में द्वादशाङ्गी का परिचय देते हुए, प्रश्न व्याकरण का भी वर्णन आता है--

प्रश्न व्याकरण सूत्र के दो रूप हैं एक प्राचीन और दूसरा अर्वाचीन। समवायाङ्ग और नन्दी आदि सूत्रों में द्वादशाङ्गी के अन्तर्हित जो प्रश्न व्याकरण का परिचय मिलता है वह इसका प्राचीन रूप है। पूर्वकाल में अङ्गुष्ठ आदि प्रश्न विद्यायें और दिव्य संवाद इसमें कहे गये थे। जिसके लिये नन्दी सूत्र में कहा है कि १०८ प्रश्न पूछे हुए और १०८ अप्रश्न बिना पूछे तथा १०८ प्रश्नाप्रश्न-पूछे या बिना पूछे दोनों तरह से शुभाशुभ कहनेवाली विद्या है। अंगुष्ठ प्रश्न, बाहु प्रश्न और आदर्श प्रश्न विद्या कही गई। ऐसे अन्य भी विविध अतिशय विद्यायें और नागकुमार सुपर्ण कुमार आदि के साथ दिव्य संवाद बताये गये हैं। परिमित वाचना और इसका एक ही श्रुत स्कन्ध है। ४५ अध्ययन और ४५ ही उद्देश व समुद्देशकाल कहे गये हैं। उसका पद परिमाण ९२ लक्ष १६ हजार लिखा है। समवायाङ्ग में कुछ विद्यायें और आचार्य भाषित, प्रत्येक बुद्धभाषितादि का विशेष उल्लेख मिलता है। इन दोनों में ४५ अध्ययन बताये गये हैं, किन्तु स्थानाङ्ग सूत्र के दशम स्थान में प्रश्न व्याकरण

के दश अध्ययनों का उल्लेख मिलता है इसलिए—'पण्हावागरणाणं दसार्ण दस अज्झ यणा प त० उवमा सखा, इसिभासियाई, आयरिय भासियाई, कोमग पसियाई, कामल पसिणाई, अद्दाग पसियाई, अंगुट्ठपसिणाई, बाहुपसिणाई।" उपरोक्त दश अध्ययनों में से प्रथम दो को छोड़कर शेष ८ विषय और नाम की दृष्टि से सम वायाङ्ग के साथ मेल खाते हैं। फिर भी यह प्रश्न खड़ा रहता है कि नन्दी और सम- वायाङ्ग में इसके ४५ अध्ययन कहे हैं और स्थानाङ्ग में दश। विषय की समानता होने पर भी यह अन्तर कैसे ? टीकाकार ने इसका कोई समाधान नहीं किया, केवल —स्वरूप वाला प्रश्न व्याकरण दश यहां नहीं है, इतना ही लिखा है। जैसे कि— न व्याकरण दशा इहोक्तरूपा न, स्था० १० ठा॥ उपलभ्य प्रश्नव्याकरण के म उ म ि दया गया है कि--पण्हावागरणे णं एगो सुयक्खंधो दस अज्झयणा एक्कसरगा रम तु षष्ठ दियसेसु उद्दिसिज्जंति,—प्रश्नव्याकरण में एक श्रुत स्कंध और दश अध्ययन हैं दश दिनों में ही इसका उद्देश होता है। आदि।

इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि प्रश्न व्याकरण दो हैं। इन दोनों में वर्त मान काल में दश अध्ययनवाला प्रश्न व्याकरण ही उपलब्ध है। आस्रव एवं संवर का इनमें प्रतिपादन किया गया है। ४५ अध्ययन पर व्याख्या करते हुए टीकाकार आ भयदेव सूरि लिखते हैं—"यद्यपीहाऽध्ययनानां दशत्वाद् दशैवोद्देशनकाला भवन्ति तथापि वाचनान्तरापेक्षया पञ्चचत्वारिंशदिति संभाव्यते, इति पञ्चचत्वारिंशदुद्देशनकाला स य इत्यविरुद्धम्।

मान में अध्ययन दश होने से उद्देशन काल भी दश होते हैं, की अपेक्षा ४५ का कथन सम्भव होता है। उपरोक्त विवरण कि टीकाकार के समय में प्रश्न विद्यावाला सूत्र वाचनान्तर माना श्न व्याकरण का दूसरा रूप है।

में श्वेताम्बर सम्प्रदाय की तरह दिगम्बर सम्प्रदाय भी द्वाद शाङ्गी को मानती है। दोनों के नाम और कुछ विशिष्टता के साथ विषय मिलते-जुलते हैं। अल्पमात्र ही अन्तर म कहा' के स्थान पर 'नाह धम्म कहा' 'उवासग दसा' के स्थान और 'पण्हावागरणाई के स्थान में पण्हवायरणं, नाम मिलता माव मिलती है। स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग आदि की पद संख्या किन्तु उसमें संयम एवं अनुभूतिमें भ्रान्ति प्रधान कारण प्रतीत होता

है। अस्तु, हमें यहाँ प्रश्न व्याकरण के लिये ही विचार करना है। प्रश्न व्याकरण के लिए श्री वीरसेनाचार्य अपनी धवला टीका में निम्न परिचय देते हैं—'पण्हवायरणं णाम अंगं तेणउदिलक्ख सोलह सहस्स पदेहि ९३१६००० अक्खेवणी, णिक्खेवणी, संवेयणी, णिव्वेयणी चेदि चउव्विहाओ कहाओ वण्णेदि। तत्थ अक्खेवणीणाम छद्दव्व णवपयत्थाणं सरूवं-दिगन्तर-समयान्तर णिराकरणं सुद्धि करेंती परूवेदि। .....उक्त च—'आक्षेपणीं तत्त्वविधान भूतां विक्षेपणीं तत्त्व-दिगन्तशुद्धिम्। संवेगिनीं धर्मफल प्रपञ्चां, निर्वेगिनीं चाह कथा विरागाम् ॥ पण्हादो हदणट्ठ-मुट्ठि-चिन्ता-लाह लाह-सुह दुक्ख-जीविय-मरण-जय-पराजय-णाम-दव्वाउ-संखंच परूवेदि। अर्थात् प्रश्न व्याकरण नाम का अंग तेरानवे लाख सोलह हजार पदों के द्वारा आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी, निर्वेदनी इन चार कथाओं का तथा (भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल सम्बन्धी धन, धान्य, लाभ, अलाभ, जीवित मरण, जय और पराजय सम्बन्धी प्रश्नों के पूछने पर उनके) उपाय का वर्णन करता है, जो नाना प्रकार की एकान्त दृष्टियों का और दूसरे समयों (सिद्धान्तों) का निराकरण पूर्वक शुद्धि करके छह द्रव्य और नौ प्रकार के पदार्थों का प्ररूपण करती है उसे आक्षेपणी कथा कहते हैं। कहा भी है—तत्त्वों की निरूपण करनेवाली आक्षेपणी कथा है। तत्त्व से दिशान्तर को प्राप्त हुई दृष्टियों का शोधन करनेवाली अर्थात् परमत की एकान्त दृष्टियों का शोधन करके स्वसमय की स्थापना करनेवाली विक्षेपणी कथा है। विस्तार से धर्म के फल का वर्णन करनेवाली संवेगिनी कथा है और वैराग्य उत्पन्न करनेवाली निर्वेगिनी कथा है। 'यह प्रश्न व्याकरण नाम का अंग प्रश्न के अनुसार हृत-नष्ट-मुष्टि-चिन्ता-लाभ-अलाभ-सुख, दुःख, जीवित, मरण, जय, पराजय, नाम, द्रव्य, आयु और संख्या का भी प्ररूपण करता है। धवलापृ० १०४ से १०६।

उपरोक्त धवला के उल्लेख से प्रकट होता है कि प्रश्न व्याकरण में आक्षेपणी आदि चार कथाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन था और प्रश्न के अनुसार हृत, नष्ट, मुष्टि, चिन्ता, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवित, मरण जय, पराजय, नाम द्रव्य, आयु और संख्या का भी प्ररूपण किया गया था। इसमें प्रधानता से चार कथाओं को कह कर उन्हीं के साथ प्रश्न-विद्या का भी होना कहा गया है। किन्तु गोम्मटसार में प्रश्न-विद्या को मुख्यार्थ मान कर पक्षान्तर में शिष्य प्रश्नानुरूप से चार कथाओं का वागरण माना गया है। जैसे कि—"प्रश्नस्य दूतवाक्य नष्ट मुष्टि चिन्तादि

रूपस्यार्थस्त्रिकाल गोचरो धनधान्यादि लाभालाभ सुखदुःख जीवित मरण जय पराजयादि रूपो व्याक्रियते—व्याख्यायते यस्मिन् तत्-प्रश्न व्याकरणम्। अथवा शिष्य प्रश्नानुरूपतया आक्षेपणी विक्षेपणी, संवेगनी, निर्वेदनी इति कथाश्चतुर्विधा व्याक्रियन्ते यस्मिंस्तत् प्रश्न व्याकरणम् नाम। गाम० जीवकाण्ड० जी० म० टी०

प्रथमतो नष्ट मुष्ट्यादि प्रश्न का लाभालाभ आदि रूप फल जिसमें कहा जाय वह प्रश्न व्याकरण है। अथवा शिष्य के प्रश्नानुरूप जिसमें आक्षेपणी आदि चार कथायें कही जांय वह प्रश्न व्याकरण है। उपरोक्त विवरण से फलित होता है कि दिगम्बर परम्परा में भी प्रश्न व्याकरण के दो रूप माने गये हैं।

**सूत्र का वर्तमान रूप कब से और क्यों ?**

प्रश्न व्याकरण का परिचय पढ़ कर पाठक विचारेंगे कि इसमें से प्रश्नविद्या क्यों और कब चली गई ? और यह इस रूप में कब से है ? यद्यपि इस प्रश्न का ब्योरेवार समाधान करना हमारी शक्ति और उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री से बाहर की बात है तथापि यथावबोधमिदम् सम्प्राप्त साधनों से कुछ विचार किया जाता है। नन्दी और समवायाङ्ग के उल्लेख को देखते हुए प्रतीत होता है कि इनके लेखन काल में प्रश्न विद्यावाले प्रश्न व्याकरण की ही प्रसिद्धि थी। आस्रव संवर का प्रतिपादन करने वाला यह सूत्र यदि शास्त्रलेखन के समय होता तो अवश्य उसका द्वादशाङ्ग के परिचय में उल्लेख होता किन्तु नन्दी से समवायाङ्ग के सूत्र परिचय में कुछ बातें विशेष बता कर भी आस्रव संवर का वर्णन कहीं नहीं दिखाया गया। दिगम्बर परम्परा के धवला सन्दर्भ में जैसे प्रश्न विद्या के साथ चतुर्विध कथाओं का प्रश्न व्याकरण में परिचय दिया गया, वैसा भी यहाँ निर्देश नहीं। इससे हमारे जैसे अल्पज्ञ विचारक की तो यही धारणा होती है कि देवर्द्धिगणी के द्वारा वीर निर्वाण ९८० में जो शास्त्रों का पुस्तकाकार लेखन कराया गया उसमें समवायाङ्ग के लेखन तक तो प्रश्न विद्यावाला प्रश्न व्याकरण था किन्तु उसका ज्ञान सर्वसाधारण को सुलभ नहीं था। केवल परम्परा से परिचय मात्र सब को था। जब शास्त्रों का सङ्कलन तथा [illegible] किया गया तब अनुयोगधारी आचार्यों ने अल्पबल के साधुओं को अतिशय ज्ञान के योग्य न जान कर अंगुष्ठ आदि प्रश्नों को निकाल दिया। जैसे कि टीकाकार आचार्य अभयदेव सूरि लिखते हैं—"इदानीं त्वास्रव पंचक संवर पंचक व्याकृतिरेवेहोपलभ्यते। अतिशयानां पूर्वाचार्यैरैदंयुगीनानाम पुष्टालम्बन प्रतिसेवि पुरुषापेक्षयोत्तारितत्वात्-इति।" अतएव अंगुष्ठ आदि प्रश्नों के

स्थान में आस्रव एवं संवर के विचार को रक्खा हो। कारण यह कि प्राचीन समय में गुरु शिष्य परम्परा से श्रवणानुश्रवण ही शास्त्र रक्षा का साधन था। जब विशिष्ट ज्ञान के धारक गुरु अपना ज्ञान किसी को बिना दिये ही स्वर्गवासी हो जाते तब उनका गूढ़ ज्ञान उन्हीं के साथ विलीन हो जाता था।

टीकाकार अभय देवसूरि के प्राप्त प्रश्नव्याकरण की दूसरी पुस्तक में जो उपोद्घात ग्रन्थ हैं, उससे अवश्य प्रश्नव्याकरण में पांच आस्रव और पांच संवर का वर्णन ज्ञात होता है। उसमें प्रश्न विद्या का नाम ही नहीं है, जो मुद्रित उपोद्घात ग्रन्थ में देख सकते हैं। इस पर से अनुमान होता है कि पुस्तकान्तर में उपोद्घात के साथ मिला हुआ प्रश्नव्याकरण वाचनान्तर का हो। समवायाङ्ग में जिसका परिचय दिया गया वही वाचना लेखन काल में अधिक मान्य हो और गौण मानकर वाचनान्तर के प्रश्नव्याकरण का परिचय उसमें नहीं लिया गया हो। जो कुछ हो इतना तो सत्य है कि देवर्द्धिगणी के बाद और टीका विधान से बहुत पूर्व ही वर्तमान का प्रश्नव्याकरण भी लिपिबद्ध होकर प्रकट हो चुका था।

**ग्रन्थ कर्त्ता—**

शास्त्र के मूल प्रणेता श्रमण भगवान् महावीर हैं, क्योंकि उन्होंने अर्थ रूप से इसका प्रथम कथन किया है। जैसे कि कहा है—"अत्थ भासइ अरहा, सुत्त गंथंति गणहरा निउणं। सासणस्स हियट्ठाए, तओ सुत्त पवत्तइ" अर्थात्–तीर्थङ्कर भगवान के कहे हुए अर्थ को गणधर कुशलता से सूत्र रूप में ग्रथन करते हैं। आदि। अतः अर्थ दृष्टि से प्रश्नव्याकरण के कर्ता भी महावीर हैं किन्तु सूत्ररूप से शब्द रचना करने वाले गणधर कहे जाते हैं। दिगम्बर परम्परा में माना गया है कि गणधर इन्द्रभूति ने [1]अन्तर्मुहूर्त्त मात्र काल में द्वादशाङ्ग की रचना की और फिर उन्होंने दोनों प्रकार का श्रुत सुधर्माचार्य को दिया। अतः गौतम गणधर ही द्रव्य श्रुत के

---

१ पुणो तेणिंदभूदिणा भाव सुद पज्जय परिणदेण बार हंगाण चोद्दस पुव्वाणं च गंथाणमेक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयणा कदा। तदो भाव सुदस्स अत्थपदाण च तित्थयरो कत्ता॥ धवला १।१।१।पृ० ६५।

तद्यथा—तद्दोतेण गोअम गोत्तेण इदभूदिणा अतो मुहुत्तेणावहारिय दुवाल सगत्थेण तेणेव कालेण कय दुवालसग गथ रयणेण गुणेहि सगसमाणस्स सुहुमारियस्स गथो वक्खाणिदो। जय ध० अ० पृ० ११।

कहा है, किन्तु श्वेताम्बर परम्परा का मत है कि भगवान महावीर से त्रिपदी को सुनकर सभी गणधरों ने चतुर्दश पूर्व की रचना की। इन ग्यारह गणधरों के द्वारा नव वाचनाएँ हुई क्योंकि दो वाचनायें समान हुई थीं। इस मान्यता में वर्तमान आगम सुधर्म वाचना के समझे जाते हैं। अब उपलब्ध अङ्ग-शास्त्रों के कर्त्ता सुधर्मा स्वामी हैं अतः प्रश्नव्याकरण के भी सूत्ररूप से सुधर्मा स्वामी ही कर्त्ता समझने चाहिए। जैसा कि अभय देव सूरि कहते हैं—"अस्य च श्री मन्महावीर वर्द्धमान स्वामि सम्बन्धी पञ्चम गण नायक श्री सुधर्म स्वामी सूत्रतो जम्बूस्वामिनं प्रति प्रणीतं विविधु सम्बन्धाऽभिधेयप्रयोजन प्रतिपादनपरां जम्बू ! इत्यामन्त्रण पूर्वां गाथामाह"।

इसमें सुधर्मा स्वामी सूत्र रूप से जम्बू को शास्त्र का कथन किया, यह बताया गया है।

**शास्त्र की भाषा** प्रस्तुत भाषा यद्यपि अर्धमागधी है, तथापि आचाराङ्ग आदि से इसकी भाषा शैली में अवश्य अन्तर है। इसकी भाषा वाग्मयी या सरल अलङ्कारयुक्त और साहित्यिक है। वैदर्भी रीति का प्रयोग होने से इसमें समास की न्यूनता है। विषय मनोविज्ञानी होकर भी भाषा की कठिनता से सब साधारण के लिए सुलभ नहीं है। सामान्य प्राकृत के ज्ञान मात्र से इसमें प्रवेश नहीं हो सकता है। कहा जा सकता है कि प्राकृत में शास्त्र निर्माण का यह प्रचार हो अत — बालजनादि के अर्थ सिद्धान्त प्राकृत हुआ — अनुग्रह करना है। तब इसको ऐसा दुर्बोध क्यों बनाया गया ? शास्त्रकार की सभी प्रकार के भावों का स्पष्ट होना है। वस्तुओं की तरह कुछ विद्वानों की विद्या का व्यापार भिन्न, संभव है इसके निर्माण में यही भेद रहा हो। अध्यात्म का साहित्यिक प्रभाव भी कारण हो सकता है।

**शास्त्रान्तर के साथ तुलना** यहाँ प्रश्न व्याकरण आस्रव और संवर को बतलाने वाली अपनी शैली का एक ही है। अन्यत्र ऐसा स्वतन्त्र विचार नहीं मिलता फिर भी यह शास्त्र इतरों की आंशिक तुलना में आता है। प्रथम आस्रव में बताए गए जलचरादि जन्तुओं का सामान्य और स्पष्ट जातियों का प्रज्ञापना के प्रथम पद में अधिकतर लिखा है। म्लेच्छ जाति के नामों में कुछ भेद है। अतः इनके लिए प्रज्ञापना से मिलाकर और देख लिया है। ऐसा विधान है। आगे इनके स्थान में कहा है दर्शित और विज्ञ के लिये

चिह्नल है। अरोस को पन्नवणा मे हरोस और पोकण के लिये वोकण लिखा है। रोम मास के लिये रोम पास रोस ऐसा पाठ दिया है। वक्कुस को पहुम और चुंचुय के स्थान पर वंधुयाय ऐसा पाठ है। चूलिका के स्थान पर सूयलि और महुर के स्थान मग्गर है। मरहट्ठ मुट्ठीय और आरव के स्थान पर केवल मोंढ इतना ही है। डोविलग के स्थान पर डोविलग लओस और प ओस है। केकय के स्थान कक्कोस और ऋक्खाग तथा रुरु के स्थान मे भरु पाठ भेद है। मृषावादी दार्शनिकों का वर्णन सूत्रकृताङ्ग के प्रथम अध्ययन से मिलता जुलता है। युगलिक नरनारियों का वर्णन जो चतुर्थ आस्रव में है, जीवाभिगम के युगलिकाधिकार के समान है। अहिंसा के वर्णनमें जिन मुनिओंका परिचय है उस पाठकी उववाई से तुलना होती है। सवराध्ययन की पचीस भावनायें आचाराग के भावनाध्ययन में संक्षिप्त कही गई है। पञ्चम संवर में एकविध असंयम से लेकर तेंतीस आसातना तक जो उल्लेख मिलता है उनका स्पष्ट परिचय समवायांग में और कुछ दशाश्रुतस्कन्ध मे मिलता है। ये शास्त्र प्रश्न व्याकरणगत विषय के पूर्तिरूप हैं।

देश और अनार्य जाति का महाभारत में भी विशद वर्णन है। नारक वर्णन सूत्रकृताङ्ग और उत्तराध्ययन के नरक वर्णन से भावत. साम्य रखता है।

### प्रस्तुत शास्त्र परिचय—

मुख्य विषय भेद के अनुसार इस शास्त्र को हमने दो खण्ड में विभक्त कर लिखा है। प्रथम खण्डमें ५ आस्रव अर्थात हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रहका वर्णन है। प्रत्येक आस्रव को स्वरूप, नाम करने का प्रकार, कर्ता और फल के भेद से ५ द्वारों में बताया है। फिर उत्तर खड में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाच संवर का कथन है प्रत्येक व्रत को पाच भावनाओं से सुरक्षित बताया गया है। इसमें सर्व प्रथम मूल, फिर सस्कृत और पश्चात अन्वयार्थ एवं भावार्थ लिखा गया है। पाठान्तर मूल मे कोष्ठक से और अधिकाश, विशिष्ट स्थलो के टिप्पण से बताये गये हैं॥ पीछे परिशिष्ट में शब्द कोश, विशिष्ट स्थलों के टिप्पण ऐतिहासिक नाम, पाठान्तर और कथा भाग दिया गया है।

### अन्तरङ्ग परिचय—

प्रथम आस्रव मे पहले हिंसा का रूप बताकर उसके ३० नाम कहे गये हैं, फिर हिंसकों के वर्णन में कहा है कि वे असयमी अविरती एव चचल परिणाम वाले तथा पर दु ख देने में तत्पर होते हैं। मारे जाने वाले जन्तुओं की गणना में १३ जलचर ३८ चतुष्पद ८ उरग १६ भुज परिसर्प और पक्षियों की

आदियां ४७ गिनाई ग, हैं। इसके बाद प्रश्नकोतों को हिंसा के विविध कारणों को बताकर पांच स्थावरों की हिंसा के भी पृथक पृथक् कारण बतलाय हैं। चैत्य, देव कुल और मठ आदि धर्म साधन कहे जाने वाले भी प्रथम आस्रव में पृथ्वी की हिंसा क कारण बताये गये हैं। हिंसा च ह स्ववश, परवश या अर्थ एव अनर्थ स की जाय, हास्य, रति, वैर से हो अथवा क्रोध, लाभ, मोह से हो, सभी प्रकार की धर्म, अथ या काम निमित्त से होने वाली हिंसा अधर्म का द्वार है। इस करने वाले हत बुद्धि व निर्दय हैं।

हिंसकों में विविध प्रकार के शिकारी, पारधी, और मच्छीमार आदि अनेक गिनाये गय हैं। हिंसा प्रधान ५४ म्लेच्छ जातियां और पशु पक्षी मत्स्य आदि जीव इस हिंसा के खास कर्ता कह गये हैं।

अन्त में हिंसा के फलस्वरूप मिलनवाली नरक गति की रोमाञ्चकारी यम यातनायें विस्तार से कही गई हैं। यमयातना भुगत कर नरक स निकलनेवाल मार कीय जीव पशुगति में जाकर १ से भी अधिक प्रकार की पराधीन वेदनायें भोगते हैं फिर पंचेन्द्रिय स चतुरिन्द्रिय तेइन्द्रिय आदि क्रम से एकेन्द्रिय तक के भयप्रद दुःखों का वर्णन किया गया है। हिंसकों के लिय मनुष्य जन्म ऐसा दुर्लभ हो जाता है कि किसी किसी को तो अनन्त काल जैसे सुदीर्घ काल क पश्चात् मनुष्य भव का लाभ होता है। मनुष्य लोक में जो कुबड़े लूगड़, लूल्ह, वामन बहरे, काणे तथा गूंगे हैं वे तमाम विरूप हिंसा के कारण स ही हात हैं रोग, व्याधि, चिन्ता और अल्पायु तथा अकाल मरण हिंसा के ही दुष्परिणाम हैं। हिंसा से ही जीव निर्बल, कुरूप और सुख सौभाग्यहीन होता है। इस प्रकार हिंसा के कुफल वीर प्रभु ने बताय हैं।

दूसरे अधर्म द्वार में झूठ का वर्णन पांच प्रकार स है। प्रथम झूठ का स्वरूप और फिर उसक ३० नाम हैं। क्रोध लाभ, भय और हास्य स झूठ बोलनेवाल चार आदि २७ करीब व्यावहारिक पुरुष गिना कर फिर एकान्तवादियों का परिचय दिया गया है। नास्तिकवादी आदि उनमें प्रधान हैं। कुछ लोक काल स्वभाव या भवितव्यता को ही कर्ता मानत हैं तो कोई यम या ईश्वर को ही कर्ता धर्ता हर्ता मानत हैं। य सभी एकान्त वचन शास्त्र में मिथ्या कह गय हैं। व्यवहारवाद, निश्चय वाद और ज्ञानवाद एव क्रियावाद य भी एसा ही समझना चाहिए। निन्दा, पैशुन्य क अतिरिक्त कन्यालीक, गवालीक, भूम्यलीक तथा न्यासालीक का बड़ा झूठ और

दुर्गति का कारण कहा है। हिंसाकारी वचन सत्य होकर भी मृषा के समान है। पशुओं का दमन करो, अश्वादि खरीदो, और बेचो, खेत जोतो, आदि ३० प्रकार के सावद्य उपदेश सत्यव्रती मुनि के लिये बाधक कहे गये हैं। इसकी जीविका बन्द कर दो तथा कुछ भी दान मत दो यह भी झूठ्गा है।

झूठ बोलनेवाला दुर्गति में भटकता है। शरीर और वचन से विकल होता है। पराधीन नीच की सेवा करनेवाला धर्म-श्रवण से वञ्चित रहता है। सक्षेप में समझना चाहिए कि दु ख, दौर्भाग्य, अकीर्ति और तिरस्कार झूठ के मुख्य फल हैं। तीसरे अध्ययन में चोरी का वर्णन है

विना दिये तथा स्वामी की अनिच्छा से किसी पदार्थ को ले लेना चोरी है। चोरी का स्वरूप और नाम कह के फिर चोर एवं चोरी के प्रकारों का कथन है। सामने आनेवाले को मारनेवाले १ ऋण लेकर नहीं देनेवाले २. सन्धि को तोडनेवाले ३, राजनिषिद्ध कार्य को करनेवाले ४, ग्राम घातक–पुर घातक पन्थ घातक ५, राजकीय हासिल लेनेवाले अधिकारी आदि अनेक प्रकार के चोरकहे गये हैं। चोरी के प्रकार–लोभी राजा लोग सैन्य बल से लड कर दूसरों का द्रव्य हठात् हरण करते हैं। वैसे कुछ चोर समूह बना कर अटवी में पथिकों को और दरिया चलनेवाले जहाज एवं सार्थ को लूटते हैं। ग्राम नगरादि मे निर्दयता से लूट मचाते है। यहा युद्ध और समुद्र का विस्तृत वर्णन किया गया है। काल विकाल में घूमते हुए चोर, पर्वत, नदी, श्मशान अथवा वन के शून्य स्थानों में क्लेश सहते रहते हैं। ये लोग स्वजन जनों से दूर और अशन वसन के अभाव से विकल निन्दित जीवन से जीते हैं। जब कभी पकड़े जाते हैं तब राज्य-पुरुषों द्वारा विभिन्न प्रकार के वध बन्धन शूलारोपण आदि नरकतुल्य दु खों को एक ही साथ भोगते हैं। यहा पूर्वकाल में दिये जानेवाले अनेक प्रकार के दण्डविधान बताये गये हैं। परलोक में तथा नरक तिर्यञ्च योनि में और मनुष्य भव में चोरों के लिये दुर्गति दिखाई गई है। चोरी के फल में मनुष्य होकर भी नीच अनार्य क्रूर एवं धर्म रहित जीवन बिताता है। परिणाम स्वरूप संसार समुद्र मे वह दीर्घ काल तक भटकता रहता है। ससार समुद्र का यहा सर्वाङ्ग पूर्ण वर्णन किया गया है।

चौथे अध्ययन में मैथुन का वर्णन है–

यह तप सयम का विघ्न और रोग, शोक, जरा, मरण का हेतु है। चिरपरिचित होकर इसका परिणाम महा दु खदायी है। इसके ३० नाम गिनाकर फिर सेवन

करने वालों का परिचय दिया गया है। जैसे-४ जाति के देव, मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च इसका सामान्य रूपसे आसेवन करने वाले हैं। अत्यन्त शुभ लक्षणों से विराजमान और छ खण्ड की विशाल राज्य लक्ष्मी के भोक्ता बनकर भी चक्रवर्ती भोगों से अतृप्त ही रह जाते हैं।

मैथुन संज्ञा में आसक्त मनुष्य परस्पर लड़ते हैं। वैभव नाश और स्वजन नाश को प्राप्त करते हैं। इस मैथुन के आचरण से मित्र भी शत्रु बन जाते हैं, और चरित्र का नाश होता है। इस दुराचार के द्वारा कीर्तिमान् भी अकीर्ति के अधिकारी होते, सर्वथा स्वस्थ भी दीर्घरोगी बन जाते। कुशील से उभय लोक बिगड़ते हैं। मैथुन के निमित्त से जनसंहारकारी बड़े २ संग्राम हुए हैं। यह लोकोक्ति प्रख्यात है कि—"वैर तक की त्रियां ही जड़ हैं। इन हुए संग्रामों में सीता, द्रौपदी, पद्मावती आदि ८-१० के नामों का उल्लेख किया गया है। चतुर्गतिक संसार में सुदीर्घ काल तक भटकना इस विकट कुशील सेवन का बुरा फल है। लोकशास्त्र दोनों से निन्दित है। धर्म शास्त्र तो निषेध करता ही है। साथ ही नीति भी इसे गर्हित कहती है। पंचम अध्ययन में परिग्रह का वर्णन है। ममता के साथ वस्तुओं के संग्रह करने को परिग्रह कहते हैं। इसका मूल है तृष्णा और काम भोग है फलफूल। वृक्ष के रूपक से बता कर प्रकृत सूत्र में इसके ३० नाम कहे हैं। चारों जाति के देव इसको अपनाते हैं और विशालतम धनराशि को पाकर भी सन्तुष्ट नहीं होते। चक्रवर्ती से लेकर साधारण धनपति और मन्त्री ये सब परिग्रह का संचय करते हुए दुःखमय संसार गर्त में डूबते हैं। इसी परिग्रह के लिये विविध कलाकलाप की कल्पना और उसकी आराधना की जाती है। इसी के लिये सकाम कष्टकारी तपस्यायें, समुद्र लंघन, सुदूर प्रवास भयङ्कर युद्ध आदि किये जाते हैं। इस विषय का कह कर उत्तर अन्तरङ्ग परिग्रह के रूप से दण्ड, शल्य, कषाय और लेश्या आदि दुर्वासनायें प्रदर्शित की गई हैं। परिग्रह रूप मोह से ग्रसित प्राणी चतुर्गतिक संसार सागर में उतराता, डूबता और भटकता है। यह परिग्रह रूप विष वृक्ष का विषमय कटु फल है।

उपसंहार में आस्रवों के फलों का दिग्दर्शन कराने के बाद कहा गया है कि हिंसा आदि पांच आस्रवों को छोड़कर जो अहिंसादि संवरों का पालन करते हैं। वे ही सब प्रकार के कर्मों को खपाकर शीघ्रकर्मा अपुनरागम सुखास्पद सिद्धपद के भागी बनते हैं।

छट्ठे अध्ययनमें अहिंसाका वर्णन है,जो मधुरमधुर मनोहर व हृदयङ्गमकरने योग्य है

यह सूत्र के उत्तर खण्ड का पहला अध्ययन है। स्पष्ट कहा गया है कि ये अहिंसादि पञ्च महाव्रत अविश्रान्त चिरसञ्चित कर्मरजों का प्रमार्जन कर भय-मय भव प्रपञ्च से जीवको पृथक् कर देते हैं और भव भ्रमण को समूल मिटा देते हैं। महा महिमशाली इन पञ्च महाव्रतों मे अहिंसा का प्रथम स्थान है, यह भव सागर मे द्वीप के समान है। अहिंसा के ६० नाम बताकर इसकी महिमा दर्शाई गई है, जैसे— यह त्रिलोकी पूजित तीर्थङ्करों से कथित है। वैसे ही बड़े ज्ञानी, विपुलध्यानी, तपशाली, लब्धिधारी और क्रियाविकारी सन्तों से पाली गई है। इसकी रक्षा के लिये मुनिगण भिक्षा के विभिन्न दोषों को टालते हैं। सब जीवोंकी रक्षा रूप दयाके लिये भगवान् ने यह प्रवचन कहा है। इसकी रक्षा के लिये पाच भावनायें कही गई हैं जो बहुत माननीय है।

दूसरा व्रत सत्य है–इसको जगत् का आधार-धर्म का मूल और भगवान् पदसे भाषित किया है। सिद्धियो का स्थान और इन्द्रों से भी पूजित है। इसके महत्त्व मे शास्त्र का उल्लेख मनन पूर्वक पढने योग्य है, सत्यव्रती के लिये अपनी थाप (आत्म-प्रशंसा) और पर निन्दा निषिद्ध है। सत्य वचन की पूर्णता के लिये व्याकरणज्ञान से शब्द शुद्धि की आवश्यकता दिखलाई गई है। असत्य वचन से आत्मरक्षाके लिये भगवान ने यह प्रवचन कहा है। इसकी पाच भावनायें, विस्तार पूर्वक कही गई हैं। जो ध्यान से पठनीय हैं।

तीसरे संवर में अदत्ता दान विरमण व्रत का कथन है। अल्प या बहुत, छोटा या बडा, सचित्त अथवा अचित्त कोई भी द्रव्य चाहे गाव में हो या अरण्य में, पड़ा हुआ, गिरा हुआ एव खोया गया हो बिना दिये न लेना, यह अचौर्य व्रत रूप है। इसीलिये पञ्च महाव्रतिओ को प्रति दिन अनुज्ञा लेना कहा है। निन्दा करना दूसरे के नाम से लाभ उठाना और दान में अन्तराय एव दान का लोप करना, एक प्रकार की चोरी है। अत अचौर्य व्रत में वैसे अप्रीतिकारी व्यवहारो का निषेध है। जो पाई हुई चीजों का अपने परिवारों में सविभाग नही करता हो वैर विरोध और असमाधि करने वाला हो वह इस व्रत की आराधना नहीं कर सकता। अचौर्य व्रत साधक को यह आवश्यक है कि वह शक्ति पूर्वक बाल, वृद्ध एव रोगी की सेवा करे। दूसरे के लिए जो अप्रीतिकारक हो वैसा कोई भी आचरण नहीं करे। आदि। इसकी पञ्चम भावना स्वधर्मिओं में विनय करना है। यहा के सभी विचार पूर्ण मननीय हैं।

चतुर्थ संवर ब्रह्मचर्य है। तप, नियम, एवं ज्ञान, दर्शन चारित्र का यह मूल है। इस एक आराधना में सब की आराधना है। शील विनयादि गुण और यश कीर्ति आदि सभी इस पर प्रतिष्ठित हैं। इसकी ३२ उपमायें हैं। इसकी शुद्ध आराधना करनेवाला ही श्रमण ब्राह्मण या सुसाधु है। ब्रह्मचर्य के साधक को राग द्वेष और मोह बढ़ानेवाले विभूषा आदि शोभावर्द्धक व्यवहार निषिद्ध हैं। उसकी जीवनचर्या और भावनाओं का विचार हृदयग्राही परम गम्भीर है। पंचम संवर में अपरिग्रह का वर्णन है। योगशास्त्र के शब्दों में जिसे यम कहा है जैन शास्त्र की भाषा में वह संवर है। कर्मों के अणु को भी अन्तःकरण में नहीं आने देना यही संवर का निष्कर्ष है।

अपरिग्रही साधु आरम्भ परिग्रह से दूर और क्रोध मान माया लोभ से विरत होते हैं। एक विध असंयम से लेकर ३३ आशातना तक के सब भावों पर शंका, कांक्षा छोड़ कर व्रती सम्यक् श्रद्धा करता है। फिर अपरिग्रह का वृक्ष के रूपक से निरूपण किया है। सर्वथा परिग्रहत्यागी मुनि हिरण्य सुवर्णादि बहुमूल्य और कम मूल्य वाली वस्तुओं को ग्रहण नहीं करते। फल फूल और विविध प्रकार के धान्य औषध के निमित्त भी सम्पूर्ण परिग्रह त्यागी मुनि ग्रहण नहीं करे। इसको सयुक्तिक समझाया है। कल्पनीय भोजन आदि का भी मुनि को संग्रह नहीं करना चाहिए। इसके बाद भिक्षा ग्रहण करने की विधि बताई गई है। रोगादि कारण की स्थिति में भी औषध और आहार पानी का रात्रि में संग्रह निषिद्ध कहा गया है। आवश्यकता से गृहीत भण्डोपकरण भी संयम रक्षा के लिये राग द्वेष रहित धारण करना चाहिए। अपरिग्रहव्रती का स्वरूप और विविध उपमाओं से उसके गुण बताये गये हैं। फिर पांच भावनाओं के साथ अध्ययन की समाप्ति की गई है।

अन्त में शास्त्र का उपसंहार और वाचन विधि के साथ शास्त्र की समाप्ति की गई है।

विविध संस्करण और हमारा प्रयत्न—

यह सत्य है कि विविध शास्त्रों की तरह प्रश्न व्याकरण के भी कई संस्करण निकल चुके हैं जिसमें सब प्रथम राय धनपति सिंह बहादुर मुरशिदाबाद का सटीक। दूसरा आगमोदय समिति सूरत से प्रकाशित सटीक। तीसरा ज्ञान विमल टीका सहित मुक्ति विमलजी जैन ग्रन्थमाला अहमदाबाद। चौथा पूज्य अमोलक ऋषिजी महाराज कृत भाषानुवाद सहित और पांचवां गुजराती भाषान्तरवाला इस पांच

के अलावे रतलाम से प्रकाशित केवल अनुवाद और आगम मन्दिर का मूल संस्करण भी विद्यमान है, किन्तु हिन्दी भाषा के पाठकों को शुद्ध पाठ के साथ भाव का पूर्ण बोध इनसे प्राप्त नहीं होता, क्योंकि इनमें तीन तो संस्कृत रहे और एक हिन्दी व एक गुजराती पदार्थ मात्र ही। अतएव पाठकों को सुलभता से बोध प्राप्त होने के साथ मूल पाठ भी शुद्ध मिले एतदर्थं हमारा यह प्रयत्न है। पाठ शुद्धि के लिये ४ हस्त लिखित १ सटीक और १ आगम मन्दिर पालीताणा से प्रकाशित मूल इस प्रकार ६ प्रतियों का उपयोग किया गया है। अशुद्ध और भिन्न पाठो के संशोधन मे टीका का आधार लिया है, और पाठान्तर सूची में प्रत्यन्तर के उपयुक्त पाठ भेद भी बतला दिये हैं।

हमारे ध्यान से प्रश्न व्याकरण जितनी संशोधन में जटिलता अन्यत्र क्वचित् ही हो। आगम मन्दिर जैसी प्रामाणिक प्रति जो शिलापट्ट और ताम्र पत्र पर अङ्कित हो चुकी है, वह भी अशुद्धि से दूषित देखी गई है। इसके लिये १७ पाठों की एक तालिका बनाई गई जिनमे कुछ तो ऐसे हैं जिनकी अर्थतः संगति नहीं बैठती और कुछ हैं स्खलनास्थल। गीतार्थ एव तज्ज्ञ विद्वान् इसमे कुछ मार्ग प्रदर्शन करें ऐसी आशा से पाच स्थान पर तालिका भेजी गई। १ व्यवस्थापक आगम मन्दिर पालीताणा। २ पुण्य विजयजी महाराज जैसलमेर। ३ भेरोंदानजी सेठिया बीकानेर। ४ जिनागम प्रकाशक समिति और उपा० श्री अमर मुनि ब्यावर। ५ सम्यग् दर्शन में प्रकाशनार्थ सैलाना। पांच में से ३ की ओर से पहुँच के अतिरिक्त कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। पुण्य विजयजी म० ने पीछे उत्तर देने को लिखा किन्तु पत्र देने पर भी कोई उत्तर नहीं मिला। आगम मन्दिर से तो पत्र की पहुँच भी नहीं। अस्तु। पाठों की तालिका सम्यग् दर्शन ( सैलाना ) प्रथम वर्ष के ११ वें अक मे देख सकते हैं।

इस प्रकार साधन और सहाय हीन दशामें हमने जो यह महान् प्रयत्न किया, वह केवल आगम सेवा की भावना से ही।

## कृतज्ञता प्रदर्शन

सर्व प्रथम जैनाचार्य पूज्य जैन धर्म दिवाकर आत्मारामजी म० जिनका कि समय २ पर हमें सहयोग मिलता रहा उपकार मानना आवश्यक है। उपाध्याय कवि श्री० अमरचन्दजी म० ने दिल्ली विराजते समय प्रश्नव्याकरण के कुछ पत्र देखे और सुभाव प्रस्तुत किये।

इसके उपरान्त आगम सेवामें जिसनेका परिश्रम उठाने वाले विद्वान् और सहायक सत जिनकी सेवा के सहयोग से यह कार्य पूर्ण हो सका है तथा जिन २ ग्रन्थों से सहयोग लिया है उन सभी ग्रन्थ कर्ताओं के और सहायकों के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूँ। संशोधन और पदार्थ को सुलभ करने में यावत्-शक्य प्रयत्न किया गया है।

इस सूत्र के सपादन में जो कुछ पुण्य सञ्चय हुआ हो उसके फल स्वरूप भव भवान्तर-में हमें आगम सेवा सुलभ हो तथा भव्य जन सम्यग् ज्ञान का लाभ प्राप्त करें यही सदिच्छा है।

समय की अल्पता ,और साधन की दुर्लभता से भतार्थ देश आदि' पर चाहते हुए भी कुछ आवश्यक विचार नहीं कर पाया। अस्तु, इसमें विस्मरणतासे जो त्रुटि रह गई हो उनके लिये "मिच्छामि दुक्कडं" देता हूँ।

अन्तिम अभ्यर्थना है–

अशेषज्ञो नैको मतिरतिचला चंचलतर
मनश्चात्र पञ्चाऽपरिचित ममा प्राकृतगवी
नयोनां चालाऽयं दुरधिगम जैनाऽऽगमनिधौ
त्रुटिं क्षन्तुं याच्या कुरुत पुनरेवश्चिचिन्तयात्

निवेदको मुनिश्री
हस्तिमल्ल



# संशोधन सम्पादन में प्रयुक्त ग्रन्थों का परिचय।

१ प्रश्न व्याकरण सूत्र-अभयदेव सूरिकृत टीका-आगमोदय समिति प्रकाशित।
२ " " "-ज्ञानविमल सूरिकृत टीका-मुक्ति विमल जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद
३ " " "-मूल-शिलाङ्कित का-प्रतीक-आगम मन्दिर पालीताना।
४ " " "-हस्त लिखित टब्बा-प्राचीन मुनियों द्वारा लिखित।
५ अभिधान राजेन्द्र कोष-राजेन्द्र सूरि-रतलाम से प्रकाशित।
६ सृष्टिवाद और ईश्वर-भारतरत्न,प० मुनि श्री रत्नचन्द्रजी महाराज
७ मनुस्मृति -भाषाटीका।
८ समवायाग -अभयदेव सूरिकृत टीका।
९ पन्नवणा -गुजराती अनुवाद अहमदाबाद से प्रकाशित।
१० षट्-खडागम -धवला टीका १।१।१-हीरालाल जैन-अमरावती प्रकाशित
११ सूयगडांग -सटीक आगम० समिति प्रकाशित।
१२ कल्याण -महाभारत अङ्क गीता प्रेस गोरखपुर।
१३ जीवाभिगम सूत्र -सटीक-समिति से प्रकाशित।
१४ बोल संग्रह -भैरोंदानजी सेठिया-बीकानेर से प्रकाशित।



# श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र की विषयानुक्रमणिका

# आवश्यक निवेदन



प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशन मे समय की शीघ्रता तथा संशोधक की कार्यकालीन शारीरिक एवं मानसिक अस्वस्थता के कारण त्रुटियां कुछ अधिक मात्रा मे रह गयी जिनके लिए शुद्धि पत्र ही प्रमाण हैं। इसके साथ ही पुरातनशीशाक्षरातुट्टंकन दोष से भी कतिपय स्थानों मे मात्रा, अनुस्वार और रेफ की त्रुटियां खटकनेवाली हैं, पाठक ऐसे प्रसगों पर विवेक बुद्धि से काम लेंगे। उदाहरण के तौरपर मात्रा त्रुटि के आत्मरूप, छया, पक्षा, किंत, सराश, अदि, भर्या, जल्दा, कठाण, प्ररणा, शरीरिक आदि को आत्मारुप, छाया, पक्षी, किंते, साराश, आदि भार्या, जल्दी, कुठाण, प्रेरणा और शारीरिक समझना चाहिए, ऐसे ही अनुस्वार के सम्बन्ध में सश्रितान, मच, एव, वहुल, खडित, चचज, भाव, मूल, वश तथा चौर्य की जगह सश्रितान, मंच, एव, वहुलं, खडित, चचल, भाव, मूलं, वंश तथा चौर्यं पढ़ना चाहिए। रेफ दोष से निमलै , स्पश, गभ, प्राथनीय, पूव, सहस्रै , धम, अथ, दृष्टि तथा आसव की जगह निर्मलै स्पर्श, गर्भ, प्रार्थनीय, पूर्व, सहस्रै , धर्म, अर्थ, दृष्टि तथा आस्रव समझना चाहिए। पाठक ऐसे स्थलों पर विषय स्थिति को समझ लेंगे। इसके अतिरिक्त खड्ग की जगह खड्ग तथा स्निग्ध की जगह स्निग्ध और प्रकार की जगह प्रकार एव ससान, ससाप्त की जगह समान और समाप्त तथा पराङ्ग की जगह पराङ्ग एव सहा की जगह महा समझेंगे।

प्रार्थी—

प्रबन्धक



# शुद्धि पत्रम्

| पृ० | पं० | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| १ | ८ | करें | करें |
| २ | से लेकर ४३ तक सूत्र और प्रकरण का नाम छूटा | | |
| ३ | ११ | संपर्दि | संपरि |
| ,, | १६ | बस्म | भस्म |
| ,, | २६ | संपर्त्त्या | सपर्स्या |
| ५ | १२ | परियाम | परिमाण |
| ६ | १७ | प्राणि | प्राप्य |
| ८ | १८ | हुआ | है |
| ,, | २० | गम | एव |
| ९ | १३ | (इमाभि) | च |
| १० | १ | मच्च् | मच्च् |
| १५ | १७ | क्षुधा | क्षुभ्मा |
| १५ | २३ | शारीरिक | शारीरिक |
| १५ | २६ | क्षेप | क्षेप |
| २१ | ५ | तालमठ | तालपंक |
| २१ | ५ | समूर | समूह |
| २४ | १७ | गन्धक | गन्ध |
| २४ | १८ | पाकनकर | पाककर |
| २६ | १५ | हेसं | कुस्साहेसुम |
| २७ | २ | शौकारिका | शौकरिका |
| २९ | १ | के | से |
| ३३ | २८ | मा कारी | रोमांचकारी |
| ३४ | ३३ | लटको | लटका |
| ३५ | ८ | योद | येहि |
| ३६ | १२ | केइत्य | कहड |

| पृ० | प० | अशुद्धि | शुद्धि |
| --- | --- | --- | --- |
| ३८ | ५ | यमाकयिका | यमकायिका |
| ३८ | २७ | सरद् | रसद्भीम |
| ३६ | १ | गग | वरुगण |
| ३६ | १५ | दना | चदना |
| ४२ | २१ | हूए | हुए |
| ४६ | २३ | फसि | फरिस |
| ५१ | ४ | अणतकलं | अनन्तकालं |
| ५५ | १५ | मप्रम्त्य | मप्रत्यय |
| ५५ | १६ | पर | परस |
| ६३ | २८ | युक्त्रा | युक्त |
| ६४ | ५ | भदेक | भेदक |
| ६४ | १३ | कतोपां | कपोतां |
| ६४ | १७ | हंश | हस |
| ६५ | २३ | वदन्तिः | वदन्ति |
| ६६ | ७ | गासी | गामा |
| ६६ | ७ | लकडी | लडकी |
| ७१ | २७ | सान्त्र | मन्त्र |
| ७२ | २१ | परिज | परिजन |
| ७३ | २० | स्नवन | स्नपन |
| ७४ | ११ | जिविक | जीविक |
| ७७ | १४ | तसय | तस्सय |
| ७७ | २४ | वज्जिया | वज्जिया |
| ७८ | ८ | भंय | भयं |
| ७८ | १३ | (त्तिवेमि) दारं | त्तिवेमि |
| ७६ | २ | विव | वीर |
| ७६ | ३ | कथयिं | कथयिष्यति |
| ७६ | ६ | कारकं | कारकं |

| पृ० | पं० | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ७६ | ७ | दुन्तर्ं | दुरन्त |
| ७६ | ७ | प्रभिमी | प्रयीमि |
| ७६ | ६ | पप | पल्म |
| ७६ | १६ | रहीत | रहित |
| ८० | १२ | भमना राम | भगनारम |
| ८० | १४ | पर्यतन | पयन्त |
| ८० | २१ | संवम्धी | सम्बन्धी |
| ८१ | २४ | सुरग | मुरग |
| ८२ | १७ | हाप | होम |
| ८२ | २१ | र्शमितं | संभितम् |
| ८२ | २१ | बहुमतं | बहुमतम् |
| ८३ | १ | द्वितीय | तृतीय |
| ८३ | १६ | विपस | विपम |
| ८३ | २० | हाप | होम |
| ८४ | २ | अप्रिति | अप्रीति |
| ८४ | ३ | तस्य | तस्स |
| ८५ | ६ | लोकिकर्क | लोकिकर्क |
| ८५ | १६ | अक्खेवो | अक्खवो |
| ८५ | २८ | अपरच्छविविय | अपरच्छतिविय |
| ८६ | १६ | गात्वा | गत्वा |
| ८६ | १६ | आवलिका | ओवीलका |
| ८६ | २१ | कए | एक |
| ८७ | ११ | स्वके | स्वक च |
| ८७ | २७ | संपता | संपघता |
| ८८ | २० | र्मांतात् | अर्मात् |
| ८९ | ११ | विग्मुज्जक | विग्गुज्जते |
| ८९ | १६ | इम हासम | इमं हेमिय |

| पृ० | पं० | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| ६० | २३ | निरवलं | निरवलवं |
| ६१ | ४ | केहिं | तरकेहि |
| ६२ | १८ | सीतकृष्ट | सीत्कृत |
| ९२ | २७ | (चित ) | चिल्लल ) |
| ६३ | ३ | न्धाकार | न्धकार |
| ६३ | ७ | सागरमूमि | सागरमूर्मि |
| ६३ | १० | गुणयद्गुच्छलत्प्रत्यावर्त | गुण्यदुच्छलत्प्रत्यावर्त |
| ६३ | २५ | ग्रह्णाति | गृह्णन्ति |
| ९४ | १० | ईव | इव |
| ६५ | ४ | मण्डलाग्र खर्ग | मण्ड ाग्र खड्ग |
| ९५ | ४ | फें | फेंक |
| ६५ | ५ | एहु | हुए |
| ९५ | १६ | घग्गतर तुग | घग्गत तुरग |
| ६८ | २२ | समुद्रा | समुद्राय |
| ६६ | ३ | निवतिन | निवतित |
| ६६ | ६ | धुग् | धुग् धुग् |
| ६६ | १७ | सायत्रिक | सायात्रिक |
| १०० | १ | मडव | मडव |
| १०० | ११ | णिकिषा | णिकिवा |
| १०१ | २६ | काले | माले |
| १०२ | २ | सैनिक | सेना |
| १०३ | २४ | दृडालउर | दंडलउर |
| १०५ | ७ | सयणस्य | सयणस्स |
| १०५ | १२ | च्छलनाना | च्छलना |
| १०५ | १६ | वरंत्र | वरत्र |
| १०६ | २ | मोदित | मोदिता |
| १०६ | १४ | धाड्यमाना प्रेर्य | धाड्यमाना -प्रेर्यया- |

| पृ० | पं० | अशुद्धि | शुद्धि |
| --- | --- | --- | --- |
| १०६ | १८ | मूर्ध्न्त्रा | मूर्द्धा |
| १०७ | १८ | गच्छुच्छच्छुसच्छ्यणा | गच्छुच्छस्तुच्छमणा |
| १०८ | २२ | | माळना |
| १०९ | ११ | चेतओ | चेतकी |
| १०९ | १ | ० | में |
| १ | १३ | मयाति | मयाली |
| ११२ | १४ | वर्णण | वर्णन |
| ११४ | १ | अपत्ति | अपतिट्ठाण |
| ११६ | २३ | गुप्त | गुप्य |
| ११६ | १४ | समाहित | समाहत |
| ११६ | ०७ | चम | वच |
| ११७ | ४ | कराणा | कारणा |
| ११७ | २० | सुष्ठुपि | सुष्ठ्वपि |
| ११७ | २६ | राअ | रअ |
| ११८ | १८ | अनार्य | आर्य |
| ११९ | ७ | वंध यम्धन | वध वन्धन |
| ११९ | २० | पिवासा | पिपासा |
| ११९ | २१ | कलशो | कलश |
| १२० | ३ | ०य | मय |
| १२० | ११ | उल | कुल |
| १२१ | ११ | निवा | निवास |
| १२५ | ४ | ० | एक अपद्र वाक्य छूटा है |
| १२६ | १ | तिलोक | तिलोक्क |
| १२८ | ६ | महारेग | महोरग |
| १२८ | १२ | नखत | नक्खत्त |
| १२९ | १६ | सागर्त | सागरंत |
| १२९ | १२ | क्खसरा | क्खसन |

| पृ० | प० | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| १३३ | १६ | उज्जवल | उज्ज्वल |
| १३४ | २० | ० | रस |
| १३५ | १६ | चंद्र | चन्द |
| १३७ | १ | ऽऽ० | ऽऽश्रम |
| १३७ | २५ | लजित | ललित |
| १३८ | १० | तृप्त | अतृप्त |
| १३८ | २४ | सास | सरस |
| १३८ | २६ | कर्बड | कर्बट |
| १३६ | १३ | गम्भीरध्व | मधुरध्व |
| १४३ | १ | सुप | सुप्प |
| १४३ | २१ | ० | चक्कपाणिलेहा |
| १४६ | ८ | सरित्च्छ | सरिच्छ |
| १४६ | २२ | सहता | सहताऽङ्ग लीका |
| १४६ | २७ | व कनक | वर कनक |
| १४८ | १८ | पार्श्री | पार्श्वों |
| १५० | ६ | गति | गती |
| १५० | ११ | निरुवले | निरुवलेवा |
| १५० | २४ | झषोदरा | झषोदर |
| १६० | २६ | गधा | गवा |
| १६१ | २ | पथरिज्जं | पल्थरिज्ज |
| १७२ | २४ | भूमिपू | भूमिसु |
| १७७ | २१ | होतो हैं | होते हैं |
| १७६ | २६ | कहेगा | कहेंगे |
| १६० | २२ | क्रुष्ठ | कोष्ठ |
| १६० | २५ | उद्दिप्त | उद्दिप्त |
| १६२ | ११ | श्लेष्ममेलदी | श्लेष्म और मेलही |
| १६६ | २१ | मणुद्दिट्ठं | मणुद्दिट्ठं |

| पृ० | पं० | अशुद्धि | शुद्धि |
|---|---|---|---|
| १६६ | ६ | कुदम | कुदव |
| २०१ | ११ | सम | सम्मं |
| २०१ | २५ | गवसियमयच्च | गवसिमयत्थं |
| २ १ | टिप्पण | संचलिट्ठ | संकलिट्ठ |
| २०५ | २० | पापतेख | पावतेख |
| २०५ | १७ | म क | कम |
| २०५ | ६ | एपणाए | पसणया |
| २०६ | २६ | वाहन | वहन |
| २ ६ | २४ | अकरोव | अकरो |
| २ ६ | २१ | सयाणु | पयअमु |
| २ ७ | १६ | अकलुप्सो | अकलुमो |
| २ ८ | १७ | परिक्यणए | परिरक्खणट्ठ |
| २०६ | ७ | आमरणंस | आमरणतच |
| ११ | ६ | पदरेशक | पदरेशकं |
| २१७ | ११ | गंधामारणाओ | गंधमारणाओ |
| २२१ | १७ | तस्याम | यस्यस्स |
| २२१ | ९ | पीतयम् | कीतये य, |
| २२१ | १४ | हाज | होज्ज (दो बार) |
| २२२ | २० | अर्मकलिट्ठो | असंकिलिट्ठ |
| २३२ | ११ | मणुप्य | मनुप्य |
| २३६ | १५ | परठर्म | परद्रम। |
| ३६ | २० | पम्रया | पवया |



## प्रश्नव्याकरणे प्रशस्तिश्लोकाः

आर्यावर्त्ते वर्तते धन्वभूमि-र्दृष्टे रम्या नैव सर्वं सहेयम् ।
धर्माऽऽधारा धार्मिकैराधृतापि सन्धत्ते तु प्रासुकी भावमुच्चैः ॥ १ ॥

अस्य क्षोणितलस्य निर्मलगुणान् संवीक्ष्य जैनो मुनि-
र्भिक्षुस्तत्र समागतः समयतः शिष्यप्रशिष्यैर्युतः
वर्षावासमनेकमत्र शमतोऽनैषीत्स्वसङ्घोघत-
स्तस्माज्जैनजनानुगो जनपदो धन्वाभिधानोऽभूत् ॥ २ ॥

सद्धर्मोऽत्र समेधते समयते सद्धर्मशीलो जनः
स्थेमानं स्थितितोऽधितिष्ठति जने श्रामण्यभाजोऽनुगः
पार्थक्यं पृथुलं न चेज्जनपदे द्वात्रिंशता सङ्के
स्वाधीनं जनतन्त्रशासनमियाज्जैनस्य हस्ते स्थितम् ॥३॥

श्रमणः स च योऽत्रजने सततं यतते निजसंयम शुद्धिविधौ,
तदनु प्रतिपूर्ण जिनागमतत्त्व सुबोध्यतयाऽधिगमैकनिधौ ।
व्रत पालन मात्र निमित्ततया तनुगोपनकृत्यमतिं निदधौ
मनसा वचसा वपुषा समितः श्रमणः खलुसत्यतरः श्रमणः ॥४॥

अधि धन्वधरं श्रुतकेवलिकल्पसमाः श्रमणाः कतिचित्सुबभुः
समितैरभिपालित सङ्घगणे मुनिरत्न समाह्वयमत्र दधुः ।
कति पूज्यवराः कुशलप्रमुखा व्यहरन्-जनतार्तिनिराकरणाः
अधुना खलु पूज्यवरः सुचकास्ति चरित्रचणोऽत्र गजेन्द्रमुनिः॥५॥

पद वाक्यविधौ श्रमशीलनतोऽध्ययन प्रतिपूर्णमवापदयं
प्रमितावयतिष्ट मदेष्ट विधावपठत्कठिनं गुरुशास्त्रचयम् ।
यतमान इहाध्ययने पदवी समियाभिध सज्जनावधृता
नयते नियतां भ्रमयै सहतां भगवौ यमसंयमत सहिताम् ॥ ६ ॥

निजतन्त्र चयेऽपरतन्त्रतया महजैकसुबोधविधे सुप्रतिष्ठा,
पटुता वचने मनसो दमने प्रभुतादिगुणैर्विततास्गमनिष्ठा ॥
गुणतो मुनिमानस शोपवतोऽवहदेव विशेष जनेषु प्रतीर्ति
श्रमणानुगतां श्रमणाभिमतां परिपालयते निजतन्त्रविभूतिम्॥७॥

इह यत्र मवीय परिश्रमणं विहित खलु धत्रदीय विधान
भवतीति जगन्ति विदन्त्विततोऽध्रुवपून धरो निजशास्त्रनिवान
प्रथम दशवै–पर–कालिकमत्र मयोऽपर मङ्गल न यमिधानं
परसूत्रमदशा परिशीलनतोऽररचत् सुविशुद्धि सुबुद्धि निदानम् ॥८॥

द्वितय तदिदं कृत चन्दनसूत्रचय सहगुरुयतोऽनुगृहीत
ततयं कठिनार्थकप्रश्नपुरस्सर व्याकरणं दशमाङ्गपरीतम् ।
प्रतिपूर्णपुरातन पद्धतित प्रतिपाठमयोजयदात्मसुनिष्ठ
कथयिष्यति जैनसुधो गुणमन्दिर सुन्दरमेतदतीवनिविष्टम् ॥९॥

अजितेन जनेन यदाचरितं जगदन्तदवस्यति सर्वमपूव
प्रकृति स्वभशरलसाऽनलमै प्रथितापयते कविवर्गमखर्वम् ।
विरलन नरस्य निषीयत आत्मसमुन्नतितुङ्गपयेऽपि पदीव
कुशलरिह शुद्धमनीषिभिरेननिषीयत आत्महितार्थमचोध ॥ १० ॥

विरति समिति शुचिगुप्तिरयोऽनुपमापरमा सुचकास्ति च यत्र,
न च तापचये सयनरा इह भवत गुणरोषभिरात्मनि तत्र ।

सुसमीक्षित शास्त्र चयः स प्रतीच्यवरः स्वसमः सुशमः स्वयमेव
प्रतिपालयते निजसङ्घमतन्द्र गजेन्द्रमुनिः सुगुणैः सविशेषः ॥११॥

प्रशास्ति सङ्घमात्मधुर्य धैर्य शौर्य योगतः
प्रतीच्य हस्तिमल्ल साधुतल्लजो नियोगतः ।
प्रतीति–नीति शान्ति–कान्ति–रीति–कीर्ति–सद्धृति
व्रजैक सङ्गतिर्विराजतेऽत्र साधुता–नतिः ॥ १२ ॥

तत्पीपारपुरं सचापिजनकः श्रीकेवलेन्दुश्च सा,
धन्या मान्यगुणाऽजनिष्ट जननी रूपाऽनुरूपं सुतम् ।
ख्यातिं ख्यातगुणां सुसंयमधनां धत्ते स सत्तेजसा
निर्मानां च पिपर्ति पूज्यपदवी श्रामण्यपुण्यौजसा ।१३।

चिरञ्जीवतु जीवानुरूपः षट्काय जीवने ।
पञ्चाननायमानोऽयमार्हताऽऽगम कानने ॥ १४ ॥

पूज्यः श्रीहरितमल्लोऽयं महामुनि शिरोमणिः ।
समेधतां लसत्तेजा यथाराकानिशामणिः ॥१५॥

भवतोऽभ्युदयाऽऽसक्त हार्द मानसलोचनः ।
श्लोकैःपञ्चदशैर्वक्ति द्विजन्मा दुःखमोचन ॥ १६ ॥

प्रार्थी-अभ्युदयाभिलाषी
दुःखमोचन झा, "मैथिल"

---

श्री प्रश्नव्याकरणसूत्रस्य

# पूर्व-खण्डम्

## पंच आस्रव द्वाराणि



श्रीः

# अथ प्रश्नव्याकरणसूत्रं सच्छायं भाषा-टीका-सहितम् ।

मूल—जंबू! इणमो अण्हय-संवर-विणिच्छयं पवयणस्स निस्संदं । वोच्छामि णिच्छयत्थं, सुहासियत्थं महेसीहिं ॥१॥

छाया—( हे ) जम्बू ! इदमास्रव संवर-विनिश्चयं प्रवचनस्य निस्यन्दं ।
वक्ष्ये निश्चयार्थं सुभाषिताऽर्थं महर्षिभिः ॥ १ ॥

## अथ मङ्गलाचरणम्

दोहा—केवल धी-किरणावली, आलोकित सब लोक ।
कैंर हमारे केवली, मानसतल निश्शोक ॥१॥

कुण्डलिया—मानसतल निश्शोक बनावें केवल ज्ञानी,
महावीर गम्भीर दया सागर हितवाणी ।
निष्प्रमाद अधवान वीर होवे मेरी धी,
साध्य साधिका सिद्धि दायिनी हो केवल धी॥ १॥

भाषानुवाद—हे जम्बू ! ( इणमो ) इस ( अण्हयसं० ) आस्रव और संवर का निश्चय अर्थात् ज्ञान कराने वाले, ( पव-) प्रवचन के ( निस्सं-) सार को ( वोच्छा-)

कहूंगा (जो) महेशोहिं तीर्थङ्कर गणधरों के द्वारा (निश्चय) निश्चय के लिये (द्वारा-) कहे हुए अर्थ जाता है।

दूसरी प्रति में इससे पहले निम्नलिखित उपोद्घात मन्थ मिलता है, उस काल में अर्थात् सुधर्मा स्वामी के समय में चम्पा नामक नगरी थी, उसमें पूर्णभद्र चैत्य वनखण्ड अशोकवरवृक्ष और पृथ्वीशिलाका पट्ट था। उस चम्पानगरी में कोणिक नाम का राजा था, धारिणी नामकी उसकी महारानी थी। उसी समय में श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी—शिष्य आर्य सुधर्म नामके स्थविर जो जाति कुल अर्थात् मातृकुल व पितृकुल से निर्मल थे बलवान् सुरूप और विनयशील थे। तथा विनय ज्ञान, दर्शन, चारित्र, क्षमा और लाघव धर्म से युक्त थे। फिर ओजस्वी तेजस्वी, वचस्वी एवं यशस्वी थे। क्रोध, मान, माया लोभ और निद्रापर जिन्होंने विजय प्राप्त की थी, एवं जितेन्द्रिय, जित परीषह थे तथा जीवन की आशा और मरण के भय से भी रहित थे। तपस्या गुण मुक्ति, विद्या, मन्त्र, ब्रह्मचर्यव्रत नय, नियम और सत्य शौच ज्ञान दर्शन तथा चारित्रगुण की जिनमें प्रधानता थी, और जो चौदह पूर्वों व चार ज्ञान के धारक थे। ऐसे महा प्रभावी श्री सुधर्मा स्वामी पांचसौ साधुओं के साथ पूर्वानुपूर्वी चलते हुए एक गांव से दूसरे गांव में होते हुए क्रमशः जहाँ चम्पा नगरी है, वहाँ पहुंचे। और साधु के योग्य अवग्रह[1] को ग्रहण कर संयम व तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। उस समय आर्य सुधर्म स्वामी के शिष्य आर्य जम्बू नाम के मुनि जो काश्यप गोत्री एवं सात हाथ जितने ऊँचे थे। यावत् विस्तीर्ण तेजोलेश्या को संक्षिप्त करके रखते हुए थे। आर्य सुधर्म स्थविर के पास योग्य सीमा में ऊर्ध्व जानु आदि प्रकार से ध्यान मग्न थे। संयम व तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे। किसी समय आर्य जम्बू को श्रद्धा के साथ तात्त्विक संशय एवं कुतूहल हुआ फिर श्रद्धा संशय और कुतूहल प्रकट तथा विकसित रूप में उत्पन्न हुए। श्रद्धा संशय व कुतूहल से युक्त थे उत्थान से उठे और उठकर जहाँ आर्य सुधर्म स्थविर थे वहाँ आए। और आर्य सुधर्म स्थविर को तीनबार दक्षिण बाजू स प्रदक्षिणा करके वन्दन व नमस्कार किया फिर न अतिशय समीप और न अधिक दूर इस प्रकार योग्य आसन से उचित स्थान में बैठकर विनय पूर्वक हाथ जोड़कर सेवा करते हुए इस प्रकार बोले—

१—स्थान आदि को।

हे भगवान् ! जब श्रमण भगवान् महावीर यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने नवमें अनुत्तरौप पातिक दशाङ्ग का पूर्वोक्त भाव वर्णन किया है। तब दशवें प्रश्न व्याकरण अङ्ग के, श्रमण भगवान् यावत् मोक्ष प्राप्त महावीर ने, क्या भाव फरमाये हैं ?

---

दूसरी प्रति में निम्नलिखित पाठ अधिक मिलता है। ( टीका )

"तेणं कालेणं तेण समएणं चम्पा नाम नगरी होत्था, पुण्णभद्दे चेइए, वणसंडे, असोगवरपायवे पुढविसिला पट्टए, तत्थण चम्पाए नयरीए कोणिए नाम राया होत्था, धारिणी देवी, तेणं कालेणं, २ समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्जसुहम्मे नाम थेरे जाइ-सपन्ने कुल-सपन्ने बलसंपन्ने रूवसपन्ने विणयसपन्ने नाणसंपन्ने दसणसंपन्ने चरित्तसपन्ने लज्जासंपन्ने लाघवसपन्ने ओयसी तेयंसी वच्चसी जससी जियकोहे जियमाणे जियमाए जियलोभे जियनिद्दे जियइंदिए जियपरीसहे जीवियास मरणभय विप्पमुक्के तवप्पहाणे गुणप्पहाणे मुत्तिप्पहाणे विज्जाप्पहाणे मंतप्पहाणे बंभप्पहाणे वयप्पहाणे नयप्पहाणे नियमप्पहाणे सच्चप्पहाणे सोयप्पहाणे नाणप्पहाणे दसणप्पहाणे चरित्तप्पहाणे चोद्दसपुव्वी चउनाणोवगए पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे जेणेव चपा नगरी तेणेव उवागच्छइ, जाव अहापडिरूवं उग्गह उगिगण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरति । तेण कालेण तेणं समएण अज्ज सुहम्मस्स अंतेवासी अज्जजंबू नाम अणगारे कासवगोत्तेण सत्तुस्सेह जाव सखित्त-विपुलतेयलेस्से अज्ज सुहम्मस्स थेरस्स अदूर सामते उड्ढ जाणू जाव सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ । तएण से अज्जजंबू जायसड्ढे जायसंसए जायकोउहल्ले, उप्पससड्ढे १ सजायसड्ढे ३ समुप्पन्नसड्ढे ३ उट्ठाए उट्ठेइ २ त्ता जेणेव अज्ज सुहम्मे थेरे तेणेव उवागच्छइ २ अज्ज सुहम्म थेर तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिण करेइ २ वदइ नमसइ, णच्चासन्ने नाइदूरे विणएण पजलिपुडे पज्जुवासमाणे एव वयासी-'जइणं भते ? समणेण भग० महा० जाव सपत्तेण णवमस्स अगस्स अणुत्तरोववाइय दसाण अयमट्ठे प० दसमस्स णं अगस्स पण्हावागर णाणं समणेणं जावसपत्तेण के अट्ठे प० ? जबू ! दसमस्स अगस्स समणेणं जाव सपत्तेणं दो सुयक्खंधा पण्णत्ता-आसवदारा य सवरदारा य, पढमस्स ण भते ? सुयक्खधस्स समणेणं जाव सपत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता, ? जबू ! पढमस्सण सुयक्खंधस्स समणेण जाव सपत्तेण पच अज्झयणा पण्णत्ता, दोच्चस्स णं भंते। सुय० एव चेव । एएसि ण भते ? अण्हय सवराणं समणेणं जाव सपत्तेण के अट्ठे पण्णत्ते ? ततेण अज्जसुहम्मे थेरे जबू नामेण अणगारेण एव वुत्ते समाणे जबू अणगार एव वयासी " जबू ! इणमो, इत्यादि ॥

उत्तर—हे जम्बू ! श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने दसमें अङ्ग के दो श्रुतस्कन्ध कहे हैं। जैसे—आस्रव द्वार और संवर द्वार।

प्रश्न—हे पूज्य ! प्रथम श्रुतस्कन्ध के श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त ने कितने अध्ययन कहे हैं ?

उत्तर—हे जम्बू ! प्रथम श्रुतस्कन्ध के श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त ने पांच अध्ययन फरमाए हैं।

प्रश्न—हे पूज्य ! दूसरे श्रुतस्कन्ध के कितने अध्ययन हैं ?

उत्तर—इसके भी पांच अध्ययन हैं।

प्रश्न—हे गुरुदेव ! इन आस्रव और संवरों का श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त ने क्या स्वरूप कहा है ? इसके बाद जम्बू नाम के मुनि से पूछे गए स्थविर आर्य सुधर्म स्वामी जम्बू मुनि को उत्तर में इस प्रकार बोले—"जम्बू इणमो-इत्यादि।"

विवेचन—सुधर्मस्वामी कहते हैं—हे जंबू ! आस्रव और संवर का निर्णय कराने वाले इस शास्त्र को कहूंगा जो द्वादशाङ्ग रूप जिन प्रवचन का सार है।

जहाँ आत्मरूप तालाब में जिन २ कारणों से प्राणातिपात आदि कर्म प्रवाह आता हो उसे आस्रव समझना चाहिए।

तथा आत्मरूप तालाब में आता हुआ वही कर्म जल जिन अहिंसा आदि साधनों से रुकता हो अर्थात् जिनसे कर्म प्रवाह का प्रतिरोध हो उनको संवर कहते हैं।

कर्म बन्ध और कर्म-अवरोध के हेतुओं-कारणों को समझना ही जिन प्रवचन का सार है। क्यों कि इस शास्त्र में आस्रव और संवरों के त्याग व आसेवन का विधान किया गया है।

चरण रूप होने से यह प्रवचन का सार है। कहा गया है कि '—सामायिक से लेकर बिन्दुसार पर्यन्त श्रुत ज्ञान है। उस श्रुत ज्ञान का सार चरण-चारित्र है और चारित्र का सार मोक्ष है।

शास्त्र का अभिधेय कह कर अब प्रयोजन बताते हैं-प्रयोजन कथन,—प्र०—प्रस्तुत शास्त्र क्यों कहते हैं?उ० "आस्रव आदि का निश्चय करने तथा कर्म बन्ध से मुक्त होने के लिये प्रस्तुत शास्त्र कहा जाता है। प्रामाणिकता दिखाते हैं—"सर्वज्ञ और तीर्थ प्रवर्तक महान् ऐसे ऋषियों से यानी तीर्थंकरों से कहा हुआ है, अतएव

( एवं ) यह राग द्वेष और संशय विपर्यय आदि दोषों से रहित होने से सुभाषितार्थ है। इस गाथा में सूत्रकारने सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन रूप तीन बातों का विचार किया है।

सम्बन्ध—'नवमे अङ्ग में ऊंची साधुता की आराधना करने वालों के लिये अनुत्तर गति कही गई है और वह ऊंची साधुता, आस्रव के निरोध व संवर के पूर्ण आराधनसे प्राप्त होती है। इस लिये दशमे अङ्गमे आस्रव व सवर का वर्णन किया जाता है।

ऊपर की गाथा मे कहा गया है कि आस्रव और संवर का निश्चय कराने वाले प्रवचन के सार को कहूंगा, इस प्रतिज्ञा वाक्य में पहले आस्रव का उद्देश-कथन किया है। एक सामान्य नियम है कि उद्देश के अनुसार ही निर्देश वर्णन करना चाहिए। इस लिये यहा पहले आस्रवों पर विचार किया जाता है।

## आस्रव के परिणाम और नाम—

गाथा—"पंच विहो पएणत्तो, जिणेहिं इह अएहओ अणादीओ
हिंसा मोस मदत्तं, अब्बंभ परिग्गहं चेव ॥२॥

छाया—' पञ्चविधः प्रज्ञप्तो, जिनै-रिहास्र ( स्र ) वोऽनादिकः।
हिंसा मृषाऽदत्त-मब्रह्म परिग्रहश्चैव ॥२॥

अन्वयार्थ—" ( जणेहिं ) राग द्वेष आदि पर विजय पाने वाले श्री जिनेन्द्र देव-तीर्थङ्करोंने ( इह ) यहां-इस आगममे अथवा इस लोकमे ( अएहो ) आस्रव ( पञ्च विहो ) पांच प्रकार का ( पन्नत्तो ) कहा है, जो ( अणाइओ ) अनादि याने प्रवाह रूप से सदा रहने वाला अर्थात् आदि रहित है। उसके पाँच भेद हैं जैसे-( हिंसा मोसमदत्त ) हिंसा १ झूठ २ अदत्त का ग्रहण ३ ( चेव ) और इसी प्रकार ( अबंभ परिग्गह) अब्रह्म विषय-सेवन ४ परिग्रह ५ ये आस्रव के पांच भेद होते हैं।

विवेचन— वीत राग प्रभु ने आस्रव पाँच प्रकार का बताया है! प्रवाह रूप से इसका हर समय में सद्भाव रहता है। इसलिये सामान्य रूप से यह अनादि है। सब जीवों की अपेक्षा से इसका कभी अन्त नहीं होता है। इसलिये आस्रव को अनन्त भी समझना चाहिए। एक जीव की अपेक्षा यह अनादि सान्त और जीव राशि की अपेक्षा अनादि अनन्त है। टीका कारने अनादिक पद को ऋणातीत और

अणादि रूप से भी माना है। उन्होंने भव पद का अर्थ पाप किया है और मिथ्यात्व आदि पाप आस्रव का आदि कारण है इसलिये आस्रव को अनादि भी कहा है। हिंसा १ झूठ २ चोरी ३ मैथुन ४ और परिग्रह ५ ये पांच भेद आस्रव के हैं। दूसरी जगह आस्रव के ४२ भेद भी किये हैं जो पांच इन्द्रिय ४ कषाय ५ अविरति हिंसा झूठ आदि २५ क्रिया और तीन योग मिलकर ४२ होते हैं।

आस्रव का स्वरूप और उसके हिंसा आदि पांच प्रकारों का वर्णन किया गया, अब पांचों आस्रवोंको क्रमशः वर्णन करने की इच्छा से शास्त्रकार प्रथम प्राणातिपात आस्रव को कहते हैं।

हर एक आस्रव द्वार पर कैसा १ क्या नाम २ और किस प्रकार किया जाता तथा क्या फल देता है ३-४ और कौन उसको करते हैं ? ५, इस प्रकार पांच बातों का विचार किया गया है। इन में से प्राणातिपात का पांच प्रकार से वर्णन करने के लिये सूत्रकार कहते हैं—

मूल-'१ जारिसओ २जंनामा ३जह य कओ ४जारिस फलं देंति।
५ जेविय करेंति पावा, पाणवहं तं निसामेह ॥१॥

छाया—यादृशको यन्नामा यथा च कृतो यादृशं फलं ददाति।
येऽपि च कुर्वन्ति पापा, प्राणवधं तं निशामयत ॥१॥

अन्व—"प्राणिवध रूप पहला आस्रव (जारिस ओ) कैसा है (जंनामा) किस नाम वाला है और प्राणियों के द्वारा (जह य कओ) किस प्रकार किया गया है (जारिसं फलं देंति) दुर्गति में गिराने रूप कैसे वह फल को देता है (य) और (जेविकरेंतिपावा) जो भी पापी जीव उसको करते हैं (तं पाणवहं) उस हिंसा रूप आस्रव को हे शिष्य ? तुम उन श्रवण करो ॥१॥

वि०—"सुधर्म स्वामी महाराज अपने शिष्य जंबू से कहते हैं कि हिंसा रूप प्रथम आस्रव द्वार कैसा है ? उसके क्या नाम हैं ? और किस प्रकार वह किया जाता है दुर्गतिरूप कैसा कटुफल देता है, तथा कैसे लोग उसको करते हैं यह सब मैं कहूंगा हे शिष्य तुम उसको सुनो।

एक नियम है कि तत्त्वभेद व पर्यायों से व्याख्या होती है। इसके अनुसार पाठ तक, इस पद से यहां हिंसा के स्वरूप यानें तत्त्व को कहने की प्रतिज्ञा की गई और जंनामा, इस पद से पर्यायों का व्याख्यान किया गया है, बाकी के तीन द्वारों से

आस्रव के भेद बताये गये हैं, इस प्रकार आस्रव प्रवृत्तियाँ, क्रिया और कारण व फल आदि के भेद से पांच प्रकार की कही गई है।

उपरोक्त पांच विषयों में से प्रथम प्राणिवध-हिंसा का स्वरूप कहते हैं—

**मूल—"पाणवहो नाम एस निच्चं जिणेहिं भणिओ—"पावो चंडो रुद्दो खुद्दो साहसिओ अणारिओ णिग्घिणो णिस्संसो महब्भओ पइभओ १० अतिभओ बीहणओ तासणओ अणज्जो उव्वेयणओ य णिरवयक्खो णिद्धम्मो णिप्पिवासो णिक्कलुणो णिरयवासगमणनिधणो २० मोहमहब्भय पयट्टओ, मरणवेमणस्सो २२॥ पढमं अधम्म-दारं॥ ( सू० १ )**

छाया—"प्राणवधोनाम एष नित्य जिनैर्भणितः—पाप., चण्डः, रुद्रः, क्षुद्रः, साहसिक', अनार्य', निर्घृण., नृशसः, महाभयः, प्रतिभय, १० अतिभयः, भापनक., त्रासनकः, अन्याय्य, उद्वेजनकश्च. निरपेक्ष', निर्द्धर्म, निष्पिपासः, निष्करुण. निरयवासगमननिधनः, २०मोहमहाभय प्रवर्तकः, मरणवैमनस्य.॥ प्रथममधर्म-द्वारम्॥ ॥ सू० १॥

अन्वयार्थ—( पाणवहोनाम ) प्राण वध याने हिंसा नामका ( एस ) यह प्रत्यक्ष कहा जाने वाला आस्रव ( जिणेहिं ) तीर्थंकरों ने ( निच्च ) सदा नीचे के विशेषणों से युक्त ( भणिओ ) कहा है,—( पावो ) पाप कर्म के बन्ध का कारण होने से यह पाप है ( चडो ) कषाय से उद्धत बने हुए प्राणियों से किया जाता है, इसलिये चण्ड है, ( रुद्दो ) हिंसा करते समय मनुष्य रौद्ररस में लीन होता है अतः रौद्र है, ( खुद्दो ) आत्मिक भाव को अपेक्षा नीच होने से और नीच, ज्ञान से तथा दुष्ट प्राणियों से सेवित होने के कारण यह क्षुद्र है, ( साहसिओ ) हिंसा करते समय प्राणी अच्छे बुरे का भाव छोडकर दुस्साहसी होता है, इसलिए हिंसा साहसिक है, ( अणारिओ ) पाप रहित कर्म को आर्य कहते हैं, उससे विपरीत होने से अथवा अनार्य लोकों से की गई होने से हिंसा अनार्य, है ( णिग्घिणो ) हिंसा करते समय पाप से घृणा-दुर्भावना नहीं होती इसलिये यह 'निर्घृण, है, ( णिस्संसो ) निर्दयता का कार्य होने से अथवा प्रशसा करने योग्य नहीं होने से हिंसा 'नृशस'है, ( महब्भओ ) बडे भय का कारण होने से यह ( भयङ्कर ) 'महाभय' है, ( पइभओ ) प्रत्येक प्राणी से हिंसक को भय रहता है, अतएव हिंसा को 'प्रतिभय' कहते हैं, ( अइभओ )

हिंसा के समय हिंसक इस लोक व परलोक के भय को भूल जाता है इसलिये हिंसा 'अविभय' भयको भुलाने वाली है (भीषणओ) प्राणी को हिंसा भयभीत करने वाली है (तासणओ) दूसरे को कम्प व मन में क्षोभ पैदा करने से यह हिंसा त्रासनक, है, (अणज्जो) हिंसा न्याय युक्त नहीं होने से अन्याय्य कहाती है (उव्वेयणओ) चित्तमें उद्वेग को करने वाली है (य) और (निरवयक्खो) हिंसा में दूसरे के प्राणों को व परलोक की अपेक्षा नहीं रखने वाली वास्ते हिंसा 'निरपेक्ष' है। (निद्धम्मो) श्रुत व चारित्र धर्म से हिंसा बहिर्भूत है, अर्थात् धर्म शून्य है, (निप्पिवासो) दूसरों के जीवन की प्यास इच्छा नहीं होने से निष्पिपास, है (निक्कलुणो) करुणाभाव के चले जाने से हिंसा 'निष्करुण, है, (निरयवास गमण-निधणो) नरक वास में जाने के आखिर परिणाम वाली हिंसा है, (मोहमहब्भयपयट्टओ) मोह-मूर्खता और बड़े भय को प्रवृत्त करने वाली तथा अज्ञान व भय को बढ़ाने वाली भी हिंसा है, (मरणावेमणस्सो) मरण के द्वारा यह जीवों की दीनता का कारण होती है॥

(पढमं अहम्मदारं) यह प्राण वध रूप पहला आस्रव अधर्म द्वार हुआ।

भाव—यहाँ प्राणातिपात को पाप चण्ड रौद्र आदि २१ विशेषणों से बताया गया है, यह नरक गति का कारण और भय व अज्ञान को बढ़ाने वाला है।

मृत्यु के द्वारा यह प्राणियों को दीन बना देता है दूसरे द्वार में प्राण वध के नाम कहते हैं—इस प्रकार प्रथम अधर्म द्वार पूर्ण हुआ।

मूल—"तस्सय नामाणि इमाणि गोण्णाणि होंति तीस, तजहा-पाणवहो १ उम्मूलणा सरीराओ २ अवीसंभो ३ हिंस विहिंसा ४ तहा अकिच्च च ५ घायणा ६ मारणा य ७ वहणा ८ उद्दवणा ९ तिवायणा य १० आरंभ-समारंभो ११ आउय कम्मस्सुवद्दवो, भेयणिट्ठवण गालणा य संवट्टग संखेवो १२ मच्चू १३ असंजमो १४ कडगमद्दण १५ वोरमण १६ परभव संकाम कारओ १७ दुग्गतिप्पवाओ १८ पावकोवो य १९ पावलोभो २० छविच्छेओ २१ जीवियंत करणो २२ भयंकरो २३ अणकरो य २४ वज्जो २५ परितावण अण्हओ २६ विणासो २७ निज्जवणा २८ लुंपणा २९ गुणाणं विराहणात्ति ३० विय, तस्स एवमादीणि

णामधेज्जाणि होंति तीसं पाणवहस्स कलुसस्स कडुय फल- देसगाइं ॥ सू० २ ॥

छाया– तस्य च नामानि इमानि गौणानि भवन्ति त्रिंशत् । तद्यथा–"प्राणवधः १ उन्मूलना शरीरात् २ अविश्रम्भः ३ हिंस्य–विहिंसा ४ तथा अकृत्यच ५ घातना ६ मारणा च ७ हननम् ८ उपद्रवणम् ९ त्रिपातनाच १० आरम्भ समारम्भः ११ आयुः कर्मणउपद्रवो, भेद–निष्ठापन–गालना च संवर्तकसक्षेपः १२ मृत्यु. १३ असयमः १४ कटक मर्दनम् १५ व्युपरमणम् १६ पर भव–सक्रमकारकः १७ दुर्गति प्रपातः १८ पाप––कोपश्च १९ पाप लोभः २० छवि च्छेदः २१ जीवितान्त करणः २२ भयङ्कर. २३ ऋण करश्च २४ वर्ज्यः २५ परितापनास्रवः २६ विनाशः २७ निर्यापना २८ लोपना २९ गुणानां विराधना ३० इत्यपिच, तस्यैवमादोनि नामधेयानि भवन्ति त्रिंशत् प्राणवधस्य कलुषस्य कटु-फल देशकानि ( सू०२ )

अन्व-"( तस्सय ) और पूर्वोक्त स्वरूप वाले उस प्राण वध के ( नामाणि ) नाम ( इमाणि ) ( गोण्णाणि ) गुणों से होने वाले ( तीसं ) तीस ( होंति )हो ते हैं, ( तजहा ) जैसे कि वे-( पाणवह ) प्राणों का हनन होने से इसको प्राण वध कहते हैं ( उम्मूलणा सरीराओ ) जीव को शरीर से अलग कर देने से इसको उन्मूलन कहते हैं ( अवीसभो ) अविश्वास का कारण होने से इसे अविश्रम्भ कहते हैं, ( य आरंभ समारंभो ) और जोवों का उप मर्द होने से अथवा पीडा पहुंचाने के साथ जीवों को मारने से इस को 'आरंभ समारंभ कहते हैं' । ( हिंस विहिंसा ) जीवों की हिंसा अथवा प्रमादी जोवों से विशेष रूप में होने के कारण इसे हिंस्रविहिंसा कहते हैं, ( तहा अकिच्चं ) इसी प्रकार नहीं करने योग्य होने से यह अकृत्य है ( च घायणा ) और प्राणों की घात करने से इसे घातना, व ( मारणा ) मरण उत्पन्न करने से 'मारणा' कहते हैं ( य वहणा ) और हनन करने से इसको 'वधन' भी कहते हैं ( उद्दवणा ) दूसरे को दुख. पहुँचाने के कारण इसको 'उपद्रवणा' कहते हैं, ( तिवायणा ) मन वाणो और कायका अथवा देह आयु और इन्द्रिय रूप प्राणों से जोव का पतन कराने से इसको 'त्रिपातना' कहते हैं ( आउय कम्मस्सुवद्दवोभेयणिट्ठवण गालणाय संवट्टग संखेवो ) आयु कर्म का उपद्रव, या उसी का भेद या उस आयु का अन्त करना और आयु को गालना, घुटाना व आयु को सक्षेप करना इन मे एक कोई या सब मिलकर प्राणि वध का

एक नाम होता है । क्योंकि आयु का छेदन करना सब में समान है । ( मच्चू ) मृत्यु ( असंजमो ) संयम भाव से हिंसा नहीं होती वाले इस को 'असंयम' कहा है ( कडगमद्दणं ) सेना की तरह आक्रमण करके प्राण वध किया जाता है, इसलिये इसको कटक मर्दन भी कहते हैं ( वोरमणं ) प्राणों से जीव का अलग करने के कारण यह व्युपरमण कहाता है, ( परभव संकामकारओ ) प्राण से छूट जाने पर ही जीव का पर भव में संक्रमण होता है, इसलिये इस को परभव में संक्रमण कराने वाला कहा गया है ( दुग्गति प्पवाओ ) प्राणवध के कारण जीव दुर्गति में पड़ता है इसलिये 'दुर्गति प्रपात, कहते हैं ( पावकोवो य ), और पाप कर्म को बढ़ाने वाला व उत्तेजित करने के कारण यह 'पाप कोप' कहाता है । ( पावलोभो ) प्राणियों को पाप में लुभाता है इसलिये इसको 'पाप लोभ कहते हैं, ( छविच्छेओ) हिंसा में वर्तमान शरीर का छेदन होता है इसलिये इसको 'छविच्छेद' भी कहते हैं, ( जीवियंतकरणो ) जीवन का अन्त करने से यह 'जीवितान्त करण' कहाता है ( भयकरो ) भय उत्पन्न करने वाला है (अणकरोय) ऋणकर याने पाप रूप ऋण-कर्ज को करने वाला है ( वज्जो ) जीव को भारी बनाकर अधोगति-नीच गति में ले जाने के कारण प्राणिवध को 'वज्र कहते हैं' विवेकियों से वर्जित होने के कारण 'वर्ज्य' भी कहते हैं पाठान्तर की अपेक्षा सावद्य नाम भी होता है ( परितावण अण्हओ ) इसकी परितापनास्रव भी कहते हैं ( विणासो ) प्राणों को नष्ट कर देने से इसको 'विनाश कहते हैं ( निज्जवणा ) प्राणी के जाने में प्रेरक होने से इसको 'निर्यापना' भी कहते हैं ( लुपणा ) प्राणों के लोप करने से इसे 'लुम्पना' कहते हैं ( गुणाणं विराहणत्ति ) मरने व मारने वालों के गुणों का विघातक होने से हिंसा को गुणों का विराधक भी कहते हैं ( विय, तस्स एवमाइणि नामधेज्जाणि ) इस प्रकार पद मलिन कम रूप प्राण वध के ( एवमादिणि नामधेज्जाणि ) इत्यादिक नाम ( होंति ) होते हैं, जो ( कडुयफलसंदेसगाइं ) कटु फल को देने वाले हैं ॥ सू० २ ॥

भाव—'प्राणवध के गुण सम्पन्न तीस नाम होते हैं जैसे प्राणवध, १ उन्मूलना २, अविश्रम्भ ३ हिंस ( स्व ) विहिंसा ४, अकृत्य ५ घातना ६ मारणा ७ वध ८ उपद्रवण ९ त्रिपातना १० आरम्भ समारम्भ ११, आयु कर्म-उपद्रव, भेद अन्त या गालन, संवर्तन अथवा संक्षेप करण १२ मृत्यु १३, असंयम १४, कटक

मर्दन १५,व्युपरमण १६ परभव संक्रम कारक १७ दुर्गति प्रपात १८ पापकोप १९ पाप लोभ २० छविच्छेद २१ जीवितान्तकरण २२ भयङ्कर २३ ऋणकर २४ वज्र वा वर्ज्य २५ परितापनास्रव २६ विनाश २७ निर्यापना २८ लुम्पना २९ और गुणों की विराधना ३० इस प्रकार इस पाप रूप प्राण वध के कटुफल बताने वाले तीस[1] नाम कहे गए हैं ॥ सू० २ ॥

## प्राण वध के कारण व प्रयोजन–

सूत्र ३ रा

मूल–तंच पुण करेंति केई पावा असंजया अविरया अणिहुय परिणाम दुप्पयोगी पाणवहं भयंकरं बहुविहं बहुप्पगारं परदुक्खुप्पायणप्पसत्ता, इमेहिं तसथावरेहिं जीवेहिं पडिनिविट्ठा, किंते ? पाठीण, तिमि, तिमिंगिल-अणेगझस-विविह जाति मंडुक्क-दुविहकच्छभ-णक्क-मगर-दुविह गाहा-दिलि वेढय मंडुय-सीमागार पुलुय सुंसुमार बहुप्पगार जलयर विहाणाकते य एवमादी । कुरंग-रुरु-सरभ-चमर-संबर-उरब्भ-ससय-पसय-गोण रोहिय-हय-गय-खर-करभ-खग्ग-वानर-गवय-विग– सियाल कोल-मज्जार कोल सुणक-सिरियंदल गावत्त-कोकंतिय-गोकण्ण मिय-महिस-विग्घ-छगल–दीविया–साण-तरच्छ-अच्छ भल्ल सदूल-सीह-चिल्लल-चउप्पय-विहाणाकए य एवमादी । अयगर गोणस-वराहि–मउलिका-उदरदब्भ–पुप्फयासालिय-महोरगोरग-विहाणक कए य एवमादी । छीरल-सरंब-सेह–सेल्लग गोधुंदर णउल-सरड-जाहग-मुगुंस-खाडहिल–वाउप्पइय-घीरोलिय सिरीसिवगणे य एवमादी । कादंबक-वक-बलाका सारस आडासेत्तीय-कुलल-वंजुलपारिप्पव–कीव-सउण–पिपीलिय दीविय हंस-धत्तरिट्ठग-भास-कुली कोस कुंच-दगतुंड-ढेणियालग

[1]–उपरोक्त तीस नाम के अलावे भी प्राणातिपात, हिंसा आदि प्राणवध के नाम हो सकते हैं, किन्तु यहां सामान्य रूप से उदाहरण के तौरके कुछ नाम गिनाए गये हैं, मूल का एवमादि पाठ भी अन्य नामों की सूचना देता है।

सुईमुह कविल पिंगलक्खग-कारंडग चक्कवाग-उक्कोस-गरुल
पिंगुल-सुय-बरहिण—मयणसाल—नंदीमुह—नंदमाणग-कोरंग
भिंगारग-कोणालग-जीवजीवक तित्तिर-वट्टक-लावक-कपिंजलक
कपोतकपारेवग चिडग ढिंक—कुक्कुड—वेसर-मयूरग
चउरग-हय पोंडरीय-सालग-करक—चीरल्ल सेणवायसा य विहग
भिणासि-चास वग्गुलि-चम्मट्ठिल—विततपक्खि खहयर विहा
णाकते य एवमादी। जल थल खग चारिणो उ पंचिंदिए पसु
गणे बिय तिय चउरिंदिए य विविहे जीवे, पियजीविए, मरण
दुक्ख पडिकूले वराए हणंति बहुसंकिलिट्ठकम्मा। इमेहिं विवि
हेहिं कारणेहिं किंते? चम्म वसा-मंस मेय सोणिय-जग-फिप्फिस
मत्थुलुंग हिययंत पित्त-फोफस दंतट्ठा अट्ठि मिंज-नह-नयण
कण्णण्हारुणि नक्क-धमणि—सिंग—दाढि पिच्छ विस—विसाण
वालहेउं, हिंसंति य भमर मधुकरिगणे रसेसु गिद्धा, तहेव
तेइंदिए सरीरोवकरणट्ठयाए, किवणे बेइंदिए बहवे वत्थोहरपरि
मंडणट्ठा, अण्णेहि य एवमाइएहिं बहूहिं कारणसतेहिं अबुहा
इह हिंसंति तसे पाणे, इमे य एगिंदिए बहवे वराए तसे य
अण्णे तदस्सिए चेव तणुसरीरे समारंभंति अत्ताणे असरणे अणाहे
अबंधवे कम्मनिगडबद्धे अकुसल परिणाम मंदबुद्धिजण दुव्वि
जाणए, पुढविमए पुढविसंसिए, जलमए जलगए, अणलाणिल
तणवणस्सति गण निस्सिए य तम्मय तज्जिते चेव तदाहारे
तप्परिणत-वण्ण-गंध-रस-फास बोंदिरूवे—अचक्खुसे चक्खुसे
य तसकाइए असंखे, थावरकाए य सुहुम-बायर-पत्तेय-सरीर
नाम साधारणे अणंते हणंति अविजाणओ य परिजाणओ य
जीवे इमेहिं विविहेहिं कारणेहिं, किंते? करिसण पोक्खरणी
वावि वप्पिणि कूव सर-तलाग-चिति-वेतिय-खातिय आराम-विहार
थूभ-पागार-दार-गोउर अट्टालग—चरिया—सेतु संकम पासाय
विकप्प भवण घर सरण-लेण आवण-चेतिय देवकुल चित्त-सभा
पवा आयतणावसह भूमिघर मंडवाण य कए, भायण भंडो

वग्गुरस्स विविहस्स य अट्ठाए, पुढविं हिंसंति मंदबुद्धिया, जलंच मज्जणय पाण भोयण वत्थ धोवण सोयमादिएहिं, पयण पयावण जलावण विदंसणेहिं अगणिं, सुप्प वियण तालयंट पेहुण मुह करयल सागपत्त वत्थमादिएहिं अणिलं, अगार परिवा ( या ) र—भक्खभोयण—सयणासण—फलग-मुसल-उखल-तत-वितता तोइज-वहण-वाहण-मंडव-विविह भवण-तोरण-विडंग-देवकुल जालयद्ध चंद-निज्जूग-चंद सालिय-वेतिय—णिस्सेणि—दोणि-चंगेरि-खील -मेढक-सभा-पवा—वसह-गंध-मल्ल णुलेवणंबर-जुय-नंगल-मइय-कुलिय- संदण-सीया—रह—सगड—जाण—जोग्ग- अट्टालग—चरिअ—दार गोपुर—फलिहा—जंत-सूलिय—लउड— मुसंढि- सतग्घि- बहु पहरणावरणुवक्खराण कते, अण्णेहि य एवमादिएहिं बहुहिं कारणसतेहिं हिंसंति ते तरुगणे, भणिता एवमादी सत्ते सत्त-परिवज्जिया उवहणंति, दढमूढा दारुणमती कोहा, माणा, माया, लोभा, हस्सरती, अरती, सोग्वेदत्थी, जीयकामत्थधम्महेउं, सवसा, अवसा, अट्ठा अणट्ठाए य तसपाणे थावरे य हिंसंति मंदबुद्धी, सवसा हणंति, अवसा हणंति, सवसा अवसा दुहओ हणंति, अट्ठाहणंति, अणट्ठाहणंति, अट्ठा अणट्ठा दुहओ हणंति, हस्सा हणंति, वेरा हणंति, रती य हणंति, हस्सवेरारती य हणंति, कुद्धा हणंति, लुद्धा हणंति, मुद्धा हणंति, कुद्धा लुद्धा मुद्धा हणंति, अत्था हणंति, धम्मा हणंति, कामा हणंति, अत्था धम्मा कामा हणंति ॥ सू० ३ ॥

छाया— 'तं च पुनः कुर्वन्ति के चित्पापा असंयता अविरता अनिभृत परिणाम-दुष्प्रयोगाः प्राणवध भयङ्कर बहुविधं बहुप्रकार परदुःखोत्पादनप्रसक्ता', एतेषु त्रसस्थावरेषु जीवेषु प्रतिनिविष्टा, के ते त्रसस्थावरा ? पाठीन तिमि तिमिङ्गिलाऽनेक-झष विविधजाति मण्डूक—द्विविध कच्छप नक्र मकर द्विविध ग्राह दिलिवेष्टक मन्दुक सीमाकार पुलक सुसुमार बहु प्रकारान् जलचर विधान् कृतांश्च एवमादीन् कुरङ्ग रुरु-सरभ-चमर-सम्बरोरभ्र शशक—प्रशय-गोणस-रोहित-हय-गज

खर—करभ—शशक—वानर—गवय-वृक शृगाल—कोल—मार्जार कोलशुनक श्रीकन्दल-
कावर्त-कोकन्तिक गोकर्ण-मृग-महिष-व्याघ्र-छगल-द्वीपिक-श्वान तरक्षाऽच्छभल्ल-शार्दूल
सिंह चित्रल-चतुष्पद विधान कृतांश्चैवमादीन्, अजगर गोणस वराहि मुकुलि काकोदर
दर्भपुष्पाऽऽसालिक-महोरगोरग—विधानकृतांश्चैवमादीन् क्षीरल-शरम्ब-सेह—शल्यक
गोधोन्दुर नकुल-सरट—जाहक-मुगुंस-खाडहिका—वातोत्पत्तिका गृहकोकिलिका—सरीसृ
पगणांश्चैवमादीन्; कादम्बक-बक—बलाका— सारस—आडासेतीका—कुलल-वञ्जुल
पारिप्लव-कीव—शकुन—दीपिक पिपीलिका हंस—धार्तराष्ट्रक—भास—कुटीकोश
क्रौञ्च दकतुण्ड ढेलियाणक सूचीमुख कपिल पिङ्गलाक्षक कारण्डक चक्रवाक उत्क्रोश
गरुड पिङ्गल शुक बर्हि मदनशालि नन्दीमुख नन्दमानक कोरङ्ग भृङ्गारक
कोणालक जीवञ्जीवक तित्तिर वर्तक लावक कपिञ्जलक कपोतक पारापतक चिटिका
ढिङ्क कुक्कुट वेसर मयूरक चकोरक ह्रदपुण्डरीक करक चीरल्ल श्येन वायस विहग
मेनाशित चाष वल्गुली चर्मास्थिल विततपक्षिण खचरविधानकृतांश्चैव
मादीन्, जलस्थलखचारिणश्च पञ्चेन्द्रियान् पशुगणान् द्वित्रिचतुरिन्द्रियान्
विविधान् जीवान् प्रियजीवितान् मरणदुःख प्रतिकूलान् वराकान् घ्नन्ति बहुसंक्लिष्ट
कर्माण एभिर्विविधैः कारणैः किं तत् ? चर्म वसा—मांस—मेदः—शोणित—यकृत्—फिप्फि-
स-मस्तुलिङ्ग हृदयान्त्र—पित्त—फोफस दन्ताऽर्थम्, अस्थि मज्जा नख नयन कर्ण स्नायु
नासिका—धमनी शृङ्ग—दंष्ट्रा—पिच्छ—विष-विषाण—बाल हेतु । हिंसन्ति च भ्रमर
मधुकरी गणान् रसेषु गृद्धाः । तथैव त्रीन्द्रियान् शरीरोपकरणार्थम् ! कृपणान्
द्वीन्द्रियान् बहून् वस्त्रोपगृहपरिमण्डनार्थम् । अन्यैश्चैवमादिभिर्बहुभिः कारण
शतैरबुधा इह हिंसन्ति त्रसान् प्राणान् इमांश्चैकेन्द्रियान् बहून् वराकान्त्रसांश्चा-
न्यान् तदाश्रितांश्चैव तनुशरीरान् समारम्भतेऽत्राणान् अशरणान् अनाथानबान्धवा-
न् कर्मनिगडबद्धान् अकुशलपरिणाममन्दबुद्धिजनदुर्विज्ञेयान् पृथ्वीमयान्
पृथ्वीसंश्रितान्—जलमयान् जलगतान् अनलाऽनिलतृणवनस्पतिगणनिश्रितांश्च
तन्मयतज्जीवान्-चैव तदाधारान् तत्परिणत—वर्ण—गन्ध रस स्पर्श बोन्दिरूपान्
अचाक्षुषान् चाक्षुषांश्च त्रसकायिकान् असंख्यान् स्थावरकायान् सूक्ष्मबादर प्रत्येक
शरीरनामसाधारणान् अनन्तान् घ्नन्ति अविजानतश्च परिजानतश्च जीवान्
एभिर्विविधैः कारणैः, किं तत् ? कर्षण पुष्करिणी वापी वप्रिणी ( केदार ) कूप
सरस्तडाग-चिति-वेदिका-खातिकाऽऽराम-विहार स्तूप प्राकार द्वार गोपुराऽट्टालिका
चरिका—सेतु संक्रम-प्रासाद-विकल्प भवन गृह शरण-लयनाऽऽपण चैत्य देवकुल चित्र

सभा प्रपाऽऽयतनाऽऽवसथ-भूमिगृह—मण्डपानाञ्च कृते, भाजन भाण्डोपकरणस्य विविधस्य चाऽर्थाय पृथिवीं हिंसन्ति मन्दबुद्धय. ! जले च मज्जन पान भाजन वस्त्र धावन शौचादिभि·, पचन-पाचन-ज्वालन-विदर्शनैश्चाग्निम्, शूर्पं व्यजन तालवृन्त पेहुन ( मयूरपिच्छ ) मुख करतल सर्ग शाकपत्र वस्त्रादिभिरनिलम्, आगार परिचार भक्ष्य-भोजन शयनाऽऽसन-फलक-मुसलोदूखल तत वितवातोद्य वहन वाहन मण्डप विविध-भवन-तोरण विटङ्क देवकुल-जालकाऽर्द्धचन्द्र-निर्यूहक-चन्द्रशालिका-वेदिका नि श्रेणि-द्रोणी-चङ्गेरी-कील-मेठक ( मुण्डक ) सभा-प्रपाऽऽवसथ-गन्धमाल्यानुले- पनाऽम्बर यूपलाङ्गल-मतिक-कुलिक-स्यन्दन-शिविका-रथ-शकट-यान—युग्याट्टालक चरिका-द्वार—गोपुर-परिघा-यन्त्र—शूलिका-लकुट ( लगुड ) मुशुण्डी ( भुशुण्डी ) शतघ्नी बहुप्रहरणाऽऽवरणोपकरणानां ( स्करणा ना ) कृते, अन्यैश्चैवमादिकैर्बहुभि. कारणशतैर्हिंसन्ति ते तरुगणान् भणितान् एवमादीन् सत्त्वान् सत्त्वपरिवर्जितान् उपघ्नन्ति, दृढा मूढा दारुणमतय क्रोधान्मानान्मायया लोभाद्-हास्य रत्यरति शोक वेदार्था, जीव ( जीत ) कामार्थ धर्महेतो स्ववशा, अवशा, अर्थाय अनर्थायच त्रसप्राणान् स्थावरांश्च हिंसन्ति मन्दबुद्धय, स्ववशा घ्नन्ति, अवशा घ्नन्ति, स्ववशा अवशाश्च द्विधा घ्नन्ति अर्थाय घ्नन्ति, अनर्थाय घ्नन्ति अर्थाय अनथार्य द्विधा घ्नन्ति, हास्याय घ्नन्ति, वैराय घ्नन्ति, रतये घ्नन्ति, हास्यवैररतिभ्यो घ्नन्ति, क्रुद्धा घ्नन्ति, लुब्धा घ्नन्ति मुग्धा घ्नन्ति, क्रुद्धा लुब्धा मुग्धा, घ्नति अर्थाय घ्नन्ति, धर्माय घ्नन्ति कामाय घ्नन्ति, अर्थ धर्म कामेभ्यो घ्नन्ति ॥ सू० ३ ॥

अन्वयार्थ—" ( तचपुणो ) और फिर उस प्राणवधको (करेंति) करते हैं (केई) कितनेही जीव जो ( पावा ) पापी ( असजया ) व असयम शील हैं ( अविरया ) पापसे अलग नहीं हुए या सत् क्रिया में नहीं लगे हैं ( अणिहुय परिणाम दुप्पओगो ) अशान्त परिणाम वाले और मन वाणी व शरीर के अशुभ व्यापार वाले हैं (भयंकर) भयङ्कर और ( बहुविह , शारिरिक मानसिक आदि बहुत प्रकार वाले ( पाणवह ) प्राणवध को (बहुप्पगार) बहुत–कई तरह से 'करते हैं' ( परदुक्खुप्पायणप्पसत्ता ) वे दूसरे को दु.ख उत्पन्न करने में तत्पर तथा ( इमेहिं तसथावरेहिं जीवेहिं पडिणि- विट्ठा ) इन आगे कहे जानेवाले त्रसस्थावर जीवों में अप्री ति द्वेष रखनेवाले हैं ( किंते ) कौन जीव मारे जाते हैं या प्राणवध किसप्रकार किया जाताहै ? मारे जाने योग्य जीवों के प्रकार— ( पाठीन तिमि तिमिंगिल ) पाठीन मत्स्यविशेष, तिमि व तिमिङ्गिल ये दो महामत्स्य हैं ( अणेग झस विविह जाति मडुक ) विविध मत्स्य

छोटे मत्स्य खञ्जमत्स्य युगमत्स्य आदि, विविध जाति के मेंढक ( दुविहकच्छम ) दो प्रकार के कच्छप-मांसकच्छप और अस्थिकच्छप ( गाह मगर दुविह गाहा ) मकर, मकर-मगर-सुंडामगर यमत्स्य मगर के भेद से दो तरह के होते हैं, । ग्राह जलजन्तु विशेष ( दिलिवेढय मंडुय सीमागार पुलय ) दिलिवेढ मण्डुक, सीमाकार, और पुलक ये सब ग्राहके भेद हैं ( सुंसुमार बहुप्पगारा जलचर विहाणा कते ) सुंसुमार, और अनेक प्रकार के जलचर के भेदों को करने वाले ( पावमायी ) इसप्रकार के पाठीन आदि जीवों को तथा ( कुरंग-रुरु-सरभ-चमर-संबर हुरब्भ-ससय-पसय-गोणरोहिय- )मृग रुरु-मृगविशेष सरभ-बड़ी देह वाले जंगली पशुविशेष जो परासर नाम से भी कहे जाते हैं और वे हाथी को भी पीठपर उठा लेते हैं चमर चमरी गाय, संबर-सांभर, उरभ्र-मेष-ऊनवाले भेड मेंढक, शशा प्रशय-दो खुर वाले जंगली पशुओं का भेद, गोण-गायें रोहित चौपाए जन्तु विशेष ( हय गय खर करभ खग्ग वानर गवय विग सियाल ) घोड़ा हाथी गधा, ऊंट खड्ग-इसके दोनों बाजू पांख की तरह चमड़े लटकते हैं और सिर पर एक सींग होता है; वानर गवय नीलगाय या रोझ वृक-हिंसक जीव, शृगाल-सियाल और ( कोलमज्जार कोल सुणग सिरियं दुकण्णावत्त कोकंतिय गोकण्ण मिय महिस विग्घ छगल दीविया साण तरच्छ अच्छ भल्ल सद्दूल सीह चिल्लल चउप्पय विहाणाकए) कोल व दिर जैसा जन्तु मार्जार कोल शूकर बड़ा सूअर, अथवा कोल सूअर और शुनक-कुत्ता श्रीकन्दलक आवर्तक ये दोनों एक खुर वाले जन्तु हैं, कोकंतिक लोमड़ी अथवा जो को करके रात में बोलने वाला जीव विशेष, गोकर्ण दो खुर वाला चतुष्पद विशेष, मृग-सामान्यहरिण, पहले कहे हुए कुरंग आदि सींग व वर्ण के भेदविशेषण से समझने चाहिए, महिष-भैंस व्याघ्र, छगल- बकरे की जाति, द्वीपिक-चीता श्वान-जंगली कुत्ते तरक्ष अच्छभल्ल भोरल्ल रीछ सिंह-केशरी-सिंह, चित्रल-नख वाला पशु विशेष अथवा चित्रल-हरिण का आकृति-वाला द्विखुर पशुविशेष-कुरंग आदि जिन विशेषणों से चतुष्पदों के भेद किये गए हैं उनको (य) और (एव मादी) इस प्रकार के अन्य चतुष्पद जीवों को फिर (अयगर) अजगर-बड़ा सांप ( गोणस ) बिना फन के सांप, ( वराहि ) दृष्टि विष सर्प जो भस्म करने में दक्ष होते हैं ( मउलि ) मुकुली-फण वाले सर्प विशेष, ( काओदर ) काकोदर-एक जाति के सर्प, ( दब्भपुप्फ ) दर्भ पुष्प-एक जाति का दर्वीकर सर्प ( आसालिय ) आसालिक-आसालिया ' ( महोरग ') बहुत बड़ा सर्प, ( उरग विहाणकए ) उरग जाति के भेद को करने वाले इन जीवों को ( य ) और ( एवमादी )

इस प्रकार के दूसरे उरपरिसर्प-छाती के बल चलने वाले जीवों को तथा (छीरल-सरंब-सेह-सेहगे[1]) क्षीरल और शरम्ब वाहु के बल पर चलने वाले जीव विशेष, सेह -तीखेकांटों से भरे हुए शरीर वाला जीव जो शेला नाम से प्रसिद्ध हैं, शल्यक- जीव विशेष, ( गोधुंदर णउल-सरड -) गोधा गोह, उंदिर चूहा, नोला और शरट-कृकलास नामका जीव, ( जाहग मुगुंस खाडहिल वाउप्पिय घी रोलिय सिरीसिवगणे ) जाहक-कांटे से ढके हुए शरीर वाला जीव, मुगुस मुंगूस, खाड-हिला-टिलोडी-गिल्लोरी, वातोत्पत्तिका-लोकरूढि से समझे" घोरोलिय-गृहकोकि-लिका-घर मे रहने वाली गोह, हाथ से सरक कर चलने वाले जीवों के भेद करने व के इन जीवों को ( य ) और ( एवमादी ) इस प्रकार के अन्य भी भुज-परि सर्प जोवों को, तथा ( कादंबक ) हंस विशेष ( वक ) वगुला ( वलाका ) विसकण्ठिका, ( सारस ) सारस नाम के प्रसिद्ध पक्षी, ( आडासेतीय ) आडा सेतीक जिसको आड कहते हैं ( कुलल ) कुलल, ( वंजुल ) वंजुल ( परिप्पव कीव सउण-दीविय ( पीपीलिय ) हंस-) पारिप्लव-खदिर चञ्चु, कीव शकुन-और दीपिक ये पक्षि-विशेष हैं, पी पी बोलने वाले पक्षी को पीपीलिक कहते हैं, हंस-श्वेतहंस ( धत्तरिट्ठग भास कुलीकोस कुंच दगतुंड ढेणियालग ) धार्तराष्ट्र-कृष्ण मुख व चरण वाले हंस, भास और कुटीक्रोश-पक्षि विशेष, क्रौंच, उदकतुंड, ढेणिकालक ( सूईमुह कविल पिंगलक्खग कारडग ) सूचोमुख, कपिल, पिंगलाक्षक और कारडक-अप्रसिद्ध पक्षी विशेष ( चक्कवाग उक्कोस गरुल पिंगुल सुय वरहिण मयणसाल ) चक्रवाक, उत्क्रोश, कुरर, गरुड पिंगल-अप्रसिद्ध, शुक पोपट, बर्ही-पांखवाले मयूर-मोर, मदनशाला-मैना, ( नदीमुह-नंदमाणग-कोरग भिंगारग कोणालग ) नदोमुख, नन्दमानक कोरंक और भृङ्गारक-अप्रसिद्ध पक्षी विशेष, भृंगारिका रात में झं झं बोलने वाला छोटा पक्षिविशेष, कोणालक-पक्षिविशेष, ( जीव जीवक तित्तिर वट्टक लावक कपिंजलक कवोयक पारेवयग चिडिग डिंक कुक्कुड वेसर ) जीव जीवक-चकोर, तित्तिर, वसक वर्तक-जिसको वतक कहते हैं

१ आसालिया इसका शरीर उत्कृष्ट १२ योजन तक लम्बा होता है और यह प्रलयकाल के समय बड़े शहर आदि की भूमि के नीचे उत्पन्न होता है।

२ महोरग-यह मनुष्य क्षेत्र के बाहर होता है, तथा इसका शरीर आखिर में हजार योजन तक लम्बा होता है।

चापक-इस नाम का पक्षि विशेष कपिंजलक, कपोत-कबूतर पारावत-कबूतर का ही एक भेद, चिटिका-चकोरिका-चोंची विशेष ढिंक-पक्षिविशेष, कुक्कुट-मुर्गा, वेसर-अप्रसिद्धपक्षी ( मयूरग चउरग-हय—पोंडरीय—करक—चीरल-सेण-वायसय विहग सिणासि-चास-वग्गुलि—चम्मट्ठिल—वितवपक्खि—खहयर—विहाणाकए ) मयूरक-कलाप रहित मोर चकोर हंस पुंडरीक और शालक या करक तथा चीरल ये कोई अप्रसिद्ध पक्षिविशेष हैं श्येन-बाज वायसविहग-काकपक्षी, सेनाश्रित पक्षीविशेष, अथवा कहीं वायस और विहंग भेद नाश्रित ऐसे नाम मिलते हैं। चासपक्षी, वल्गुली-चामचपक्षी चर्मास्थिल-चमगीदड़ या चर्म चिड़ी वितत पक्षी यह मनुष्य क्षेत्र के बाहर होता है, खचर के भेद करने वाले इन पक्षियों को ( य ) और ( एवमादी ) ऐसे चापक आदि पक्षियोंको पूर्वोक्तजीवों का संग्रह वचन से कहते हैं—( जल थल-खगचारिणो उ पंचिदिए ) जल स्थल—भूमि और आकाश मार्ग से चलने वाले पंचेन्द्रिय ( पसु गणे ) पशु आदि के प्राणियों को तथा ( बिय तिय चउरिंदिए ) दो तीन और चार इन्द्रिय वाले ( विविहे जीवे ) अनेक प्रकार के जीव ( पिय जीविए ) प्रिय जीवन वाले व ( मरण दुक्ख पडिकूले ) मृत्यु के दुःख को नहीं चाहने वाले ( वराए ) बेचारे क्षुद्र जीवों को ( बहुसंकिलिट्ठकम्मा ) बहुत क्लेशयुक्त कर्मों को करने वाले हिंसक ( हणंति ) मारते हैं। अब हिंसा के कारण कहते हैं ( एएहिं ) इन ( विविहेहिं ) आगे कहे जाने वाले अनेक ( कारणेहिं ) कारणों से ( किन्ते ? ) वे कौन से प्रयोजन हैं ? चम्म-वसा मंस मेय-सोणिय-जग-फिप्फिस-) चमड़ा वसा-चर्बी मांस, मेद—देह का धातु विशेष शोणित-रक्त यकृत् पेट के दाहिने बाजू में रहने वाली मांसग्रन्थि, फिप्फिस—फेफड़ा, ( मत्थुलुंग-हियय-पित्त-फोफस-दंतट्ठा ) मस्तुलिङ्ग—मस्तक का मज्जा, हृदय-हिये का मांस अन्त्र—आंत पित्त-शरीर का एक दोष, फोफस और दांत के लिये तथा—( अट्ठि-मिंज-नह-नयण-कण्ण-ण्हारुणि-नक्क-धमणि सिंग—दाढि -पिच्छ-विस-विसाण—वाल हेउं ) अस्थि-हड्डी मज्जा नख नेत्र, कान, स्नायु-नसें नाक, धमनी-नाड़ी सींग दाढ़ पिच्छ-पूछ-पंख विष सर्प आदिका विषाण-हाथी का दांत और वाल—केश इन सब के निमित्त मारते हैं ( य ) और ( हिंसंति ) मारते हैं ( भमर मधुकरी गणे ) भ्रमर और भ्रमरियों के समूह को ( रसेसुगिद्धा ) मधु आदि रस में गृद्ध-लम्पटी जीव, ( तहेव ) इसी तरह ( तेंदिए ) तीन इन्द्रिय वाले-जू आदि जीवों को ( सरीरोवकरणट्ठयाए )

शरीर के उपकरणों के लिये ( किवणे ) दया के पात्र-वेचारों को मारते हैं ( बहवे ) बहुत से ( वेंदिए ) दो इन्द्रिय वाले—लट आदि जीवों को, ( वत्थोहर-परिमडणत्था ) वस्त्र व घर की शोभा के लिये तथा वस्त्र के-लिये घर के लिये व शोभा के लिये मारते हैं ( अण्णेहि य ) और दूसरे ( एवमाइएहिं ) इत्यादि पूर्व कहे केश आदि ( बहूहिं ) बहुत से ( कारणसतेहिं ) सैकडों कारणों से ( अबुहा इह ) इस संसार में अज्ञानी जीव ( तसे पाणे ) त्रस प्राणिओं को ( हिंसति ) मारते हैं ( इमे य ) और इन ( एगेंदिए ) एकेन्द्रिय-स्थावर जीवों को, तथा ( बहवे वराए ) बहुत से वेचारे ( तसे ) त्रस जीव ( य ) और ( अण्णे ) अन्य ( तद्सिए ) उनके आश्रित रहने वाले ( तणुसरीरे चेव ) जो सूक्ष्म शरीर धारी हैं तथा ( अत्ताणे ) जिनके कोई रक्षक नहीं हैं, वैसे त्राण रहित ( असरणे ) हितैपी नहीं होने से जो अशरण हैं, ( अणाहे ) नाथ[1] नहीं होने से अनाथ ( अबधवे ) बान्धव रहित ( कम्मनिगलबद्धे ) कर्म के बन्धन मे बधे हुए ( अकुसल परिणाम मदबुद्धिजणदुविजाणए ) अशुभ परिणाम के उदय से जो मन्द बुद्धि हैं ऐसे प्राणिओं के लिये दुर्विज्ञेय—कठिन से जानने योग्य हैं, उन जीवों का ( समारंभति ) हनन करते हैं, फिर ( पुढविमये ) पृथ्वी कायिक ( पुढवीससिए ) पृथ्वी के आश्रित-अलसिया आदि त्रस जीवों को ( जलमए ) अपकाय के जीव ( जलं गए ) जल मे रहे हुए कीडे व सेंवाल आदि त्रस स्थावर जीव ( अणला णिल तण वण-स्सतिगण निस्सिए ) अग्नि वायु व तृण वनस्पति गण के आश्रयमे रहे हुए जीव ( य ) और ( तम्मय तज्जिते ) अग्निकायिक वायुकायिक और वनस्पति कायिक तथा उन योनिओं के जीव जो ( तदाहारेचेव ) पृथ्वी आदि के आधार वाले हैं या पृथ्वीआदिकाही आहार करने वाले हैं ( तप्परिणत वण्ण गंध रस फास बोंदिरूवे ) उन पृथ्वी आदि के वर्ण गन्ध रस और स्पर्श से परिणत—बने हुए देहाकार वाले अर्थात् जिन का शरीर पृथ्वी आदि के समान ही वर्ण आदि वाला है। ( अचक्खुसे ) अचाक्षुप नजर में नहीं आनेवाले ( य ) और ( चक्खुसे ) दृष्टि में आने वाले-चाक्षुप ( असखे तसकाइए ) इस प्रकार असख्य त्रसकायिक जीव ( य ) और ( थावर काए ) स्थावर कायके ( सुहुम बायर पत्तेय सरीर नाम

---

१ अनाथ अलब्ध वस्तु का लाभ रूप योग और लब्ध वस्तु की रक्षा रूप क्षेम, इन दोनों योग क्षेमों को करने वाले नाथ कहे जाते हैं, जिसके ये नहीं है वह अनाथ है।

साधारणे अणंते ) सूक्ष्म बादर-स्थूल, प्रत्येक शरीरी[1] और साधारण[2] अनन्त जीवों को ( हणंति ) मारते हैं ( अविजाणओ ) अपने वध को नहीं जानने वाले ( य ) और ( परिजाणओ ) सुख दुःख आदि से मरण का अनुभव करने वाले ( जीवे ) जीवों को ( इमेहिं ) इन नीचे कहे जाने वाले ( विविहेहिं ) अनेक प्रकार के ( कारणेहिं ) कारणों से ( किंते ? ) वह प्रयोजन कौनसा है ? ( करिसण पोक्खरणी वावि वप्पिणि कूव सर तलाग चिति वेतिय खातिय आराम विहार थूभ पागार दार गोउर अट्टालग चरिया सेतु संकम पासाय विकप्प भवण घर सरण लेण आवण चेतिय देव कुल चित्त सभा पवा आयतणावसह भूमिघर मंडवाणकए ) खेती के लिये पुष्करिणी-कमल वाली वा गोलाकार बावड़ी वापी-गोल या बिना कमल के बावड़ी, वप्रिणी-केदार, कूआ, सरोवर तालाब, चिति-भीत आदिक चयन-चमाना या मृतक को जलाने के लिये बनाई गई चिता, वेदिका-चबूतरा, खातिका-खाई, आराम-बगीचा, विहार-बौद्ध आदिका मठ स्तूप-स्मृति चिन्ह विशेष, प्राकार-कोट, द्वार-दरवाजा गोपुर-नगर का मुख्य द्वार, अट्टालक-कोट के ऊपर की अटारी चरिका-नगर और उसके कोट के बीच का ८ हाथ रस्ता, मार्ग सेतु-पाल या पुलिया, संक्रम-विषम स्थान से उतरने का मार्ग प्रासाद-महल-राजाओं के भवन विकल्प-प्रासाद के भेद भवन चौशाल आदि गृह-सामान्य घर, शरण-तृण-घास के घर, लयन-पर्वत में खोद कर बनाए घर आपण-दुकान, चैत्य-मूर्तियाँ अथवा चितास्थान पर बना हुआ स्मारक देवकुल-शिखर युक्त देवमन्दिर, चित्रसभा-सचित्र मण्डप, प्रपा-पानी की प्याऊ, आयतन-देवस्थान, आवसथ-परिव्राजकोंका आश्रम, भूमिगृह-तलघर और मण्डप छाया वगैरह के लिये बनाया गया कपड़े का मण्डप, इन सबके लिये ( य ) और ( भायण मंडोवगरणस्स विविहस्स अट्ठाए ) सोने आदि के भाजन और मिट्टी के भाण्ड अथवा क्रियायें—छत्रादि व उपकरण छत्रक आदि के और विविध-वस्तुओं के लिये ( पुढविं ) पृथ्वी कायिक जीव की ( हिंसंति ) हिंसा करते हैं, ( मंदबुद्धिया ) कम बुद्धि वाले लोग ( अबुध ) और जड़ काम के जीवों की

---

१ एक शरीर में एक जीव हो उसको प्रत्येक शरीरी कहते हैं।

२ एक औदारिक शरीर में साधारण रूपसे रहने वाले अनेकों जीव वाली वनस्पति को साधारण कहते हैं।

( मंज्जणय-पाण-भोयण-वत्थ-धोवण—सोयमादिएहिं ) स्नान मज्जन, जलपान भोजन और वस्त्रों को धोने हाथ पैरधोने, शुचि करने आदि कारणों से हिंसा करते हैं ( पयण पयावण जलावण विदसणेहिं अगणिं ) पचन पाचन रसोइ बनाने—सिझाने, चावल सिझवाने जलावन खुद या दूसरे से आग को सुलगाने विदशनि दीपक जलाना आदि कारणों से अग्नि को ( सुप्प-वियण-तालयंट—पेहुण मुह-करयल-सागपत्ते-वत्थमादिएहिं ) सूप सूपड़ा, व्यजन—वीजन तालवृन्त-पंखा-पेहुण—मोर पीछी; मुख, करतल—हाथ, शाकपत्र —साग के पत्ते और वस्त्र आदि से ( अणिलं ) वायुकायिक जीवों को हिंसा करते हैं, ( अगार परियार भक्ख भोयण-सयणासण-फलक-मुसल-उखल-तत विततातोज्ज—वहण—वाहण—मडव-विविहभवण—तोरण-विड ग-देवकुल— ) घर; परिचार वृत्ति या तलवार आदि की म्यान, भक्ष्य मोदक आदि, भोजन-रोटी आदि; शयन-शय्या, आसन—विस्तर; फलक-पीठ व कुर्सी आदि, मूसल, ऊखल, तत-वीणा आदि वितत पटह-ढोल आदि, आतोद्य—बाजे, वहन-नौका आदि, वाहन—शकट गाडी आदि, मंडप, विविध भवन—अनेक प्रकार के चौशाले आदिभवन, तोरण; विटङ्क-कबूतरों के लिये बनाये हुए घर-कपोत पाली, देवकुल-देवल ( जालयद्ध चद्द निज्जूग-चंद सालिय वेतिय णिस्सेणि दोणि-चगेरि-खील-मेढक-सभा—पवा—वसह—गंध मल्लाणुलेवण-बरजुय-नंगल-मइय-कुलिय-संदण-सीया-रह—सगड-जाण-जोग्ग अट्टालग-चरिअ दार—गोपुर-फलिहा-जंत-सूलिय-लउड-मुसंढि—सतग्घि बहुपहरणावरणुवक्खरणा कए ) जालक-जालियाँ, अर्द्धचन्द्र-सोपान या सौध विशेष, निर्यूहक—दरवाजे पर घोडे के मुह-की आकृतिवाली निकली हुई लकडियाँ, चन्द्रशालिका-प्रासाद के ऊपर की शाला वेदिका, निस्सरणी-चढने व उतरने की माल, द्रोणी-छोटी नौका, चगेरी-फूल डाली या वाद्य विशेष, कील-खीलें, मेढक-मुडे, सभा, पवा-प्याऊ, आवसथ-परिव्रजकों का आश्रय; गंध-पावडर आदि; माल्य—फूल माला, अनुलेपन—विलेपन, अम्बर—कपडे यूप-युग, जांगल—हल, मतिक—जमीन जोतने के बाद ढेला फोडने के लिये लम्बा काष्ठ, जिससे भूमि बराबर की जाय कुलिक—एक प्रकार का हल स्यन्दन-युद्ध और देव यात्रा में जाने के लिये दो प्रकार के रथ, शिविका—बडी पालकी, रथ, शकट—गाडी, यान-यानविशेष, युग्य-वेदिकायुक्त दो हाथ की जपान विशेष, अट्टालक-अट्टालिका, चरिका-शहर और कोट के-बीच में आठ हाथ का चौडा मार्ग, द्वार, गोपुर-नगर का मुख्य द्वार, परिघा-आगल, यन्त्र-अरहट,

आदि, सूचिका-सूई सींचने का अस्त्र या शस्त्र-कीलाविशेष, मुद्गर मुष्टि-प्रहरण विशेष सबभी यष्टी लाठी या तोप आदि और बहुत से प्रहरण—कवच आदि व आवरण अस्त्र विशेष उपकर—घर के उपकरण मच आदि इस सबके लिये (अप्पेहिय) और अन्य-इत्यादि (बहुहिं कारणसएहिं) बहुत से सैकड़ों कारणों से (हिंसति ते तरुगणे) वे अल्पज्ञ जीव वृक्ष समूह-वनस्पति की हिंसा करते हैं (भणिताभ०) ऊपर की गणना में कहे गए व बिना कहे (एवमादी) इत्यादि इस प्रकार के (सत्ते) जीवों को (सत्तपरिवज्जिया) जो सत्त्व—बल से रहित हैं, वैसों को (उवहणंति) मारते हैं, (दढमूढा) दढमूढ़-पक्के मूढ़ और (दारुणमती) कर बुद्धिवाले (कोहा) क्रोध से (माणा) मान अहङ्कार से (माया) कपट से (लोभा) लोभ से (हस्स रती अरती) हास्य—मजाक रति अरति-राग या ग्लानिसे (सोय वेदत्थी) शोक और वेदानुष्ठान के लिये (जीव कामत्थ धम्महेउं) जीव—जीवन या मर्यादा, धर्म अर्थ और काम-विषय के हेतु उपरोक्त हिंसा करते हैं, (सवसा) अपनी इच्छा से या (अवसा) कई पराधीनपने से (अट्ठा) प्रयोजन से (अणट्ठाय) और बिना प्रयोजन से (तसपाणे) त्रस प्राणी (थावरेय) और स्थावर—स्थिति शील पृथ्वी आदि के जीवों को (हिंसंति मंद बुद्धि) मन्द बुद्धि वाले लोग मारते हैं। इसी बात को स्पष्ट करके कहते हैं—(सवसा हणंति) अपनी इच्छा से कई मारते हैं (अवसा हणंति) परतन्त्र होकर कुछ मारते हैं (सवसा अवसा दुहओ हणंति) स्वाधीन और पराधीन दोनों तरह से हिंसा करते हैं।(अट्ठा हणंति) अर्थ से याने प्रयोजन से मारते हैं। (अणट्ठा हणंति) निष्प्रयोजन हिंसा करते हैं (अट्ठा अणट्ठा दुहओ हणंति) सप्रयोजन व निष्प्रयोजन दोनों तरह से वध करते हैं (हस्सा हणंति) हास्य से मारते हैं, (वेरा हणंति) वैर से मारते हैं, तथा (रतीय हणंति) रति-अनुराग से मारते हैं (हस्स वेरा रतीय-हणंति) हास्य वैर व खुशी से मारते हैं (कुद्धा हणंति) क्रोध वश मारते हैं (लुद्धा हणंति) लोभ के वश मारते हैं (मुद्धा हणंति) मोह वश मारते हैं (कुद्धा लुद्धा मुद्धा हणंति) क्रोध वश लोभ वश व मोह वश वध करते हैं (अत्था हणंति) धन के लिये वध करते हैं (धम्मा हणंति) धर्म के लिये कई हिंसा करते हैं (कामा हणंति) विषय के कारण हिंसा करते हैं (अत्था धम्मा कामा हणंति) धन धर्म और सांसारिक विषय साधन के लिये हिंसा करते हैं। सू० ३॥

भाव उपरोक्त तीसरे सूत्र में यह बताया गया है कि इस प्राण वध को कौन करते हैं व क्यों करते हैं तथा किन जीवों का वध करते हैं ? इन सन्देहों का समाधान इस प्रकार है-"जो जीव संयम और विरति से रहित व अशान्त हैं, जिन के विचार तथा आचरण बुरे हैं, वे ही दूसरे को दुःख देते हैं और इसमें खुद खुशी मनाते हैं। वे लोग ही इस भयङ्कर हिंसा-कार्य को अनेक प्रकार से करते हैं, निम्नलिखित त्रस स्थावर जीवों पर वे द्वेष रखते या अप्रीति वाले होते हैं, वे जीव ये हैं-'पाठीन मत्स्य आदि अनेक प्रकार के जलचर जीव, मृग महिष आदि अनेक प्रकार के भूमिचर पशु जीव और अजगर सर्प व आशालिक आदि उरपरिसर्प—पेट के बल चलने वाले जीव, क्षीरल गोह उदिर (चूहे) आदि भुजासे सरककर चलने वाले भुजपरिसर्प जीव, और हंस काक आदि आकाश गामी-खेचर पक्षि जीव, इस प्रकार जल स्थल, और आकाश मार्ग से चलने वाले पञ्चेन्द्रिय तिर्यग् जीव, इन मे बहुत से नाम अप्रसिद्ध हैं जो रूढि से समझने चाहिये। दो तीन तथा चार इन्द्रिय वाले अन्य विविध जीव जिन्हें कि निज जाति समुचित जीवन परम प्रिय है और जो मरणे से बहुत डरते हैं, हिंसा रसिक उन जीवों की अनेक कारणों से हिंसा करते हैं। वे हिंसा के ये कारण हैं- चमडा १ चर्बी २ मांस ३ मेद ४ रक्त ५ यकृत् ६ फेफसा ७ भेजा ८ हृदय ९ आतें १० पित्त ११ फोफस १२ और दांत १३ हड्डी १४ मज्जा १५ नख १६, आख १७, कान १८, स्नायु १९, नस २० नाक २१ धमनी नाडी २२, सींग २३, दाढ २४, पूंछ-पंख २५, काल कूट आदि विष २६, हाथी दांत २७ और बाल इन सब वस्तुओं के लिये हिंसा करते हैं। ऐसे ही रसमें गृद्ध (लालची) लोग भंवरे व मधु मक्खी को मारते हैं, शरीर व वस्त्र आदि के लिये जू आदि त्रीन्द्रियों का वध करते हैं। रेशमी आदि वस्त्रों के लिये और कोठे और घर की शोभा के लिये शंख आदि के चूने में सीप व शख आदि की हिंसा करते हैं। इनके सिवाय अन्य बहुत से कारणों से मूर्ख लोग त्रस जीव तथा बेचारे एकेन्द्रिय जीवों को हनन करते हैं, त्रसों को मारते व त्रसों के आश्रय में रहने वाले अनेक सूक्ष्म शरीरी जीवों को मारते हैं। जो अनिष्ट के निवारण में व इष्ट के साधन में असमर्थ हैं। जो अनाथ हैं, बन्धु विहीन हैं। तथा कर्म बन्धन मे जकडे हुए हैं और जो अशुभ विचार वाले मन्द बुद्धिओं से नहीं जाने जाते और जैसे बहुत से लोक इनको आज भी जीव नहीं मानते हैं। पृथ्वी कायिक तथा उनके आश्रित अन्य जीव, अप्कायिक व जल में रहने वाले अन्य जीव, ऐसे अग्नि वायु और वनस्पति के

आदि, शूलिका-सूली-भौंकने का अस्त्र या शलाका-कीलाविशेष, लकुट मुद्गर-प्रहरण विशेष छाबड़ी पत्थर लाठी या तोप आदि और बहुत से प्रहरण—कवच आदि व आवरण अस्त्र विशेष उपकर—घर के उपकरण मंच आदि इन सबके लिये (अण्णेहिय) और अन्य-इत्यादि (बहुहिं कारणसएहिं) बहुत से सैकड़ों कारणों से (हिंसंति ते तरुगणे) वे अल्पज्ञ जीव वृक्ष समूह-वनस्पति की हिंसा करते हैं (भणियाभ०) ऊपर की गणना में कहे गए व बिना कहे (एवमाई) इत्यादि इस प्रकार के (सत्ते) जीवों को (सत्तपरिवज्जिया) जो सत्त्व—बल से रहित हैं, वैसों को (उवहणंति) मारते हैं, (दढमूढा) दृढमूढ-पक्के मूर्ख और (दारुणमती) क्रूर बुद्धिवाले (कोहा) क्रोध से (माणा) मान अहङ्कार से (माया) कपट से (लोभा) लोभ से (हस्स रती अरती) हास्य—मजाक रति अरति-राग या ग्लानिसे (सोय वेयत्थी) शोक और वेदानुष्ठान के लिये (जीय कामत्थ धम्महेउं) जीव—जीवन या मर्यादा, धर्म अर्थ और काम-विषय के हेतु उपरोक्त हिंसा करते हैं, (सवसा) अपनी इच्छा से या (अवसा) कई पराधीनपने से (अट्ठा) प्रयोजन से (अणट्ठाए) और बिना प्रयोजन से (तसपाणे) त्रस प्राणी (थावरेय) और स्थावर—स्थिति शील पृथ्वी आदि के जीवों को (हिंसंति मंद बुद्धि) मन्द बुद्धि वाले लोग मारते हैं। इसी बात को स्पष्ट करके कहते हैं—(सवसा हणंति) अपनी इच्छा से कई मारते हैं (अवसा हणंति) परतन्त्र होकर कुछ मारते हैं (सवसा अवसा दुहओ हणंति) स्वाधीन और पराधीन दोनों तरह से हिंसा करते हैं ।(अट्ठा हणंति) अर्थ से याने प्रयोजन से मारते हैं। (अणट्ठा हणंति) निष्प्रयोजन हिंसा करते हैं (अट्ठा अणट्ठा दुहओ हणंति) सप्रयोजन व निष्प्रयोजन दोनों तरह से वध करते हैं (हस्सा हणंति) हास्य से मारते हैं, (वेरा हणंति) वैर से मारते हैं तथा (रतीय हणंति) रति अनुराग से मारते हैं (हस्स वेरा रतीय-हणंति) हास्य वैर व रति से मारते हैं (कुद्धा हणंति) क्रोध वश मारते हैं (लुद्धा हणंति) लोभ के वश मारते हैं (मुद्धा हणंति) मोह वश मारते हैं (कुद्धा लुद्धा मुद्धा हणंति) क्रोध वश लोभ वश व मोह वश वध करते हैं (अत्था हणंति) धन के लिये वध करते हैं (धम्मा हणंति) धर्म के लिये कई हिंसा करते हैं (कामा हणंति) विषय के कारण हिंसा करते हैं (अत्था धम्मा कामा हणंति) धन धर्म और सांसारिक विषय साधन के लिये हिंसा करते हैं। सू० ३॥

और कोई दोनों प्रकार से मारते हैं। कोई हास्यवश, कई वैर वश और कोई एक रतिवश मारते हैं, कई इन तीनों के चलते मारते। कई क्रुद्ध होकर हिंसा करते, कई लुब्ध होकर तो अन्य मोहसे मुग्ध होकर मारते हैं, कितने ही क्रोध, लोभ व मोह तीनों के वश हिंसा करते हैं। धन पाने के लिये हिंसा करते, धर्म के लिये हिंसा करते और कितने ही कामुक बनकर मारते। दूसरे कितने ही अर्थ धर्म व काम वश हिंसा करते हैं ॥ सूत्र ३ ॥

इस प्रकार अर्थ धर्म और काम इनमे से किसी भी हेतु से इच्छा पूर्वक हिंसा करना मदबुद्धि पन कहा गया है। प्राण वध का स्वरूप, उसके नाम और जैसे वह किया जाता है, ये तीन द्वार कहे गए। चौथे द्वार मे प्रतिज्ञा के अनुसार हिंसा का फल कहना चाहिए। किन्तु कर्त्ता के अधीन मे क्रिया होती है और दूसरे इस का वक्तव्यभी अल्प है, इस लिये प्रधानताये पहले प्राण वध को करने वाले 'कर्तृ द्वार' का विचार करते हैं—"

**मूल—"कयरे ते ? जे ते सोयरिया, मच्छबंधा, साउणिया, वाहा, कूरकम्मा, वाउरिया, दीवितबंधणप्पओगतप्पगल जाल वीरल्लगायसीदब्भ वग्गुरा कूड छेलिहत्था, हरिएसा, साउणिया य, वीदंसग पासहत्था, वणचरगा, लुद्धय-मधुघात पोतघाया, एणीयारा, सर-दह-दीहिअ-तलाग-पल्लल-परिगालण-मलण-सोत्त-बंधण सलिलासयसोसगा, विसगरस्स य दायगा, उत्तण-वल्लर-दवग्गि—णिद्दय पलीवका कूरकम्मकारी, इमे य बहवे मिलक्खु—जाती, केते ? सक-जवण-सवर-बब्बर-गाय-मुरुंडो-दभडग-तित्तिय-पक्कणिय-कुलक्ख- गोंड-सीहल-पारस कोंच-दविल-बिल्लल-पुलिंद—अरोसडोंब- पोक्कण- गंधहारग बहलीय—जल्ल—रोम—मासव उस मलया-चुंचुया य-चूलिया कोंकणगा-मेत—पण्हव-मालव- महुर—आभासिया—अणक्क चीणल्हासिय—खस—खासिया—नेहुर-मरहट्ठ-मुट्ठिय—आरब डोबिलग-कुहण-केकय-हूण-रोमग-रुरु-मरुगा-चिलाय विसय-वासी य पावमतिणो। जलयर थलयर सणप्फतोरग-खहचर संडास-तोंड-जीवोवघायजीवी, सण्णी य असण्णिणो य पज्जत्ता असुभलेस्सपरिणामा, एते अण्णे य एवमादी करेंति पाणाति-**

मूल जीव तथा उनके आश्रय में रहकर उन्हीं का आहार करने वाले जो त्रस जीव हैं, पृथ्वी आदि आश्रय के अनुरूप ही जिनके रंगरूप होते हैं। जैसे हरे घास पर हरे कीड़े और सूखे पर पीले होते हैं कुछ जीव दिखने वाले और कुछ नहीं दिखने वाले हैं। ऐसे असंख्य त्रस और सूक्ष्म बादर, प्रत्येक व साधारण भेदवाले अनन्त स्थावर जीव को मारते हैं। ये ज्ञान विशेष से हीन होकर भी सुख दुःख को अनुभव करने वाले हैं। स्थावर जीवों की हिंसा के कारण निम्नोक्त हैं-"खेती कूआ, बावड़ी, तालाब, तथा सरोवर, चिता-वेदिका खाई, बाग मठ, स्तूप, कोट द्वार, नगर का मुख्य द्वार, अट्टालिका सड़क पुल, संक्रम, अनेक प्रकार के भवन, साधारण घर, चैत्य—मन्दिर,—स्मारक सभा और तलघर व मण्डप आदि के लिये धातु व मिट्टी के पात्र और अन्य विविध उपकरणों के लिये मन्द बुद्धि लोग पृथ्वी की हिंसा करते हैं। नहाने धोने और पीने तथा भोजन व शरीर आदि की शुद्धि के लिये जल—अप् कायिक जीवों की हिंसा करते हैं। पकाने जलाने और रोशनी आदि कारण से अग्नि कायिक जीवों की हिंसा करते हैं। सूप, पाखनें, पंखे और हाथ, मुख व वस्त्र आदि से वायु कायिक जीवों की हिंसा करते हैं। घर परिवार भोजन शयन, आसन पीठ फलक मूसल अनेक प्रकार के वाद्य नौका गाड़ी आदि वाहन मंडप, विविध भवन, तोरण कबूतर खाना, देवल, जाली, सीढ़ी दरवाजे के आगे चोखटे, वेदिका, निसरणी, छोटी नौका, चंगेरी, कील, सभा, प्याऊ, मठ, गंधक—पात्र नखर, फूलमाला, विलेपन वस्त्र धूप, हल खेत फोड़ने की लकड़ी, सामान्य हल, स्यन्द न—सांग्रामिकरथ, पालकी, गाड़ी-साधारण रथ, यान, युग्म, अट्टालिका, चरिका—नगर व कोट के बीच का मार्ग, द्वार, गोपुर, परिघा, जड़ यन्त्र—रेंट, शूली, लाठी मुसुण्डी—बन्दूक, तोप की तरह का शस्त्र विशेष, अन्य प्रहरण, तथा घर के उप करण—आदि के लिये ऐसे बहुतेरे अन्य कारणों से वृक्षों को काटते हैं। कहे हुए से अन्य भी बलहीन प्राणियों को मूढ़ मति व दारुण विचार वाले लोग मारते हैं। अन्तरङ्ग कारण भी कुछ हैं—जैसे कि क्रोध मान—माया लोभ, हास्य और रति अरति, तथा शोक व वेद विदित अनुष्ठान के लिये। संक्षेप में कहा जाय तो जीवन मर्यादा तथा धर्म व धन और काम के लिये हिंसा होती है। स्ववश या पर वश, प्रयोजन से या निष्प्रयोजन भी—मन्द बुद्धि लोग त्रस जीव तथा स्थावर जीवों को मारते हैं। व्यक्ति गत विचार से कई स्ववश मारते। कई परवश होकर मारते हैं। और कई दोनों तरह से। कोई अर्थ—प्रयोजन से मारता है, दूसरा निष्प्रयोजन

और कोई दोनों प्रकार से मारते हैं। कोई हास्यवश, कई वैर वश और कोई एक रतिवश मारते हैं, कई इन तीनों के चलते मारते। कई क्रुद्ध होकर हिंसा करते, कई लुब्ध होकर तो अन्य मोहसे मुग्ध होकर मारते हैं, कितने ही क्रोध, लोभ व मोह तीनों के वश हिंसा करते हैं। धन पाने के लिये हिंसा करते, धर्म के लिये हिंसा करते और कितने ही कामुक बनकर मारते। दूसरे कितने ही अर्थ धर्म व काम वश हिंसा करते हैं ॥ सूत्र ३ ॥

इस प्रकार अर्थ धर्म और काम इनमें से किसी भी हेतु से इच्छा पूर्वक हिंसा करना मदबुद्धि पन कहा गया है। प्राण वध का स्वरूप, उसके नाम और जैसे वह किया जाता है, ये तीन द्वार कहे गए। चौथे द्वार में प्रतिज्ञा के अनुसार हिंसा का फल कहना चाहिए। किन्तु कर्ता के अधीन में किया होती है और दूसरे इस का वक्तव्यभी अल्प है, इस लिये प्रधानतासे पहले प्राण वध को करने वाले 'कर्तृ द्वार' का विचार करते हैं—"

मूल—"कयरे ते ? जे ते सोयरिया, मच्छबंधा, साउणिया, वाहा, कूरकम्मा, वाउरिया, दीवित बंधणप्पओगतप्पगल जाल वीरल्लगायसीदब्भ वग्गुरा कूड छेलिहत्था, हरिएसा, साउणिया य, वीदंसग पासहत्था, वणचरगा, लुद्धय-महुघात पोतघाया, एणीयारा, सर-दह-दीहिअ-तलाग-पल्लल-परिगालण-मलण-सोत्त-बंधण सलिलासयसोसगा, विसगरस्स य दायगा, उत्तण-वल्लर-दवग्गि—णिद्दय पलीवका कूरकम्मकारी, इमे य बहवे मिलक्खु-जाती, केते ? सक-जवण-सबर-बब्बर-गाय-मुरुंडो-दभडग-तित्तिय-पक्कणिय-कुलक्ख- गोंड-सीहल-पारस कोंचंध-दाविल-चिल्लल-पुलिंद—अरोसडोब- पोक्कण- गंधहारग बहलीय—जल्ल—रोम—मासव उस मलया-चुंचुया य-चूलिया कोंकणगा-मेत—पण्हव-मालव- महुर—आभासिया—अणक्क चीणल्हासिय—खस—खासिया—नेहुर-मरहट्ठ-मुट्ठिय—आरब डोबिलग-कुहण-केकय-हूण-रोमग-रुरु-मरुगा-चिलाय विसय-वासी य पावमतिणो। जलयर थलयर सणप्फतोरग-खहचर संडास-तोंड-जीवोववायजीवी, सण्णी य असण्णिणो य पज्जत्ता असुभलेस्सपरिणामा, एते अण्णे य एवमादी करेंति पाणाति-

वाय करण पावा—पावाभिगमा पावरुई पाणवहकयरती पाण वहरूवाणुट्ठाणा पाणवहकहासु अभिरमंता, तुट्ठा पाव करत्तु होंति य बहुप्पगार । तस्स य पावस्स फलविवाग अयाणमाणा वड्ढति महब्भय अविस्सामवेयण दीहकालबहुदुक्खसकड नरय तिरिक्ख जोणि इओ आउक्खए चुया असुभकम्मबहुला उववज्जति नरएसु हुलित महालएसु वयरामयकुड्डरुद्द निस्स-धिवार विरहिय निम्मद्दय भूमितल खरामरिस विसम णिरय घर चारएसु, महासिण सयायतत्त दुग्गधविस्सउब्वेयजणगेसु बीभच्छ दरिसणिज्जेसु निच्च हिमपडलसीयलेसु कालोभासेसु य भीम गभीर लोमहरिसणेसु णिरभिरामेसु निप्पडियारवाहि रोग जरापीलिएसु अतीयनिच्चधकारतिमिस्सेसु पतिभएसु ववगय गह चद सूरणक्खत्त जोइसेसु मेयवसामस पडल पोच्चड पूयरुहिरुक्किण्ण विलीणचिक्कणरसियावावण्ण कुहियचिक्खल्ल कद्दमेसु कुकूलानलपलित्तजालमुम्मुर—असिक्खुर करवत्त धारासु निसित विच्छुयडक निवातोवम्म—फरिस अतिदुस्सहेसु य अत्ताणासरण—कडुय—दुक्ख परितावणेसु अणुबद्ध निरतर वेयणासु जमपुरिससकुलेसु, तत्थ य अतो मुहुत्तलद्धि भव पच्चएण निव्वत्तेति उ ते सरीर, हुड बीभच्छदरिसणिज्ज बीहणग अट्ठिण्हारु णहरोमवज्जिय असुभ दुक्खविसह,ततो य पज्जत्ति मुवगया इदिएहि पचहि वेदेंति असुभाए वेयणाए उज्जल बल विउल उक्कड खर फरुस पयड घोर बीहणग दारुणाए, किंते ? कंदु महाकुभिय पयण पउलण तवग तलण भट्ठ भज्जणाणि य लोहकडाहुक्कड्डणाणि य कोट्टबलिकरण कोट्टणाणि य, सामलि तिक्खग्ग लोह कटक अभिसरण पसारणाणि, फालण विदालणाणि य, अवकोडक बधणाणि लट्ठिसय तालणाणि य, गलग बलुल्लबणाणि सूलग्गभेयणाणि य आएसपवचणाणि खिसण विमाणणाणि विघुट्ठपणिज्जणाणि वज्झसयमातिकाति य पवत्त ॥ सू ॥ ४ ॥

छाया—"कतरेते ? ( कृष्णादिकारणे प्राणिनो घ्नन्तीति ) प्रश्न उत्तर माह,— 'येते शौकारिका, मत्स्यबन्धाः, शाकुनिका, व्याधाः, क्रूरकर्माणो, वागुरिका. द्वीपिक बन्धन प्रयोग-तप्र गल जाल वीरल्लकाऽऽयसी दर्भवागुरा-कूटच्छेलिका हस्ता, हरिकेशाः, शाकुनिकाश्च विदंशक पाश हस्ता, वन चरका, लुब्धक-मधुघात पोतघाता, एणीचारा, ऐणोचाराः सरोह्रद-दीर्घिका तडाग—पल्वल-परिगा लन-मलन-स्रोतोबन्धन सलिलाऽऽशयशोषकाः, विषगरलस्य च दायकाः, उत्तृण-वल्लर-दावाग्नि निर्दय प्रदीपका, क्रूरकर्मकारिण इमे ये बहवो म्लेच्छजातीयाः, केते ? शक-यवन—शबर—वर्वर-काय—मुरुण्ड-उद्—भडक-तित्तिक-पक्कणिक-कुलाक्ष-गौड-सिंहल-पारस-क्रौञ्च-अन्ध- ( आन्ध्र ) द्राविड-चिल्वल-पुलिन्द—अरोष-डोंब-पोक्कण—गन्धहारक—बहलीक-जल्ल-रोम-माष—बकुश मलया. चुञ्चुकाश्च, चूलिकाः, कोंकणका मेद-पह्लव-मालव-महुर—आभाषिक अणक्क-चीन—ल्हासिक-खस—खासिकाः, नेहर-महाराष्ट्र-मौष्टिक-आरब, डोबिलक कुहुण-केकय-हूण-रोमक-रुरु-मरुका, चिलात विषयवासिनश्च पापमतयः, जलचर स्थलचर सनख पदोरग खेचर सन्दंश तुण्ड जीवोपघातजीविनः, सञ्ज्ञिनश्च असं—ज्ञिनश्च पर्याप्ता अशुभ लेश्या परिणामा. एतेऽन्येचैवमादय कुर्वन्ति प्राणाति पात करण पापा पापाभिगमा पापरुचय' प्राणवधकृतरतिका प्राणवधरूपाऽनुष्ठाना प्राणवधक कथासु अभिरममाणा. तुष्टा' पापं कृत्वा भवन्ति। बहुप्रकारम्।

तस्य च पापस्य फल विपाकमजानन्तो वर्द्धयन्ति महाभयामविश्रामवेदनाम्, दीर्घकाल बहु दुःखसंकटा नरकतिर्यग्योनिम्, इत आयुःक्षये च्युता अशुभ कर्म बहुला उपपद्यन्ते नरकेषु लघुक शीघ्रं महालयेषु वज्रमय कुड्य रुद्र निःसन्धि द्वार विरहित निर्मार्दव भूमितल खरामर्श विषम निरयगृह चारकेषु महोष्ण सदा प्रतप्त दुर्गन्ध विश्रोद्वेगजनकेषु वीभत्सदर्शनीयेषु नित्य हिमपटलशीतलेषु कालाऽवभा-सेषु च भीमगम्भीरलोमहर्षणेषु निरभिरामेषु निष्प्रतीकारव्याधिरोगजरा पीडितेषु अतीव नित्यान्धकारतमिस्रेषु प्रतिभयेषु व्यपगत ग्रहचन्द्र सूर्य नक्षत्र ज्योतिष्केषु, मेदोवसा मांस-पटलातिनिविड पोच्चर पूय रुधिरोत्कीर्ण विलीन चिक्कण रसिका व्यापन्न कुथित चिक्खल्ल कर्दमेषु, कुकूलाऽनल प्रदीप्त ज्वालमुर्मुराऽसि क्षुर कर पत्रधारासु निशित वृश्चिक डङ्क निपातौपम्य स्पर्शातिदुस्सहेषु च, अत्राणाऽशरण कटुक दुःख परितापनेषु अनुबद्ध निरन्तरवेदनेषु यमपुरुषसङ्कुलेषु तत्रचाऽन्तर्मुहूर्तलब्धि-भवप्रत्ययेन निर्वर्तयन्ति तु ते शरीर हुण्ड, वीभत्सदर्शनीय

भीजमकम् भरियदायुनप रोम विर्मितम्, भशुभ दुःप्र विपदम् । ततश्च पर्याप्तिमुप गता इन्द्रियै पञ्चभिर्वेदयन्ति–भशुभया वेदनया उग्गउ दस विपुलाफ्ट दर पचप प्रचण्ड घोर भीजनक दाप णया । किन्तत् ? कन्दु महा कुम्भी पचन प्रकोलन तवक तलन भ्राष्ट्रभजनानि च, लोह कटाहोत्क्वाथमानिष, कोटा कोट्ट वलिकरण कोडन कानिच शाल्मलि तीक्ष्णाग्र लोह कण्ट काऽभिसरणाऽपसरणानि, स्फाटन विदारणानि, अवफोटकबन्धनानि, यष्टिशत ताडमानिच, गलकबलोल्लम्बनानि, शूलाग्र भेद मानिच आदेश प्रवञ्चनानि, खिसन विमाननानि विघुष्टप्रणयनानि वध्यशत मातृकाणि चैवंते ॥ सू० ४ । ३ ॥

अन्वयाथ—( कमरे ते ) वे हिंसा करने वाले कौन हैं ?

उत्तर–( जे ) जो ( ते ) वे ( सोयरिया ) सूअरों के द्वारा शिकार करने वाले–शौकरिक ( मच्छ बंध ) मत्स्य बन्ध—मच्छो पकडने वाले ( साउणिया ) पक्षियों को शिकार करने वाले—शाकुनिक–पारधी ( वाहा ) व्याध ( कूर कम्मा ) क्रूर कर्म करने वाले ( वाउरिया ) जाल लेकर घूमने वाले वागुरिक तथा (दीविय बंधण प्पओग तेप्प गल जाल वीरल्लगायसीदब्भ वग्गुरा कूड छेलिहत्था ) जो मृग मारने के लिये चीता, बन्धन प्रयोग–पकडने का उपाय तप्र–मछली पकडने के लिये छोटी नौका गल–मच्छीपकडन के लिये कांटे पर आटा या मांस जाल—मच्छो फसाने की जाल, वीरल्लक–श्येन बाज आयसी लोहमयजाल दर्भवागुरा–दर्भ को या डोरी की जाल, कूट–पाश और बकरी अथवा चीता आदि छल से पकडने के लिये पाशमें रक्खी हुई बकरी इन सब साधनों को हाथ में लिये हुए हैं । फिर–( हरिएसा ) चाण्डाल ( साउणिया य ) और पारधी ( दूसरे पाठ से सेवक ) ( वीदंसग पास हत्था ) श्येन आदि और पाशको हाथ में रखने वाले, ( वण चरगा) जंगल में घूमने वाले–भवरभिल्ल ( लुद्धय महु घाय पोत घाया ) लुब्धक–व्याध मधु लेने वाले कुरेरी, व पक्षियों के बच्चे मारने वाले ( पणोयारा ) मृग पकडने के लिये हरिणी को लेकर घूमने वाले ( पपणीयारा ) विशेष रूप से हरिणियों को लेकर फिरने वाले ( सर दह दीहिय–तलाग पल्लल–परिगालण मलण–सोत्तबंधण–सलिलासय—सोसगा ) सरोवर, द्रह बावडी, तालाब पल्वल—छोटा जलाशय इन सब को मत्स्य शंख, आदि लेने के लिये बाहर जल निकालने से, मसलने से और पानी के मार्ग को रोकने से जलाशय को सुखाने वाले ( विसगरस्स य दायगा ) और जो विष और गरल—अन्य वस्तु में मिले हुए विष को देने वाले हैं । ( उत्तण–वल्लर दवग्गि–णिद्

चपलोवका ) ऊगे हुए तृण और खेतों को दवाग्नि के निर्दयता पूर्वक जलाने वाले (कूर-कम्मकारी इमे य बहवे मिलक्खु जाती ) और क्रूर कर्म को करने वाली ये बहुतसी म्लेच्छ जातियों हैं, ( के ते ? ) वे कौनसी जातीयों हैं ?

उत्तर—( सक-जवण-सवर-वव्वर-गाय-मुरु डोद—भडग—विित्तय—पक्कणि-य—कुलक्ख-गोड—सीहल—पारस-कौंचध-दविल-बिल्लल-पुलिंद—अरोस डोंब ) शक १ यवन २ शवर-भिल्ल ३ वर्वर ४ गाय-काय ५ मुरु ड ६ उद ७ भडक ८ तित्तिक ९ पक्कणिक १० कुलाक्ष ११ गौड १२ सिंहल १३ पारस १४, क्रौंच १५ अंध १६ द्राविड़ १७ विल्वल १८ पुलिंद १९ अरोष २०, डोंब २१ ( पोक्कण-गधहारग-बहली-य-जल्ल-रोम-मास-वउस-मलया ) पोक्कण २२ गन्ध हारक २३ वहलीक २४ जल्ल २५ रोम २६ माष २७ बकुश २८ और मलय २९ ( चुंचुया य चूलिया ) चुंचुक ३० और चूलिक ३१ ( कोंकणगा ) कोंकणक ३२ ( मेय—पण्हव-मालव-महुर—आभासिया ) मेद ३३ पन्हव ३४ मालव ३५ महुर ३६ आभाषिक ३७ ( अणक्क—चीण—ल्हासि-य-खस—खासिया ) अणक्क ३८ चीन ३९ ल्हासिक ४० खस ४१ खासिक ४२ ( नेहुर-मरहट्ट—मुट्ठिअ—आरब—डोविलग-कुहण ) नेहर ४३ मरहट्ट-मराठा ४४ मूढ या मौष्टिक ४५ आरब ४६ डोबिलक ४७ कुहण ४८ ( केकय-हूण-रोमग-रुरु-मरुगा) केकय ४९ हूण ५० रोम ५१ रुरु ५२ मरुक ५३ और ( चिलाय विसयवासी ) चिला-त देश के रहने वाले ५४ ( पाव मतिणो ) जो पाप बुद्धि वाले हैं ( जलयर-थलय-र-सणप्फतोरगखहचर-संडास—तोंड-जीवोवग्घाय जीवी ) जलचर स्थलचर तथा नख युक्त चरण वाले सिंह आदि व उरग और खचर, संडास की आकृति के मुख वाले पक्षी और जीवों की हिंसा करके जीने वाले। ये कैसे हैं ? तो—( सन्नी ) समनस्क-सज्ञी ( य ) और ( असण्णिणो ) असंज्ञी-विना मन के जीव ( य और ( पज्जत्ता ) पर्याप्त-जीवनोपयोगी शक्तिओं को पूर्ण रूप से पाये हुए, ( असुभलेस्सपरिणामा ) अशुभ लेश्या के परिणाम वाले, ( एते ) पहले—ऊपर कहे हुए ये सब ( अण्णे य ) और दूसरे ( एवमादी ) इस प्रकार के जीव ( करेंति ) करते हैं ( पाणाति वाय करण ) प्राण वध रूप कार्य को ( पावा ) पापी ( पावाभि गमा ) पाप कोही उपादेयमानने वाले ( पावरुई ) पाप में रुचि रखने वाले और ( पाणवहकयरती ) प्राण वध करके खुश होने वाले ( पाणवहरूवाणुट्ठाणा ) प्राणवधही जिनका अनुष्ठान-नियत कर्म है ऐसे ( पाणवह कहासु अभिरमता )

हिंसा की कथाओं में रमने वाले (पावं करेत्तु) वे हिंसारूप पाप को करके (बहुप्पगारं तुट्ठा होंति य) बहुत प्रकार से सन्तुष्ट होते हैं।

जो प्राण वध करने वाले हैं वे कहे गए अब प्राण वध से जो फल मिलता है उसे कहते हैं—(तस्स य पावस्स) और उस प्राण वध रूप पाप के (फल विवागं) फल के समान विपाक—परिणाम को (अयाणमाणा) नहीं जानते हुए घातक जीव (महब्भयं) महाभय वाली (अविस्सामवेयणं) विश्रान्तिरहित-निरन्तर वेदनावाली (दीह काल बहुदुक्ख संकडं) चिरकालस्थायक शारीरिक मानसिक आदि अनेक प्रकार के दुःखों से व्याप्त ऐसी (नरय तिरिक्खजोणिं) नरक और तिर्यग्योनि को (वड्ढंति) बढ़ाते हैं फिर (इओ) यहाँ मनुष्य भवसे (आउ क्खए) आयु के क्षय होने पर (चुया) मरे हुए (असुभकम्मबहुला) अशुभ कर्मों की अधिकतावाले (उववज्जंति नरएसु[1]) नरक स्थानों में उत्पन्न होते हैं (तुरियं) शीघ्र। कैसे नरकों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर—(महालएसु) क्षेत्र परिमाण से व स्थिति काल के प्रमाण से बड़े तथा (वयरामय कुड्ड रुद्द निस्संधि दार विरहिय निम्मद्दव-भूमितल खरामरिस विसम-णिरय-घर-चारएसु) वज्रमयभीतवाले, विस्तीर्ण-विस्तार वाले, सन्धि और द्वार रहित अर्थात् जो बिना सुराख और द्वार वाले हैं कोमलतारहित-कठोर-भूमितल वाले तथा कर्कश स्पर्शवाले विषम—ऊँचे नीचे ऐसे नरक घर के जो नारक-उत्पत्तिस्थान हैं उनमें फिर (महोसिण-सयापतत्त-दुग्गंध-विस्स उव्वेय-जणगेसु) अत्यन्त उष्ण सदा तपते हुए दुर्गन्ध और सड़ी हुई गन्ध के कारण जो उद्वेग पैदा करने वाले हैं (बीभच्छदरिसणिज्जेसु) बीभत्स—भयङ्कर—रूपवाले तथा (निच्च हिमपडल सीयलेसु) सदा हिमवर्फ के पटल की तरह शीतल (कालो भासेसु य) और काले रंग की कान्तिवाले (भीम गंभीर लोम हरिसणेसु) भयङ्कर—अतिशय गम्भीर होने से रोमाञ्चकारी (णिरभिरामेसु) सुन्दरता रहित होने से मन को पसंद नहीं आने वाले (निप्पडियार-वाहि-रोग-जरा-पीलिएसु) चिकित्सा के अयोग्य भयंकर व्याधि रोग और जरा से पीड़ित (अईव निच्च अंधकार तिमिस्सेसु) सघन अन्धकार से जो सदा तिमिसगुफा की तरह अन्धकार पूर्ण हैं (पतिभएसु) प्रत्येक वस्तु में भय उत्पन्न करने वाले, (ववगय-चंद-सूर—णक्खत्त जोइसेसु) चन्द्र सूर्य और नक्षत्र व तारक रूप ज्योतिष्कों की प्रभा से हीन हैं

1—(तस्स य से वड्ढंति) पर्यन्त का पाठ किसी किसी प्रति में ही देखा जाता है। दीर्घ-

अर्थात् जहां चन्द्र आदि की प्रभा भी नहीं पड़ती ( मेय वसा मंस पडल पोच्चड पूय रुहिरुकिण्ण-विलीण-चिक्कण रसिया वायण्ण कुहिय चिक्खल्ल कद्दमेसु ) मेद, चर्बी और मांस के पटल—समूह तथा अत्यन्त गाढ पीप व रुधिर से मिश्रित घृणाजनक और चिकना रसी से विनष्ट स्वरूपवाला इसीलिये सडा हुआ या फूला हुआ, कीचड और गाढ कीचड हैं जिनमें ऐसे ( कुकूलानल-पलित्त-जाल-मुम्मुर-असिक्खुर-करवत्त—धारा-सुनिसिय-विच्छुयडंक-निवातोवम्म-फरिस—अतिदुस्सहेसु य ) और कोयले की अग्नि, प्रदीप्त ज्वाला, मुमुर—अग्नि के कण, तलवार तथा अस्तूरों व करवत की अतिशय तीखी धारा एवं बिच्छू के डंक का देह पर गिरना, इन सबके समान जो अत्यन्त दुस्सह स्पर्श वाले हैं ( अत्ताणासरण कडुय दुक्ख परितावणेसु ) अनर्थ की निवृत्ति और इष्ट को प्राप्ति कराने वाले सहायक से हीन वे जोव जहाँ दारुण दु.खों से सताये जाते हैं ( अणुबद्ध निरंतर वेयणेसु ) अत्यन्त निरन्तर वेदना वाले ( जमपुरिससंकुलेसु ) अम्ब आदि असुर जाति के यमों से जो स्थान संकुल-व्याप्त हैं ( तत्थय ) और वहाँ-नरकावासों में उत्पन्न होकर ( अंतोमुहुत्तलद्धिभवपच्चएण ) अन्तर्मुहूर्त काल वैक्रियलब्धि और नरक गति में जन्मरूप कारण से ( निव्वर्त्तेति उ ते सरीर ) वे जीव शरीर को बनाते हैं, जो शरीर ( हुड ) सब प्रकार से योग्य सस्थान रहित और ( बीभच्छ दरिसणिज्ज ) भयङ्कर व देखने मे बुरा ( बीहणग ) भय पैदा करने वाला तथा ( अट्ठिण्हारु णह रोम वज्जिय ) हड्डी, स्नायु, नख और रोम से रहित ( असुभ दुक्ख विसह ) अशुभ गन्धयुक्त और दु.ख को सहने वाला होता है ( ततोय पज्जत्तिमुवगया ) शरीर बनने के बाद फिर इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास और भाषा मन रूप पर्याप्तिओं से पूर्ण बने हुए वे जीव ( इंदिएहिं पंचहिं वेदेंति ) पाच इन्द्रियों से दु ख को वेदन करते-भोगते हैं ( असुभाए वेयणाए ) अशुभ वेदना के द्वारा, जो ( उज्जल ) सुखरूप विपक्ष के लेश से भी अकलङ्कित होने से उज्ज्वल-उजली ( बल विउल )-हटाना शक्य नहीं होने से बलवती और शरीर मात्र व्यापी होने से वह विपुल है ( उक्कड ) उत्कट—आखिरी सीमा तक पहुची हुई ( खर फरुस ) खर-शिला आदि के समान कठोर पदार्थ के गिरने से होने वाली, परुष—कुष्माण्डो के पत्ते के समान कर्कश स्पर्शवाले पदार्थ से होने वाली-अति कठोर ( पयड घोर बीहणगदारुणाए ) प्रचण्ड—जल्दी से शरीर में फैलने वाली और-शीघ्रही औदारिक शरीर युक्त जीवन का क्षय करने वाली या दूसरे के जीवन की अपेक्षा नहीं करने

वाली तथा भयानक ऐसी शारीरिकवेदना से दुःख का अनुभव करते हैं, (किसे ?) वह कौनसा दुःख है ? (कंदु महाकुंभिपयण) कन्दु—लोही और महाकुंभी—बड़ी कुम्भी इन में भात की तरह पकाना (पउलण-तवगतवणतण-भट्ठभज्जणाणि) चूहा आदि को तरह पकाना, तवे पर पूड़ी की तरह तलना, तथा भाड़ में चने की तरह भूनना (य) और (लोहकडाहुक्कढणाणि) लोह के कड़ाहों में इक्षुरस के समान उकालना फिर (कोट्टबलि करण कोट्टणाणि) क्रीड़ा से चण्डिका आदि के सामने वस्त्र वगैरह की तरह पशु आदि की तरह भेंट करना अथवा कोट्ट—। प्रकार के लिये बलि देना व कुटिल बनाना (य) और (सामलि तिक्खग्ग लोह कंटग अभिसरण पसारणाणि) शाल्मली वृक्ष के जो लोह के कांटे की तरह तीखे अग्रभाग उन पर अपेक्षा से जाना और पीछे फिरना उससे (फालण विदालणाणि) फाड़ना और अनेक प्रकार से देह का विदारण करना (य) और (अव कोडक बंधणाणि) बाहु और शिरको पीछे से अभेद कर बांधना (लट्ठिसयताल-णाणि) सैकड़ों लाठी के प्रहार करना (य) और (गलग बलुल्लंबणाणि) गलक-बलोलंबन—गले में बांध कर बल पूर्वक डाला पर लटका देना (सूलग्ग भेयणाणि) शूलके अग्रभाग से भेदन करना और (आयसपवंचणाणि) झूठी आज्ञा से ठगना (खिसण विमाणणाणि) खिसलाना निंदा करना अपमान करना (विघुट्ठ पणिज्जणाणि) ये पापी अपने किये हुए कर्मों को पाते हैं इस प्रकार घोषते हुए वध योग्य जीव को वध्य भूमि में लेजाना (वज्झसय मातिकातिय) और सैकड़ों वध्य जीव जिन दुःखों के मातृस्थान—उत्पत्तिस्थान हैं (एवंते) इस प्रकार वे जीव प्राणवध के कटु फल को भोगते हैं।

स्पष्टीकरण—"हिंसा कौन करते हैं ?, इसका उत्तर यह है कि जो लोग सूअरों से शिकार करने वाले मच्छी पकड़ने वाले, पारधी और व्याध के समान क्रूर कर्म करने वाले हैं। तथा जाल लेकर घूमने वाले व मृग आदि को पकड़ने के लिये चीता, बाज पक्षि छोटी नौका कांटा माटा जाल, पाश लोह और मूंज की बाल कूटपाश व बकरी इन सब को साथ में लेकर जो फिरते रहते हैं व पारधी, शिकारी तथा चाण्डाल व शबर लोग और इन्हीं के समान हिंसारसिक व हिंसोपजी वी जीव हिंसा में कूट कपट को जानने वाले तथा जलाशयों को सुखा देने वाले दूसरों को विष खिलाने वाले एवं खेत आदि को निर्दयता पूर्वक जलाने वाले, ऐसे ऐसे क्रूर कर्मों को करने वालों की प्रधान जातियाँ निम्नलिखित हैं- 'सक १ जवन २

शवर ३ ववर ४ गाय ५, मुरंड ६, उद ७ भटक ८ तित्तिक ९ ( भित्तिक ) पकणि १० कुलाक्ष ११ गौड[1] १२ सिंहल १३ पारस १४ क्रौंच १५ अंध ( आन्ध्र )-१६ द्राविड १७ विल्लव १८ पुलिन्द्र १९ अरोप २० डोंव २१ पोकग २२ गन्ध हारक २३ वहलीक २४ जल्ल २५ रोम २६ माप २७ वकुश २८ और मलय २९ चुचुक ३०, चूलिक ३१ कोकणक ३२ मेद ३३ पन्हव ३४ मालव ३५ महुर ३६, आभषिक ३७ अणक ३८ चोन ३९ ल्हासिक ४०, खस ४१ खासिक ४२ नेहर ४३ मर हट्ट ४४ मूढ–मौष्टिक ४५ आरव ४६ डोविलक ४७ कुहण ४८ केकय ४९ हूण ५० रोम ५१ रुरु ५२ मरुक ५३ और चिलाव देश वासी ये ५४ जाति के लोग हिंसा करते हैं। दूसरे जलचर, थलचर तथा नख वाले सिंह आदि जानवर, उरग–सर्प और खचर, सहास के जैसे मुख वाले पक्षी इत्यादि जीव भी हिंसा करने वाले हैं, हिंसा करने वालों में कई मन वाले–सज्ञी और कई असज्ञी तथा अपने योग्य पर्याप्तियों से पूर्ण और अशुभ लेश्या के परिणाम वाले होते हैं। इस प्रकार ऊपर कहे हुए और इसी तरह के अन्य क्रूर जीव भी प्राण वध करते हैं। ये सब पाप की प्रधानता वाले, पाप को ही उपादेय मानने वाले तथा पाप क्रिया में श्रद्धा रखने वाले हैं। ऐसे जीव प्राण वध करके खुशी मनाते और प्राण वध को ही मुख्य कर्तव्य मानते हैं तथा ये हिंसाको कथाओं कोही कहते सुनते और हिंसा के कार्यों को करके सन्तुष्ट होते हैं। इस प्रकार घातक जीवों का स्वरूप बताया गया,

अब प्राण वध के फलों को दिखाते हैं—"वृक्ष की तरह उस हिंसा के फल को नहीं जानते हुए हिंसक जीव अपने लिये नरक व तिर्यञ्च योनिको बढाते हैं, वे योनियाँ महाभय देने वाली तथा निरन्तर वेदनाओं से युक्त और चिर काल तक शारीरिक मानसिक आदि विविध दुःखों से भरी होती हैं। यहाँ से आयुक्षय होने पर मरे हुए जीव अशुभ कर्म की अधिकता से शीघ्र नरक में उत्पन्न होते हैं। वे नरक स्थान इस प्रकार के हैं—'क्षेत्र और स्थिति से जो विशाल हैं, वज्रमय दिवाल युक्त बडे और बिना सन्धि व द्वार के हैं, जहाँ कठोर भूमितल वाले कर्कश स्पर्शयुक्त और विषम–ऊचे नीचे अनेक चारक–नरक घर हैं, बहुत ऊष्ण सदा तपते हुए तथा दुर्गन्ध और सडान के कारण जो उद्वेग जनक हैं, दिखने में भयङ्कर हैं, सदा वर्फ के ढेर की तरह ठंडे और काली कान्ति वाले हैं, भयङ्कर गहरे होने से माझकारी मनके प्रतिकूल और प्रतीकार नहीं करने लायक व्याधि

१—बगाल से दक्षिण की ओर समुद्र के पास है।

रोग तथा जरासे पीड़ा पहुचाने वाले हैं। वहाँ सघन अन्धकार होने से प्रत्येक वस्तु में भय का प्रदर्शन होता है। चन्द्र सूर्य नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की वहाँ प्रभा नहीं पहुचती और मेद चर्बी और¹ रुधिर मांस पीप आदि की अधिकतासे वहाँ कीचड़ सा मचा रहता है। वहाँ का स्पर्श कोयले की अग्नि मुर्मुर, धधकती ज्वाला और तलवार, अस्तूरे आदि की तीखी धार व बिच्छू के डंक लगने जैसा अत्यन्त दुस्सह है। वहाँ कोई इष्ट की प्राप्ति कराने वाले और अनर्थ की निवृत्ति कराने वाले सहायक नहीं हैं। वहां सिर्फ भयङ्कर दुःखों से जीव पीड़ित किये जाते हैं। निरन्तर अत्यन्त वेदना और यमलोकोंसे ये स्थान पूर्ण रहते हैं। नरकावास में उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त जैसे स्वल्पकाल में वैक्रियलब्धि व नारक जन्म के कारण से ये जीव शरीर को बनाते हैं, जो योग्य आकृति हीन और दिखने में भयङ्कर होता है, हाड़ मांस स्नायु नख व रोम के बिना वह नारक शरीर भयानक तथा अशुभ और दुःख सहने वाला होता है। शरीर बनने के बाद फिर इन्द्रिय श्वास आदि सभी पर्याप्तियाँ पूर्ण कर वे जीव पांचों इन्द्रियों से दुःख का अनुभव करते हैं। असातारूप अशुभ वेदना से दुःख भोगते हैं। वह वेदना साता के लेश से भी शून्य है। तथा नहीं हटाने लायक है और शरीर भर में फैलने वाली होती है। जो बहुत उत्कट, कठोर, परुष और प्रचण्ड स्वरूप वाली व दूसरे के प्राणों की अपेक्षा नहीं करने से घोर और भय उत्पन्न करने वाली दारुण है। यहां के दुःख कौन से हैं? कुम्भी आदि में पकाना भूना आदि की तरह सेकना और तलना भूनना तथा लोह के कड़ाह में उकालना एवं देवी आदि के सामने मांस की तरह बलि चढ़ाना देहको पोस देना या शाल्मलीक तीखे अग्रभाग पर ले जाना व फिराना, देह का घोर फाड़ करना हाथों को व सिरको पीठ की ओर खींच कर बांध देना सैकड़ों लाठी के प्रहार मारना गले में बांधकर वृक्षको शाखाओं में लटको देना मूल में बींधना, झूठी आशा देकर ठगना निन्दा और अपमान करना उनको वध्य भूमि पर लेजाना इन सब दुःखों के वे नारकी जीव साता के समान उत्पादक हैं। इस प्रकार ये नारक जीव जैसे दुःखों को भोगते हैं वैसे ही दुःखों को प्राप्त करते हैं।

---

१—औदारिक शरीर की तरह उनका शरीर कोई मांस का नहीं होता इसलिये यहां रुद्र मांस आदि का दर्शन उस प्रकार से परिणत वैक्रिय पुद्गलों के लिये समझना चाहिए।

मूल—"पुव्वकम्मकय संचयोवतत्ता निरयग्गि-महग्गि-संपलित्ता, गाढदुक्खं महब्भयं कक्कसं असायं सारीरं मानसंच तिव्वं दुविहं वेदेंति वेयणं, पावकम्मकारी बहूणि पलिओवम-सागरोवमाणि कलुणं पालेंति ते अहाउयं जमकातियतासित य सद्दं करेंति भीया। किंते ?, अविभाय, सामिभाय, वप्पताय जितव, मुय मे मरामि दुब्बलो वाहिपीलिओऽहं, किं दाणिऽसि ? एवं दारुणोणिद्दय मादेहि मे पहारे, उस्सासेतं (एयं) मुहुत्तर मे देहि, पसायं करेहि, मारुस वीसमामि गेविज्जं मुयह मे मरामि, गाढं तण्हातिओ अहं देह पाणीयं, हंता पिय इमं जलं विमलं सीयलंति घेत्तूण य नरयपाला तवियं तउयं से देंति कलसेण अंजलीसु, दट्ठूण य तं पवेपि (वि) यंगोवंगा अंसुप-गलंतपप्पुयच्छाछिरणा तण्हाइयम्ह कलुणाणि जपमाणा, विप्पेक्खंता दिसोदिसिं अत्ताणा असरणा अणाहा अबंधव बंधुविप्पहूणा विपलायंति य मिगा इव वेगेण भयुव्विग्गा घेत्तूण बला पलायमाणाणं निरणुकंपा मुहं विहाडेत्तुं लोहदंडेहिं कलकलएहं वयणंसि छुभंति, केइ जमकाइया हसंता, तेण दड्ढा संतो रसंति य भीमाइं विस्सराइं, रुवंति य कलुणगाइं पारेवतगाव, एवं पलावितविलाव कलुणाकंदिय बहुरुन्न रुदियसद्दो परिवे (दे) वित रुद्ध बद्ध य नारकारव संकुलो णीसट्ठो रसिय भणियकुवि-उक्कूइय निरयपालतज्जिय गेण्हकूकम, पहर, छिंद, भिंद, उप्पा-डेहुक्खणाहि, कत्ताहि, विकत्ताहि य भुज्जोहण, विहण, वि-च्छुभोच्छुब्भ, आकड्ढ, विकड्ढ, किंण जंपसि ? सराहि पाव कम्माइं दुक्कयाइं एव वयण महप्पगब्भो पडिसुया सद्दसकुलो तासओ सया निरयगोयराण महाणगर डज्झमाण-सरिसो नि-

गाढा सुचिरं अणिट्ठो तहिय नेरइयाण आइज्जमाणं जाय णाहिं। किं ते? असिवण–दब्भवण–जंत–पत्थर–सूइ–तलक्खार वावि कलकलंत वेयरणि कलंब वालुयाजलिय गुह निरुंभण उसिणोसिण कंटइल्ल दुग्गम रहजोयण तत्तलोह मग्ग गमण वाहणाणि इमेहिं विविहेहिं आयुहेहिं, किं ते? मोग्गर-मुसुंढि-करकय-सत्ति-हल-गय-मुसल चक्क-कोंत-तोमर-सूल-लउल-भिंडि माल-सद्ध (ल) ल-पट्टिस चम्मेट्ठ-दुहण मुट्ठिय-असि, खेडग खग्ग-चाव नाराय-कणक-कप्पणि वासि परसु-टंकतिक्ख निम्मल अण्णेहिय एवमादिएहिं असुभेहिं वेउव्विएहिं पहरणसतेहिं अणुबद्ध तिव्ववेरा परोप्पर वेयणं उदीरेंति अभिहणंता, तत्थ य मोग्गर पहार चुण्णिय मुसुंढि संभग्ग महित देहा जंतोवपीलण फुरंत कप्पिया केइत्थ सचम्मका विगत्ता णिम्मू (लु) लुण्ण कण्णोट्ठणासिका छिण्णहत्थपादा असिकरकयतिक्ख कोंत परसुप्पहार फालियवासी संतच्छितयमंगा कलकलमाण खार परिसित्तगाढ डज्झंतगत्ता कुंतग्ग भिण्ण जज्जरिय सव्वदेहा विलोलंति महीतले विसूणियंगमंगा, तत्थ य विग–सुणग–सियाल काक—मज्जार–सरभ–दीविय—वियग्घ सद्दूल सीह-दप्पिय खुहाभिभूतेहिं णिच्चकालमणसिएहिं घोरा रसमाण भीमरूवेहिं अक्कमित्ता दढ दाढा–गाढ डक्ककड्ढिय सुतिक्ख नह फालिय उद्धदेहा विच्छिप्पंते समंतओ विमुक्क संधि बंधणा वियंगमंगा कंक–कुरर–गिद्ध–घोर–कट्ठवायसगणेहिं य पुणो खरथिर दढ णक्खलोह तुंडेहिं ओवतित्ता पक्खाहय तिक्खणक्ख विक्खित्त जिब्भंछिय णयण णिद्द (द्द) ओलुग्ग विगत वयणा, उक्को

संता य उप्पयंता निपतंता भमंता पुव्वकम्मोदयोवगता पच्छाणुसयेण डज्झमाणा, णिंदंता पुरेकडाइं कम्माइं पावगाइं तहिं २ तारिसाणि ओसन्नचिक्कणाइं दुक्खातिं अणुभवित्ता, ततो य आउक्खएणं उव्वट्टिया समाणा बहवे गच्छंति तिरियवसहिं दुक्खुत्तरं सुदारुणं जम्मण मरण जरा वाहि परियट्टणारहट्टं जल थल खहचर परोप्पर विहिंसणपवंचं इमं च जगपागडं वराका दुक्खं पावेंति दीहकालं। किंते ?, सीउण्हतण्हाखुहवेयण अप्पईकार अडवि जम्मण णिच्च भउव्विग्ग वास जग्गण वह बंधण ताडणंकण निवायण अट्ठिभंजण नासाभेयप्पहार दूमण छविच्छेयण अभिओग पावणक संकुसार निवायदमणाणि वाहणाणि य मायापिति विप्पयोग सोय परिपीलणाणि य सत्थग्गि विसाविघाय गल गवल आवलण मारणाणि य गलजालुच्छिप्पणाणि पउलण विकप्पणाणिय जावज्जीविक बंधणाणि पंजरनिरोहणाणि य सयूह निद्धाडणाणि धमणाणि य, दोहणाणि य कुदंड गलबंधणाणि वाडगपरिवारणाणि य, पंक जल निमज्जणाणि, वारिप्पवेसणाणिय ओवायणि भंग विसमणि वडणदवग्गिजालदहणाई य, एवते दुक्खसय संपलित्ता नरगाउ आगया इह सावसेसकम्मा तिरिक्ख पंचेंदिएसु पाविंति पावकारी कम्माणि पमाय-राग-दोस-बहुसंचियाइं अतीव अस्सायकक्कसाइं ॥ सू० ५ । ४ ॥

छाया—"पूर्वकर्मकृत सञ्चयोपतप्ता निरयाग्नि महाग्नि सम्प्रदीप्ता गाढदुःखां महाभयां कर्कशाम् असातां शारीरीं मानसीं च तीव्रा द्विविधां वेदयन्ति वेदनाम्, पापकर्मकारिणो बहूनि पल्योपम सागरोपमानि करुणं पालयन्ति ते यथाऽऽयुष्क यमकायिकत्रासिताश्च शब्द कुर्वन्ति भीता, किन्तत् ? (तद्यथा) हे अविभाव्य ! हे स्वामिन् ! हे भ्रात ! हे पित ! हे तात ! हे जितवन् ! मुञ्च माम्, म्रिये दुर्बलो व्याधि पीडितोऽहम्, किमिदानीमसि एव दारुणो निर्दयो, मा देहि मह्य प्रहारान् उच्छ्व सनमेक मुहूर्तक मे देहि, प्रसाद कुरु, मा रु षस्व, विश्राम्यामि, ग्रैवेयक मोचय मम, म्रिये, गाढ तृषाऽऽर्दितोऽह देहि पानीयम्, हन्त पिबेद जल विमल शीतलमेतदिति

गृहीत्वा च नरक पालाः तस्मै प्रयुक्तं तस्मै ददते कलकलनाऽऽकुलौ । दह्यमानाश्च तत्रवेपिता-ङ्गोपाङ्गा अमुगमदुःखाऽऽपातिछाया दृष्ट्वाऽऽत्मानमिति कस्याभि कस्यन्तो विमे ह्रियमाणा दिशो विदिशम् अत्राणा अशरणा अनाथा अबान्धवा बन्धुविमहीणा विपन्ना-यन्ते च मृगा इव वेगेन भयोद्विग्ना । गृहीत्वा बलात्कलायमानाम् निरनुकम्पा मुखं विदार्य लोहदण्डैः कलकलं ( द्रवत्त्रपुकं ) मुखवने क्षिपन्ति केचित् पमाकर्षित हसन्त । तेन दग्धाः सन्तो रसन्ति च भीमानि विस्वराणि रुदन्ति च करुणकानि पारावतका इव एवं प्रलपित विलाप करुणाऽऽक्रन्दित बहुभूत ( रुदन ) शब्दित शब्द परिवेपित मन्द बद्धक नारकाऽऽरवसङ्कुलो निसृष्टो रसित भणित कुपितोत्कूजित निरय पाल तर्जित-"गृहाण, क्राम, प्रहर छिन्धि, भिन्धि उत्पाटय, उत्क्षिप (उत्खन) कन्त, विकृन्त च भूयो जहि, हन, विहहि, ( विहन ) विक्षिप, उत्क्षिप, आकृष विकृष, किम जल्पसि स्मर पापकर्माणि दुष्कृतानि एवं वचन महाप्रगल्भ", प्रति श्रुताऽऽस्त व्य संकुल त्रासक सदा निरय गोचराणां दह्यमान महानगर सदृशो निर्घोषः श्रूय तेऽनिष्टस्तत्र नैरयिकाणां यात्यमानानां यातनाभिः । कास्ताः ? ( यातनाः ) असिव न, दमवन, यन्त्र, प्रस्तर, सूचीतल क्षारवापी कलकलत् ( द्रवत् त्रपुपादि सहित ) वैतरणी कदम्ब वालुका ज्वलित गुहा निरोधनम् उष्णोष्ण कण्टकित दुर्गम रथ योजन तप्त लोह मार्गे गमन वाहनानि, एभिर्विविधैरायुधैः । कानि तानि ? मुद्गर मुसुण्ढि क्रकच शक्ति-हल-गदा मुसल चक्र कुन्त तोमर शूल लकुट भिण्डिपाल-सद्वल ( मल्ल ) पट्टिस चर्मेष्ट-दूघण मौष्टिकाऽसिखेटक खड्ग चाप नाराच कणक कर्पणी वासी परशु-टङ्क तीक्ष्ण निर्मलैः अन्यैरेवमादिभिः रश्मिभिः वैक्रियैः प्रहरणशतैः अनुबद्ध तीव्र वैराः परस्परवेदनामुदीरयन्त्यभिघ्नन्तः । तत्र च मुद्गर प्रहार चूर्णित मुसुण्ढि संभग्न मथित देहा यन्त्रोपपीडनस्फुरत्कल्पिताः केचित्तत्र सचर्मका विकृत्ता निर्मूल ( समूलोत्क्षिप्त ) कर्णौष्ठनासिकाछिन्नहस्तपादाः, असि क्रकच तीक्ष्ण कुन्त परशु प्रहार स्फाटित वासी सम्तक्षिताऽङ्गोपाङ्गा कलकलायमान क्षार परिषिक्त गाढ दह्यमान गात्र कुन्ताऽऽ ग्रभिन्नजर्जरितसर्वदेहा विलुठन्ति महीतले शुनकश्वापदुकाङ्गोपाङ्गा । तत्र च वृक शुनक शृगाल काक मार्जार सरभ द्वीपिक वैयाघ्र शार्दूल सिंह दर्पित क्षुधाभिभूतैर्नित्यकालमनशितैर्घोरा रसद्भीम रूपैराक्रम्य दृढदंष्ट्रा गाढ दष्ट कृष्ट सुतीक्ष्ण नख स्फाटितायुर्वदेहा विक्षिप्त न्ते समन्ततो विमुक्तसन्धिबन्धना व्यङ्गिताङ्गा कङ्क कुरर गृध्र घोर कष्ट वायसग-णैश्च पुन । खरस्थिर दृढनखलोहतुण्डैरवपत्य पक्ष ऽऽहत तीक्ष्ण नख विकीर्ण

जिह्वाच्छिन्न नयननिर्दयाधरुणा विकृत्तदना, उत्क्रोशन्तश्चोत्पतन्तश्च निपतन्तो भ्रमन्त पूर्वकर्मोदयोपगता, पश्चादनुशयेन दह्यमाना निन्दन्त, पुराकृतानि कर्माणि पापकानि तत्र तत्र तादृशानि—उत्सन्न चिक्कनानि दुःखानि—अनुभूय ततश्चायुः क्षये—उद्धृता सन्तो बहवो गच्छन्ति तिर्यग्वसतिम्, दुःखोत्तारा सुदारुणां जन्म मरण जरा व्याधि परिवर्तनाऽऽरघट्टां जल स्थल खचर परस्पर विहिंसन प्रपञ्चाम् इदञ्चजगत्प्रकट वराका दुःख प्राप्नुवन्ति दीर्घकालम्। किन्ते? तद्यथा-शीतोष्ण तृष्णा क्षुधा वेदनाऽप्रतीकाराऽटवी जन्म नित्य भयोद्विग्नवास जागरण वध बन्धन ताडनाऽङ्कन निपातनाऽस्थिभञ्जन नासा भेद प्रहार दवन-च्छविच्छेदनाऽभियोग प्रावणकशाऽङ्कुशाऽऽरा निपात दमनानि, वाहनानि च माता पितृ वियोग स्रोतः परिपीडनानि च शस्त्राऽग्निविषाभिघात गलावलाऽवलन मारणानि च, गल-जालो तक्षेपणानि, पचनविकल्पनानि च, यावज्जीवकबन्धनानि, पञ्जरनिरोधनानि च, स्वयूथ्य निर्घाटनानि धमनानि च दोहनानि च, कुदण्डगलबन्धनानि, वाटक परि-घारणानि च, पङ्कजलनिमज्जनानि, वारिप्रवेशनानि च, अवपातनिभङ्ग विषम निपतन दवाग्नि ज्वालादहनादीनि च। एवते दुःखशतसम्प्रदीप्ता नरकादागता इह सावशेषकर्माणस्तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेषु प्राप्नुवन्ति पापकारिणः कर्माणि प्रमादरागद्वेष बहुसञ्चितानि—अतीवाऽऽसातकर्कशानि।

अन्वयार्थ—"(पुव्व कम्म कय सचोयोवतत्ता) पूर्वकृतकर्म के सचय से सन्ताप पाये हुए (निरयग्गि महग्गि सपलित्ता) भयङ्कर अग्नि की तरह निरयस्थान को अग्नि से जले हुए वे जीव (गाढदुक्ख) अत्यन्त दुःख युक्त (महब्भय) महा भयङ्कर (कक्कस) कठोर इसोलिये (असाय) असात वेदनीय के उदय से होने वाली (सारोर) शरीर सम्बन्धी (मानसच) और मानसिक ऐसे (दुविह) दो प्रकार की (तिव्व) तीव्र (वेयण) वेदना को (वेदेंति) अनुभव करते हैं। (पावकम्मकारो) पाप कर्म करने वाले वे जीव (बहूणि) बहुत से (पलिओवम-सागरोवमाणि) पल्योपम और सागरोपमतक (करुणं) दया जनक दशा को (पालेंति) पूर्ण करते हैं, फिर (ते) वे (अहाउयं) बाधी हुई आयु के अनुसार (जमकातियतासिया य) अंब आदि नाम वाले वहा के यमों से त्रास पाये हुए (सद्द करेंतिभोया) भय भीत होकर शब्द—आर्तनाद करते हैं। (किंते?) वह आर्तस्वर कैसा है? (अविभाय, सामि, भाय, वप्प, ताय जितव! मुय मे) हे अविभाज्य—समझ मे नहो आने लायक बन्धु! हे स्वामिन्? हे भाई! अरे

बाप ! हे तात ! हे विजय शील ! मुझे छोडो (मरामि) मैं मर रहा हूं (दुब्बलो वाहिपीलिओऽहं) मैं दुर्बल—कमजोर और व्याधि से पीडित हूं (एवं दारुणो णिद्दय) इस प्रकार दारुण तथा निर्दय (किं दाणिऽसि) इस समय क्यों होते हो ? (मा देहि मे पहारे) मुझे प्रहार मत मारो (उस्सासेउ मुहुत्तयं मे देहि) घडी भर मुझे श्वास लेने दो (पसायं करेह) प्रसाद—कृपा करो, (मा रुस) मेरे ऊपर क्रोध मत करो (वीसमामि) थोडा विश्राम लेता हूं (गेविज्जंमुयह मे) मेरे गले के बन्धनों को खोलो, (मरामि) मैं मर रहा हूं (गाढं तण्हाइओ अहं) मैं प्यास से खूब पीडित हूं (देह पाणीयं) पानी दो (हंता) अच्छा ! (पिय) पी—(इमं जलं विमलं सीयलं) यह जल निर्मल और शीतल ठंडा है (त्ति) ऐसा कहकर (नरय पाला) वे नरक पाल देव (तवियं तउयं) तपे हुए सीसे को (घेत्तूण) लेकर (से) उस प्यासे नारक जीव को (देंति) देते हैं (कलसेण) कलश में से (अंजलीसु) अंजलियों में (दट्ठूणयं) और उस सीसे के पानी को देखकर (पवेवियंगोवंगा) अङ्गो पाङ्गों से धूजते हुए और (अंसुपगलंत पप्पुयच्छा) गलते हुए आंसुओं से आंखें भरके (छिण्णा तण्हाइयम्ह) हमारी प्यास मिट गई इस प्रकार (कलुणाणि जंपमाणा) करुणा जनक वचनों को बोलते हुए भागते हैं (विपेक्खंता दिसो दिसिं) एक ओर से दूसरी दिशा की तरफ देखते हुए (अत्ताणा) त्राण रहित (असरणा) रक्षकों से रहित (अणाहा अबंधवा) योग क्षेम करने वाले नाथ तथा स्वजनों से रहित अर्थात् जिनके न कोई नाथ है न बांधव (बंधुविप्पहूणा) बन्धु के बिना रहने वाले वे जीव (मिगा इव भयुव्विग्गा) हरिणों के समान भय से उद्विग्न बने हुए (घंसेउ) बहुत जोर से (विपलायंति) भगते हैं (य) फिर (बला) बल प्रयोग से (घेत्तूण) पकड कर (हसंता) हंसते हुए (केइ) कई एक (जमकाइया) यम जाति के असुर (निरणुकंपा) निर्दय बन हुए (पलायमाणाणं) भागते हुए के (मुहं) मुख को (विहाडेत्तु लोहदंडेहिं) लोहमय दण्डों से उनका मुख को फाड खोल कर (कलकलं) कल कल करते हुए उस सीसे को (वयणंसि) मुह (छुभंति) डालते हैं, (तेण दड्ढा संतो) उस गरम सीसे के डालने से जलते हुए (रसंति) प्रलाप करते हैं (य) और (भीमाइं विस्सराइं) भयङ्कर विरस शब्द करते (रुयंति य कलुणगाइं पारेवतगा व) और कबूतर की तरह करुणा जनक रुदन करते हैं (एव) इस प्रकार बड़ा और सुना जाता है (पलविय विलाव कलुणो कंदिय बहुरुण्णरुइयसद्दो) नारकों के प्रलाप और विलाप—आर्तनाद

करने से जो करुणा जनक है, तथा आक्रन्दन अतिशय अश्रुमोचन और रोने के शब्द वाला है, ( परि वेवित रुद्ध बद्धय नारकारवसकुलो ) धूजते हुए रोके गए और नरक पालों के द्वारा बंधे हुए नारकों से व उनके आरवोंसे सकुल है ( णीसट्ठो )जो निर्घोष नारक जीवों से छोडा गया (रसिय भणिय कुविउक्कूइय निरयपाल तज्जिय-) शब्द युक्त भणित-- अव्यक्त वचन वाले और क्रोध युक्त तथा अव्यक्त महाध्वनि को करने वाले निरयपालों के तर्जित-रे पापी ! अब समझेगा ! इस प्रकार की तर्जना युक्त, ( गेण्ह ) धरो पकडो ( कम्म ) आक्रमण करो ( पहर ) मारो ( छिंद ) काटो ( भिंद ) भेदन करो ( उप्पाडे हु क्खणाहि ) जमीन से उठाओ याने ऊपर फेंको आंख की पुतली या बाहु आदि उखाड फेंको ( कत्ताहि ) नाक आदि कतरो-काटो ( विकत्ताहि ) टुकडी २ करो ( य भुज्जो ) और फिर किसी समय मर्दन करो ( हण ) मारो ( विहण ) विशेष ताडन करो, ( विच्छुभोच्छुभ ) मुख मे सीसा डालो व अधिकता स डालो, ( आकड्ढ ) सामने खीचो ( विकड्ढ ) पीछे हटाओ ( किंण जपसि ) क्यों नहीं बोलता है ? या नहीं जानता है ?, ( सराहि ) याद करो हे पापात्मन् ! ( पाव कम्माइं दुक्कयाइं ) अशुभ योग आदि से किये हुए दुष्कर्मों को ( एव ) इस प्रकार ( वयण महप्पगब्भो ) नरक पालों के बोलने से जो अति कर्कश है ( पडिसुया सद्द सकुलो ) प्रति शब्द की आवाज से व्याप्त ( सया तासओ ) सदा त्रास उत्पन्न करने वाला ( निरयगोयराए ) नरक स्थान वर्ती जीवों के लिये जो ( महाणगर डज्झमाण सरिसो ) जलते हुए बडे नगर के समान ( तहिय ) वहां ( जाइज्जताण जायणाहिं ) अनेक प्रकार की यातनाओं से पीडित होते हुए ( नेरइयाण ) नारकीय जीवों का ( अणिट्ठो निग्घोसो ) अनिष्ट-बुरा निर्घोष शब्द ( सुचए ) सुना जाता है ( किंते ? ) वे यातनायें कौनसी हैं ? उन्हें कहते हैं -( असिवण दब्भवण जत पत्थर सूइतल ) असिवन खड्ग की आकृति वाले जिन मे पत्र हैं, दर्भवन-जहा डाभ को तरह तीखे अग्र भाग वाले घास हैं, वह दर्भवन, पाषाण का यन्त्र अथवा यन्त्र से फेके गये पत्थर, या यन्त्र व बडे पत्थर, सूई के अग्र भाग वाला भूमितल ( क्खार वावि ) खारे द्रव्य से भरी हुई वापी-बावडी ( कल कलत वेयरणि ) उकलते हुए सीसे आदि से भरी हुई वैतरणी नदी ( कलब वालुया ) कदम्ब फूल के आकार वाली वालू-रेत और ( जलिय गुह निरुंभण ) जलती हुई गुहा इन सब स्थानों में रोक कर रखना (उसिणोसिण कटइल्ल दुग्गम रह जोयण ) अत्यन्त उष्ण कण्टक वाले और मुश्किल से चलने वाले ऐसे भारी

रथों में जोतना (वत्तलोह मग्ग गमण बाहणाणि) और तपे हुए लोह मय मार्ग में चलाना या बैलों की तरह हांक कर-जबरदस्ती ले जाना इस प्रकार की अनेक यातनायें दी जाती हैं, (इमेहिं विविहेहिं) इन नीचे कहे जाने वाले विविध (आयुहेहिं) आयुधों से परस्पर वेदनाओंका उदीरण करते हैं (किंते?) वे कौन से आयुध हैं?-(मोग्गर मुसुंढि) मुद्गर-लोहका घन, मुसुंढि-मुसुंढि (करकय) करपत्र-करवत (सत्ति) शक्ति-त्रिशूल (हल) हल (गय) गदा-एक प्रकार की लाठी (मुसल) धान्य कूटने का मूसल (चक्क) चक्र (कुन्त) भाला (तोमर) बाण विशेष (सूल) शूल (लउड) लकुट--डंडा, (भिंडिमाल) भिण्डिपाल-प्रहरण विशेष, (सद्धल) एक प्रकार का भाला (पट्टिस) पट्टिश-प्रहरण विशेष (चम्मेट्ठ) चमड़े से मढ़ा हुआ पत्थर विशेष (दुघण) द्रुघण-वृक्षों को गिराने वाला मुद्गर (मुट्ठिय) मौष्टिक—मुष्टि प्रमाण का एक पत्थर, (असि खेडग) तलवार के साथ फलक (खग्ग) तलवार (चाव) धनुष (नाराय) लोह का बाण (कणग) बाण का एक भेद (कप्पणि) कर्तिका एक प्रकार की कैंची (वासि) काष्ठ छिलनेका अस्त्र-वसूला (परसु) परशु-(टंक तिक्ख, निम्मल) पूर्वोक्त सब अस्त्र शस्त्र अग्र भाग पर तीखे और निर्मल हैं (अण्णेहिय) और दूसरे (एवमादिएहिं) इत्यादि अनेक (असुभेहिं) अशुभ कारक (वेउव्विएहिं) वैक्रिय (पहरणसतेहिं) सैकड़ों प्रकार के शस्त्रों से (अणुबद्धतिव्ववेरा) सदा उत्कृष्ट वैरभाव रखने वाले नारकजीव (अभिहणंता) एक दूसरे को मारते हुए (परोप्परवेयण) परस्पर[1] में दुःख रूप वेदना को (उदीरेंति) उत्पन्न करते हैं। (तत्थय) और वहाँ नरक स्थानों में परस्पर के प्रहार से (मोग्गर पहार चुण्णिय—मुसुंढि संभग्ग महित देहा) मुद्गर के प्रहार से चूर्ण विचूर्ण बने हुए तथा मुसुण्ढी की मारसे टूटे हुए और मथे हुए जैसे देह वाले (जंतोव पीलण फुरन्त कप्पिया) घानी आदि यन्त्रों में पीलने से चमकते हुए और कटे हुए (के इत्थ) यहाँ नरक में कई नारक जीव (सचम्मका) चमड़े वाले (विगत्ता) चमड़े से अलग किये गए (निम्मूलुल्लूण कण्णोट्ठ नासिका) मूल से कटे हुए कान ओठ व नासिका वाले (छिण्णहत्थपादा) और कटे हाथ पांव वाले (असि) तलवार (करकय) करवत (तिक्खकोंत) तीखा भाला और (परसुप्पहार फालिय वासी संतच्छितगमंगा) परशु—फरसों से फाड़े गए और वसूलों से छीले गए अङ्गोपाङ्ग वाले (कलकलमाणखारपरिसित्ता) कल कल करते हुए

1—तीसरी पृथ्वी से आगे की नरक भूमियों में पता होता है। टीका०

उण्ण क्षार से सिक्त होने के कारण ' गाढ डज्झंत गत्त कुन्तग्ग भिण्ण जज्जरिय सव्वदेहा ) अत्यन्त जलते हुए शरीर वाले और भाले के अग्रभाग से विदीर्ण होने के कारण जर्जर हैं सब देह जिनके ऐसे ( विसूणियगमत्ता ) सूजे हुए फूले हुए तथा क्षत शरीर वाले नारक जीव ( महीतले ) जमीन पर ( विलोलंति ) लोटते हैं, ( तत्थ य ) और वहाँ ( विग सुणग सियाल ) विग—ऊली नाहर, कुत्ते, शियाल ( काक ) कौए ( मज्जार ) बिल्ली ( सरभ ) सरभ ( दीविय ) चीता ( वियग्घ ) व्याघ्र के बच्चे ( सद्दूल ) शार्दूल-सिंह-व्याघ्र ( सीह ) सिंह ( दप्पिय खुहाभिभूतेहिं ) दर्प-मस्त और भूख से पीडित ( णिचकालमणसिएहिं ) सदा से भूखे हों उस तरह ( घोरारसमाणभीमरूवेहिं ) घोर शब्द व दारुण कर्म करने वाले और भयङ्कर रूप वाले ऐसे ये क्रूर हिंसक जीव नारक जीवों पर ( अक्कमित्ता ) आक्रमण करके ( दढ दाढा गाढ डक्क कड्ढिय सुतिक्ख नह फालिय उद्धदेहा ) मजबूत दाढों से गाढ डसे हुए और खींचे गये तथा अत्यन्त तीखे नखों से फाड दिया—विदारण कर दिया है ऊर्द्धव देह जिनका ऐसे नारकों को ( विच्छिप्पते स तओ ) चारों ओर फेंक देते—बिखेर देते हैं ( विमुक्क सन्धिबधणावियगमंगा ) ढीली करदी गई है अङ्गों की सन्धियों जिनकी ऐसे तथा विकल अङ्गोपाङ्गवाले ( पुणो ) फिर ( कङ्क ) कङ्क पक्षी ( कुरर ) कुरर-पक्षिविशेष ( गिद्ध ) गीध ( घोरकट्ठवायसगणेहिय ) घोर कष्ट देने वाले वायस-कौए इन सबके समूह ( खर थिर दढ नक्ख लोह तुडेहिं ) जो कठोर निश्चल और दढ नख व लोहमय चोंच वाले हैं उनके द्वारा ( ओव तित्ता ) पास में आकर ( पक्खाहय तिक्खणक्ख.विकिण्ण ) पाखों को मारसे आहत किये गये, तीखे नखों से नोचे-बिखेरे गये ( जिब्भछिय नयण निद्दओलुग्ग विगत वयणा ) जीभ खींची गई, आखे निकाली गई, निर्दयता से मुंह बिगाडा गया और जिन्हें घायल किया गया है ऐसे वे नारक जीव ( उक्कोसंता ) चिल्लाते हुए या रोते हुए ( य ) और ( उप्पयता ) उछलते ( निपतंता ) गिरते ( भमता ) फिरते हुए ( पुव्वकम्मोदयोवगता ) पूर्व कृत कर्म के उदय वाले ( पच्छाणुसएण ) पश्चात्ताप से ( डज्झमाणा ) जलते हुए ( पुरे कडाइ कम्माइ ) पूर्व-पहले किये हुए अशुभ कर्मो की ( निंदता ) निन्दा करते हुए ( तहिं २ ) उस २ रत्नप्रभा आदि पृथ्वी मे तथा उत्कृष्ट स्थिति वाले नरकावास मे ( तारिसाणि ) वैसे—जन्मान्तर मे मिलाये हुए परमाधार्मिक के चलते या परस्पर की उदीरणा से तथा क्षेत्र स्वभाव से होने वाले, ( ओसन्न चिक्कणाइ ) अधिकता से चिकने-दुःख से छूटने योग्य ( दुक्खाति ) दुःखों

को (अणुभवित्ता) अनुभव करके (ततो य) बाद फिर (आउक्खयपणे) आयु के क्षय-पूर्ण हो जाने से (उव्वट्टिया समाणा) ऊपर आए निकले हुए (बहवे) बहुत से जीव (तिरिय वसहिं) तिर्यञ्च योनि रूप निवास में (गच्छंति) चले जाते हैं (दुक्खुत्तरं) जो तिर्यग् योनि बहुत दुःख से छूटती है और (सुदारुण) बहुत भयङ्कर है (जम्मण मरण जरा वाहि परियट्टणारहट्ट) जन्म मरण वृद्धावस्था और व्याधि के बारंबार परिवर्तन से जो रेंट अर्थात् अरहट की तरह चलती है (जल थल खहचर परोप्पर विहिंसणपवंच) जलचर स्थलचर और खेचर जीवों के परस्पर हिंसा प्रति हिंसा का जिसमें विस्तार है, ऐसी (इमंच) और उस योनि में आगे कहे जाने वाले (जग पागडं) जग प्रसिद्ध (दुक्खं) दुःख को (वराया) बेचारे हिंसक जीव (दीहकालं) लम्बे कालतक (पावेंति) पाते हैं, (किं ते?) वे दुःख कौन से हैं?

उत्तर—(सीउण्ह) शीत उष्ण—ठंडी गर्मी (तण्हा खुह) तृषा और भूख से होने वाली (वेयण अप्पईकार) उपचार बिना की वेदना प्रसूति कर्म आदि (अडवि जम्मण) अटवी में जन्म लेना, (निच्च भउव्विग्गवास-) सदा भय से उद्विग्न रहकर बसना-रहना (जग्गण वह बंधण ताडणङ्कण) जागना, वध, बंधन लाठी आदि का ताडन और लोहमय शलाका आदि से चिह्न करना (निवायण अट्ठि भंजण नासाभेय—प्पहार दूमण) खड्डे में गिराना, हड्डी तोडना नाक में छेद करना, लाठी के प्रहार करना, जलाना (छविच्छेयण अभिओगपावण) चमड़े को छेदना, कान आदि अवयवों को बींधना, जबरदस्ती काम में लगाना (कसंकुसार निवाय दमणाणि) चाबुक, अंकुश, और आर लकड़ी के अग्र भाग में लगी हुई कील इन सबों से शरीर पर आघात करना व दमन करना, (भारवहणाणि य) व भार उठवाना (मायापिति विप्पओग) माता पिता से वियुक्त—जुदाई होना (सोय परिपीलणाणि) नाक मुख आदि इन्द्रियों को पीड़ा पहुंचाना अथवा शोक से पीड़ित करना (य) और (सत्थग्गि विसाभिघाय गल गवल आवलण मारणाणि) शस्त्र अग्नि और विष से हनन करना, गले व सींग को मोड़ना, अथवा गले का दबाकर और सींग का मोड़ कर मारना (य) और (गल जालुच्छिप्पणाणि) मत्स्य बींधन का कांटे और जाल से मछलियों को पानी से बाहर खींचना (पओलण विकप्पणाणि) अङ्ग आदि को काटना और पकाना (य) और (जावज्जीवग बंधणाणि) जीवन भर के लिये बांधना (पंजर निरोहणाणि) पींजरे में रोक रखना (य) और (सयूहनिद्धाडणाणि) अपने यूथ-समूह से अलग कर देना (धमणाणि) महिष

वगैरहमे वायु भर देना-यह 'फूका नाम का नृशंस कर्मआज भी सुना जाता है' ( य ) और ( दोहणाणि ) दूध दूहना ( य ) और ( कुदंडगल बधणाणि ) कुदण्ड-बुरी लकड़ी से पीटना और वही गले मे बांधना ( वाडग परिवारणाणि ) बाडे से हटाना ( य ) और ( पकजल निमज्जणाणि ) अधिक कीचडमय पानी में डुबोना, ( वारिप्पवेसणाणि ) पानी में डालना—गिराना, ( य ) और ( ओवायणि भग विसमणिवडण दवग्गि जालदहणाई य ) खड्डे आदि में गिराने से अङ्ग आदि का टूटना, पर्वत के शिखर वगैरह से गिरना-ऊंचे नीचे विषम प्रदेश में पडना और दावाग्नि से जलना इत्यादि ( एवते ) इस प्रकार वे हिंसक जीव ( दुक्खसय सपलित्ता ) सैकडों दुःखों से जले हुए ( नरगाउ आगया ) नरक से आये हुए ( इह ) यहाँ (-सावसेसकम्मा ) अवशेष बचे हुए बाकी कर्म वाले ( तिरिक्ख पंचेंदिएसु ) तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियों मे ( पाव कारी ) पाप- कारी जीव ( अतीवअसायककसाइं ) अत्यन्त कठोर दुःखों को ( पावंति ) पाते हैं, । जो दुःख-( कम्माणि ) कर्म जन्य तथा ( पमाय—राग—दोस—बहु सचियाइं ) प्रमाद और रागद्वेषों से बहुत सञ्चित किए गए हैं । ५ ।४ ।

भाव—"इस प्रकारण का अर्थ सहज है , इसलिये अन्वयार्थ से ही समझ लेवें । केवल इसका सारांश यहाँ दिया जाता है । पूर्व कृतकर्म के सञ्चय से तपे हुए जीव शारीरिक और मानसिक वेदना रूप भयङ्कर दुःख को भोगते हैं । आयु के अनुसार कई पल्योपम सागरोपम तक वे यमसे त्रास पाये हुए चिल्लाते रहते हैं । अरे बाप ! मैं मरता हू, छोडो मैं दुर्बल हूं, इस प्रकार निर्दय मत बनो, इत्यादि रूप से नारकीय जीवों के चिल्लाने पर और मैं प्यासा हू मुझे पानी दो ऐसा कहने पर नरकपाल गण उनको तपा-गला-हुआ सीसा लाकर अञ्जलिमे देते हैं, जिसको देखते ही देह से धूजते हुए और आंखो मे आंसू भर कर नारक जीव कहते हैं--महाराज ! हमारी प्यास मिटगई अब हमें पानी नहीं चहिए, ऐसा कहते हुए चारों ओर भागने लगते हैं, तब उन्हें जबर्दस्ती पकडकर निर्दय यमदूत हंसते हुए उकलता हुआ सीसा मुहमे डाल देते हैं । उससे जलकर वे रोते हैं, भयङ्कर क्रन्दन करते हैं, नरक पाल व नारक जीवों के चिल्लाहट से नरकावास मे बडा अनिष्ट शोर होने लगता है । जैसे किसी बडे नगर के जलने से वहाँ हाहाकार होने लगता है और चारों ओर उद्विग्नता फैल जाती है वैसे अनेक प्रकार की यातनाओं से पीडित नारकों का कोलाहल उद्वेजक हो जाता है । असिवन और वैतरणी आदि नरक के दुःख दायी

स्थानों में वे नारक जीव रोके जाते हैं। अत्यन्त उष्ण व कठि पुष्ठ रथमें जोते जाते मुद्गर आदि अनेक वैक्रिय आयुधों से वे परस्पर भी प्रहार करते और दुःख उत्पन्न करते हैं, छिन्न भिन्न और अङ्गों के सब विकृत हो जाने से अवरिव वेद होकर वे भूमितल पर लोटते हैं। इतने पर भी और यहाँ एक कुत्ता और व्याघ्र आदि हिंसक पशु पक्षियों से विविध तरह से मारे और पीडित किये जाते हैं वेहाल बने हुए नारक जीव चिल्लाते उछलते और नीचे गिरते, एवं भौंरी की तरह चक्कर काटते हैं, । पश्चाताप के जलते जलते एवं अपने दुष्कर्मों की निन्दा करने लगते हैं, । वहां नरकावास में अधिकता से चिकने कर्मों को भोगकर आयु के पूर्ण हो जाने से वे मरकर तिर्यग्योनि में आते हैं। जो बहुत दुस्तर व दारुण है, जन्म जरा मरण और व्याधियों के अनेक चक्र वाली तथा जल थर आदि जन्तुओं के रूप से परस्पर हिंसा के प्रपञ्च वाली है। पशुगति का दुःख जग प्रसिद्ध है। यह हिंसक जीव दीर्घकाल तक उसको भोगता रहता है। पशुगति के दुःख—ठंडी गर्मी भूख, प्यास, तथा पराधीनता से होने वाले अनेक प्रकार के वध बन्धन ताडन, अङ्कन अङ्गादि छेदन भेदन, अस्थि मोडन आदि हैं जो सुगम है ऐसे नरक से आये हुए जीव कर्म बचे रहने से तथा हार्दिक बलमान राग द्वेष से सञ्चित सैकड़ों दुःखों को तिर्यग योनिमें पाते हैं। जो अत्यन्त कठोर होते हैं। सू० ५। ४।

मूल—"भमर मसगमच्छिमाइएसु य जाइकुल कोडिसय सहस्सेहिं नवहिं चउरिंदियाण तहिं तहिं चेव जम्मण मरणाणि अणुभवंता कालं संखेज्जकं भमंति नेरइयसमाण तिव्वदुक्खा फरिस रसण घाण चक्खुसहिया, तहेव तेइंदिएसु कुंथु पिप्पीलिका अवधिकादिकेसु य जातिकुल कोडि सयसहस्सेहिं अट्ठहिं अणूणएहिं तेइंदियाण तहिं तहिं चेव जम्मण मरणाणि अणुहवंता कालं संखेज्जकं भमंति नेरइयसमाणतिव्वदुक्खा फरिस रसण घाण सपउत्ता, (तहेव बेइंदिएसु) गंडूलय जलूय किमिय चंदणगमादिएसु य जातिकुल कोडिसयसहस्सेहिं सत्तहिं अणूणएहिं बेइंदियाण तहिं २ चेव जम्मणमरणाणि अणुहवंता कालं संखिज्जकं भमंति नेरइयसमाणतिव्वदुक्खा फरिसरसण सपउत्ता, पत्ता एगिंदियत्तणंपिय पुढवि जल जलण मारुयवणप्फति

सुहुमवायरं च पज्जत्तमपज्जत्तं पत्तेयसरीरणामसाहारणं च, पत्तेय सरीरजीविएसु य, तत्थवि कालमसंखेज्जगं भमंति अणंत कालं च अणंतकाए फासिंदिय भाव सपउत्ता दुक्खसमुदय इमं अणिट्ठं पावेंति पुणो २ तहिं २ चेव परभव तरुगणगणे (गहणे) कोद्दालकुलिय दालण सलिल मलण खुंभण रुंभण अणलाणिल विविह सत्थघट्टण परोप्पराभिहणण मारण विराहणाणिय अकामकाइं परप्पओगो दीरणाहिय कज्जप्पओयणेहिय पेस्स-पसु निमित्तं ओसहाहारमाइएहिं उक्खणणउक्कत्थण पयणको-ट्टण पीसण पिट्टण भज्जण गालण आमोडण सडण फुरण भञ्जण छेयण तच्छण विलुंचण पत्तज्झोडण अग्गिदहणाइयातिं, एवं ते भवपरंपरादुक्खसमणुबद्धा अडंति संसारवीहणकरे जीवा पाणाइवायनिरया अणंतकालं। जेविय इह माणुसत्तणं आगया कहंचि (कहिंवि) नरगा उव्वट्टिया अधन्ना तेविय दीसंति पायसो विकयविगल रूवा खुज्जा वडभा य वामणा य बहिरा काणा कुंटा पंगुला विउला य मूका य मंमणा य अंधयगा एग-चक्खूविणिहयसचिल्लया वाहिरोग पीलिय अप्पाउय सत्थ वज्झबाला कुलक्खणुक्किन्नदेहा दुब्बल कुसंघयण कुप्पमाण कुसंठिया कुरूवा किविणा य हीणा हीणसत्ता निच्चं सोक्खपरि-वज्जिया असुह दुक्ख भाग (गा) णरगाओ उव्वट्टिया इहं सावसेसकम्मा, एवं णरगं तिरिक्खजोणिं कुमाणुसत्तं च हिंड-माणा पावंति अणताइं दुक्खाइं पावकारी। एसो सो पाणव-हस्स फलविवागो इहलोइओ पारलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भयो बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्से-हिं मुच्चती, नय अवेदयित्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति एवमाहसु, नायकुलनंदणो महप्पा जिणो उ वीरवर नामधेज्जो कहेसीय (कहइसीह) पाणवहस्स फलविवागं। एसो सो पाणवहो चंडो रुद्दो खुद्दो अणारिओ निग्घिणो निस्संसो महब्भओ बीहणओ तासणओ अणज्जो उव्वेयणओ य णिरवयक्खो निद्धम्मो निप्पि-

वासो निफ्फलुणो निरयवासगमण निपणो मोह महण्णय पथ व्वसो मरणवेमणारसो। पढम अहम्मदार समत्त त्ति बेमि ॥ सू० १।४॥

छाया- भ्रमर मशक मक्षिकादिषु जाति कुल कोटि शत सहस्रै र्नवभिश्चतुरिन्द्रियाणाम् तत्र तत्र चैव जन्ममरणानि-अनुभवन्त कालं संख्यातकं भ्रमन्ति नैरयिकसमानतीव्रदुःखाः स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु सहिताः। तथैव त्रीन्द्रियेषु कुन्थु पिपीलिकाऽन्धिकादिषु च जाति कुल कोटिशतसहस्रैरष्टभिरन्यूनकैस्त्रीन्द्रियाणाम् तत्र तत्र चैव जन्म मरण मनुभवन्तः कालं संख्येयकं भ्रमन्ति नैरयिक समान तीव्र दुःखाः स्पर्श रसन घ्राण सम्प्रयुक्ताः (तथैव द्वीन्द्रियेषु) गण्डूलक-जलौक-कृमिक-चन्दन कादिकेषु च जाति कुल कोटिशत सहस्रैः सप्तभिरन्यूनैः द्वीन्द्रियाणां तत्र २ चैव जन्म मरणान्यनुभवन्तः कालं संख्येयकं भ्रमन्ति नैरयिकसमान तीव्र दुःखाः स्पर्शन रसन सम्प्रयुक्ताः। प्राप्ताः एकेन्द्रियत्वमपि च पृथिवी जल-ज्वलन-मारुत-वनस्पति सूक्ष्म बादरं च पर्याप्तमपर्याप्त प्रत्येक शरीर नाम साधारणं च प्रत्येक शरीर जीवितेषु च तत्रापि कालमसंख्येयं भ्रमन्ति; अनन्तकं च अनन्तकाये स्पर्शेन्द्रिय भाव सम्प्रयुक्ताः दुःख समुदाय मिममनिष्टं प्राप्नुवन्ति, पुनः २ तत्र तत्र चैव परभव तरुगणगहने कोद्दाल कुलिक दारणं, सलिल मलन क्षोभण रोधनम् अनलाऽनिल विविध शस्त्र घट्टन परस्परा भिहनन मारण विराधनानि च, अकामकानि पर प्रयोगोदीरणाभिश्च कार्य प्रयोजनाभिश्च, प्रेष्य पशु निमित्तमौषधाऽऽहारादिके-उत्खनन उत्क्वथन पचन कुट्टन पेषण पिट्टन भर्जन गालनाऽऽमोटन शटन स्फुटनाऽऽमर्दन च्छेदन तक्षण विलुञ्चन पत्र स्फोटनाग्नि दाहनादीनि, एवन्ते भवपरम्परा दुःखसमनुबद्धा अटन्ति संसारे भयङ्करे जीवा प्राणा-ति पात निरता अनन्त कालम्। येऽपि च इह मानुष्यमागताः कथमपि नरका दुद्वृत्ताः अधन्यास्तेऽपि च दृश्यन्ते प्रायो विकृतविकलरूपाः कुब्जा वटभाश्च वामना श्च बधिराः काणाः कुण्टाः, पङ्गुला विकलाश्च मूकाश्च मम्मना अन्धका एकचक्षु र्विनिहताः, सपिशाचकाः, व्याधिरोगपीडिता अल्पायुषः शस्त्रवध्या बालिशा (बाला) कुलक्षणोत्कीर्णदेहा दुर्बल दुःसंहनन दुष्प्रमाण दुःसंस्थानाः (संस्थिताः) कुरूपा कृपणाश्च हीना हीनसत्वा नित्यं सौख्यपरिवर्जिता अशुभ दुःख भाजो नरकादिह सावशेषकर्माणः। एवं नरकं तिर्यग्योनिं कुमानुषत्वञ्च हिण्डमानाः प्राप्नुवन्ति-अनन्तानि दुःखानि पाप कर्म कारिणः। एष स प्राणवधस्य फलविपाक इहलौकिकः पारलौकिकोऽल्पसुखो बहु दुःखो महाभयो बहुरजः प्रगाढो दारुण कर्कश

शोऽसातो वर्षसहस्रैमु च्यते । नचाऽवेदयित्वा अस्ति हि मोक्ष इति आख्यातवान् ज्ञातकुलनन्दनो महात्मा जिनस्तु वीरवरनामधेयः कथितवान् प्राणवधस्य फल-विपाकम् । एष स प्राणवधश्चण्डो रुद्र. क्षुद्रोऽनार्यो निर्घृणो नृशंसो महाभयो भयानक-त्रासनकोऽन्याय्य ( नार्य ) उद्वेजनकश्च निरवकांक्षो निर्द्धर्मो निष्पिपासो निष्करुणो निरय वास गमन निधनो मोहमहाभय प्रवर्धकः-प्रवर्तकः मरण वैमनस्य । प्रथम मधर्म द्वार समाप्तमिति ब्रवीमि ॥ सू ० ४ क ॥

## प्रथममधर्मद्वारं समाप्तम् ॥

अन्व-( य ) और ( चउरिंदियाण ) चतुरिन्द्रिओंके ( भमर मसग मच्छिमाइ-एसु ) भौंरें, मशक, मच्छर तथा मक्खी आदि मे ( नवहिं जाइकुल कोडि सय सहस्सेहिं ) नव लक्ष-लाख जाति की कुल कोटिसे ( तहिं तहिं चेव ) चतुरिन्द्रियों के उन उन स्थानों मे ही ( जम्मण मरणाणि ) जन्म मरणों को ( अणुभवंता ) अनुभव करते हुए ( सखेज्जक काल ) सख्येय कालतक ( भमति ) परि भ्रमण करते हैं, वे ( नेरइयसमाणतिव्वदुक्खा ) नैरयिक के समान तीव्र दु ख वाले ( फरिस रस घाण चक्खु सहिया ) स्पर्शन, रसन, घ्राण और चक्षु इन ४ इन्द्रियों से सहित हैं, ( तहेच ) चउरिन्द्रिय के समान ही ( ते इ दिएसु ) त्रीन्द्रिय=तीन इन्द्रिय वाली जाति में ( कुथु पिप्पीलिका अवधिकादिकेसु य ) कुथु पिपीलिका कोडी और अवधिका आदिकमे ( अट्ठाहिं जातिकुलकोडिसयसहस्सेहि ) जाति कुल कोडि से जो आठ लाख हैं ( तेइ दियाण ) तीन इन्द्रियों के ( तहिं २ ) उन उन स्थानों मे ( चेव ) ही ( जम्मण मरणाणि ) जन्म मरणों को ( अणुहवंता ) अनुभव करते हुए ( सखेज्जककालं ) सख्येयकालतक ( भमंति ) परिभ्रमण करते हैं, ये भी ( नेरइय समाण तिव्वदुक्खा ) नैरयिक के समान तीव्र दु ख वाले और ( फरिस रसण घाण सपउत्ता ) स्पर्शन रसन व घ्राण रूप तीन इन्द्रियों से युक्त हैं। ( य ) फिर ( गडूलय जलूय किमिय चदणगमादिएसु ) गिंडोला, जलूका, कृमि—कीडे और चदनक—कौडी आदि मे ( अणूणएहिं सत्तहिं जाति कुल कोडि-सयसहस्सेहिं ) पूरी सात लाख जाति की कुल कोडि से, ( वे इ दियाण ) वे इन्द्रिय जीवों के ( तहिं २ ) उन उन स्थानों मे ( चेव ) ही ( जम्मण मरणाणि ) जन्म मरणों को ( अणु हवंता ) अनुभव करते हुए ( सखिज्जकाल ) संख्येय कालतक ( भमंति ) भटकते हैं, वे—( नेरइय समाणदुक्खा ) नारकीय जीवों के समान तीव्र दु खवाले ( फरिस रसण सपउत्ता ) स्पर्सनव रसन रूप,२ इन्द्रियों से युक्त होते हैं,

(य) फिर (पंचिंदियत्तणंपि) पंचेन्द्रियपन को भी (पत्ता) पाकर (पुढविजल जलणमारुयवणस्सइ) पृथ्वीकाय अपूकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय सम्बन्धी (सुहुम बायरं) सूक्ष्म और बादर नाम कर्म के उदय से होने वाले (च) और (पज्जत्तगपज्जत्तं) पर्याप्त तथा अपर्याप्त दशा (पत्तेय सरीरणाम) प्रत्येक शरीर नाम कर्म (साहारणं) और साधारण नाम कर्म के उदय से साधारण पन को पाते हैं (य) और (पत्तेयसरीरजीविएसु) एक शरीर में एक जीव रूप से जीने वाले-प्रत्येक-भिन्न जीवियों में (तत्थवि) वहाँ पर भी (कालमसंखेज्जं) असंख्य कालतक (भमंति) परि भ्रमण करते हैं। (य) और (अणंतकाए) अनन्त काय-निगोद आदि में (अणंतकालं) अनन्त काल तक भ्रमण करते हैं (फासिंदिय भाव संपउत्ता) स्पर्शेन्द्रिय के भाव से युक्त जीव, वहाँ-(इमं अणिट्ठं) कहे जाने वाले उस अनिष्ट (दुक्खसमुदयं) दुःख समूह को (दुक्खे २) बारबार (पाविंति) पाते हैं (तहिं २ चेव) उन २ प्रत्येक आदि स्थानों में ही (परभव तरुगण गहणे) उत्कृष्ट स्थिति युक्त वृक्ष समूह के भव वाले अथवा परभव रूप वृक्ष समूह से गहन ऐसे एकेन्द्रिय पन में (कोद्दाल कुलिय दालण सलिल मलण खुंभण रुंभण) कुद्दाल और कुलिक एक प्रकार के भूमिखनने का अस्त्र द्वारा उनसे विदारण करना व पानी को मर्दन करना क्षुभ करना तथा रोक रखना "इस कथन से पृथ्वी वनस्पति और अप् कायके दुःख कहे गये हैं" (अणल अणिल विविह सत्थ घट्टण परोप्पराभि हणण मारण विराहणाणिय) अग्निकाय और वायुकाय को अनेक प्रकार के दूसरी वस्तु आदि स्पर्शों से घट्टन करना तथा परस्पर के अभिघात से मारना, व पीड़ा पहुंचाना (अकामकाइं) इस प्रकार नहीं चाहने योग्य दुःख होते हैं। (परप्पओगोदीरणा-हिय) दूसरे के प्रयोग से दुःख का उत्पादन और (कज्जपओयणेहिय) काय के प्रयोजनों से जो (पेस्सपसुनिमित्तओसहाहारमाइएहि) सेवक जन और पशु आदि के लिये औषध व आहार आदि कारण से (उक्खणण) उखेड़ना (उक्कत्थण) त्वचा हटाना—छीलना (पयण कोट्टण) पकाना कूटना-टुकड़े करना (पीसण पिट्टण) चक्की आदि में पीसना पीटना या ऊखल आदि में कूटना (भज्जण गालण) भट्टी में पकाना गलाना या कपड़े में छानना (आमोडण सडन) थोड़ा मोड़ना सूख बिखर जाना (फुडण भंजण) फूटना—दो भाग होना भङ्ग होना (छेयण तच्छण) छेदना व बसूले आदि से छीलना (विलुंचण-पत्तज्झोडण) रोम आदि हटाना, नोचना, पत्ते गिराना (अग्गिदहणाइयाति) अग्नि दहन इत्यादिक दुःख-

न्द्रिय जीव के लिये ये सब दुःख के कारण होते हैं। ( एवते ) इस प्रकार वे ( भव परपरा दुक्खसमणुबद्धा ) भव परम्परा – अनेक जन्मों मे निरन्तर दुःखवाले ( जीवा ) एकेन्द्रिय जीव ( संसारवीहणकरे ) भयङ्कर संसार मे ( पाणाइवाय-निरया ) प्राणातिपात–हिंसा मे निरत ( अणतकाल ) अनन्त काल तक ( भडंति ) भटकते हैं ( जेविय ) और जोभा ( कहिवि ) किसी तरह ( नरगाउव्वट्टिया ) नरक से निकले हुए ( इह ) यहाँ-मनुष्य लोक मे ( मणुस्सत्तण ) मनुष्यपन—नरभव को ( आगया ) प्राप्त किये ( तेवि अधन्ना ) वेभी अधन्य-मन्दपुण्यवाले ( य ) और ( पायसो ) प्राय. ( विकयविगलरूवा ) विकृत व विकल रूप वाले ( दीसति ) दिखते हैं, इसी बात को स्पष्ट कहते हैं, ( खुज्जा वडभा य ) कुब्ज—कूबडे वटभ-ऊपर से वक्र-वाके देह वाले और ( वामणा ) वामन–बहुत छोटे ( य ) और ( वहिरा ) वहरे ( काणा ) काणे ( कुटा ) विकृत हाथ वाले ( पगुला ) पगु–चलने मे असमर्थ ( विउला य ) और विकल अङ्ग वाले ( मूका ) गूगे ( य ) और ( ममणा ) मन्मन रूप से–अस्पष्ट रूप से बोलने वाले ( अधिल्लगा ) अधे ( एगचक्खू ) एक आख वाले ( विणिहय सचेल्लया ) जिनकी एक आख नष्ट हो गई है ऐसे एकाक्ष, तथा-पिशाचगाधा से पीडित ( वाहि रोग पोलिय अप्पाउय सत्थवज्झ वाला ) व्याधि कुष्ठ आदि, रोग—ज्वरादि इन सबों से पीडित और अल्प आयु वाले, व शस्त्र से मारे गए तथा मूर्ख ( कुलक्खणुक्किन्नदेहा ) अशुभ लक्षणों से आकोर्ण-पूर्ण-देहवाले ( दुब्बल कुसघयण-कुप्पमाण कुसठिया ) दुर्वल, उत्तम-सहनन व शरीर रचना से हीन अधिक बडे या अधिक छोटे आकार वाले ( कुरूवा ) कुरूप ) किवणा य ) और कृपण अर्थात् रङ्क ( हीणा ) जाति आदि से हीन ( हीणसत्ता ) अल्पसत्त्व वाले ( निच्चं सोक्खपरिवज्जिया ) सदा सुख से रहित ( इह ) यहाँ ( असुह दुक्ख भाग णरगाओ ) नरक से निकले हुए अशुभ दुःख के भागी ( पावसेसकम्मा ) अशुभ कर्म जिनके अवशेष हैं, ऐसे वे दिखते हैं, ( एव ) इस प्रकार ( णरग ) नरक ( तिरिक्खजोणिं ) तिर्यञ्चयोनि ( कुमाणुसत्तच ) और कुमनुष्य जन्म मे ( हिंडमाणा ) हींडते हुए ( पावकारी ) हिंसक लोग ( अणताइ दुक्खाइ ) अनन्त दुःखों को ( पावति ) पाते हैं, ( एसोसो ) वह है यह ( पाणवहस्स ) जीव हिंसा का ( फलविवागो ) फलरूप विपाक जो ( इहलोइओ ) इस मनुष्य लोक सम्बन्धो, और ( परलोइओ ) अन्य तीन लोक सम्बन्धो ( अप्पसुहो ) अल्प सुख वाला ( बहुदुक्खो ) बहुत दुःख वाला ( महब्भओ ) महाभय रूप ( बहुरयप्पगाढो )

आमिक कर्म रस के कारण अतिगाढ़ा ( दारुणो ) रौद्र तथा ( कक्कसो ) कठोर ( असाओ ) असातवेदनीय कर्म के उदय से दुःखरूप ( वाससहस्सेहिं ) हजारों वर्षों से प्राणी इस दुःख से ( मुच्चइ ) छूटता है ( अवेदयित्ता ) बिना भोगे ( नय अत्थिहु मोक्खोत्ति ) कम से छूटना नहीं होता, ( एवमाहसु ) ऐसा तीर्थङ्करने कहा है जो ( नाय कुलणंदणो ) ज्ञात कुल के नन्दन ( महप्पा ) महात्मा ( जिणोउ ) और वीतराग ( वीरवरनामधेज्जो ) वीरवर-महावीर नाम वाले तीर्थङ्करने ( सीह कहेसी पाणवहस्स ) सिंह के समान क्रूर ऐसे प्राण वध के ( फलविवागं ) फलरूप विपाक को ( कहइ ) कहा है। उपसंहार—( एसोसो ) यह पूर्व कथित स्वरूप वाला ( पाणवहो ) प्राणवध ( चंड ) क्रूर-कुपित करने वाला ( रुद्दो ) रौद्र-भयङ्कर ( खुद्दो ) नीच अर्मों से सेवित (अणारिओ) अनार्य कर्म ( निग्घिणो ) घृणा-रहित ( निसंसो ) दया रहित ( महब्भओ ) महाभय पैदा करने वाला ( बीहणओ ) डराने वाला और ( तासणओ ) त्रास देने वाला ( अणज्जो ) न्याय से बहिर्भूत तथा ( उव्वेयणओ ) उद्वेग करने वाला ( य ) और ( णिरवयक्खो ) दूसरे के प्राण की अपेक्षा रहित, ( निद्धम्मो ) धर्म से शून्य (निप्पिवासो) पर प्राणी के प्रति स्नेह रहित ( निक्कलुणो ) करुणा रहित है इसलिये ( निरय वास गमण निधणो ) नरक गतिमें गमन रूप अन्त वाला है ( मोहमहब्भयपवड्ढओ ) मोह तथा भय को बढ़ाने वाला और ( मरणवेमणस्सो ) मरण से प्राणियों के चित्त में वैमनस्य - दीनता पैदा करने वाला है ( त्तिबेमि ) ऐसा मैं कहता हूं। यहाँ प्रथम अधर्म द्वार समाप्त हुआ।

विवेचन—अर्थ सरल ही है। इसलिये मात्र इसका संक्षेप लिखते हैं— पञ्चेन्द्रिय की तरह हिंसक जीव चतुरिन्द्रिय के जो लाख कुल कोडियों में भ्रमर आदि रूप से जन्म मरण करते हैं वहां स्पर्श रसन घ्राण और चक्षुरूप चार इन्द्रियों से युक्त होते हैं, ऐसे त्रीन्द्रिय के ८ आठ लाख कुल कोडी में कुंथु पिपीलिका आदि रूप से भी जन्म मरणों का अनुभव करते हैं। ये त्रीन्द्रिय जीव स्पर्शन रसन और घ्राण इन तीन इन्द्रियों से युक्त होते हैं। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय-दो इन्द्रिय के पूरे सात लाख कुल को-डियों में गिंडोला अलसिया आदि रूप से जन्म मरण करते हैं। स्पर्श और रसन ये दो इन्द्रियाँ द्वीन्द्रिय जीवों को होती हैं। इन तीनों स्थानों में नारक जीवों के समान। तीव्र दुःख भोगते और प्रत्येक के उन स्थानों में भ्रमण करता हुआ असंख्य संख्येय काल याने हजारों वर्ष पूर्ण कर देता है। फिर एकेन्द्रिय पन को पाकर पृथ्वी जल अग्नि, वायु और वनस्पति भेद से सूक्ष्म बादर, पर्याप्त अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर और

साधारण दशा में, वहाँ असंख्य तथा साधारण की अपेक्षा अनन्त काल तक दुःख समूह को पाते हैं। वृक्ष समूह से गहन परभव में कुद्दाल आदि से विदारण करना, जल का मर्दन करना, अग्नि वायु का सघट्टन करना ये सब दुःख का कारण है। निष्प्रयोजन या सप्रयोजन-प्रेष्य आदि के आहार आदि कारणों से उत्खनन आदि विविद दुःखों को भोगते हुए भव परम्परा से सम्बन्धित अनन्त काल तक इस भयङ्कर ससार मे भटकते हैं। अगर कहीं पुण्यवशात् ये जीव मनुष्यपन में भी आ जांय तो अधन्य और प्रायः विकल रूप वाले कुब्ज कुरूप आदि होते हैं। इस प्रकार नरकयोनि तिर्यञ्चयोनि और पुण्य हीन मनुष्य भव को भटकते हुए पापी जीव अनन्त दुःख को पाते हैं यह प्राणवध का फलरूप विपाक है, जो उभय लोक सम्बन्धी और सुख रहित व बहुत दुःख वाला है, महाभयङ्कर कर्म रजकी अधिकता से प्रगाढ, दारुण और कठोर है, हजारों वर्ष से छूट सकता है, किन्तु विना भोगे कर्म से छुटकारा नहीं होता, ज्ञात कुल नन्दन भगवान् महात्मा महावीर ने हिंसाके इस प्रकार फल विपाक को कहा है।

उपसहार—यह प्राणवध[1] क्रोध से होने के कारण चण्ड रौद्र है। आत्मभाव से गिरे हुए नीच लोक ही इसे करते हैं। इसलिये यह क्षुद्र एव अनार्य कर्म है। दया व घृणा से शून्य तथा महाभय को उत्पन्न करनेवाला है, हिंसा में न्याय बुद्धि नहीं होती अतः यह अन्याय्य है, उद्वेग जनक एवपर प्राणों की अपेक्षा रहित होने से यह अधर्म है मोह तथा महाभय को बढाने वाला और नरकगति में निवासही इसका परिणाम है, दूसरे प्राणिओं के साथ वैमनस्य पैदा करना तो हिंसा का खास कार्य है। अतएव हिंसा रूप अधर्म द्वार सर्वथा हेय है। यह प्रथम अधर्म द्वार पूर्ण हुआ। सू० ६। ४॥

॥ इति प्रथममधर्म द्वारं समाप्तम् ॥

---

१—यहा स्थूल दृष्टि से छ काय के जीवों की शारीरिक हिंसा को ही प्राणवध में लिया है हिंसा का नाम भी प्राणवध अर्थात् दूसरे के प्राणो का वध करना रक्खा है। क्योंकि प्राणी सदा अमर है, इसलिये प्राणों का नाश करना उसके साथ वैर भाव नियत करना होता है। व्यवहार में अधिकाश होने वाली हिंसा का ही इस आस्रव द्वार में वर्णन है। अतएव मनुष्यवध का उल्लेख नहीं किया है। क्योंकि एक तो यह किसी जाति में विहित नहीं है और दूसरा निस्सकोच भाव से किया भी नहीं जाता। (अनुवादक)

—

"द्वितीयास्रवद्वारमधर्माख्यमारभ्यते"

# अथ द्वितीय-आस्रवद्वार

प्रकरण सम्बन्ध—

प्राणवध के बाद दूसरा आस्रव—मृषावाद है। इसमें मृषावाद-असत्य का वर्णन किया जाता है। हिंसा करनेवालों को झूठ भी बोलना पडता है अत झूठ वाचिक-वचन सम्बन्धी-हिंसा बन जाती है। अत. अब प्रस्तुत अध्ययन में पांच द्वारों से मृषावाद की प्ररूपणा की जाती है। श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामीसे इस प्रकार फरमाते हैं—"

**मूल—"जम्बू ! बितियं च अलियवयणं, लहुसगलहु चवल भणियं भयंकरं दुहकर अयसकरं वेरकरग अरतिरति राग दोस मणसंकिलेसावियरणं, अलिय नियडि साति जोय बहुल नीयजण-निसेविय, निस्सस, अप्पच्चय कारक, परम साहुगरहणिज्ज परपीलाकारक, परमकिण्हलेस्ससहिय, दुग्गइविणिवाय वड्ढण, भवपुणब्भवकर चिरपरिचियमणुगतं, दुरत, कित्तित बितित अधम्मदारं ॥ ५ ॥**

छाया—"हे जम्बू ! द्वितीयमलीकवचनम्। लघु स्वकलघु चपलभणित, भयङ्कर, दु खकरमयशस्कर, वैरकरमरतिरतिरागद्वेषमनः संक्लेशवितरणम्, अलोक निकृति स्वाति—निर्विश्रम्भ योग बहुल, नीचजन निषेवित, नृशसमप्रत्यय कारक, परमसाधुगर्हणीयं, परपीडाकारक, परकृष्णलेश्यासहित, दुर्गति विनिपातवर्द्धन, भवपुनर्भवकरं चिरपरिचितमनुगत, दुरन्त, कीर्तित, द्वितीयमधर्मद्वारम्। १ सूत्र ५॥

अन्वयार्थ—"( जंबू ! ) हे जम्बू ? ( अलियं ) अलीक वचन-झूठ ( बितियं ) दूसरा आस्रव है ( च ) और स्वरूप से यह-( लहुसगलहुचवलभणियं ) गुण गौरव से रहित लघु-तुच्छ लोगों से भी हल्का और चपल मनुष्यों से बोला गया ( भयंकरं ) भयङ्कर ( दुहकरं ) दुःखदायी ( अयसकरं ) अपयश करने वाला ( वेरकरगं ) द्वेष कारक ( अरति रति राग दोस मण संकिलेस वियरणं ) अरति रति, राग, द्वेष रूप मानसिक संक्लेश को देने वाला है ( अलिय ) निष्फल ( नियडि सातिजोय बहुलं ) कपट और अविश्वास अमत वचन के व्यापार की अधिकता वाला ( नीयजण निसेवियं ) और जो नीच जनों से सेवित है ( निसंसं ) कृपा या श्लाघा से रहित ( अप्पच्चय कारकं ) विश्वास को नाश करने वाला ( परमसाहु गरहणिज्जं ) उत्तम साधुओं से निन्दनीय, ( निन्दित ) ( पर पीडा कारकं ) दूसरे को पीडा देनेवाला ( परमकिण्हलेस्ससहियं ) परमकृष्णलेश्यावाला ( दुग्गइ विणिवाय वड्ढणं ) दुर्गति व अधःपात को बढाने वाला, ( भव पुण भवकरं ) जन्म जन्मान्तर को करने वाला ( चिरपरिचियमणुगयं ) अनेक जन्मों का परिचित होने से साथ रहने वाला ( दुरंतं, कित्तियं ) दुःख से अन्त है जिसका ऐसा कहा गया है यह ( बितिय अधम्म दारं ) दूसरा अधर्म द्वार है। १। सू० ५।

विवेचन—सूत्र का अर्थ स्पष्ट है। इस सूत्र में लघु आदि अनेक विशेषणों से मृषा वचन का स्वरूप दिखाया गया, अब छठे सूत्र से इस मृषावाद के गुण निष्पन्न तीस नाम दिखाते हैं—"

मूल—"तस्स य णामाणि गोण्णाणि होंति तीस, तंजहा—अलियं १, सढ २, अणज्ज ३, मायामोसो ४, असतकं ५, कूड कवडमवत्थुगं च ६, निरत्थयमवत्थयं च ७ विद्देसगरहणिज्ज ८, अणुज्जुक ९, कक्कणाय १०, वंचणाय ११ मिच्छापच्छा कडं च १२, मातीठ १३, उच्छुस १४, उक्कूलंच १५ अट्ट १६ अब्भ क्खाण च १७, किब्बिस १८, वलयं १९, गहण च २०, मम्मण च २१ नूम २२, नियर्ती ( डी ) २३, अप्पच्चओ २४, असमओ २५, असच्च संधत्तण २६ विवक्खो २७, अवहीय २८, उवहिअ सुद्धं २९, अवलोवोत्ति ३० अविय तस्स एयाणि एवमादीणि नामधेज्जाणि होंति तीस सावज्जस्स अलियस्स वइजोगस्स अणेगाइं ॥ सू०। २। ६॥

छाया—"तस्य च नामानि गौणानि भवन्ति त्रिंशत्। तानि यथा-'अलीकम् १, शठम् २, अनार्यम् ३, मायामृषा ४, असत्कम् ५, कूट कपटाऽवस्तुकञ्च ६, निरर्थकापार्थकञ्च ७, विद्वेष गर्हणीयम् ८, अनृजुकम् ९, कल्कना १०, वञ्चनाच ११, मिथ्या पश्चात्कृतम् १२, च सातिस्तु (अविश्रम्भम्) १३, अपच्छन्नम् १४, उत्कूलञ्च १५, आर्तम् १६, अभ्याख्यानञ्च १७, किल्विषम् १८, वलयम् १९, गहनञ्च २०, मन्मनञ्च २१, नूम-(प्रच्छादनम्) २२; निकृतिः २३, अप्रत्ययः २४ असमयः २५, असत्य सन्धत्वम् २६, विपक्षः २७; अपधीकम्-(आज्ञातिगम्) २८, उपध्यशुद्धम् २९, अवलोप इति ३०, अपिच तस्यैतान्येवमादीनि नामधेयानि भवन्ति त्रिंशत्, सावद्यस्यालीकस्य वाग्योगस्यानेकानि ॥ २ ॥ ६ ॥

अन्व०—'(तस्स य) और उस मृषा वादके (गौण्णाणि) गुणनिष्पन्न (तीसं) तीस (णामाणि) नाम (होंति) होते हैं, (तंजहा) जैसे कि-वे निम्न लिखित हैं—'(अलियं १) अलीक-झूठ १, (सढ) मायावियों से किये जाने से शठ है २ (अणज्ज) अनार्यों के वचन होने से अनार्य है ३, (माया मोसो ४) माया रूप कषायसे सहित होने और मृषा होने से मायामृषा है ४, (असंतक ५ असद् वस्तु को कहता है इसलिये असत्क है, (कूडकवडमवत्थुगंच) दूसरों को ठगने से कूट भाषा विपर्यय होने से कपट मौजूद नहीं होने से अवस्तु, इन तीनों पदों में किसी तरह समानता होने से यह सम्मिलित 'कूट कपट अवस्तु' एक ही छट्ठा नाम है ६, (निरत्थयमवत्थयच ७) निष्प्रजोजन होने से तथा सत्यहीन होने से 'निरर्थ कापार्थक है ७' (विद्देस गरहणिज्ज) विद्वेष व निन्दा इन दोनों का कारण होने से विद्वेष गर्हणीय है ८, (अणुज्जुक) कुटिल होने से अनृजुक है ९, (ककणाय) मायामय होने से कल्कना १०, (वंचणाय) ठगने का कारण होने से वञ्चना है ११, (मिच्छापच्छाकडच) झूठा समझ कर न्यायवादियों से पीछा कर दिया जाता है, इसलिये यह मिथ्या पश्चात्कृत है १२ (सातीउ) अविश्वास कारक होने से इसको 'साति' कहते हैं १३ (उच्छन्नं) अपने दोष को व परगुणों को ढक देने से यह 'अपच्छन्न' है १४, (उक्कूलंच) सन्मार्ग से अथवा न्याय नदी के तट से गिरादेने के कारण यह 'उत्कूल' है १५ (अट्टं) पाप पीडितों का वचन होने से 'आर्त' १६, (अब्भक्खाणं) अविद्यमान दोषों को कहने से यह 'अभ्याख्यान' कहाता है १७,

( किब्बिसं ) पाप ) कारण होने से 'किल्विष' है १८, ( वलयं ) वलय की तरह अन्दर शून्य और टेढा होने से इसको 'वलय' कहते हैं १९ ( गहणंच ) झूठे के अभिप्राय का पता नहीं चलने से यह सघन वन की तरह 'गहन' है २०, ( मम्मणच ) साफ नहीं होने से 'मम्मन' है २१ ( नूम ) सत्य को ढक देता है इसलिये 'नूम' प्रच्छादन है २२, ( नियमो ) माया को ढकने का वचन होने से यह 'निकृति' है २३ ( अप्पच्चओ ) विश्वास का कारण नहीं होने से 'अप्रत्यय' है २४ ( असमओ ) सम्यक् आचार से हीन होने से असमय' है २५ ( असच्चसंधत्तणं ) झूठी प्रतिज्ञा का कारण होने से 'असत्य सन्धत्व है २६ ( विवक्खो ) सत्य और धर्म के विरोधी होने से 'विपक्ष' है २७ ( अवहीयं ) निन्दित बुद्धि वाला होने से यह 'अपधीक' कहाता है ( आणाइयं )—जिन भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन करने से यह 'आज्ञातिग' है ) २८ ( उवहि असुद्धं ) उपधि—माया से अशुद्ध होने के कारण 'उपध्यशुद्ध' है २९ ( अवलोवोत्ति ) वस्तु के सद्भाव का लोप करने से अवलोप' कहाता है ३०, ( अविय तस्स० ) और उस मृषावाद के इत्यादि इस प्रकार के ये तीस नाम हैं; जो मृषावाद सावद्य सपाप और अलीक है तथा वचन का व्यापार है उसके ऐसे अनेक नाम हैं।

भाव—अर्थ स्पष्ट है, । मतलब यह कि इस मृषावाद के पूर्वोक्त तीस नाम हैं ही किन्तु इस प्रकार और भी अनेक नाम हो सकते हैं। इस तरह इस मृषावाद का नामद्वार कहा गया। २।सू० ६।

## अब झूठ बोलने वाले जीवों को कहते हैं—

मूल— 'तच पुण वदंति केई अलियं पावा असंजया अविरया कवड कुडिल कडुय चडुलभावा, कुद्धा लुद्धा भया य हस्सट्ठिया य सक्खी चोर चार भडा, खंडरक्खा, जियजूईकरा य, गहियगहणा, कक्ककुरुग कारगा, कुलिंगी, उवहिया, वाणियगा य, कूडतुल कूडमाणी कूडकाहावणोवजीवी, पडगार कलाय

कारुइज्जा, वंचणपरा, चारिय चाडु यार नगर गोत्तिय परिचारगा, दुट्ठवाथि सूयक अणबल भणिया य, पुव्वकालियवयणदच्छा साहासिका, लहुस्सगा, असच्चा, गारविया, असच्चट्ठावणाहिचित्ता उच्चच्छंदा, अणिग्गहा, अणियता, छंदेण मुक्कवाता भवंति अलियाहिं जे अविरया। अवरे नत्थिकवादिणो वामलोकवादी भणंति—नत्थिजीवो न जाइ इह परे वा लोए, न य किंचिविफुसति पुन्नपाव, नत्थिफलं सुकय दुक्कयाण, पंच महाभूतिय सरीरं भासंति हे! वातजोगजुत्तं पंच य खंधे भणंति। केई मणं च मणा जीविकावदंति। वाउजीवोत्ति एवमाहंसु, सरीरं सादिय सनिधणं इहभवे एगे भवे तस्स विप्पणासंमि सव्वनासोत्ति, एवं जंपंति मुसावादी, तम्हा दाण वय पोसहाणं तव संजम बंभचेरकल्लाणमाईयाण नत्थि फल, नवि य पाणवहे अलियवयणं, न चेव चोरिक्क करण परदारसेवणं वा सपरिग्गह—पाव—कम्म—करणं पि नत्थि किं चि न नेरइयतिरिय मणुयाण जोणी, न देवलोको वा अत्थि, न य अत्थि सिद्धिगमण अम्मापियरो नत्थि, नवि अत्थि पुरिसकारो, पच्चक्खाणमवि नत्थि, नवि अत्थि कालमच्चूय अरिहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा नत्थि, नेवत्थि केवि (इ) रिसओ धम्माधम्म फल च, नवि अत्थि किंचिबहुयं च थोवकंवा, तम्हा एवं विजाणिऊण जहा सुबहु इंदियाणुकूलेसु सव्व विसएसु वट्ट। णत्थि काइ किरिया वा अकिरिया वा एवं भणंति नत्थिकवादिणो वामलोगवादी। इमं पि वितीयं कुदंसणं असब्भाववाइणो पण्णवेंति मूढा—संभूतो अंडकाओ लोको, सयंभुणा सयंच निम्मिओ, एवं एयं अलियं—पयावइणा इस्सरेण य कयंतिकेति। एवं विण्हुमयं कसिणमेव य जगंति केई। एवमेके वदंति मोसं। एको आया अकारको वेदको य सुकयस्स दुक्कयस्स य करणाणि कारणाणि सव्वहा सव्वहिं च निच्चोय निक्किओ निग्गुणो य अणुवलेवओत्ति विय। एवमाहंसु असब्भावं,

अपि इह किंचि जीवलोके वीसइ सुकयवा दुक्कयंवा एय जदि-च्छाए वा, सहावेण वावि दइवतप्पभावओ वावि भवति, नत्थेत्थ किंचि कयकं तत्तं लक्खणाविहाण नियतीएकारियं, एवं केइ जंपति इड्ढिरससातगारवपरा, बहवे करणालसा परूवेंति धम्मवीमंसएण मोसं। अवरे अहम्मओ रायदुट्ठं अब्भक्खाणं भणेंति-अलियं चोरोत्ति अचोरयं करेंतं, डामरिउत्तिवियं, एमेव उदासीणं दुस्सीलोत्ति य परदारं गच्छतित्ति मइलिंति सील कलियं, अयंपिगुरुतप्पओ, अण्णे एमेव भणंति उवाहणंता मित्त कलत्ताइं सेवंते, अयंपिलुत्तधम्मो, इमोवि विस्संभघाइओ, पावकम्मकारी अगम्मगामी अयं दुरप्पा बहुएसु य पावगेसु जुत्तोत्ति एवं जंपति मच्छरी। भद्दके वा गुणकित्तिनेहपरलोग निप्पिवासा, एवंते अलियवयणदक्खा परदोसुप्पायणप्पसत्ता वेढेंति अक्खातियबीएण अप्पाणं, कम्मबंधणेण मुहरी असमि-क्खियप्पलावा निक्खेवे अवहरंति, परस्स अत्थंमि गढियगिद्धा अभिजुंजंति य परं असंतएहिं, लुद्धाय करेंति कूडसक्खित्तणं, असच्चा अत्थालियं च कन्नालियं च भोमालियं च तह गवालियं च गरुयं भणंति, अहरगतिगमणं, अण्णंपि य जातिरूवकुलसील पच्चयं मायाणिगुणं, चवलपिसुणं, परमट्ठभेदकमसकं, विद्देस-मणत्यकारकं पावकम्ममूलं, दुद्दिट्ठं दुस्सुयं, अमुणियं निल्लज्जं लोकगरहणिज्जं वहबंध परिकिलेसबहुलं जरा मरण दुक्खसोय निम्मं असुद्ध परिणामसंकिलिट्ठं भणंति अलियाहिसंधिसंनि विट्ठा, असंतगुणुदीरका य संतगुणनासका य हिंसाभूतोवघा तियं अलियसंपउत्ता वयणं सावज्जमकुसलं साहुगरहणिज्जं अधम्मजणणं भणंति, अणभिगय पुण्णपावा, पुणोवि अधिकरण-

किरियापवत्तका बहुविहं अणत्थं, अवमद्दं, अप्पणो परस्स य करेंति, एमेव जंपमाणा महिससूकरे य साहिंति घायगाणं, ससय पसय रोहिए य साहिंति-वागुराणं, तित्तिर वट्टक लावके य कविंजलकवोयके य साहिंति साउणीणं, झस मगर कच्छभे य साहिंति मच्छियाण, संखंक खुल्लए य साहिंति मगराणं, अयगर गोणस मंडलिदव्वीकरे मउली य साहिंति वालवीणं, गोहा सेहग सल्लग सरडगे य साहिंति लुद्धगाणं, गयकुल वानर-कुले य साहिंति पासियाणं, सुकवरहिण मयणसाल कोइल हंस कुले सारसे य साहिंति पोसगाणं, वध बंध जायणं च साहिंति गोम्मियाण, धण धन्न गवेलए य साहिंति तक्कराणं, गामागर नगर पट्टणे य साहिंति चारियाण, पारघाइय पंथघातियाओ साहिंति य गंठिभेयाणं कयं च चोरिय नगरगोत्तियाणं, लंछण निल्लंछण धमण दुहण पोसण वणण दवण वाहणादियाइं साहिंति बहूणि गोमियाणं, धातुमणि सिलप्पवाल रयणागरे य साहिंति आगरीणं, पुप्फविहिं फलविहिं च साहिंति मालियाणं, अग्घ-महुकोसए य साहिंति वणचराणं, जंताइं विसाइ मूलकम्मं आहे-वण आविंधण आभिओग मंतोसहिप्पओगे चोरियपरदारगमण-बहुपावकम्मकरणं उक्खंधे गामघातियाओ वण दहण तलागभे-यणाणि बुद्धि विसविणासणाणि वसीकरणमादियाइं भयमरण किलेस दोसजणणाणि भाव बहुसंकिलिट्ठ मलिणाणि भूतघातो-वघातियाइं, सच्चाइपि ताइ हिंसकाइं वयणाइं उदाहरंति-पुट्ठावा अपुट्ठावा परतत्तिवावडा य असमिक्खियभासिणो उव-दिसंति, सहसा उट्टा गोणा गवया दमंतु, परिणयवया अस्सा हत्थी गवेलगकुक्कुडा य किज्जंतु, किणावेध य, विक्केह, पयह य सयणस्स देह पियय, दासिदास भयक भाइल्लका य सिस्सा य पेसकजणो कम्मकरा य किंकरा य एए सयण परिजणो य कीस अच्छंति ? भारिया भे करित्तु कम्मं, गहणाइं वणाइं खेत्तखिल भूमिवल्लराइं उत्तण घण संकडाइं डज्झंतु, सूडिज्जंतु य रुक्खा,

भिज्जंतु अत्त भट्टाइयस्स उवहिस्स कारणाए बहुविहस्सय अट्ठाए उच्छू दुज्जंतु, पीलिज्जंतु य तिला, पयावेह य इट्टकाउ मम घरट्ठयाए, खेत्ताइं कसह, कसावेह य लहुं गाम आगर नगर खेड कब्बडे निवसेह अडवीदेसेसु, विपुलसीमे पुप्फाणि य फला-णि य कंदमूलाइं कालपत्ताइं गेण्हह करेह संचयं परिजणट्ठयाए, साली वीही जवा य लुचंतु मलिज्जंतु उप्पणिज्जंतु य, लहुं च पविसंतु य कोट्ठागारं अप्प महउक्कोसगा य हम्मंतु पोयसत्था, सेणा णिज्जाउ जाउ डमर, घोरा वट्टंतु य संगामा, पवहंतु य सगड वाहणाई, उवणयणं चोलगं विवाहो जन्नो अमुगम्मिउ होउ दिवसेसु करणेसु मुहुत्तेसु, नक्खत्तेसु, तिहिम्मि य, अज्ज होउ ण्हवणं मुदितं, बहुखज्जपिज्जकलियं कोतुकं विण्हावणक संतिकम्माणि कुणह ससिर विगहोव रागविसमेसु सज्जण परियणस्स य नियकस्स य जीवियस्स परिरक्खणट्ठयाए पडि सीसकाइं च देह, देह य सीसोवहारे, विविहोसहि मज्ज मंस भक्खन्नपाण मल्लाणुलेवण पईवजलिउज्जलसुगंधिधूवावकार पुप्फफल समिद्ध पायच्छित्ते करेह पाणाइवायकरणेण बहुविहेण विवरीउप्पायदुस्सुमिण पावसउण असोमग्गह चरिय अमंगल निमित्त पडिघायहेउ वित्तिच्छेय करेह, मा देह किंचिदाण, सुट्ठुहओ (२) सुट्ठुछिन्नो, भिन्नत्ति उवदिसंता एवंविह करेंति अलिय मणेण वायाए कम्मुणा य अकुसला अणज्जा, अलियाणा अलियधम्मणिरया अलियासु कहासु अभिरमंता तुट्ठा अलिय करेत्तु होंति य बहुप्पयारं ॥ सू० १ । ७ ॥

छाया— 'अथ पुनरपरे कपटिकाः पापा असंयता अविरता कपट कुटिल-कटुक-चटुल-स्वभावा, क्रुद्धा लुब्धा भय मायया हास्यार्थिकाश्च साक्षिणः चोर—चारभटा, खण्डरक्षाश्च जितद्यूतकाराश्च गृहीतग्रहणका कल्क गुरुक कारका कुलिङ्गिन, औपधिका वणिक्काश्च कूटतुला कूटमानिन, कूटकार्षापणोपजीविनः पटकार—कलाद-कारुकीणा वञ्चनपरा चारिक चाटुकार नगर गौप्तिक परिचारका, दुष्टवादि सूचकानवलभणिकाश्च पूर्वकालिकवचनदक्षा साहसिका, लघुस्वका।

असत्या गौरविका, असत्य स्थापनाधिचित्ता, उच्चच्छन्दा, अनिग्रहा, अनियताश्छन्देन मुक्तवाचो भवन्त्यलीकाद् येऽविरताः । अपरे नास्तिकवादिनो वामलोकवादिनो भणन्ति—"नास्ति जीवो न याति इह परत्र वा लोके, नच किञ्चिदपि स्पृशति पुण्य-पापम्, नास्ति फल सुकृत दुष्कृतानाम्, पञ्चमहाभौतिक शरीरं भाषन्ते हि वातयोग-युक्तम् । पञ्च च स्कन्धान् भणन्ति के चित् ( रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा, संस्कार-रूपान् ) मनश्चैव मनोजीविका वदन्ति । वायुर्जीव इत्येवमाख्यान्ति, । शरीर सादिकं सनिधनम्, इह भव एको भव. । तस्य विप्रणाशे सर्वनाश इति । एवं जल्पन्ति मृषा वादिन । तस्माद्दानव्रतपौषधानां ' तप संयमब्रह्मचर्यकल्याणादीना नास्ति फलम् । नापि च प्राणवध , अलीक वचन, नचैव चौर्यकरण परदारसेवन वा, सपरिग्रहपाप-कर्म करणमपि नास्ति, काचिन्न नैरयिकतिर्यङ् मनुष्याणा योनि । न देवलोको वास्ति, न चास्ति सिद्धिगमनम् । मातापितरौ न स्त । नाप्यस्ति पुरुषकारः, प्रत्या-ख्यानमपि नास्ति, नैवास्ति कालो मृत्युश्च । अर्हन्तश्चक्रवर्तिनो बलदेवा वासुदेवा न सन्ति, नैव सन्ति केऽपि ऋषय धर्माऽधर्म फलच नाप्यस्ति किञ्चद् बहुक चस्तोकं वा, तस्मादेव विज्ञाय यथा सुबह्विन्द्रियानुकूलेषु सर्वविषयेषु वर्तस्व । नास्ति काचित् क्रिया वाऽक्रिया वा, एव भणन्ति नास्तिकवादिनो वामलोकवादिन । इदमपि द्वितीय कुदर्शनमसद्भाववादिन प्रज्ञपयन्ति मूढा —"सम्भूतोऽण्डकाल्लोक. स्वयंभुवा स्वयञ्च निर्मितः । एवमेतदलीकम्—प्रजापतिना चेश्वरेण कृतमिति केचिद्वदन्ति ।' एव विष्णुमय कृत्स्नमेव च जगदिति केचित्, एवमेके वदन्ति मृषाम्-"एक आत्माऽकारको वेदकोऽपि च सुकृतस्य दुष्कृतस्य च करणानि कारणाणि सर्वत्र सर्वथा च नित्यश्च निष्क्रियो निर्गुणश्च अनुपलेपक इत्यपि च । एव वदन्त्यसद्भावम् । यदपीह किञ्चिज्जीवलोके दृश्यते सुकृतवा दुष्कृतवा एतद् यदृच्छयावा, स्वभावेन वापि दैवत-प्रभावा द्वाभिभवति । नास्त्यत्र किमपि कृतक तत्त्वम् लक्षणविधान नियत्या कारितम् एव केऽपि जल्पन्ति । ऋद्धि रससात गौरवपरा बहव करणालसा प्ररूपयन्ति धर्मविमर्शकेन मृषाम् । अपरेऽ-धर्मता राजदुष्ट मभ्याख्यान भणन्ति-अलीकम्-चोर इत्यचौर्यं कुर्वन्त, डामरिकं इत्यपिच वैरमकुर्वाणश्च । एवमेवादासीन दुश्शील इतिच परदार गच्छतीति मलिनयन्ति शीलकलितम्-अयमपि गुरूतल्पग । अन्य एवमेव भणन्ति-उपघ्नन्तो मित्र कलत्राणि सेवन्ते । अयमपि लुप्तधर्मा इमेऽपि विश्रम्भवादिन पाप कर्म कारिणोऽ गम्यागामिन । अय दुरात्मा बहुकेश्च पापकैर्युक्त इति, एव जल्पन्ति मत्सरिणो भद्रकेवा गुण कीर्तिस्नेह परलोकनिष्पिपासा. । एवतेऽलीक वचन दक्षा परदोषो-

स्थापन प्रयत्न चेष्टयन्ति अलीकदिक वीर्येणाऽऽत्मानं कर्मबन्धनेन मुखरिणोऽसमीक्षित प्रलापाः । निक्षेपानपहरन्ति परस्यार्थे ग्रथित गृद्धाः । अभियुञ्जते च परमसद् मल्लं क्रना कुर्वन्ति कूटसाक्षित्वम् असत्या अर्थालीकं च, कन्यालीकं च भूम्यलीकं तथा गवालीकं च गुरुकं भणन्ति-अधरगतिगमनम् । अन्यदपि च जाति रूप कुल शील प्रत्यय मायां निगुण चपल पिशुनं परमार्थ भेदकमसत्कम् विद्वेषमनर्थकारकं पाप कर्ममूलं दुर्दृष्टं दुःश्रुतममनोज्ञम् अनुचितं निर्लज्ज लोकगर्हणीयं वधबन्ध परिक्लेश-बहुल जरा मरण दुःख शोक मूल-( नेमम् ) अशुद्ध परिणाम संक्लिष्टं भणन्ति अलीका असी काऽभिसन्धि संनिविष्टा, असद्गुणोदीरकाः सद्गुणनाशकाः हिंसाभूतोप घातकम् अलीकसम्प्रयुक्ता वचनं सावद्यमकुशलं साधु गर्हणीयमधर्मजननं भणन्ति, अनभिगत पुण्यपापाः । पुनरधिकरण-क्रिया प्रवर्तका बहु विधमनर्थमपमर्दमात्मनः परस्य च कुर्वन्ति एवमेव जल्पन्तो महिष शूकरांश्च साधयन्ति घातकानाम् । शश प्रशय रोहितांश्च साधयन्ति वागुरिकाणाम् । तित्तिर वर्तक लावकांश्च कपिञ्जल कपोतांश्च साधयन्ति शाकुनिकानाम् । झषमकर कच्छ ( प ) कांश्च साधयन्ति मात्स्यिकानाम्, शङ्खाङ्कान् क्षुल्लकांश्च साधयन्ति मकराणाम् । अजगर गोनस मण्डलि दर्वीकरांश्च मुकुलिनश्च साधयन्ति व्यालपानाम् । गोधान् सेहक शल्लक सरटकांश्च साधयन्ति लुब्धकानाम् । गजकुल वानरकुलानि च साधयन्ति पाशिकानाम् । शुकबर्हि मदनशाला कोकिल हंसकुलानि सारसांश्च साधयन्ति पोषकाणाम् । वध बन्ध यातनां च साधयन्ति गौल्मिकानाम् । धन धान्य गवेलकांश्च साधयन्ति तस्कराणाम् । ग्रामाकर नगर पत्तनानि च साधयन्ति चारिकाणाम् । पारघातिक पथि घातिका साधयन्ति च ग्रन्थिभेदकानाम् । कृतांश्च चौरिकां नगर गुप्तिकानाम् । लाञ्छन निर्लाञ्छन ध्मान दाहन पोषण वधन दमन वाहनादिकानि साधयन्ति बहूनि गोमिकानाम् । धातु मणि शिला प्रवाल रत्नाकरांश्च साधयन्ति-आकरिणाम् । पुष्प विधि फलविधिं च साधयन्ति मालिकानाम् । अर्घ मधु कोशांश्च साधयन्ति वनेचराणाम् । यन्त्राणि विषाणि मूलकर्माऽऽक्षेपणा वेधनाऽभियोग मन्त्रौषधिप्रयोगान् चौरिक परदार गमन बहु पाप-कर्म करणान्-अवस्कन्दान् ग्राम घातिका वन दहन तडाग भेदनानि बुद्धि विषय विनाशनानि, वशीकरणादिकानि, भय मरण क्लेश दोष जनकानि भावं तु संक्लिष्ट मलिनानि भूत घातोपघातकानि सत्यान्यपि तानि हिंसकानि वचनान्युदाहरन्ति पृष्टा वा अपृष्टा वा परतप्तिव्यापृतास्तु, असमीक्षितभाषिण उपदिशन्ति-सहसा उष्ट्रा गावो गवया दम्यन्ताम् । परिणत वयसोऽश्वा हस्तिनो गवेलक कु-

कुर्दाश्र क्रोणीत, क्रापयत, विक्राणीत पचत च, स्वजनाय दत्त, पिवत, । दासीदास-भृतकभागहारिण शिष्याश्च प्रेष्यजन कर्मकराश्च किंकराश्च ,एते स्वजन परिजनाश्च कस्मादासते ? भर्या भवतः कृत्वा कर्म ( कुर्वन्तु कर्माणि ) गहनानि वनानि क्षेत्र खिलभूमिवल्लराणि उत्तृण घनसङ्कटानि दह्यन्तां सूद्यन्ताञ्च, वृक्षा भिद्यन्ताम्,यन्त्र भाण्डादिकस्योपधे कारणाय बहु विधस्य चार्थाय, इक्षवो दूयन्ताम्, पीड्यन्ताञ्च-तिलाः, पाच्यन्तां चेष्टका मम गृहार्थाय, क्षेत्राणि कृषत, कर्षयत च लघु, ग्रामाऽऽकर नगर खेट कर्वटानि निवेशयत, अटवीदेशेषु विपुलसीमानि ,पुष्पाणि च फलानि च कन्द-मूलानि कालप्राप्तानि गृह्णीत, कुरुत सञ्चयम् । परिजनार्थाय शालयो व्रीहयो यवाश्च लूयन्ताम्, मर्द्यन्ताञ्च, उत्पूयन्ता—( उपनीयन्ता ) ञ्च, लघुच प्रविशन्तु कोष्ठागारम् । अल्पमहोत्कर्पकाश्च हन्यन्ता पोतसार्थाः । सेना निर्यातु डमरम्, घोरा वर्तन्ताञ्च सङ्ग्रामा, प्रवहन्तु च शकटवाहनानि । उपनयन, चूडाकर्म, विवाहो, यज्ञोऽमुष्मिन् भवन्तु ( तु ) दिवसे, करणे, मुहूर्ते, नक्षत्रे, तिथौच । अद्य भवतु स्नपन मुदित, बहु खाद्यपेयकलितम् । कौतुक, विस्नापनक, शान्तिकर्माणि कुरुत, शशि रवि ग्रहोपराग विषमेषु स्वजन परिजनस्य च निजकस्य च जीवितस्य परिरक्षणार्थाय प्रतिशीर्षकाणि च दत्त, दत्त च शीर्षोपहारान्, विविधौषधिमद्यमांस भक्ष्यान्नपानमाल्यानुलेपन प्रदीपज्वलितोज्ज्वल सुगन्धि धूपोपचार ( पापकार ) पुष्प फल समृद्धानि प्रायश्चित्तानि कुरुत, प्राणातिपातकरणेन बहुविधेन, विपरीतोत्पात दुस्स्वप्न पाप शकुनाऽसौम्य ग्रह चरिताऽमङ्गलनिमित्तप्रतिघातहेतोर्वृत्तिच्छेदं कुरुत, मादत्त किञ्चिद्दानम् सुष्ठु हत २, सुष्ठु छिन्त, भिन्त इत्युपदिशन्ति एवंविध कुर्वन्त्यलीकम् । मनसा वचसा कर्मणा च अकुशला अनार्या अलीकाज्ञा अलीकधर्मनिरता । अलीकासु कथासु-भिरममाणास्तुष्टा अलीक कृत्वा भवन्ति च बहुप्रकारम् । ।। सू० । ३ । ७ ।

## अब असत्य बोलनेवालोंका परिचय देते हैं—

अन्वयार्थ,—"( तंचपुण ) और फिर उस ( अलिय ) असत्य वचनको ( वदंति ) बोलते हैं ( केई ) कई ( पावा ) पापी लोग जो ( अस्संजया ) असंयमशील ( अवि० ) विरति रहित हैं ( कवडकुडिलकडुयचटुलभावा ) कपट के कारण कुटिल और परिणाम से दारुण व चंचल मन वाले ( य ) और ( कुद्धा लुद्धा भया ) क्रोधी लोभी और दूसरों को डराने वाले, तथा स्वयं डरने वाले ( हस्सट्ठिया ) हंसी मजाक के अर्थी ( सक्खी ) साक्षी देने वाले ( चोर चार भडा ) चोर, गुप्तदूत व सैनिक ( खंडरक्खा ) सायर के हासिल लेने वाले ( जिय जूई करा य ) और जूआ में हारकर

फिर जूआ खेलने वाले (गहियगहणा) गिरवी रखने वाले (कक्कुरुग कारगा) माया-कपट करने वाले (कुलिंगी) कुतिर्थी-या वेषधारी (उवहिया) ठग (वाणियगा) व्यापार करने वाले-वणिक् लोग, (कूड तोल कूडमानी) खोटा तोल माप करने वाले (कूडकाहावणोवजीवी) नकली मुद्रा बनाने वाले (पडगार कलाय-कारु इच्छ) वस्त्र बुनने वाले, गहना-अलङ्कार बनाने वाले व शिल्पी लोग-छींपे आदि (वंचण परा) दिन रात ठगाई करने वाले (चारिय-चाटुकार-नगर गोत्तिय-परिचारगा) खोज निकालने में लगे हुए, खुशामद करने वाले और नगर की रक्षा करने वाले व व्यभिचार में मदद देने वाले (दुट्ठवाति सूयक अणबल भणिया य) और सरावगम लेने वाले चुगली करने वाले, और सदा कर्जदार कहाने वाले (पुव्वकालियवयणदच्छा) बोलने वाले के अभिप्राय को जानकर उसके पहले बोलने में चतुर अथवा अतिशय और आगमज्ञान से विरुद्ध होने के कारण पूर्व कालिक अर्थ को बोलने में जो अदक्ष हैं, जैसे (साहसिका) बिना विचारे बोलने वाले (लहुस्सगा) आत्मबल से हीन (असच्चा) सज्जनों के लिये अहितकारक (गारविया) ऋद्धि आदि गौरव से युक्त (असच्चट्ठावणाहियचित्ता) असत्य की स्थापना में चित्त वाले (उच्चछंदा) आत्मोत्कर्ष के विचार वाले (अणिग्गहा) स्वच्छन्द (अणियता) नियम रहित—अव्यवस्थित बोलन वाले (छंदेण मुक्कवाया) इच्छानुसार वचन का प्रयोग करने वाले (जे अलियाहि) जो झूठ वचनों से (अविरया) अविरत—अनिवृत्त (भवंति) होते हैं। वे अपनी इच्छानुसार झूठ बोलते हैं। अब दार्शनिक असत्यवादी कहे जाते हैं (अवरे) लौकिक झूठ बोलने वालों की अपेक्षा से दूसरे (नत्थिकवादिणो) नास्तिक वादी-लोकायतिक (वाम लोक वादी) लोक को विपरीत रूप से कहने वाले (भणंति) कहते हैं कि—(नत्थिजीवो) जीव नहीं है (न जाइ इह परे वा लोए) मनुष्य आदि वर्तमान गति के जन्म में या परलोक में नहीं जाता (न य किंचिवि फुसति पुन्नपावं) और पुण्य अथवा पाप का किंचित् भी स्पर्श नहीं करता है (नत्थि फलं सुकय दुक्कयाणं) सुकृत व दुष्कृतों का कुछ भी फल नहीं है (पंच महाभूतियं सरीरं भासंति) पञ्च महाभूत—पृथ्वी जल अग्नि, वायु आकाश इन से बना यह शरीर ही आत्मा आश्रित होता है (वात जोग जुत्तं) प्राण वायु के योग से क्रिया में लगा हुआ है (केई) और कई-बौद्धाचार्य (पंच य खंधे) पांच [रूप वेदना विज्ञान संज्ञा और संस्कार—नामक] स्कन्धों को आत्मा (भणंति) कहते हैं (य) और कुछ बौद्ध विशेष (मणजीविका) मनको ही जीव

मानने वाले ( मणं ) मण को आत्मा ( वदंति ) कहते हैं, ( वाउजीवोत्ति ) ( उच्छ्वास आदि लक्षण वाला जीव है, ( एवमाहंसु ) इस प्रकार कई कहते हैं. ( सरीरसादिय सनिधन ) शरीर पैदा होने से आदि वाला और मरने से अन्त वाला है ( इहभवे ) इस संसार में प्रत्यक्ष दिख पड़ने वाला भवही ( एगेभवे ) एक भव—जन्म है ( तस्स विप्पणासमि ) इसके विनाश हो जाने पर ( सव्वनासोत्ति ) सर्व नाश हो जाता है अर्थात् आत्मा पुण्य पाप आदि कुछ नहीं रहता ( एव ) इस प्रकार ( मुसा वादी ) झूठ बोलने वाले ( जपंति ) बोलते हैं ( तम्हा ) शरीर के साथ सबका नाश होता है, इसलिये ( दाण वय पोसहाण ) दान, व्रत, पौषधोंका ( तव-सजम बभचेर कल्लाणमाइयाण ) तप, संयम, ब्रह्मचर्य रूप कल्याण मार्ग तथा सम्यग्दर्शनादि सत्कर्मों का ( न त्थिफल ) कोई फल नहीं है ( नवि य ) और न ( पाणवहे ) प्राणवध—हिंसा, ( अलियवयणं ) झूठबोलना ( चोरिक्ककरण ) चोरी करना ( वा ) अथवा ( परदार सेवण ) पर स्त्री गमन करना ( सपरिग्गहपावकंम्मकरण ) परिग्रहों के साथ पाप क्रिया का सेवन करना ( पि ) भी अशुभ फल का कारण ( नत्थि ) नहीं है ( किंचि ) कुछ भी ( नेरइयतिरियमणुयाण ) नरक तिर्यक् मनुष्यों की ( जोणी ) योनि—जन्मस्थान ( न ) नहीं है ( वा ) अथवा ( देवलोको न अत्थि ) देव लोक नहीं है ( नय अत्थि सिद्धिगमणं ) और सिद्ध गति में गमन नहीं है ( अम्मा पियरो ) माता पिता ( नित्थि ) नहीं है, ( नवि अत्थि पुरिसकारो )और पुरुषार्थ भी नहीं है ( पच्चक्खाणमवि नत्थि ) प्रत्याख्यान—धर्म साधन रूप से त्याग भी नहीं है, ( नवि अत्थि काल मच्चू य ) और काल व मृत्यु भी नहीं है ( अरिहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा ) अरिहन्त चक्रवर्ती बलदेव और वासुदेव ( नत्थि ) नहीं हैं ( नेवत्थि केवि रिसओ ), और कोई ऋषि—महर्षि भी कुछ नहीं हैं ( धम्माधम्म फलं च नवि अत्थि ) तथा धर्मअधर्मों का फल भी कुछ नहीं है ( किंचि ) कुछ ( बहुय ) बहुत ( वा ) अथवा ( थोवक ) थोड़ा पुण्य पाप का परिणाम नहीं है। ( तम्हा ) इसलिये ( एव ) जीव को धर्माधर्म का फल नहीं मिलता ऐसा ( विजाणिऊण ) जान कर ( जहासुबहु ) जिस प्रकार बहुत अनुकूल हों वैसे ( इ दियाणुकूलेसु ) इन्द्रियों के अनुकूल ( सव्वविसएसु ) सर्व विषयों में ( वट्टह ) वर्तन करो-प्रवृत्ति करो ( काइ किरिया ) कोई क्रिया—प्रशस्त कार्य ( वा अकिरिया ) या अक्रिया अर्थात् पापक्रिया ( णत्थि ) नहीं है, ( एव ) इस प्रकार ( नत्थिकवादिणो ) नास्तिक मतवाले ( भणंति ) बोलते हैं ( वामलोगवादो )

विपरीत लोक को कहने वाले ( इमंपि बिईय कुसंसणं ) दूसरे इस कुदर्शन को भी ( असब्भावबइगो ) कुभावों को—असद्भाव को बोलने वाले ( मूढा ) मूढ मति लोग ( पण्णवेंति ) प्ररूपण करते हैं जैसे (अंडकाओ ) अण्डे से ( लोको) यह संसार (संभूओ) पैदा हुआ है, ( सयम्भुणा ) स्वयम्भू ब्रह्मा ने (सयं) खुद ( निम्मिओ) बनाया है (एवं) इस प्रकार ( एवं ) यह (अलियं) मृषावाद है (वे वि )कइवादी( पयावइणा प्रजा पतिने (ईसरेणय) और ईश्वर ने (कयंति) बनाया ऐसाकहते हैं'(एव) इस प्रकार (केई) कई वादी ( विण्हुमयं कसिणमेव जगंति ) समस्त जगत् ही विष्णुमय है ऐसा कहते हैं' ( एवमेके ) इस प्रकार कई एक वादी ( मोस वदंति ) मिथ्या बोलते हैं। ( एको आया अकारको वेदकोय ) आत्मा एक तथा अकर्त्ता और भोक्ता है ( सुकयस्स ) सुकृत के ( य ) और ( दुक्कयस्स ) दुष्कृत के ( करणाणि ) इन्द्रियाँ ( कारणाणि ) हेतु ( सव्वहा ) सब प्रकार से ( सव्वहिंच ) और सब जगह 'है' ( निच्चोय ) और यह आत्मा नित्य ( निक्किओ ) निष्क्रिय तथा ( निग्गुणो ) निर्गुण अर्थात् सत्त्व रज तम इन तीन गुणों से रहित है ( य ) और ( अणुवलेव ओवि चिय ) कर्म बन्ध से अलिप्त रहित—है ( एवमाहंसु—असब्भावं ) इस प्रकार असद् भाव को कहते हैं ( इहं जीव लोए ) इस संसार में ( जंपि ) जोभी( किंचि ) कुछ ( दीसइ ) दिखता है ( सुकयं ) सुकृत ( वा ) या ( दुक्कयं ) दुष्कृत ( एयं ) यह ( जदिच्छाए ) यदृच्छा से ( वा ) अथवा ( सहावेण ) स्वभाव से ( दइवतप्पभावओ वावि ) अथवा देवता-विधि या भाग्य के प्रभाव से ( भवति ) होता है ( नत्थत्थ किंचि कयकं तत्तं ) यहाँ शुभ अशुभ कुछ भी पुरुषार्थ से किया हुआ तत्त्व—सत्त्व नहीं है, ( लक्खण विहाण नियतीए ) लक्षणों से विधान—भेद और स्वभाव से ( कारियं ) किया हुआ है, ( एवं केई जपंति ) इस प्रकार कई वादी बोलते हैं ( इड्ढिरससायागारव परा ) ऋद्धि, रस और साता के आदर वाले याने गर्व वाले ( बहवे ) बहुत से ( करणालसा ) क्रिया में आलसी लोग ( धम्म वीमंसएण ) धर्म के विचार से ( मोसं ) मृषा का ( परूवेंति ) प्ररूपण करते हैं ( अवरे ) दूसरे कई ( अहम्मओ ) अधर्म को अङ्गीकार करके ( रायदुट्ठं ) राज दुष्ट अर्थात् राज विरोधी ( अब्भक्खाणं ) दोष कथन रूप ( अलियं ) झूठ ( भणति ) बोलते हैं, जैसे ( अचोरयं ) चोरी नहीं ( करेंतं ) करने वाले को ( चोरोत्ति ) चोर ऐसा ( य ) और ( डामरिउत्ति ) शान्त को भी लड़ाई करने वाला ( एमेव ) इसी प्रकार ( उदासीणं ) उदासीन को ( दुस्सीलोत्ति ) दुःशील—दुराचारी ( य ) और ( परदार ) परस्त्री में ( गच्छतित्ति )

गमन करता है इस प्रकार ( अयंपि ) यह भी ( गुरुतप्पओ ) गुरु पत्नी गामी है, 'ऐसा कहकर' ( सीलं कलियं ) शील युक्त को ( मइलिंति ) मलिन बनाते हैं ( एमेव ) इसी प्रकार ( अन्ने ) दूसरे ( उवाहणंता ) दूसरों की कीर्ति को मिटाते हुए ( भणंति ) मृषा बोलते हैं, जैसे कि-( मित्त कलत्ताइं ) मित्र स्त्री से ( सेव ति ) गमन करते हैं ( अयंपि ) 'केवल वे नहीं किंतु' यह भी ( लुत्त धम्मो ) धर्म रहित है ( इमेवि ) यह भी ( विस्सभ घाइओ ) विश्वास घाती ( पावकम्मकारी ) पाप करने वाला तथा ( अगम्म गामी ) अगम्या-लडकी बहन आदि में गमन करने वाला है, ( अयं ) यह ( दुरप्पा ) दुष्ट आत्मा ( बहुएसु पावगेसु ) बहुत से पाप कार्यों में ( जुत्तोत्ति ) युक्त है ( एवं ) इस प्रकार ( मच्छरी ) मत्सरी लोग ( जंपंति ) बोलते हैं ( वा ) अथवा ( भद्दके ) गुणों व निर्दोष पुरुष के विषय में ( गुण कित्ति नेह पर लोग निप्पिवासा ) गुण, कीर्ति, स्नेह और परलोक की इच्छा से रहित होकर मृषा बोलते हैं, ( एवं ) इस प्रकार ( अलिय वयण दच्छा ) झूठ बोलने में निपुण तथा ( परदोसुप्पायणप्पसत्ता ) दूसरों के दोष उत्पादन में तत्पर ( ते ) वे मृषावादी ( अक्खातियबीएण ) अक्षयें दुःख के कारण भून ( कम्म बंधणेण ) कर्म बन्ध से ( अप्पाणं ) अपनी आत्मा को ( वेढेंति ) घेर लेते हैं ( मुहरो ) अनर्थ कारी होने से जिनका मुख ही शत्रु है, वे मुखारि वैसे ( असमिक्खियप्पलावा ) बिना विचारे बोलने वाले ( परस्स ) दूसरे के ( अत्थमि ) द्रव्य में ( गढिय गिद्धा ) अत्यन्त लोभ वाले ( निक्खेवे ) रखी हुई ठेव को ( अव हरंति ) अपहरण कर लेते हैं ( य ) और ( परं ) दूसरे को ( असंतएहिं ) अविद्यमान दोषों से ( अभिजुंजंति ) जोड़ते हैं अर्थात् झूठे आक्षेप करते हैं ( लुद्धा य ) और लोभी मनुष्य ( कूडसक्खित्तण ) झूठी साक्षी देने के कार्य को ( करेंति ) करते हैं, ( च ) और ( असच्चा ) अहित कारी लोग ( अत्थालिय ) धन सम्बन्धी झूठ ( कन्नालिय ) और कन्या सम्बन्धी झूठ ( तह ) तथा ( भोमालिय ) भूमि सम्बन्धी झूठ ( च ) और ( गवालिय ) गोआदि पशु सम्बन्धी झूठ ( गरुयं ) स्वपर को पीडा कारी होने से भारी ऐसे झूठ को' ( भणंति ) बोलते हैं, जो झूठ-( अहरगति गमणं ) नीचगति का कारण है ( अन्नं पिय ) और कहे हुए के सिवाय अन्य भी ( जातिरूव कुलसील पच्चयं ) जाति, रूप, कुल और शील-आचार के कारण वाला ( माया णिगुण ) माया का गुण वाला या माया से निपुण ( चवल पिसुणं ) विचार आदि से चपल व पिशुन लोग ( परमट्ठ भेदकं ) जो वचन मोक्ष रूप परमार्थका घातक ( असकं ) अविद्य मान अर्थ वाला

या–'असंतगं' सत्य रहित (विद्देसमणत्थकारगं) अप्रिय और अनर्थ कारक है (पाव कम्म मूलं) पाप कर्म का मूल (दुदिट्ठं) दुष्ट–मिथ्या दृष्टि वाला, (दुस्सुयं) मिथ्या श्रुत युक्त (अमुणियं) ज्ञान रहित और (निल्लज्जं) लज्जा से हीन (लोक गरहणिज्जं) लोक में निन्दनीय है (वह बंध परिकिलेस बहुलं) वध बन्ध और क्लेश की अभिलाषा वाला (जरा मरण दुक्ख सोय निम्मं) जरा–वृद्धावस्था मरण, दुःख तथा शोक का जो मूल है वैसे (असुद्ध परिणाम संकिलिट्ठं) अशुद्ध परिणाम से संकुल युक्त 'ऐसे असत्य वचन को' (भणंति) बोलते हैं, जो (अभिसाहि संधि संनिविट्ठा) झूठे अभिप्राय में लगे हुए (य) और (असंत गुण उदीरका) असत् गुण की उदीरणा करने वाले याने झूठे गुण कहने वाले (य) और (संत गुण नासगा) विद्यमान गुण को नष्ट करने वाले अर्थात् छिपाने वाले (हिंसा भूवोव घातिय) हिंसा से प्राणियों का उपघात हो वैसे (सावज्ज मकुसलं) पाप सहित और जीवों के लिये अकुशल कारक (साहुगरहणिज्जं) साधुओं से निन्दित (अहम्म–जणणं) अधर्म जनक (वयणं) वचन को (भणंति) कहते हैं (अणिय संपउत्ता) जो झूठ के प्रयोग करने वाले हैं (अणभिगय पुण्णपावा) पुण्य और पाप के हेतुओं से अनजान होते हैं (पुणोवि) और (अधिकरण किरिया पवत्तका) अज्ञान के वश शस्त्र आदि अधिकरण बनाने व जोड़ने की क्रिया को करने वाले (बहुविहं) बहुत प्रकार के (अणत्थं) अनर्थ का कारण रूप (अप्पणो) अपने (य) और (परस्स) परके (अवमद्दं) अपमर्द– हानि को (करेंति) करते हैं, (एमेव) इसी प्रकार–बुद्धि के बिना (जपमाणा) बोलते हुए (घायगाणं) हिंसकों के लिये (महिससूकरेय) भैंसे और सूअर को (साहिंति) बताते हैं (य) और (ससय पसय रोहिए) शशा, प्रसय व रोहिस—पशु विशेष (वागुराणं) वागुरी को (साहिंति) बताते हैं, (तित्तर वट्टक लावके) तीतर बतक–बतक तथा लावक–लवे (य) और (कविंजल कवोय–केय) कपिंजल व कपूतरों को (साउणीणं) पक्षी मारने वाले शिकारियों को (साहिंति) बताते हैं (झस मगर कच्छभेय) झस मगर और कच्छप आदि जलचर जन्तु (मच्छियाणं) मच्छीमारों को (साहिंति) बताते हैं। (संखंके) शंख व अंकु—जल जीव विशेष (य) और (खुल्लए) क्षुल्लक—कौडी के जीव (मगराणं) धीवर लोगों को (साहिंति) बताते हैं (अयगर गोणस मंडलि दव्वीकर) अजगर, गोणस मंडली और दर्वीकर आदि के सप (मउलेय) और मुकुली—फण्या रहित सर्प ये सब (वालवीणं) व्यालव–सपपकड़ने वालोंको (साहिंति बताते हैं

( गोहा सेहग सल्लग सरडकेय ) और गोधा, सेह, शल्लकी और सरट ( लुद्धगाणं ) लुब्धकों को ( साहिंति ) बताते हैं ( य ) और ( गयकुल वानर कुले ) गजकुल और वानर कुलों को ( पासियाण ) पाश वालों के लिये (साहिंति ) बताते है (सुक ब-रहिण मयण साल कोइल हंस कुले ) तोता, मयूर, मेना कोकिला और हंस के कुल ( सारसेय ) और सारस पक्षी ( पोसगाण ) पालने वालों को ( साहिंति ) कहते हैं ( च ) और ( गोम्मियाण ) गुप्ति पालकों को ( वधबंधजायण ) वध बध और यातना ( साहिंति ) बताते हैं ( य ) और ( तक्कराण ) चोरों को ( धणधन्न गवेलए ) धन धान्य तथा पशु ( साहिंति ) बताते हैं ( चारियाण ) चारिक—गुप्तचरों को ( गामा-गर नगर पट्टणे य) ग्राम, आकर, नगर और पत्तन ( सहिंति ) बताते है ( य ) और ( गंठिभेयाण ) ग्रन्थि छेदन करने वालों को ( पार घातिय पथघातियाओ ) मार्ग के अन्त में यावीच में मारने—लूटने--की क्रियायें ( सहिंति ) कहते है ( च ) और ( नगर गोत्तियाण ) नगर रक्षक-कोटवाल आदि को ( कय चोरिय ) की हुई चोरी 'बताते है' ( गोमियाणं ) गो आदि पशु वालों को ( लछण निलंछण धमण दुहण पोसण ) लाछन—कान आदि कतरना या निशान बनाना, निर्लांछन—बधिया करना याने खस्सी करना धमान-भेंस आदि के देह में हवा भरना, दोहन—दुहना, पोषण यव आदि देकर पुष्ट करना ( वण्ण दवण वाडणा दियाइ ) बछडे को दूसरी गौ में लगाकर दूसरी गौ को धोखा देना अर्थात् यह बच्चा मेरा ही है ऐसा धोखा देना, दुवन-पीडा देना वाहन—गाडी आदि में जोतना इत्यादि ( बहूणि ) बहुत से कार्य ( साहिंति ) कहते हैं ( य ) और ( आगरीणं ) खान वालों को ( धातु मणि सिल प्पवाल रयणागरे ) गैरिक आदि धातु, मणि-चन्द्रकान्त आदि, शिला-पत्थर, प्रवाल-विद्रुम-मूंगे और रत्नों की खानें ( साहिंति ) कहते हैं (मालियण)मालिओं को (पुप्फविहिं) पुष्प के प्रकार ( च ) और ( फलविहिं ) फल के प्रकार (साहिंति ) बताते है (य). और ( वणचराण ) भील आदि जंगलिओं को (अग्घमहुकोसए) कीमत और मधु के छाते ( साहिंति ) बताते हैं ( जताइं ) यन्त्र-लिखे हुए अक्षरों की रचना विशेष अथवा जलयन्त्र, आदि ( विसाइ ) अनेक प्रकार के विष ( मूलकम्मं ) मूलकर्म-गर्भपात या गर्भाधान ( आहेवण आविंधणा आभिओग मतोसहिप्पओगे ) आक्षेप-नगर में क्षोभ उत्पन्न करना, आव्यधन—क्षन्त्रप्रयोग, आभियोग्य-वशीकरण आदि प्रयोग, मन्त्र और औषधिओं के प्रयोगों को ( चारिय परदार गमण बहु पाव कम्म करणं ) चोरी, परस्त्रीगमन और अधिक पाप बध के व्यापार करना ( उक्खवे )

कपट से दूसरेके बलको उपमर्दन करना, ( गाम घायविघाओ ) ग्राम घातक ( वण दहण वसाग भेयणमि ) वन जलाना और तलाब फोड़ना (बुद्धि विस विणासणाणि) बुद्धि के विषय को नष्ट करना ( वसीकरणमाविघाइ ) वशीकरण इत्यादि ( भयमरण किलेस दोस जणणाणि ) भय मरण, क्लेश और द्वेष को उत्पन्न करने वाले ( भाव बहुसंकिलिट्ठ मलिणाणि ) जो अध्यवसाय–भाव से बहुत दुःखप्रद और मलिन हैं ( भूतघाओवघाइयाइ ) प्राणियों के घात और उप घात वाले ( सच्चाइ पि ) सत्य भी ( ताइ ) ऐसे वन ( हिंसकाइ ) हिंसक ( वयणाइ ) वचनोंको ( उदाहरंति ) बोलते हैं ( पुट्ठावा ) पूछे गये या ( अपुट्ठावा ) बिना पूछे गये ( परतत्तियं वावडा ) दूसरेके कार्योंको सोचने विचारने में लगे हुए ( य ) और ( असमिक्खियभासिणो ) बिना विचारे बोलने वाले ( सहसा ) अकस्मात् ( उवदिसंति ) उपदेश करते हैं ( उट्ठा ) ऊंट ( गोणा ) गाय बैल, ( गवया ) गवय–रोझ वगैरह पशु को ( दमेंतु ) दमन करो अर्थात् इनको शिक्षित बनाओ ( परिणयवया ) प्रौढवय वाले–जवान ( अस्सा ) घोडे ( हत्थी ) हाथी ( गवेलग कुक्कुडाय ) और बकरे व मुर्गों को ( किणंतु ) खरीदो ( किणावेय ) खरीद कराओ ( य ) और ( विक्केह ) बेचो ( य ) और ( पयह ) पकाने योग्य वस्तुओं को पकाओ ( सयणस्स ) स्वजन को ( देह ) देओ ( पियय ) मदिरा आदि पेय वस्तु को पिओ ( दासीदास भयंग भाइल्लकाय ) और दासी दास–नोकर भृतक–भोजन देकर पाले गए सेवक और भागीदार ( सिस्सा ) शिष्य ( य ) और ( पेसकजणो ) काम पर भेजने योग्य आदमी ( य ) और ( कम्मकरा ) कर्म करने वाले अर्थात् नियत समय तक आज्ञा पालने वाले (य किंकरा) और किंकर-पूछकर कर काम करने वाले (एए) ये (सय सयणपरि जणोय) और स्वजन परिजन(कीस)किसलिये (अच्छंति) बैठे हैं (भारिया) भरण करने योग्य हैं अर्थात् इनको वेतन चुका देना चाहिए ये (भे) आपके (कम्म) कामको (करिंतु करें, (गहणाइ) गहन–सघन ( वणाइ ) वन ( खेत्तखिलभूमिवल्लराइं ) खेत, खिलभूमि–बिना जोती गई भूमि और वल्लर–खेत विशेष ( उत्तण्ण घण संकडाइ ) जो लगे हुए घासों से अत्यन्त भरे हैं उनको ( डज्झंतु ) जलाओ ( य ) और ( सूडिज्जंतु ) घास कटाओ या उखड़ाओ ( जंत भंडाइयस्स ) विजयन्त्र — घानी और मांड–कुंडे आदि भाजन वगैरह ( उवहिस्स ) उपकरण के ( कारणाए ) निमित्त ( य ) और ( बहु विहस्स अट्ठाए ) बहुत प्रकार के प्रयोजन से ( रुक्खा ) वृक्षों को ( भिज्जंतु ) कटाओ ( उच्छू ) इक्षु को ( दुज्जंतु ) कटाओ ( य ) और ( तिल ) तिलों को (पीलिज्जंतु )

पीलो-उनका तेल निकालो (य) और (इट्टकाउ) ईंटों को (पयावेह) पकाओ (मम घरट्ठयाए) मेरे घर के लिये (खेत्ताइ) खेतों का (कसह) कर्षण करो (कसावेह) कर्षण कराओ, (य) और (लहु) शीघ्र (गाम आगर नगर खेड कब्बडे) गांव आकर खान, नगर, खेडा और कर्वट-कुनगर इन सब को (निवेसेह) बसाओ। (अडवी देसेसु) अटवी के प्रदेश में (विउलसीमे) विपुल सीमा वाले 'गाव आदि बसाओं' (य) और (पुप्फाणि) पुष्प (य) और (फलाणि) फलों को तथा (काल पत्ताइ) प्राप्त काल— लेने के समय पर पहुंचे हुए (कंद मूलाइ) कन्द मूल को (गेण्हेह) ग्रहण करो (परिजणट्ठयाए) परिजनों के लिये (सचयं) उनका सचय (करेह) करो (साली) साल-धान्य (वीही) व्रीहि (य) और (जवा) जौको (लुच तु) काटो, (मलिज्जतु) मलो—मसलो (उप्पणिज्जंतु) हवा से साफ करो (लहुच) और शीघ्र (कोट्ठागार) कोठार में (पविसतु) डालो (अप्पमहउक्कोसगाय) और छोटे, उसकी अपेक्षा मध्यम व उत्तम (पोयसत्था) नौकाके समूह-नौका व्यापारो (हम्मतु) चलो या लूटो (सेणा) सेना (णिज्जाउ) निकले (डमर) सग्राम भूमि में (जाउ) जावे (य) और (घोरा) भयङ्कर (सगामा) संग्राम (वट्टतु) प्रवृत्त होवे (य) और (सगड वाहणाइं) गाडी व नौका आदि वाहन (पवहतु) चलें (उवणयणं) उपनयन सस्कार (चोलग) बालकका प्रथम मुंडन (विवाहो) विवाह सम्बन्ध (जन्नो) यज्ञ (अमुगम्मिउ) 'ये सब कार्य' अमुक (दिवसेसु) दिनों मे (करणेसु) वालव आदि करणों में (मुहुत्तेसु) अमृत सिद्धि आदि मुहुर्तों में (नक्खत्तेसु) अश्विनी आदि नक्षत्रों में (य) और (तिहिसु) नन्दा आदि तिथिओं मे (होउ) हो-होना चाहिए (अज्ज) आज (ण्हवण) स्नान-सौभाग्य आदि के लिये स्नान (होउ) हो (मुदितं) प्रमोद युक्त (बहु-खज्जपिज्जकलिय) मद्य मास आदि बहुत से पेय भक्ष्य वाला (कोतुक) रक्षा या क्रीडा आदि (विण्हावणक) विविध मन्त्र मूल आदि के द्वारा सस्कृत जल से स्नान कराना (ससिरवि गहोवरागविसमेसु) चन्द्र और सूर्य का राहु से उपराग-ग्रहण होना और विषम दुष्ट स्वप्न-अमङ्गल आदि मे (सति क-म्माणि) शान्ति कर्म (कुणह) करो (सजणपरियणस्स) स्वजन और परिजन (य) और (नियकास) अपने (जीवियस्स) जीवन की (परिरक्खणट्टयाए) रक्षा करने के लिये (पडिसीसगाइ) अपने मस्तक की पीठ—आटे आदि से बनी हुई आकृति (देह) देओ-दो (य) और (सीसोवहारे) पशु आदि के शिर की

बलि ( वइय ) दो-पडागो ( विविहोसहि मज्ज मंस भक्खन्न पाण मल्लाणुलेवण पईव जलिउज्जल सुगंधि धूवावकारपुप्फफलसमिद्धे ) जो दोपोंपहार विविध औषधि मद्य मांस भक्ष्य अन्न पानक-पेय, माल्य, माला चन्दन आदि का अनुलेपन और जलते हुए उज्ज्वल प्रदीप, सुगंधियुक्त धूप का अंगार पर डालना तथा फूल फलों से पूर्ण है। ( पायच्छित्ते ) प्रायश्चित्त—दुष्ट स्वप्न आदि अशुभ के प्रतीकारको ( बहुविहेणं ) बहुत प्रकार के ( पायच्छित्तकरणेण ) प्रायश्चित्तरूप क्रिया से ( करेह ) करो प्रायश्चित्त करने का हेतु'—( विवरीउप्पाय दुस्सुमिण पावसउण असोमग्गह चरिय अमंगल्ल निमित्त पडिघायहेउं ) विपरीत—अशुभसूचक—उत्पात दुष्ट स्वप्न पाप शकुन—खराब निमित्त क्रूरग्रहों का संचार, अमङ्गलकारी—अङ्गस्फुरण आदि निमित्त इन सबके निवारणार्थ प्रायश्चित्त करो, ( वित्तिच्छेयं ) वृत्तिच्छेद आजीविका का नाश ( करेह ) करो अथात् अमुक की जिविका तोड़दो, ( मा देह किंचिदाणं ) कुछ भी दान मत दो ( सुट्ठु हओ सुट्ठुहओ ) अच्छा मारा अच्छी तरह मारा गया ( सुट्ठु छिन्नो ) अच्छी तरह काटा गया ( भिन्नत्ति ) अच्छा भेदा गया ऐसा ( उवदिसंता ) उपदेश करते हुए ( एवं विहं ) इस प्रकार के ( अलियं ) मृषावाद को ( मणेण ) मनसे ( वायाए ) वाणी से ( य ) और ( कम्मुणा ) कर्म—कायासे ( करेंति ) करते हैं ( अकुसला ) जो क्या बोलना व क्या नहीं बोलना इस विचार से हीन हैं ( अणज्जा ) अनार्य हैं ( अलियाणा ) झूठे सिद्धान्त वाले व झूठी आज्ञा वाले ( अलिय धम्मणिरया ) मिथ्या धर्म में तत्पर ( अलियासु कहासु ) झूठी कथाओं में ( अभिरमंता ) रमण करने वाले (य) और (बहुप्पगारं) अनेक प्रकार के ( अलियकरेणु ) मिथ्या भाषण को करके ( तुट्ठा ) सन्तुष्ट ( होंति ) होते हैं ॥ सू० १। ७॥

भावार्थ—'कई पापी मनुष्य झूठ बोलते हैं जो संयम और व्रत से दूर हैं। तथा कपटी व चपल स्वभाव वाले हैं। क्रोध, लोभ भय और हास्य के प्रयोजन से झूठ बोला जाता है। अधिकता से नीचे कहे गए लोग झूठ बोलते हैं। जैसे—गवाही देने वाले १ चोर २ दूत ३, भट-भाट या सैनिक ४, राजदरबारक ५, जुआरी ६ गिरवी लेने वाले ७, मायावी—कपटी ८ भेषधारी—कुमाधु ९, ठग १० वणिक-लेन देन करने वाले ११ नकली माप तोल करने वाले १२, झूठे सिक्के बनाने वाले १३ वस्त्र बनाने वाले १४ सुनार १५, शिल्प से जीने वाले १६, ठगाई चोरी, परोक्षा और खुशामद आदि के लिये झूठ बोलते हैं। छोटे लोग शास्त्र ज्ञान से हीन बिना विचारे बोलने व ले हृदय के दर्प और धन आदि के अभिमानी होते हैं। प्रतिष्ठा की रक्षा और

मिथ्या मान मिलाने के लिये भी झूठ बोला जाता है। अपने आपको बडे मानने वाले स्वच्छन्दचारी व अनियमित जीवी लोग भी अधिकांश झूठ बोलते हैं। कई दार्शनिक भी लोकोत्तर मृषावादी होते हैं। जैसे नास्तिक लोग लोक के स्वरूप को विपरीत रूप से कहते हैं और तत्त्वों का असत् प्रतिपादन करते हैं। वामलोक वादी कहते हैं कि जीव नहीं है, और न वह परभव में ही जाता है। जीव न पुण्य पाप का बन्ध करता है और न उसको शुभ अशुभ फल ही भोगना पडता है। पञ्चभूतों का यह शरीर प्राण वायु से युक्त ऐसा भासित होता है। कई एक बौद्ध-आचार्य-विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार और रूप ऐसे पांच स्कन्धों को कहते हैं। इनके विचारानुसार आत्मा यह कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। कितनेक मतवादी मन को ही आत्मा मानते हैं। दूसरे वायु-प्राण वायु को ही जीव कहते हैं। इनके मत से शरीर सादि सान्त है और वर्तमान जन्म ही एक भव है, क्योंकि शरीर के नाश होने के साथ ही सबका नाश हो जाता है। इस प्रकार ये सब मिथ्या बोलते हैं। शरीर के साथ सब का नाश हो जाता है इसलिये दान व्रत आदि सत्कर्मों का फल भी नहीं होता। हिंसा, झूठ, चोरी, परदार गमन और परिग्रह रूप पापबंध का कोई कारण नहीं है। नरक, तिर्यञ्च और मनुष्य योनि, देवलोक तथा सिद्धिगति भी नहीं है। पुरुषार्थ, प्रत्याख्यान और काल मृत्यु भी नहीं हैं। माता पिता ऋषि और तीर्थङ्कर चक्रवर्ती आदि भी नहीं हैं धर्म व अधर्म का थोडा बहुत फल भी नहीं मिलता। इसलिये इन्द्रिय के अनुकूल सब विषयों में प्रवृत्त रहना चाहिए। क्रिया या अक्रिया कुछ नहीं है, इस प्रकार नास्तिक वादी मिथ्या कहते हैं। दूसरा कुदर्शन कर्तृत्ववादी का है, वे कहते हैं कि-लोक अण्डे से उत्पन्न हुआ और स्वयं ब्रह्मा ने इसको बनाया है। कई सम्पूर्ण जगत् को ही विष्णुमय कहते हैं, आदि। कई सांख्याचार्य इस प्रकार मृषा बोलते हैं—"आत्मा एक, अकर्ता और भोक्ता है। सुकृत और दुष्कृतों का कारण इन्द्रियाँ हैं आत्मा तो सब प्रकार से और सब जगह नित्य, निष्क्रिय तथा सत्त्वादिगु—णों से रहित व कर्म बन्ध से निर्लेप है-इस प्रकार असत्य बोलते हैं। इनके विचार से जो कुछ भी संसार में सुकृत दुष्कृत या इनके शुभाशुभ फल दिखते हैं ये स्वभाव प्रकृति-से या दैवत-विधि के प्रभाव से होते हैं, यहाँ कोई भी कृतक तत्त्व नहीं है इत्यादि कई कहते हैं, ऋद्धि, रस व साताके अहङ्कारी बहुत से आलसी लोग धर्म के विचार से झूठ बोलते हैं। दूसरे अधर्म से राजदुष्ट झूठा आरोप बोलते हैं-चोरी नहीं करने वाले को चोर और शीलवान् कोभी दुश्शील तथा अगम्या गामी कहते

हैं। मद्र पुरुष में मत्सरी लोग गुण कीर्ति आदि की अपेक्षा नहीं रखते हुए झूठे दोष लगाते हैं। इस प्रकार ये झूठ बोलने वाले दूसरों के दोष निकालने में तत्पर अपनी आत्मा को गाढ कर्म बन्ध से बांध लेते हैं। दूसरे के धन में आसक्त होकर निक्षेप-ठेव का अपहरण करते हैं और दूसरों के ऊपर असत्य कार्यों से अभियोग करते हैं, लोभ वश झूठी साक्षी देते हैं। असत्य के मुख्य प्रकार—'कर्यालीक-धन सम्बन्धी झूठ १ कन्यालीक-लड़के लड़की व स्त्री पुरुष के बाबत बोला जाने वाला झूठ २ भूम्यलीक भूमि के विषय में बोला गया ३ गवालीक और पशुओं के लिये बोला गया झूठ ४ इस प्रकार महा अनर्थ के कारण व नीच गति में पहुचाने वाले मृषावाद को बोलते हैं। जाति रूप, कुल और शील के कारण झूठ बोला जाता है, पर परमार्थ का भेदक और द्वेष व अनर्थ का कारण है। यावत् जरा मरण दुःख और शोक का मूल तथा अशुद्ध परिणाम से मलिन है। झूठे लोग असत्य गुण को कहने वाले व सद्गुण को छिपाने वाले हिंसाकारी सावद्य-वचन को बोलते हैं। जो साधु पुरुषों से निन्दित और अधर्म का जनक है। पुण्य पाप के अनजान व असत्य वादी फिर बहुत तरह की सब क्रिया के प्रवर्तक कई तरह के अनर्थ और स्वपर का अपमर्द करते हैं। ये लोक निर्दयता से शिकार करने वाले शिकारियों को उनकी शिकार-पशु, पक्षी या मच्छी आदि बताते हैं। तथा शिकारी को उत्तेजित करते हैं। हिंसक लोग भय मरण और क्लेश को उत्पन्न करने वाले मलिन भावों से युक्त सत्य को भी हिंसा मय बनाकर बोलते हैं। फिर ये दूसरों के कार्यों को विचारने वाले और बिना विचारे बोलने वाले सहसा निम्न प्रकार से उपदेश करते हैं—ऊंट बैल आदि का दमन करो। जवान हाथी घोड़े आदि खरीदो और खरीद कराओ बेचो अमुक चीज पकाओ, स्वजनों को दो मद्य आदि का पान करो, ये दासी दास आदि क्यों बैठे हैं? इनका पालन करो ये आपका काम करें, गहन वन तथा खेत आदि जलाये जाँय। यन्त्र या भाजन आदि के लिये वृक्षों को काटो इक्षु को काटो, और तिलों से तेल निकालो, रस निकालो। मेरे घर के लिये ईंटें पकाओ खेत जोतो तथा दूसरों से जुतवाओ। इस अटवी के मैदान में बड़े गांव नगर आदि बसाओ, पके हुए फूल फल और कन्द मूल आदि को ग्रहण करो। तथा संचय करो, शालि आदि धान्यों को काटो दाखा बनाओ मर्दन करो और हवा में उड़ाकर साफ करो तथा शीघ्र कोठे में भरो। छोटे बड़े जहाज चलाये जांय, सेना प्रयाण करे व युद्ध भूमि में जाय भयङ्कर संग्राम चालू हो, गाड़ी या नौका आदि वाहन चलाये जाँय। अमुक

शुभतिथि, दिन, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में उपनयन आदि संस्कार किये जांय, यज्ञ किया जाय। आज वधू का सौभाग्य सूचक स्नान हो,। बहुत प्रकार के खान पान वाला उत्सव किया जाय, और अभिषेक हो। चन्द्र सूर्य के ग्रहण और अमाङ्गलिक शकुन आदि की शान्ति की जाय। स्वजन परिजन और अपने जीवन की रक्षा के लिये बनावटी शिर चढाओ। पशुओं के शिर चढाओ, जो विविध ओषधि व मद्य मांस फल फूल आदि से पूर्ण हो। उत्पात व अशुभ स्वप्न आदि के निवारणार्थ बहुत प्रकार के हिंसा युक्त कार्यों से प्रायश्चित करो। इसकी वृत्ति बंद करदो कुछ भी दान मत दो। यह अच्छा काटा गया, मारा गया इस प्रकार सावद्य उपदेश करते हुए मन वचन तथा कर्म से मृषा कार्य करते हैं। ये लोग भाषा ज्ञान मे अकुशल अनार्य और झूठे सिद्धान्त वाले है, मिथ्या धर्म मे तत्पर होने से झूठी कथाओं मे रमण करते हुए बहुत प्रकार से झूठ बोल कर सन्तुष्ट होते हैं॥ सू० । २ । ७॥

## अब झूठ बोलने का फलदिखाते हैं—

मूल—तस्सय अलियस्स फलविवागं अयाणमाणा वड्ढेति महब्भयं अविस्सामवेयणं दीहकालं बहुदुक्ख संकडं नरय तिरियजोणिं। तेणय अलिएणसमणुबद्धा आइद्धा पुणब्भवंधकारे भमंति भीमे दुग्गतिवसहिमुवगया। तेय दीसंतिह दुग्गया दुरंता परवसा अत्थभोगपरिवज्जिया असुहिता फुडियच्छवि वीभच्छविवन्ना खरफरूसविरत्तज्झामज्झुसिरा निच्छाया लल्लविफलवाया असक्कतमसक्कया अगंधा अचेयणा दुभगा अकंता काकस्सरा हीणभिन्नघोसा विहिंसा जडवहिरन्धया य सम्मणा अकंतविकय करणाणिया णीयजण निसेविणो लोग गरहणिज्जा भिचा असरिसजणस्स पेस्सा, दुम्मेहा लोक वेद अज्झप्प समय सुतिवज्जियानराधम्मबुद्धि वियला अलिएण य तेणं पडज्झमाणा असंतएणा य अवमाणण पट्ठिमंसाहिक्खेव पिसुणभेयण गुरुबंधव-सयण-मित्तवक्खारणादियाइं अब्भक्खाणाइं बहुविहाइं पावेंति, अणुवमाणि ( मणोरमाइ ) हिययमण दूमकाइं, जावज्जीवं दुरुद्धराइ। अणिट्ठखर फरुस वयण तज्जण निब्भच्छण

दीणवेवण्ण विमणा कुभोयणा कुवासमा कुवसहीसु किलिस्संता नेव सुहं, नेव निव्वुइं उवलभंति। अच्चंत विउलदुक्खसयसंप लित्ता। एसो सो अदिण्णादाणस्स फलविवाओ इहलोइओ पर लोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चइ। न य अवेयइत्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति एवमाहंसु नायकुलनंदणो महप्पा जिणोउ वीरवरनामधेज्जो कहेसी य अदिण्ण दाणस्स फल विवागं। एयंतं तितियंपि अदिण्णादाण संडुसगम्मह चवच मेघिप मयकर दुह कर अयसकर वरकरण अरति राति राग दोस मण संकिलेस विर यण अतियणियमि सा विजाग बहुल दीपजणा निसाचिय निरंघास मप्पवचयकारक परमसाहुगरहणिज्ज परपीलाकारक परमकण्ह लेसस्साहियं दुग्गतिविभिवायवद्धणं पुणब्भवकर चिरपरिचिय मणुगय दुरंत (त्तिबेमि) तार तितिय अधम्मदार समत्त ॥ ४ ॥ सू० ८ ॥

छाया—"तस्य चाऽदत्तस्य फलविपाक मजानन्तो वर्धयन्ति महाभयामविश्राम वेदनां दीर्घं कालं बहु दुःख संकुलं नारक तिर्यग्योनिम्। तेन चाऽदत्तेन समनुबद्धा आदिग्धाः पुनर्भवान्धकारे भ्रमन्ति भीमे दुर्गतिवसतिमुपगताः। तेच दृश्यन्ते दुर्गता दुरन्ताः परवशा अर्थभोगपरिवर्जिता असुखिता स्फुटितच्छवि बीभत्सविवर्णा खर परुष विरक्त ध्याम शुषिरा निष्छाया लोलविफलवाचः असंस्कृताऽसत्कृता अग-न्धा अचेतसा दुर्भगा अकान्ता काकस्वरा हीनभिन्नघोषा विहिंस्या जडबधिराऽन्ध काश्च मन्मना अकान्त विकृत करणा नीचा नीच जन निषेविणो लोकगर्हणीया भृत्या असदृशजनस्य प्रेष्या दुर्मेधसः लोकवेदाध्यात्म समय-श्रुति-विवर्जिता नरा धर्मबुद्धि विकलाः अशोकेन च तेन प्रदह्यमाना असातकेन च दह्यमानाः-पृष्ठमांसापकर्षण विदुम भेदन गुरुवाक्य च स्वजन निन्दा पशारद्यादिकानि-अभ्याख्यानानि बहुविधानि प्राप्नुवन्ति। असमोरमाणि हृदयमनोदवकानि यावज्जीवं दुरुद्धराणि। अनिष्ट खर परुष वचन तर्जन निर्भर्त्सन दीन वदन विमनसः कुभोजनाः कुवाससः कुवसतिषु क्लिश्यन्तो नैव सुखं नैव निर्वृतिमुपलभन्तेऽत्यन्त विपुल दुःखशतसम्प्रदीप्ताः। एष सोऽदत्तादानस्य फल विपाक ऐहलौकिकः पारलौकिकोऽल्पसुखो बहुदुःखो महाभयो

बहुरजः प्रगाढो दारुणः कर्कशोऽसातो वर्षसहस्रैमु च्यते, नचाऽवेदयित्वाऽस्ति हि मोक्ष इति। एवमाख्यातवान् ज्ञातकुल नन्दनो महात्मा जिनस्तु वीव वर नाम धेयः कथ यियाति चालीकवचनस्य फल विपाकम्। एतत्द्वितीयमपि अलोक वचनं लघु स्वक लघुचपलभणित भयङ्करं दुःखकरमयशस्कर वैर कारकम् अरति रतिरागदोष-मनः सङ्क्लेश विरचनम् अलीक निकृतिसाति योग बहुल नीच जननिषेवितं नृशंसम-प्रत्ययकारक परमसाधु गर्हणीय पर पोडा कारक परम कृष्णलेश्या सहित दुर्गति विनिपातवर्द्धनं पुनर्भवकर चिरपरिचया (चिता,) ऽनुगतं दुरन्त (दुरुक्त) इति प्रविमी द्वितीयम धर्मद्वारसमाप्तम्॥ २॥ सूत्र ४। ८॥

अन्व—"(तस्सय) और उस (अलियस्स) झूठ के (फलविवागं) फलरूप परिणाम को (अयाण माणा) नहीं जानते हुए (महब्भयं) भयङ्कर (अविस्सामवे-यणं) अविश्रान्त वेदना वाली (दीहकाले) दीर्घ काल की स्थितियुक्त (बहु दुक्ख सकड) बहुत दुःखों से पूर्ण-ऐसे (नरय तिरिय जोणिं) नरक और तिर्यग्योनि को (वड्ढेंति) बढाते हैं, (तेणय अलिएण) और उस झूठ से (समणुबद्धा) अच्छी तरह बंधे हुए (आइद्धा) अच्छी तरह से बढे हुए (भीमे) भयङ्कर (पुणब्भवध कारे) पुनर्भव-जन्म न्तर रूप अन्धकार में (दुग्गति वसहि मुवगया) दुर्गतिवास को प्राप्त हुए (भमंति) भटकते हैं (तेय) और वे-मृषावादी (दोसविह) इस संसार में ऐसे दिखते हैं (दुग्गया) बुरी हालत वाले (दुरता) दुःख मय अन्त वाले (परवसा) पराधीन (अत्थभोगपरिवज्जिया) धन और धनोपभोग से हीन (असुहिया) सुख से या मित्र से रहीत (फुडियच्छवि बीभच्छविवन्ना) फटी हुई चमडी वाले, विकार युक्त रूप और खराब वर्ण वाले हैं (खर फरुस विरत्तज्झाम ज्झुसिरा) अत्यन्त कर्कश स्पर्श वाले, निरानन्द, कान्तिहीन और सारहीन शरीर वाले (निच्छाया) शोभा रहित (लल्ल विफलवाया) अव्यक्त व सफलता से रहित वाणी वाले (असक्कत मसक्कया) सत्कार और सत्कार से रहित हैं (अगंधा) बदबूदार देह वाले-दुर्गन्ध (अचेयणा) विशिष्ट चेतना से हीन (दुभगो) दुर्भगय कमनसीब (अकंता) अशोभन (काकसरा) काक के समान रूक्ष स्वर वाले (हीण भिन्न घोसा) धीमी और अस्फुट-फटे हुए स्वर यानी आवाज वाले (विहिंसा) विशेष हिंसा वाले (य) और (जड वहिरंधया) गूंगे बहरे तथा अन्धे व (मम्मणा) अव्यक्त बोलने वाले होते हैं (अकंत विकयकरणा) सुन्दरता रहित विकृत इन्द्रिय वाले (णीया) नीच (नीयजण निसेविणो) नीच जनों की सेवा करने वाले (लोग

गरहणिज्जा ) लोक में निन्दनीय ( भिक्षा ) शून्य ( मसरिस उज्जास पेसवा ) अपमान होने वाले लोगों के नौकर या द्वेषपात्र होते हैं ( दुम्मेहा ) दुष्ट बुद्धि ( लोक वेद अज्झप्प समयसुतिवज्जिया ) लोकशास्त्र–भारत आदि, वेद–ऋक् साम आदि अध्यात्म शास्त्र–मनो विजय का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र और समय–जैन बौद्ध आदि सिद्धान्तशास्त्र इन सबोंसे परिवर्जित अर्थात् शास्त्र ज्ञान से शून्य ( धम्म बुद्धि वियला ) धर्म बुद्धि से विकल ऐसे ( नरा ) नर ( अलियेण य तेणं ) उस पूर्व कथित अलीक भाषण रूप पाप से ( पडज्झमाणा ) जलते हुए ( असंतयएण य ) और अनुप शान्त मृषावाद रूप पाप से ( अवमाणणपिट्ठिमंसा हिक्लेस पिसुण भेयण गुरु बंधव सयण मित्त वक्खारणादियाइं ) अपमान परोक्ष में दूषण प्रकट करना–निन्दा और चुगल खोरी से परस्पर का प्रेम भङ्ग और गुरु बान्धव, स्वजन तथा मित्र जनों के तिरस्कार वचन इत्यादिक ( बहु विहाइं ) बहुत प्रकार के ( अब्भक्खाणाइं ) झूठे आरोपों को ( पावेंति ) प्राप्त करते हैं जो ( अमणो रमाइं ) अमनो रम ( हियय-मणदूमकाइं ) हृदय और मन को जलाने वाले–सन्ताप करने वाले तथा ( जाव-ज्जीवं ) जीवन पर्यन्त ( दुरुद्धराइं ) दुःख से पार करने योग्य होते हैं । ( अणिट्ठ खर फरुस वयण तज्जन निब्भच्छण दीण वयण विमणा ) अनिष्ट और अत्यन्त कठोर वचन से तर्जना व निभर्त्सना पाने के सबब कारण जो दीन वदन और उदा समन वाले हैं ( कुभोयणा कुवाससा ) मांस आदि कुत्सित भोजन और खराब वस्त्र वाले हैं ( कुवसहीसु किलिस्संता ) कुग्रामों में क्लेश पाते हुए ( नेवसुहं ) न शारीरिक सुख को और ( नेव निव्वुइं ) न मानस सन्तोष को ही ( उवलभंति ) पाते हैं, ( अच्चं त विपुल दुक्खसय संपलित्ता ) अत्यन्त विशाल सैकड़ों दुःखों से ये जीव जलते रहते हैं । ( अलियवयणस्स ) झूठ बोलने का ( एसोसो ) यह ऊपर कहा हुआ वह ( फल विवागो ) फल रूप परिणाम ( इहलो इओ परलोइओ ) इस लोक सम्बन्धी तथा परलोक सम्बन्धी ( अप्पसुहो बहु दुक्खो ) अल्पसुख व अधिक दुःख वाला है ( महब्भओ महाभय का कारण ( बहुरयप्पगाढो ) कर्म रज की अधिकता से उत्पन्न गाढ ( दारुणो ) हृदय को विदारण करने वाला ( कक्कसो ) कठोर ( असाओ ) दुःख रूप ( वाससहस्से० ) हजारों वर्षों से ( मुच्चइ ) छूटता है ( नय अवेदित्ता ) किन्तु बिना भोगे ( अत्थिहु मोक्खोत्ति ) मोक्ष–बन्धन से मुक्ति नहीं होती है ( नाय कुल नन्दणो ) ज्ञात कुल नन्दन ( जिणो ) जिनवर ( वीर वर नाम धेज्जो ) महावीर नाम वाले ( महप्पा ) महात्मा ने ( एवमाहंसु ) ऐसा कहा है ( य ) और ( अलियवय

गास ) झूठ बोलने के ( एयं ) इस ( फल विवाग ) फल रूप विपाक को ( कहेंसी ) भविष्य मे भी कहेंगे । ( त ) यह ( वितीयपि ) दूसरा भी ( अलिय वयणं ) मृषावाद रूप आस्रव ( लहुस गलहु चवलभ० ) छोटे से छोटे और चञ्चल मनुष्यों से कहा गया तथा ( भयकर ) भयङ्कर ( दुहकर ) दु ख कारक ( अयसकर ) अकीर्ति करने वाला ( वेर करग ) वैर का कारण ( अरतिरति राग दोस मए संकिलेस विरयण ) अरति रति और राग द्वेष रूप मन के सक्लेश को करने वाला ( अलिय नियडि सादि जाग वहुल) झूठ निष्फल कपट और अविश्वास वृत्ति की प्रधानता वाला है (नीयजण-निसेविय ) नीच जनों से सेवित ( निस्सस ) घृणा व दया रहित ( अपच्चय कारकं ) अविश्वास कारक ( परमसाहु गरहणिज्ज ) परम साधुओं से निन्दनीय ( पर पीला-कारक ) दूसरों को पोडा देन वाला ( परम कण्ह लेस सहिय ) परम कृष्ण लेश्या वाला ( दुग्गति विनिवाय वड्ढण ) दुर्गति पतन को बढ़ाने वाला ( पुणब्भवकर ) पुनर्भव जन्मान्तर का कारण (चिर परिचिय मणुगय ) चिर काल का परिचित होने से पाछे रहने वाला तथा ( दुरत ) दु ख से अन्त वाला है। ऐसा मैं कहता हूं। (वितिय अधम्म० ) दूसरा अधम द्वार समाप्त हुआ । २ । सूत्र । ४ । ८ ॥

भावार्थ—'उपरोक्त सूत्र मे कहा गया है कि असत्य वचन के कटु फलों को नहीं जानते हुए झूठे लोग लबे काल के लिये भयङ्कर नरक व तिर्यग् योनि को वढाते हैं। असत्य से युक्त प्राणी पुनर्भव रूप अन्धकार मय कोठे मे दुर्गति भोगते हुए भटकते हैं। मनुष्य होकर भी वे परवश बने हुए साधन हीनता की दशा में बुरी स्थिति का अनुभव करते हैं। शरोर से भी वे लोगों में बुरे दिखते हैं क्यों कि वे गूगे बहरे व अन्धे होते हैं। लौकिक या लोकोत्तर शास्त्र से तथा ज्ञान व बुद्धि से भी वे विकल होते हैं। झूठ रूप पाप के प्रभाव से वे अपमान और तिरस्कार पाते हैं। झूठे आरोप में पडते हैं जो यावज्जीवन के लिये दुरुद्धर होते हैं, इससे दीन बने हुए वे लोग बुरे खान पान रहन सहन और कुग्राम में क्लेश के अनुभव करते हैं, कभी भी शारीरिक सुख व शान्ति नहीं पाते। प्रत्युत सैकडों तरह की दु खाग्नि में जलते रहते हैं। झूठ बोलने के ऐसे उभय लोक सम्बन्धी कुफलों को ज्ञात कुल नन्दन महात्मा भगवान् महावीर ने फरमाया है जो बहुत भयंङ्कर है व हजारों वर्ष तक भोगने पर ही छूटता है। बिना भोगे इससे मुक्ति नहीं होती। यह दूसरा अधर्मद्वार अर्थात् मृषावाद झूठे हलके और चचल लोकोंसे कहा गया है। अन्य उपसहार

पूर्ववत् है। सार यह मृषावाद रूप महापाप नीचों से सेवित व अविश्वास कारक तथा दुर्गति में गिराने वाला और दुरन्त है॥ इति।२।४।सू०८॥

## "अथ तीसरा अधर्मद्वार"

सम्बन्ध दूसरे अध्ययन में असत्य भाषण रूप आस्रव को कहा, अब इस तीसरे अध्ययन में अदत्तादान—चोरी के तीसरे आस्रव को कहते हैं क्यों कि चोरी करने वाले प्राय झूठ बोलते हैं। दूसरी बात असत्य भाषी जीव धर्म, समाज और राज से निषिद्ध वचन बोलते हैं, तथा दूसरे से नहीं कही गई और न की गई बातें कहते हैं और पदार्थों के सत्य रूप को छिपाते हैं जो एक प्रकार से चोरी होती है, इसलिये मृषावाद के अनन्तर तीसरे अध्ययन में अदत्तादान को कहते हैं—

### प्रथम सूत्रकार अदत्तादान—चोरी का स्वरूप कहते हैं—

मूल—"जंबू! तइयच अदत्तादाणं हरदह मरण भय कलुस तासण पर संतिगऽभेज्ज लोभमूलं कालविसम संसिय अहो च्छिन्न तण्ह पत्थाण पत्थोइ मइय अकित्तिकरणं अणज्जं छिद्दमंतर विधुर वसण मग्गण उस्सव मत्तप्पमत्त पसुत वंचणक्खिवण घायण-पराणिहुय-परिणाम-तक्करजण बहुमयं, अकलुण राय पुरिसरक्खियं, सया साहुगरहणिज्जं, पियजण-मित्तजण-भेद विप्पीति कारक, रागदोस बहुलं पुणोय उप्पूर-समर-संगाम-डमर कलि-कलह वेह करणं दुग्गति विणिवाय वड्ढणं, भवपुण ब्भवकरं चिर परिचित मणुगयदुरन्तं, तइयं अधम्मदारं सू ।१६॥

छाया—'जम्बू! तृतीयम् अदत्ताऽऽदानं हर दह मरण भयकलुष त्रासन पर सत्काऽभिध्या लोभ मूलं काल विषम संश्रितम् अधो च्छिन्न तृष्णा-प्रस्थान-प्रस्थोइ मतिकम् अकीर्तिकरणम् अनार्य छिद्रान्तर विधुर व्यसन मार्गणोत्सव मत्त प्रमत्त प्रसुप्त वञ्चनाऽऽक्षेपण घातन पराऽनिभृत परिणाम तस्करजन बहुमतम् अकरुणं राज पुरुष रक्षितं सदा साधुगर्हणीयं प्रियजन मित्रजन भेद विप्रीति कारकं रागद्वेष बहुलं पुनश्च उत्पूर समर संग्राम डमर कलिकलह वेध करणं दुर्गति विनिपात वर्द्धनं भव पुनर्भव करं चिर परिचितमनुगतं दुरन्तं तृतीयमधर्मद्वारम्। १॥ सू० ९॥

अन्व०—"सुधर्म स्वामी कहते हैं-'( जबू ! ) हे जम्बू ! (तइयच) आस्रव द्वारों में तोसरा आस्रव द्वार ( अदत्तादाणं ) अदत्त का ग्रहण करना- चौर्य कर्म है जो (हर दह मरण भय कलुस तासण-) अमुक के द्रव्य का हरण कर, तथा जला ऐसी प्ररणा करना अथवा हरण, दहन और मरण व भयरूप पातक के त्रास उत्पन्न करने वाला ( परिसतिगऽभेज्ज लोभ मूल ) दूसरे के धन मे रौद्र ध्यान युक्त लोभ-मूर्च्छा ही जिसका मूल है ऐसा ( काल विसम ससियं ) आधो रात आदि काल और पर्वत आदि विषम स्थान मे जो आश्रित है ( अहोऽच्छिन्न तण्ह पत्थाण पत्थोइ मइय ) नीच गतियों की ओर लोभियों के प्रस्थान करने मे प्रेरणा करने वाली बुद्धि को रखने वाला ( अकित्ति करणं ) अकीर्ति करने वाला और ( अणज्जं ) अनार्य कर्म है ( छिद्दमतर विधुर वसण मग्गण-उस्सव मत्तप्पमत्त पसुत्त वंचणक्खिवण घायण पराणि हुय परिणाम तक्करजण बहुमय ) छिद्र-प्रवेश का मार्ग, अन्तर-समय मौका तथा विधुर-नाश-दोष, व्यसन-राजादिसे होने वाला कष्ट इन को खोजना उत्सवों मे मस्त और प्रमादी बने हुए तथा सूते हुए का ठगना, चित्त को व्यग्र बना देना और मारना इन सब मे तत्पर और अनुप शान्त परिणाम वाला तथा चोरों से मान पाने वाला है [ वाचनान्तर मे-(छिद्द विसम पावग) छिद्र और विषम समय में होने वाला पाप ( अणिहुय परिणाम ) सक्लेश युक्त परिणाम वाला ] ( अकलुण ) करुणा रहित—निर्दय ( राय पुरिसरक्खिय ) राज पुरुषों से रक्षित अर्थात् राज-पुरुषों सेरोका गया ( सया ) सदा ( साहु गरहणिज्ज ) साधु पुरुषों से गर्हा करने योग्य, निन्दित ( पियजण मित्तजण भेद विप्पोति कारक ) प्रियजन व मित्र जनों के भेद तथा अप्रीति को करने वाला ( राग दोष बहुलं ) राग द्वेष को अधिकता वाला ( पुणोय ) और फिर ( उप्पूर समर सगाम डमर कलि कलह वेह करण ) अधिकता से जन सहारक जो सग्राम मोरचा डमर-भय के कारण रण से भागना विड्डर-पाप युक्त कलह और पश्चत्ताप इन-सब को वढाने वाला ( दुग्गइ विणिवाय वड्ढण ) दुर्गति में पतन को बढ़ाने वाला ( भवपुण ब्भवकर ) और संसार मे वारवार जन्म कराने वाला तथा ( चिर परिचिय मणुगय ) चिर काल का परिचित होने से अनुगत-साथी और ( दुरत ) दुख से अन्त वाला ऐसा ( तइय ) तोसरा ( अहम्मदार ) अधर्म द्वार है ॥ सू० १।९॥

भावार्थ—इस सूत्र मे सुधर्म स्वामी ने अदत्तदान-चोरीका स्वरूप कहा है । यह

हरण आदि से त्रास पैदा करने वाला है। इसका मूल लोभ है। यह चोरी कर्म प्रायः विषम स्थान और कुसमय में किया जाता है। दुर्गति के अनुकूल समस्त वाला अकीर्ति कारक और अनर्थ कर्म है। यावत् प्रेमी मनों में भेद भाव अप्रीति उत्पन्न करने वाला तथा राग द्वेष की प्रधानता वाला है। जनसंहारक संग्राम-लड़ाई तथा पश्चात्ताप का कारण है। दुर्गति में गिराने वाला और चिर काल तक संसार में जन्म धारण करके भी दुःख से अन्त करने योग्य है। इस प्रकार उभय लोक में अहित कारक यह चोरी कर्म तीसरा अधर्म द्वार है ॥ १।९ ॥

## अथ दूसरा नाम द्वार कहते हैं—

मूल—'तस्स य णामाणि गोण्णाणि होंति तीसं, तंजहा चोरिक्कं १ परहडं २ अदत्तं ३ कूरिकडं ४ परलाभो ५ असंजमो ६ परधणम्मि गेही ७ लोलिक्कं ८ तक्करत्तणंति य ९ अवहारो १० हत्थ (लहु) त्तणं ११ पावकम्मकरणं १२ तेणिक्कं १३ हरण विप्पणासो १४ आदियणा १५ लुंपणा धणाणं १६ अप्पच्चओ १७ अवीलो १८ अक्खेवो १९ खेवो २० विक्खेवो २१ कूडया २२ कुलमसीय २३ कंखा २४ लालप्पण पत्थणाय २५ (आससणाय) वसणं २६ इच्छामुच्छाय २७ तण्हागेही २८ नियडिकम्मं २९ अपरच्छंति ३० वि य तस्स एयाणि एवमाईणि नामधेज्जाणि होंति तीसं अदिन्नादाणस्स पावकलिकलुस कम्मबहुलस्स अणेगाइं ॥ सू० २।१० ॥

छाया—"तस्य च नामानि गौण्यानि भवन्ति त्रिंशत् तानि यथा—"चौरिक्यम् १ परहृतम् २ अदत्तम् ३ क्रूरिकृतम् ४ परलाभः ५ असंयमः ६ परधने गृद्धिः ७ लौल्यम् ८ तस्करत्वमिति ९ अपहारः १० हस्तलघुत्वम् ११ पाप कर्म करणम् १२ स्तैनिका १३ हरण विप्रणाशः १४ आदानम् १५ लोपना धनानाम् १६ अप्रत्ययः १७ अवपीडः १८ आक्षेपः १९ क्षेपः २० विक्षेपः २१ कूटता २२ कुलमषी च २३ कांक्षा २४ लालपन प्रार्थना च २५ आशंसनाय व्यसनम् २६ इच्छामूर्च्छा च २७ तृष्णागृद्धिः २८ निकृति कर्म २९ अपरोक्षम् (परा) क्षम् ३०। इत्यपि तस्य तानि एवमादीनि नामधेयानि भवन्ति त्रिंशत्, अदत्तादानस्य पाप कलिकलुष कर्म बहुलस्यानेकानि ॥ सू० २।१० ॥

# अदत्तादान के नाम कहते हैं—

अन्वयार्थ—"( तस्सय ) उस चौर्यकर्म के ( गोण्णाणि ) गुण-निष्पन्न ( तीसं ) तीस ( णामाणि ) नाम ( होंति ) होते हैं ( तंजहा ) वे इस प्रकार हैं ( चोरिक्कं ) चुरालेने से 'चोरिका' कहते हैं, ( परहड ) दूसरे के पास से हरण करने से 'परहृत, कहाता है ( अदत्त ) बिना दिया हुआ होने से 'अदत्त' ( कूरिकड ) और क्रूरचित्त वाले से किया जाने के कारण इसे' क्रूरिकृत' कहते हैं ( परलाभो ) दूसरे के श्रम और आश्रय का लिया जाता है इसलिये' परलाभ' ( असजमो ) तथा उसमें संयम नहीं रहता, वास्ते यहअसंयम कहाता है ( परधणमिंगेही ) दूसरे के धन में लालच होने से चोरी की जाती है वास्ते इसे परधनगृद्धि ( लोलिक ) और लौल्य कहते हैं ( य ) और ( तक्करत्तणत्ति ) चोर का कर्म होने से 'तस्करत्व' है ( अवहारो ) स्वामी की इच्छा बिना लिया जाता है इसलिये 'अपहार' कहते हैं ( हत्थलहुत्तणं ) दूसरे के धन को चुराने से जिसका हाथ कुत्सित है उ सका कार्य, अथवा हाथ की चालाकी के कारण इसको 'हस्तलघुत्व' कहते हैं ( पावकम्मकरण ) इसे 'पाप कर्म करण' भी कहते है ( तेणिक्कं ) चोर का कार्य होने से इसको 'स्तेनिका' कहते हैं ( हरण विप्पणासो ) चुरा के दूसरे के धन को नष्ट करने के कारण यह 'हरण-विप्रणाश' कहाता है ( आदियणा ) परधन का ग्रहण करने से इसको 'आदान' कहते हैं ( लुपणा धणाण ) धन को लुप्त करने से 'धनलुम्पना' कहाता है ( अप्पचओ ) अविश्वास का कारण होने से इसे 'अप्रत्यय' कहते हैं ( ओवीलो ) दूसरों को पीड़ा करने से 'अवपीड' ( अक्खेवो ) पर द्रव्य को अलग रखने से 'आक्षेप' ( खेवो ) क्षेप और ( विक्खेवो ) 'विक्षेप भी कहते' हैं ( कूडया ) तराजू आदि को खोटा करना भी चोरी है इसलिये इसको 'कूटता' कहते हैं ( कुलमसी ) कुलको मलिन करने के कारण 'कुलमषी' ( य ) और ( कखा ) तीव्र इच्छा के कारण यह 'कांक्षा' कहाता है ( लालप्पणपत्थणा ) निन्दित-लाभ की प्रार्थना करने से या दीन वचन युक्त प्रार्थना करने से 'लालपन-प्रार्थना' ( य ) और ( वसणं ) विपत्ति का कारण होने से 'व्यसन' कहाता है ( इच्छामुच्छा ) परधन में इच्छा व आसक्ति होने से 'इच्छा मूर्च्छा' ( य ) और ( तण्हागेहो ) प्राप्त द्रव्य का मोह व अप्राप्त की वांछा होने से 'तृष्णागृद्धि' कहते हैं ( नियडि कम्म ) कपट से यह कार्य किया जाता है इसलिये 'निकृति कर्म' कहते हैं ( अपरच्छंतिविय ) और यह दूसरे की दृष्टि से छिपाके किया जाता है; वास्ते इसे 'अपराक्ष' भी कहते हैं। ( तस्स आदि ) उस

अदत्ता दान के ( एयामि ) उपरोक्त ( तीसं ) तीस ( नाम धेज्जाणि ) नाम ( होंति ) होते हैं और ( एवमाईणि ) इत्यादि ( पाव-कलि कलुस-कम्म बहुलस्स ) पाप और कलह से मलिन मित्र द्रोह आदि कर्मो की अधिकता वाले अदत्तादान के ( अणेगाइं ) अनेक नाम हैं ॥ सू।२।१०॥

भावार्थ— इस अदत्ता दान के तीस नाम हैं, जैसे-चोरिका १ परहृत २ अदत्त ३, क्रूरिकृत ४, परलाभ ५, असंयम ६, पर धन गृद्धि-७, लौल्य ८,त स्करत्व ९ अपहार १०, हस्तलघुत्व ११ पापकर्मकरण १२ स्तैन्य १३, हरण विप्रणाश १४ आदान १५, धनलुम्पना १६, अप्रत्यय १७, अवपीडन १८ आक्षेप १९, क्षेप २०, निक्षेप २१ कूटता २२, कुलमषी २३, कांक्षा २४ लालपन प्रार्थना २५, व्यसन २६ इच्छामूर्छा २७, तृष्णा गृद्धि २८, निकृति कर्म २९ और अपराध ३०, ये अदत्तादान के तीस नाम हैं। पाप और कलह से मलिन कर्म युक्त ऐसे उसके अनेक नाम होवे हैं ॥ २।१०॥

## अब चौर्यकर्म करने वालों का वर्णन करते हैं—

## इसमें चोरी कौन और कैसे करते यह बताया जायगा,

मूल—"तपुण करेंति चोरियं तक्करा परदव्वहरा छेया कय करण-लद्धलक्खा साहसिया लहुस्सगा अति-महिच्छ-लोभ गत्था दद्दर-ओवीलका य गेहिया अहिमरा अणभंजक-भग्ग संधिया रायदुट्ठ-कारीय विसयनिच्छूट—लोकवज्झा, उद्दोहक गामघायय-पुरघायग-पंथघायग-आलीवग-तित्थ भेया लहुह त्थसपउत्ता जूइकरा खंडरक्खत्थीचार—पुरिसचोर-संधिच्छेया य गंथिभेदग-परधणहरण-लोमावहार अक्खेवी हडकारक निम्मद्दग-गूढचोरक-गोचोरग-अस्सचोरग। दासिचोराय, एए चोरा,—लोकड्डक-संपदायक—उच्छिंपक—सत्थघायक—बिले कोलीकारकाय निग्गाह—विप्पलुंपगा बहुविहतेणिक्कहरण बुद्धी एते अन्नेय एवमादी परस्स दव्वाहि जे अविरया। विपुल बल-परिग्गहा य बहवे रायाणो परधणंमि गिद्धा सएव दव्वे असंतुट्ठा परविसए अहिहणंति, ते लुद्धा परधणस्स कज्जे चउ रंग-विभत्त-बलसमग्गा निच्छिय-वरजोह-जुद्धसद्धिय-अहम

(१) लोमपण (२) विसचोरी कारका वा पा० (३) प इ भ इति पाठेय मान्ये

**हामिति दप्पिएहिं सेन्नेहिं संपरि-वुडा पउम-सगड-सूइ-चक्क-सागर गरूलवूहाइएहिं अणिएहिं उत्थरंता अभिभूय हरंति परधणाइं**

छाया–"तत्पुनः कुर्वन्ति चौर्यं तस्कराः परद्रव्यहराश्छेकाः कृतकरणलब्धलक्ष्याः, साहसिका., लघुस्वका अतिमहेच्छलोभग्रस्ता दर्दराऽपत्रीडकाश्च, गृद्धिकाश्चाऽभिमरा, ऋणभञ्जक-भग्नसन्धिका, राजदुष्टकारिणश्च, विषयनिर्घाटित लोकबाह्या, उद्दोहक-ग्रामघातक-पुरघातक-पथिघातकाऽऽदीपक-तीर्थभेदा लघुहस्तसम्प्रयुक्ता, द्यूतकराः खण्डरक्षस्त्रीचोरकपुरुषचोर—सन्धिच्छेदकाः, ग्रन्थिभेदक—परधनहरण—लोमापहाराक्षेपिणः, हठकारकाः, निर्मर्दक—गूढ चौर-गोचौराऽश्वचोर—दासीचौराश्च, एकचौराः, अपकर्षक—सम्प्रदायकाऽवच्छिम्पक-सार्थघातक-बिलकोलीकारकाश्च, निर्ग्राह-विप्रलोपका, बहुविधस्तेनकरणबुद्धय., एतेऽन्ये चैवमादयः परस्य द्रव्याद् येऽविरताः। विपुलबलपरिग्रहाश्च बहवो राजानः परधनेषु गृद्धा, स्वके द्रव्येऽसन्तुष्टाः, परविषयानभिघ्नन्ति, ते लुब्धाः परधनस्य कार्ये चतुरङ्ग-विभक्तबलसमग्रा निश्चित वरयोध-युद्धश्रद्धिताऽहमहमिकादर्पितैः सैन्यैः सम्परिवृताः पद्मशकट-सूची—चक्र-सागर-गरुड-व्यूहादिकैरनीकैरुत्तरन्तोऽभिभूय हरन्ति परधनानि। सू०। ३।१०॥

अन्वयार्थ—"(तंपुण) फिर उस (चोरियं) चोरी को (तकरा) तस्कर (करेंति) करते हैं, जो (परदव्वहरा) पर द्रव्य का हरण करने वाले (छेया) कुशल (कयकरण लद्धलक्खा) बहुत बार चोरी कर्म को किये हुए और अवसर को जानने वाले हैं, (साहसिया) साहसिक (लहुस्सगा) तुच्छ आत्मा वाले (अतिमहिच्छलोभगत्था) बहुत बड़ी इच्छा वाले और लोभ से ग्रस्त (य) और (दद्दर ओवीलका) वचनों के आडम्बर से जो अपने आत्मस्वरूप को विशेष लजाने वाले या पीड़ा पहुचाने वाले हैं, (गेहिया) अतिलोभी (अहिमरा) सामने आए हुए को मारने वाले (अण भजक भंग सधिया) ऋण को नहीं देने वाले और विरोध में सन्धि को तोड़ने वाले हैं (य) और (रायदुट्ठकारी) खजाना लूटना आदि राज विरुद्ध कार्य करने वाले (विसयनिच्छूढ—लोकवज्झा) विषय अर्थात् देश से निकाले हुए तथा लोक से बाहर निकाले गए (उद्दोहक गामघायय पुरघायग पंथघायग आलिवग तित्थभेया) घातक तथा ग्राम, नगर, और मार्ग में घात करने वाले-लूटने वाले, जलाने वाले तथा तीर्थ में भेद करने वाले (लहुहत्थ सपत्ता) हाथ की चालाकी से युक्त (जूईकरा) जुआरी (खंड रक्खत्थीचोर पुरिसचोर संधिच्छेया) चूंगी लेने-वाले या कोतवाल, स्त्री चोर-स्वय स्त्री को या स्त्री के पास से अथवा स्त्री रूप

बनकर चुराने वाले, पुरुष चोर-पुरुष को चुराने वाले और संधि छेदक-खात खोदने वाले ( च ) और ( गंथिभेदग ) ग्रन्थि काटने वाले ( परधन हरण लोमावहार अक्खेवी ) परधन हरने वाले, निर्दयता से या भय से दूसरों को मारकर चुराने वाले-लोमावहार, वशीकरण आदि के द्वारा आक्षेप करके चुराने वाले ( हडकारग हठसे चोरी करने वाले, ( निम्मद्दग गूढचोरग गोचोरग अस्सचोरग दासिचोरा ) सदा दूसरे का उपमर्द करने वाले, गुप्त चोर, गो चोर-गौ चुराने वाले अश्व चुराने वाले और दासी चुराने वाले ( य ) और ( एगचोर ) अकेले चोरी करने वाले ( ओकड्ढक संपदायक उच्छिंपक सत्थघायक बिलकोलीकारक ) घरसे द्रव्य निकालने वाले या चोरों को बुलाकर दूसरों के घर चुराने वाले, अथवा चोरों को सहायता पहुंचाने वाले, संप्रदायक-चोरों को भोजन आदि देने वाले उच्छिंपक सार्थ घातक समूह को लूटने वाले बिलकोली-दूसरे को धोखा देने के लिये बनावटी आवाज से बोलने वाले ( य ) और ( निग्गाह विप्पलुंपगा ) राजा से निगृहीत और छल से आज्ञा को लुप्त करने वाले ( बहुविह तेणिक्क हरण बुद्धी ) बहुत प्रकार की चोरी से हरण करने की बुद्धिवाले ( एते ) ये ( अन्नेय ) और ऐसे ही दूसरे ( एवमादी ) इत्यादि ( जे ) जो ( परस्स ) दूसरे के ( दव्वाइ ) द्रव्य आदि में ( अविरया ) इच्छा से अनिवृत्त हैं अर्थात् परधन की लालच रखते हैं। ( विपुलबलपरिग्गहा य ) और अधिक बल व अधिक परिवार वाले ( बहवे ) बहुत से ( रायाणो ) राजा लोग ( परधणंमि० ) दूसरे के धन में गृद्ध-मूर्छावाले ( सए य दव्वे ) तथा अपने द्रव्य में ( असंतुट्ठा ) सन्तोष नहीं रखने वाले ( परविसए ) दूसरे के देश पर ( अभिहणंति ) आक्रमण करते हैं अर्थात् चढ़ाई करते हैं ( ते लुद्धा ) वे लोभी बने हुए ( पर धणस्स कज्जे ) दूसरे के धन के लिये ( चउरंग-विभत्तबलसमग्गा ) चार अङ्गों-हाथी, घोड़े, रथ व पैदल सेना-रूप भेदों से विभक्त-बटे हुए सैन्य बल से युक्त ( निच्छियवरजोह जुद्धसद्धिय अहमहमिति दप्पिएहिं ) विश्वास पूर्ण उत्तम योद्धाओं के साथ युद्ध करने में श्रद्धावाले और आत्माभिमान से दर्प वाले ( सेन्नेहिं ) भृत्य या सैन्यों से (संपरिवुडा) घिरे हुए ( पउम-सगड-सूइ-चक्क-सागर गरुलवूहा-दिएहिं ) पद्मव्यूह, शकटव्यूह, सूचीव्यूह, चक्रव्यूह, सागरव्यूह और गरुडव्यूह इनसे रचे गए ( अणिएहिं ) सैन्यसमूहों से ( उत्थरंता ) पर सैन्य को दबाते हुए ( अभिभूय ) उन्हें जीत कर ( हरंति परधणाई ) पर धन को हरण करते हैं। सू० । ३ । १० ॥

सूत्र—"अवरे रणसीसलद्धलक्खा संगामंमि अतिवयंति सन्नद्ध—बद्धपरियर-उप्पीलियचिंधपट्टगहियाउहपहरणा, माढिवरवम्मगुंडिया, आविद्ध-जालिका, कवयकंकडइया उरसिर-मुहबद्धकंठतोणमाइतवरफलहरचितपहकर-सरहस खरचाव—करकरंछिय- सुनिसितसरवरिस—चडकरक—मुयंतघणचंडवेग-धारानिवायमग्गे, अणेगधणुमंडलग्गसंधिता—उच्छलिय-सत्ति-कणग-वामकरगहिय-खेडग- निम्मलनिक्किट्ठखग्ग—पहरतकोंत तोमर-चक्क-गया-परसु मुसल-लंगल-सूललउल-भिंडमाला-सब्बल पट्टिस-चम्मेट्ठ-दुघण-मोट्ठिय -मोग्गर-वरफलिहजंतपत्थर-दुहण-तोण--कुवेणी--पीढकलिय-ईलीपहरण-मिलिमिलि मिलंत-खिप्पंत—विज्जुजल-विरचित-समप्पहणभतले, फुडपहरणे महारण-संखभेरि—वरतूर —पउरपडुपडहाहय—णिणायगंभीरणंदित-पक्खुभियविपुलघोसे, हय-गय-रह-जोह-तुरितपसरितउद्धत तमंधकारबहुले, कातरनर-णयण-हिययवाउलकेर, विलुलिय-उक्कडवरमउड-तिरीड-कुंडलोडुदामाडोवियम्मि पागडपडाग-उसियज्झय-वेजयंति-चामरचलंत-छत्तधकारगंभीरे, हयहेसिय-हत्थिगुलुगुलाइय—रह-घणघणाइय-पाइक्क-हरहराइय अप्फोडियसीहनाया, छेलियविघुट्ठुक्कुट्ट-कंठगय-सद्दभीमगज्जिए, सयराह-हसंत-रुसंत-कलकलरवे, आसूणियवयणरुद्दे, भीम-दसणाधरोट्ठ-गाढदट्ठे, सप्पहरणुज्जयकरे, अमरिसवस-तिव्व-रत्त-निद्दारितच्छे, वेरदिट्ठिकुद्धचिट्ठिय-तिवली-कुडिल-भिउडि-कयनिलाडे, वहपरिणय—नरसहस्स—विक्कम—वियंभियबले, वग्गंततुरग—रहपहाविय -समरभडा, आवडिय-छेय—लाघव-पहारसाधिता, समूसवियबाहुजुयले, मुक्कट्टहास-पुक्कंतबोल-बहुले, फुरफलगावरण-गहिय-गयवर-पत्थित-दरिय-भडखल-परोप्पर-पलग्गजुद्ध-गव्वित-विउसित-वरासिरोसतुरियअभिमुह पहरित-छिन्नकरिकरविभंगित करे, अवइद्ध-निसुद्ध-भिन्न-फालिय-

पगलिय—रुहिरकतभूमिकद्दम—चिलिचिलपहे, कुच्छिदालिय गलित-रुलित-निभेलुंतत—फुरफुरंतविगलमम्महयविकय-गाढदिन्नपहारमुच्छित—रुलंत-वेंभलविलावकलुणे, हय-जोह भमततुरग—उद्दाममत्तकुंजर-परिसंकित-जणनिव्वुक-च्छिन्न धयभग्गरहवरनट्ठसिर-करि कलेवराकिन्न, पतितपहरणविकिन्ना भरणभूमिभागे, नच्चंतकबंधपउर—भयंकरवायस—परिलेंत गिद्धमंडलभमंतच्छायंधकारगंभीरे, वसु—वसुह-विकंपितव्व-पच्चक्खपिउवणं, परमरुद्दबीहणगं, दुप्पवेसतरगं अभिवयंति, संगामसंकडं परधणं महंता, अवरे पाइक्कचोरसंघा सेणावति चोरवंदपागड्डिकाय अडवीदेसदुग्गवासी काल-हरित-रत्त पीत-सुक्किल-अणेगसयचिंधपट्टबद्धा, परविसए अभिहणंति लुद्धा, धणस्स कज्जे रयणागरसागरं उम्मीसहस्समालाउलाकुल वितोय-पोतकलकलेंतकलिय, पायालसहस्स-वायवस-वेग सलिल उद्धम्ममाण दगरयरयंधकार वरफेण पउर धवल पुलं पुल समुट्ठियट्टहासं, मारुयविच्छुब्भमाण पाणियजल मालुप्पी लहुलिय, अवि य समंतओ खुभिय-लुलिय-खोखुब्भमाण पक्खलिय चलिय विपुलजल चक्कवाल महानई वेगतुरिय आपूरमाण गंभीर विपुल आवत्त चवल भममाण गुप्पमाणुच्छलंत पच्चोणियत्त पाणिय, पधाविय खर फरुस पयंडवाउलिय सलिल फुट्टंतवीतिकल्लोल-संकुलं, महामगर मच्छकच्छभोहार गाह तिमि सुंसुमार सावय समाहय समुद्धायमाणक पूर घोरपउर कायरजण हिययकंपणं, घोरमारसंतं महब्भयं भयंकरं पतिभयं उत्तासणगं अणोरपारं आगासं चेव निरवलंबं उप्पाइय पवण धणिय नोल्लिय उवरुवरि तरंग दरिय अतिवेगवेग चक्खुपहमुच्छरंतं कत्थइ गंभीर विपुलगज्जिय गुंजिय निग्घाय गरुय निवतित सुदीह नीहारि दूरसुव्वंत गंभीर धुगधुगंतसद्दं, पडिपहरुंभंत जक्खरक्खस कुहंड पिसाय रुसियतज्जाय उवसग्ग सहस्स

संकुलं बहुप्पाइयभूय, विरचित बलिहोम धूवउवचार-दिन्न रुधिरच्चणाकरणं पयतजोगपयय चरियं, परियंत जुगंतकाल कप्पोवमं, दुरंतमहानई नईवइ महाभीमदरिसणिज्जं, दुरणुच्चर, विसमप्पवेसं दुक्खुत्तारं दुरासयं लवणसलिल पुण्णं असिय सिय समूसियगेहिं दच्छ (हत्थ) केहिं वाहणेहिं अइवइत्ता समुद्दमज्झे हणंति गतूण जणस्स पोते, परदव्वहरा नरा निरणुकपा निरवयक्खा गामागर-नगर-खेड-कव्वड-मडंव-दोणमुह-पट्टणा-समणिगमजणवते य धणसमिद्धे हणंति, थिर-हियय-छिन्नलज्जावंदिगह गोग्गहेय गेण्हंति, दारुणमती णिक्किवा णियं हणंति छिंदंति गेहसंधिं, निक्खित्ताणिय हरीत धणधन्न दव्वजायाणिजणवयकुलाणं णिग्घिणमती परस्स दव्वाहिं जे अविरया। तहेव केई अदिन्नादाणं गवेसमाणा कालाकालेसु संचरंता चियकापज्जलिय सरसदरदड्ढ कड्ढिय कलेवरे, रुहिर लित्तवयण अखतखातिय पीतडाइणि भमंत भयंकरं, जंबुयक्खिक्खियंते, घूयकय घोरसद्दे वेयालुट्ठिय निसुद्ध कह कहित-पहसित बीहणक निरभिरामे, अतिदुब्भिगंध बीभच्छदरिसणिज्जे, सुसाणवण सुन्नघर लेण अंतरावण गिरिकंदर विसम सावय समाकुलासु, वसहीसु, किलिस्संता सीतातव सो सिय-सरीरा दड्ढच्छवी, निरय तिरिय भवसंकड दुक्खसंभार वेयणिज्जाणि पावकम्माणि संचिणता दुल्लहभक्खन्न पाण भोयणा, पिवासिया, झुंझिया, किलंता, मसकुणिमकंद-मूल जंकिंचि कयाहारा, उव्विग्गा, उप्पुया, असरणा अडवीवासं उवेंति वाल-सत संकणिज्जं। अयसकरा तक्करा भयंकरा कास हरामोत्ति अज्जदव्वं इति सामत्थं करेंति गुज्झं। बहुयस्स जणस्स कज्ज-करणेसु विग्घकरा मत्त-पमत्त-पसुत्त-वीसत्थ-छिद्दघाती, वसणब्भुदएसु हरणबुद्धी, विगव्व रुहिरमहिया परेंति नरवति मज्जाय मतिक्कंता, सज्जणजणदुगुछिया सकम्मेहिं पावकम्मकारी असुभ-

परियाया य दुक्खभागी, निच्चाइल दुहमनिव्वुइमणा इहलोके चेव किलिस्सता परदव्वहरानरा वसण सयसमावण्णा ॥ सू० ४ । ११ ॥

छाया—"अपरे रणशीर्षलब्धलक्ष्याः संग्रामेऽतिपतन्ति, सन्नद्धबद्ध परिकरोत्पीडित-चिह्नपट्ट-गृहीताऽऽयुधप्रहरणाः माढीवर-वर्मगुण्ठिता आविद्धजालिकाः कवच-कण्टकिता उरःशिरोमुखबद्धकण्ठतोण माइतवर ( हस्तपाशितवर ) फलक-रचित प्रहकर ( समुदाय ) सरभस खरचापकर कराञ्छित-सुनिशितसर-वर्ष चटकरक मुच्यमान घनचण्डवेगधारानिपातमार्गे, अनेकधनुर्मण्डलाग्र—संधितोच्छलितशक्ति कणक वामकरगृहीत खेटक निर्मल निष्कृष्ट-खड्गप्रहार प्रवृत्त ( प्रहरत् ) कुन्त-तोमर-चक्रगदा-परशु-मुसल लाङ्गल-शूल-लकुट-भिन्दिपाल ( भल्लाक ) शब्बल-पट्टिश-चर्मेष्ट द्रुघण मौष्टिक-मुद्गर-वरपरिघ-यन्त्रप्रस्तर-द्रुघण-तोण-कुवेणी-पीठ—कलिते इलीप्रहरण—मिलिमिलायमान ( मिलिमिलिमिलिकत् ) क्षिप्यमाण-विद्युज्ज्वल-विरचितसमप्रभनभस्तले स्फुटप्रहरणे महारण शंखभेरी-वरतूर्य-प्रचुर-पटुपटहाऽऽहत-निनादगम्भीर—नन्दितप्रक्षुब्ध-विपुलघोषे, हय—गज—रथ—योध-त्वरितप्रसृतरजोद्धत—तमोऽन्धकारबहुले, कातर—नर—नयन—हृदय—व्याकुलकरे विलुलितोत्कटवरमुकुट—किरीट कुण्डलोडुदामाटोपिके, प्रकटपताकोच्छ्रित-ध्वज-वैजयन्ती-चामर-चलच्छत्रान्धकारगम्भीरे, हयहेषित हस्ति—गुलगुलायित-रथघन-घनायित पदातिहरहरायितास्फोटितसिंहनादे सेण्टित ( छेलित ) विघुष्टोत्कृष्ट-कण्ठकृत-शब्द—भीमगर्जिते सहहसद्रुष्यत्कलकलरवे आशूनित—वदनरौद्र, भीमदशनाधरोष्ठगाढदष्टे सत्प्रहरणोद्यतकरे, अमर्षवश—तीव्ररक्तनिर्दारिताक्षे वैरदृष्टि-क्रुद्धचेष्टित—त्रिवलीकुटिल—भृकुटि—कृतललाटे, वधपरिणत—नरसहस्र-विक्रम-विजृम्भितबले वल्गत्तुरग-रथ—प्रधावितसमरभटे, आपतित—छेकलाघ-व प्रहारसाधित समुच्छ्रितबाहुयुगल-मुक्ताट्टहास-पूत्कुर्वत् बोल ( कोलाहल )-बहुले स्फुरत्फलकावरणगृहीत—गजवर—प्रार्थ्यमान दृप्त—भट—खलपरस्परप्रलग्न-युद्धगर्वित—विकोशितवरासि—रोषत्वरिताभिमुख—प्रहरच्छिन्नकरिकर—व्यङ्गितकरे, अवविद्ध-निशुद्ध-भिन्न-स्फाटित—प्रगलित—रुधिरकृतभूमिकर्दम—चिक्खल ( चिलि-चिल ) पथे, कुक्षिदारितगलद्—निर्भेलितान्त्र स्फुरस्फुरायमाण-विकल—मर्माऽऽहत-विकृतगाढदत्तप्रहार मूर्च्छित-लुठद्विह्वलविलापकरुणे हतयोध—भ्रमत्तुरगोद्दाम-

खेडग निम्मल निक्किट्ठ खग्ग-पहरंत कोंत-तोमर चक्क-गया-परसु मुसल लंगल सूल भिंडमाला सव्वल-पट्टिस-चम्मेट्ठ-दुवण मोट्ठिय मोग्गर--वर फलिह--जंत-पत्थर-तोण-कुवेणी-पीढ-कलिय ईलो पहरण मिलि मिलि मिलत खिप्पंत विज्जुज्जल चित समप्पहणभतले) अनेक धनुष और मण्डलाग्रखड्ग विशेष, तथा फेंकने को नि हुई तथा उछलती हुई शक्तियों त्रिशूल, और बाण तथा बायें हाथ मे लिये हुए प फलक, निकली हुई उज्जवल चमकदार खड्ग, प्रहार में प्रवृत्त कुन्त-भाले, तोमर चक्र, गदा, परसु-कुठारविशेष, मूशल, लांगल, हल, शूल और लकुट-दण्डा, भिंड शस्त्रविशेष, शव्वल-भाला, पट्टिस-अस्त्रविशेष, चर्मेष्ट--चमडे में बधा प द्रुघण--एक प्रकार का मुद्गर, मौष्टिक--मुष्टि से आने लायक प मुद्गर और बडी आगल--वर परिघा, यन्त्र प्रस्तर--गोफण आदि के पत्थर, द्रु धक्का देकर वृक्ष गिराने का साधन, तोण-तूणीर, कुवेणी, पीठ-आसन इन प्रहरण युक्त रहने वाले तथा ईलो-एक प्रकार के तलवार विशेष ओर फेंके जाते हुए चिकाहट युक्त अन्य प्रहारों से उज्ज्वल बिजली की प्रभा के समान बनी है दीप्ति जि ऐसे आकाश तल से युक्त तथा ( फुड पहरणे ) जहा प्रहरण शस्त्र खुले हुए हैं संग्राम मे, फिर ( महारण--सख-भेरि--वरतूर-पउर--पडुपडहाहय -- णिणाय-ग णंदित पक्खुभिय विपुल घोसे ) महारण सम्बन्धी शंख, भेरी और वरतूय के तथा स्पष्ट ध्वनिवाले बजाये गए पटह के गम्भीर निनाद्-ध्वनि--से जो प्रसन्न भयभीत लोकों के विस्तीर्ण घोष-कोला हल से युक्त है ( हय गय रह जोह दु पवडित उद्धंत तमधकार बहुले ) घोडे, हाथी, रथ और योद्धाओं के गमनाग से शीघ्र फैला हुआ रज ही जहाँ अतिशय प्रबल अन्धकार है वैसे ( कातर नर न हियय वाउल करे ) कायर मनुष्यों के नेत्र और हृदय को व्याकुल करने वाले ( लिय उक्कड-वर मउड-तिरीड - कुडलोडु दामा डाविया ) ढिलाई से चञ्चल अधिक ऊचे जो उत्तम मुकुट तथा तिरीट--तीन शिखर वाला मुकुट विशेष कुण्डल व नक्षत्र माला नामक आभरण विशेष उन से जो चमक और आटोप है, ( पागड-पडाग-ऊसिय ज्झय-वेजयति चामर चलत छत्तंध-कार गभीरे ) की गई पताका तथा ऊंची उठाई हुई ध्वजा और वैजयन्ती--विजय सूचक फायें-और चलते हुए चामर व छत्रों के कारण जो अन्धकार से गम्भीर अ अति अन्धकार वाला है ( हय हेसिय हत्थि--गुळ गुलाइय रह घण घणाइय पाइ हर हराइय अप्फाडिय सीहनाया ) घोडों का हिन हिनाना, हाथी का गल गल...

वाम कृष्टकलेवरे, रुधिरलिप्तवदनाऽक्षतशावितपीतडाकिनीभ्रमणभयङ्करे जम्बुक-खत्खीत्कारिनिनादिते, घूकनकृतघोरशब्दे वेतालोत्थितनिशुद्ध ( निशुद्ध ) कहकहायमान-प्रहसितभयानकनिरभिरामे, अतिदुरभिगन्धबीभत्सदर्शनीये श्मशान-वन-शून्य-गृह-लयनान्तरापण—गिरिकन्दराविषमश्वापदसमाकुलासु वसतिषु क्लिश्यन्तः, शीताऽतप शोषितशरीराः, दग्धच्छवयो निरयतिर्यग्भवसङ्कटदुःखसम्भारवेदनीयानि पापकर्माणि सञ्चिन्वन्तो दुर्लभभक्ष्यान्न पानभोजनाः पिपासिताः, क्षाताः क्लाम्यमानाः मांसकुणपकन्दमूलयत्किञ्चित्कृताहाराः, उद्विग्नाः उत्सुकाः अशरणाः अटवीवासमुपयन्ति व्यालशतशङ्कनीयम्। अयशस्कराः तस्करा भयङ्कराः कस्य हरामोऽद्य द्रव्यम्? इति सामर्थ्यं कुर्वन्ति गुह्यम्। बहुकस्य जनस्य कार्यकारणयो र्विघ्नकराः मत्त-प्रमत्त-प्रसुप्त-विश्वस्त छिद्रघातिनो व्यसनाभ्युदययोर्हरणबुद्धयो वृका इव रुधिरमहिताः पर्यटन्ति, ( पर्यन्ति ) नरपतिमर्यादामतिक्रान्ताः, सज्जनजन जुगुप्सिताः, स्वकर्मभिः पापकर्मकारिणोऽशुभपरिणताश्च दुःखभागिनो नित्याऽविलदुःखाऽनिर्वृतमानसा इहलोके चैव क्लिश्यन्ते परद्रव्यहराः, नरा व्यसनशत समापन्नाः ॥ सू० ४ । ११ ॥

अन्वयार्थ—( अवरे ) दूसरे-स्वयं लड़ने वाले राजा ( रणसीसलद्धलक्खा ) संग्राम के अग्रभाग में अपने लक्ष्य को पाने वाले ( संगामंमि ) संग्राम में ( अतिवयंति ) घुस ही कूद पड़ते हैं ( सन्नद्ध बद्ध परियर उप्पीलिय चिंधपट्ट गहियाउहपहरणा ) तैयारी किये हुए, कवच बांधे हुए, चिह्न पट्ट को मस्तक पर मजबूत बांध कर जो प्रहार करने के साधन-विविध आयुधों को ग्रहण किये हुए हैं फिर ( माढियवरवम्म गुंडिया ) बख्तर व उत्तम चर्म शिरस्त्राण—से सुरक्षित रहने वाले ( आविद्ध जालिका) लोह की जाली पहने हुए ( कवय कंकडइया ) कवच से कटि युक्त शरीर वाले ( उर सिर मुह बद्ध कंठ तोण माइयवरफलग रचित पहकर सरहस खर चाव कर करंछिय सुनिसिय सर वरिस चड करक मुयंत घण चण्डवेग धारा निवाय मग्गे ) जिन्होंने छातो के साथ गले में रूपे मुंह वाले तूणीर बांधे हैं तथा हाथ में लिये हुए प्रधान पाटियों से जिन्होंने दूसरे के शस्त्र प्रहार को विफल करने के लिये समूह बना लिया है तथा वेग वाले या रथयुक्त एवं हाथ में कठोर धनुष को लिये हुए हैं और धनुर्धारियों से छोड़ेगये अतिशय तीक्ष्ण बाणों की मेघ के समान वेग से होने वाली धारा वृष्टि का जहाँ मार्ग है ( अणेग धणुमंडलग्ग संधितउच्छलियसत्ति-कणग-वाम कर गहिय

पगलिय रुहिर कत भूमि कद्दम चिलि चिल्लपहे ) बाण आदि से बींधे गये, अच्छी तरह कटे हुए और जो शरीर विदारण किये गये हैं उनके देह से, गलते हुए रक्त से भूमि पर के मार्ग, कीचड से भराये हैं ऐसे, तथा ( कुच्छि-दालिय-गलित रुलिंत निभेलुत फुरफुरंतऽविगल मम्माहय विकय गाढ दिन्न पहार मुच्छित रुलंत वेंभल विलाव कलुणे ) कुक्षि—पेट मे विदारण करने से जहाँ गला हुआ रक्त बहता है और भूमि पर घायल लोग लुढक रहे हैं, तथा कइओं की पेट से आंतें निकाली गई हैं, ( फुरफुरायमाण ) धूजते हुए और जो अङ्ग से विकल इन्द्रियों की विरुद्ध वृत्ति वाले हैं तथा जो मर्मस्थल मे व्याहत हैं व जिनको बुरी तरह से गाढ प्रहार दिया गया है, इसीलिये जो मूर्छित होकर जमीन पर लौटते और विह्वल बने हैं, उन सबके विलाप से जो स्थान करुणा जनक है वहा ( हय जोह भमंत तुरग उद्दाम मत्त कुंजर परिसंकित जण निव्वु कच्छिन्न धय भग्ग रह वर नट्ठ सिर करि कलेवरा किन्न पतित पहरण विकिन्नाभरण भूमि भागे ) मरे हुए सैनिकों के स्वेच्छा से इधर उधर फिरते हुए घोडे, मद मस्त हाथी और भयभीत मनुष्य तथा 'निवुक्त चिछन्न'—निर्मूल कटी हुई ध्वजायें और टूटे रथ जहाँ दिखाई पडते हैं, फिर कटे हुए मस्तक वाले हाथियों के कलेवरों से भरा हुआ तथा गिरे हुए शस्त्र और बिखरे हुए अलङ्कारों से जहाँ का भूप्रदेश युक्त है ( नचंत कबंध पउर भयकर वायस परिलेंत गिद्ध मंडल भमंतच्छायंधकार गंभीरे ) नाचते हुए-कबंध-बिना शिर के देहों की प्रचुरता वाला तथा डरावने कौए और चारों ओर फैलते हुए गिद्धों के भ्रमण करते हुए मण्डल की छाया से जो गहरे अन्धकार वाला है, ऐसे संग्राम मे (वसुवसुहविकंपितव्व ) देव और वसुधा को कम्पित करने वालों के समान वे राजालोग, ( पच्चक्ख पिउवणं ) साक्षात् पितृवन श्मशान के जैसे ( परमरुद्दबीहणग ) परम-रौद्र और भय उत्पन्न करने वाले ( दुप्पवेसतरग ) सामान्य जनों के लिये कठिनाइ से प्रवेश पाने योग्य ( संगाम संकड परधण ) और संग्राम से गहन पूर्ण, ऐसे परधन को ( महंता ) चाहते हुए ( अभिवयंति ) उस समर युद्ध मे कूद पडते हैं। ( अवरे पाइक्क चोरसंघा ) राजाओं से भिन्न दूसरे पैदल चोर समूह ( सेणावति चोरवद पागड्ढिकाय ) और चोर संघ को प्रेरणा करने वाले सेनापति जो ( अडवी देस दुग्गवासी ) अटवी के दुर्ग में रहने वाले ( काल-हरित-रत्त-पीत-सुक्किल्ल अणेगसय चिंधपट्टबद्धा ) काले, हरे, लाल, पीले और धौले ऐसे पांचों रंग के सैकडों चिह्नपट्ट-

तथा रथों का घर घराना और पैदल सैनिकों का हर हर आदि शब्द करना ताल बजाना और सिंह नाद करना फिर ( छेलिय विघुट्ठुकुट्ठ कंठ गय सद्द भीम गज्जिय ) सीटित चीत्कार करना, विरूप घोष करना तथा उत्कृष्ट—आनन्द की महा ध्वनि और कंठ से किया हुआ शब्द ये ही जहाँ मेघ की गर्जना है ऐसे ( सय राह हसंत रुसंत कल कलरवे ) एक हँसा—एक क्रोध-से, हंसते या रुष्ट होते हुए लोगों के कल-कल शब्द से व्याप्त ( आसूणिय-वयणरुद्दे ) कुछ मोटे किये हुए व फुलाये हुए मुंह से जो बड़ भयानक है ( भीम—दसणाधरोट्ठ—गाढदट्ठे ) भयङ्करता के साथ जिन्होंने दांतों से नीचे के ओष्ठ को गाढ काटा है वैसे लोग वाला ( सप्प हरणुज्जय करे ) जो अच्छी तरह प्रहार करने में तत्पर योद्धाओं के हाथ वाला है ( अमरिस वस तिव्वरत्त—निद्दारितच्छे ) जहाँ क्रोध वश आंखें अत्यन्त लाल और निकली हुई हैं ( वेर—दिट्ठि कुद्ध—चिट्ठिय-तिवली-कुडिल-भिउडि-कय निलाडे ) वैर की भावना से जो क्रुद्ध और चेष्टा युक्त हैं ललाट पर तीन रेखाओं से वक्र—टेढी—जहाँ भृकुटि चढ़ी हुई है, ऐसे पुरुषों से संग्राम भूमि युक्त है' ( वह परिणय नर सहस्स विक्कम वियंभिय बले ) मारने के विचार वाले हजारों मनुष्यों के परा क्रम से जो विस्तृत बल वाला है अर्थात् जहाँ प्रहार करने वाले हजारों सुभटों का बल प्रदर्शित होरहा है ( वग्गंतर—तुरग—रह—पधाविय समरभडा ) जहाँ उछलते हुए घोड़ों के रथ से सांग्रामिक योद्धा जोश के साथ जुटे हुए हैं ( आवडिय छेय लाघव पहार साधिता ) जो लड़ने को आये हुए दक्ष और हलके प्रहार से साधन किये हुए हैं ( समूसवियबाहुजुयल ) हर्ष की अधिकता से जहाँ दोनों हाथ उठाये हुए हैं ( मुक्कट्टहास-पुक्कंत-बोलबहुले ) मुक्ताट्टहास—अट्टहास करने वाले और फूत्कार करने वाले मनुष्यों के कल कल शब्द की अधिकता वाला ( फुर फलगा वरण गहिय गयवर पत्थित दरिय भड खल परोप्पर पलग्ग जुद्ध गव्विय विउसित वरासि रोस तुरिय अभिमुह पहरंत छिन्न करिकर वियंगित करे ) स्फुर अथवा स्फार माने चमकते हुए फलक और सन्नाह का ग्रहण किये हुए शत्रु दल के हाथियों के कुम्भस्थल पर चढ़ के उनको मारने की अभिलाषा करने वाले जो दर्पयुक्त दुष्ट योद्धा हैं वे परस्पर लड़ने को लगे हुए हैं और युद्ध कला के विज्ञान में अहङ्कार युक्त तथा उत्तम तलवारों को कोप से निकाले हुए रोष से शीघ्र सामने प्रहार करते हुए जिन्होंने हाथियों की सूंडें काटली हैं और जहाँ अनेकों के हाथ भी खंडित दिखाई पड़ते हैं ( अवइद्ध निसुद्ध भिन्न फालिय

समान ( निरवलम्बं ) आधार रहित ( उप्पाइय पवणधणिय-नोल्लिय-उवरुवरि-तरंगदरिय-अतिवेग-वेग-चक्खु पह मुच्छरत-कत्थइ गंभीर विपुल गज्जिय-गुंजिय-निग्घाय-गरुय निवतिन सुदीह नीहारि-दूर सुव्वंत गभीर-घुगघुगतसद्दं ) उत्पात सम्बन्धी पवन से अतिशय प्रेरणा पाई हुई जो निरन्तर ऊपर उठने वाली तरङ्गें हैं गर्व युक्त की तरह सब वेगों की मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले, जिनके वेग से दृष्टि का मार्ग ढका हुआ है, कहीं पर गम्भीर व मेघ ध्वनि की तरह विस्तीर्ण गर्जना रव से गुञ्जित, वाद्य विशेष के समान गुजन और निर्घात-विजली गिरने के समान शब्द अथवा व्यन्तरकृत महाध्वनि एवं विद्युत् आदि भारी द्रव्य के गिरने की जैसी महाध्वनि होती है और बहुत दूरतक सुन पड़ने वाला जहाँ धुग इस प्रकार गम्भीर शब्द होता है ( पडिपह रुंभंत-जक्ख-रक्खस-कुहंड-पिसाय-पडिगज्जिय-रुसिय-तज्जाय-उवसग्ग सहस्स सकुलं ) मार्ग में चलने वालों के राह को रोकने वाले यक्ष राक्षस, कूष्माण्ड और पिशाच रूप व्यन्तर विशेषों के प्रति गर्जना और हजारों उपसर्ग अथवा यक्ष आदि के रोष और उनसे किये गये उपसर्ग सहस्र से जो सकुल है ( बहूप्पाइय भूय ) अनेक प्रकार के उत्पातों से युक्त ( विरचित बलिहोम-धूव-उवचार-दिन्न रुधिर चणा-करण-पयत जोग-पयय चरियं ) तथा बलिहोम और धूप से जिन्होंने देवता का पूजन किया एवं रुधिर-अपना या अन्य का रक्त दिया और उस पूजा कर्म में प्रयत्न शील तथा नौका के अनुकूल दूसरे कार्यों में तत्पर ऐसे सायत्रिक-नौका व्यापारी से वह समुद्र सेवित है ( परियत-जुगंतकाल-कप्पोवम ) अन्तिम युग-कलि युग के अन्त काल-नाश काल के समान उपमा वाला ( दुरत महानई-नइवई महा भीम दरिसणिज्ज ) जो दुख से अन्त मिलने योग्य गगा आदि बड़ी नदियाँ तथा अन्य साधारण नदिओं का स्वामी और महाभय जनक दर्शन वाला है ( दुरणुचरं ) दुःख से सेवन करने योग्य ( विसमप्पवेसं ) विषम प्रवेष वाले ( दुक्खुत्तार ) दुःख पूर्वक उतरने योग्य ( दुरासय ) कठिनता से पाने योग्य और ( लवण सलिल पुण्णं ) खारे पानी से भरे हुये समुद्र को ( असियसिय-समूसिय गेहि-दच्छतर केहिं ) काली व सफेद ऊंची की हुई पताका वाले, अत्यन्त दक्ष याने वेग से चलने वाले ( वाहणेहिं ) वाहनों से ( अइवइत्ता ) प्रवेश करके ( समुद्द मज्झे गंतूण ) समुद्र के भीतर जाकर ( जणसस पोते ) व्यापारी के जहाजों को ( हणंति ) लूटते-नष्ट करते हैं ( परदव्वहरा नरा ) दूसरे के धन को हरण करने वाले मनुष्य ( निरणुकंपा ) निर्दय ( निरवयक्खा ) परलोक की अपेक्षा नहीं करने वाले हैं, ( धण समिद्धे )

निशान के कपड़े जिन्होंने बांध रक्खे हैं। और (लुद्दा) लोभी (परविसए) दूसरे के प्रदेशों को (धणस्स कज्जे) धन के लिये (अभिहणंति) लूटते-मारते हैं, (रयणागरसागरं) रत्नों की खान रूप जो समुद्र (उम्मी सहस्स माला समाकुल विलोय पोत कल कलेंत कलियं) हजारों तरङ्ग माला से आकुल तथा जल के अभाव से व्याकुल ऐसे नौका व्यापारियों की कल-कल ध्वनि से युक्त है (पायाल सहस्स वायवस-वेग सलिल-उद्धम्ममाण दग-रय-रयंधकारे) हजारों पाताल कलशों में से वायु के साथ वेग से ऊपर उछलता हुआ समुद्र जल ही जहाँ सघन रूप धूलीमय अन्धकार है (वरफेण-पउर-धवल-पुलंपुल-समुट्ठियट्टहासं) उत्तम फेन ही जहाँ अत्यन्त धवल और सदा उठा हुआ अट्टहास है (मारुय-विच्छुभमाण पाणियजल मालुप्पीलहुलियं) हवा से विक्षुब्ध होते हुए जल के कारण जो शीघ्र जलमाला के समूह वाला है (अविय समंतओ) और भी चारों तरफ से (खुभिय-लुलिय खो-खुब्भमाण-पक्खलिय-चलिय-विपुलजल-चक्कवाल-महाणई-वेगतुरिय-आपूरमाण गंभीर-विपुल आवत्त चवल-भममाण गुप्पमाणुच्छलंत पच्चोणियत्त-पाणिय पधाविय खरफरुस-पयंड-वाउलिय-सलिल-फुट्टंत-वीचिकल्लोल संकुलं) वायु आदि से क्षुब्ध किया गया, लुलिय-तीर की भूमि पर टकराता हुआ, बड़े मत्स्य आदि के कारण अत्यन्त व्याकुल किया गया और मस्तखलित-पहाड़ आदि से रोका गया-फिरकर अपने स्थान की ओर जाता हुआ जहाँ पानी का अधिक विस्तार में मंडल है, तथा बड़ी नदियों के वेग से जो जल्दी भरा जा रहा है व गंभीर और अधिक फैले हुए आवर्तों में चपलता के साथ भ्रमण करते हुए, व्याकुल होते उछलते, या नीचे गिरते हुए पानी तथा वीचों से युक्त है वेग युक्त गतिवाली अत्यन्त कठोर, रौद्र तथा व्याकुलता युक्त जलवाली और विदीर्ण होती हुई तरङ्ग माला से जो संकुल है, (महामगर मच्छ कच्छभोहार-गाह-तिमि-सुंसुमार-सावय-समाहय समुद्धायमाणक पूर-घोर पउरं) फिर महा मगर, मत्स्य कच्छप, ओहार—जल जन्तु विशेष ग्राह, तिमि-बड़ा मत्स्य सुंसुमार और श्वापद—हिंसक जीव इनके परस्पर एक दूसरे से मारे गये और प्रहार करने को उठे हुए बहुत समूहों से जो भयानक है। (कायर जण हियय कंपणं) कायर मनुष्यों के हृदय को धुजाने वाला (घोरमारसंतं) भयङ्कर शब्द करने वाला (महब्भयं) परम भय देने वाला (भयकरं) भयङ्कर (पतिभयं) प्रत्येक वस्तु में भय पैदा करने वाला (उत्तासणगं) डराने वाला-त्रास उत्पन्न करने वाला (अणोरपारं) जिसका ओर दिखाई नहीं देता ऐसा (आगासंचेव) और आकाश

कन्दरा रूप ( वसहीसु ) निवासस्थानों में ( किलिस्संता ) क्लेश पाते हुए (,सीतातप-सोसियसरीरा ) शीत-सर्दी व गर्मी से सुखा ये हुए शरीर वाले ( दड्ढच्छवी ) जली हुई चमडी वाले अर्थात् सर्दी आदि से जले शरीर वाले 'वे लोग' ( निरय-तिरिय भव संकड-दुक्ख संभार वेयणिज्जाणि ) नरक तिर्यञ्च भव रूप गहन वन मे होने वाले निरन्तर दु.ख की अधिकता से वेदन करने योग्य ( पाव कम्माणि ) पाप कर्मों को ( सचिणंता ) सचय करते हुए 'रहते हैं' ( दुल्लह-भक्खन्न पाण भोयणा ) भक्ष्य-खाने योग्य अन्न और जल आदि का खाना पीना भी जिनको दुर्लभ है. ( पिवा-सिया ) प्यासे (झुछिया) भूखे ( किलंता ) थके हुए ( मस कुणिमकंद-मूल जकिंचि-कयाहारा ) मास, शव-मुर्दा और कन्द मूल जो कुछ भी मिला उसी का आहार करने वाले हैं ( उव्विग्गा ) उद्वग युक्त ( उप्पुया ) उत्सुकता वाले ( असरणा ) रक्षक से हीन ( अडवी वास ) अटवी के निवास को ( उर्वति ) प्राप्त करते हैं, जो ( वाल सत सकणिज्जं ) सैंऱडों भुजग आदि से शङ्का जनक है (-अजसकरा ) अकीर्ति करने वाले ( भयकरा-तक्करा ) भयङ्कर चोर ( अज्ज ) आज ( कास ) किस का ( दव्व ) द्रव्य ( हरामोत्ति ) हरण करें ( इति ) इस प्रकार ( सामरथ-गुज्झ ) गुप्त मन्त्रणा-विचार (करेंति) करते हैं (बहुजस जणस्स ) बहुत से मनुष्यों के ( कज्ज-करणेसु ) कार्य करने मे ( विग्घकरा ) विघ्न करने वाले ( मत्त-पमत्त-पसुत्ता-वीसत्थ-छिद्दघाती ) मत्त-नशे में प्रमत्त वे सुध सोये हुए और, विश्वास किये हुए लोगों का समय पर हनन करने वाले ( वसणब्भुदएसु हरण बुद्धी ) व्यसन--विपत्ति और अभ्युदय-उन्नति के प्रसङ्ग मे हरण करने की बुद्धी वाले ( विगव्व रुहिर महिया ) वृक-व्याघ्र के जैसे रक्त का चाहने वाले ( परेंति ) चारों ओर भ्रमण करते हैं ( नर-वति मज्जाय मतिक्कता ) राजाओं की मर्यादा को उल्लंघन करने वाले ( सज्जण जण-दुगुछिया ) सज्जन लोगों से निन्दित ( पाव कम्मकारी ) पाप कर्म करने वाले ( स-कम्मेहिं ) अपने कर्मों के कारण ( असुभ परिणया ) असुभ परिणाम वाले ( य ) और ( दुक्खभागी ) दु ख के भागी होते हैं ( निच्चाइल-दुहमनिव्वु इमणा ) सदा मलिन, दु ख का कारण और अशान्त मनवाले ( परदव्वहरानरा ) दूसरे के धन को चुराने वाले मनुष्य ( इह लोके चेव ) इस संसार में ही ( किलिस्संता ) क्लेश पाते हुए ( वसणसय समावण्णा ) सैकडों कष्टों से घिरे रहते हैं॥ सूत्र ४।११॥

भावार्थ--" सूत्र के आदि में चोरों के स्वभाव, प्रवृत्ति और चोरी करने के प्रकार से, चोरी के अवान्तर भेद बताये गये हैं। तत्पश्चात् सैन्य बल को साथ लेकर

धन से समृद्ध ( गामागर नगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासम-णिगम जण-वतेय ) ग्राम, आकर-सोने चांदी आदि का उत्पत्ति स्थान नगर, खेट-धूली के कोट वाला, कर्बट-छोटा नगर मडंब चारों ओर जिसके पास कोई दूसरा गांव नहीं हो द्रोण मुख—जल मार्ग व स्थल मार्ग दोनों से आने योग्य शहर पत्तन—रत्न भूमि या जल स्थल गत दोनों मार्गों में से किसी एक मार्ग से आने योग्य, आश्रम-तापस आदि का निवास स्थान या तापसों से बसाया गया निगम-व्यापारिक क्षेत्र और जनपद देश को ( हणंति ) ये लूटते-नष्ट करते हैं ( थिर हियय-छिन्न लज्जा ) व अपने अर्थ में स्थिर चित्त-दृढ़ विचार वाले और लज्जा रहित होते हैं ( बंदिग्गह गोग्ग-हेय ) मनुष्य को बन्दी बनाना और गौओं का पकड़ने रूप कार्यों को ( गेण्हंति ) करते हैं ( दारुणमती-खिक्किया ) दारुण बुद्धि वाले वे निर्दय ( णियं ) स्वजन को या निजी लोगों को भी ( हणंति ) मारते हैं ( छिंदंति गेहसंधिं ) घर में सेंध लगाते हैं ( य ) और ( अण्णय कुलाणं ) लोगों के घर के ( निक्खित्ताणि ) रक्खे हुए ( धण धण्ण-दव्वजायाणि ) धन धान्य रूप द्रव्य समूहों को ( निग्घिणमती ) निर्दय बुद्धि होकर ( हरंति ) हरण करते हैं ( ये ) जो ( परस्स दव्वाहि अविरया ) दूसरे के द्रव्य को लेने से निवृत्त नहीं हैं अर्थात् जिन्होंने दूसरों के द्रव्य का लेना नहीं छोड़ा है ( तहेव केई ) इसी प्रकार कई लोग ( अदिण्णा दाणं गवेसमाणा ) बिना दिये द्रव्य को हरते हुए ( काला कालेसु संचरंता ) समय और असमय में फिरते हुए ( चियका-पज्जलिय—सरस दरदड्ड—कड्डिय कलेवरे ) चिताओं में जलते हुए मांस आदि युक्त, थोड़े जलते हुए और मसान से बाहर खींच गए कलेवर वाले तथा ( रुहिरलित्त-वयण-अखत—खातिय—पीत—डा णि भमंत भयकर ) रक्त से भरे हुए मुंह वाले अधूरे—पूरे शवक, खाये हैं और जिन्होंने उनके रक्त का पान किया है ऐसी डाकिनियों के भ्रमण से जो भयङ्कर है ( जंबुयखिक्खियंते ) जंबुक की खीखी रूप ध्वनि वाले तथा ( घूकय घोर सद्दे ) उल्लुओं के घोर शब्दों से युक्त ( वेयालुट्ठिय—निसुद्ध कह—कहित—पहसित—बीहणक निरभिरामे ) वे ताल से किया गया अट्टहास्य वाला जो कह कह रूप अट्टहास से भयङ्कर और अशोभनीक है ( अति दुब्भिगंध—बीभच्छ—दरिसणिज्जे ) अत्यन्त दुर्गन्ध और भयङ्कर दर्शन वाले श्मशान में तथा ( सुसाण वण—सुण्णघर-लेण अंतरावण गिरि कंदर-विसम-सावय समाकुलेसु ) श्मशान तथा वन का शून्य घर, पर्वत-पत्थर में बनाये हुए घर, ग्राम के मध्य की दुकानें और विषमता तथा हिंसक जन्तुओं से व्याप्त पर्वत की

कन्दरा रूप ( वसहीसु ) निवासस्थानों मे ( किलिस्संता ) क्लेश पाते हुए ( सीतातप-सोसियसरीरा ) शीत-सर्दी व गर्मी से सुखा पे हुए शरीर वाले ( दड्ढच्छवी ) जली हुई चमडी वाले अर्थात् सर्दी आदि से जले शरीर वाले 'वे लोग' ( निरय-तिरिय भव सकड-दुक्ख सभार वेयणिज्जाणि ) नरक तिर्यञ्च भव रूप गहन वन मे होने वाले निरन्तर दु ख की अधिकता से वेदन करने योग्य ( पाव कम्माणि ) पाप कर्मों को ( सचिणंता ) सचय करते हुए 'रहते हैं' ( दुल्लह-भक्खन्न पाण भोयणा ) भक्ष्य-खाने योग्य अन्न और जल आदि का खाना पीना भी जिनको दुर्लभ है ( पिवासिया ) प्यासे (झु झिया)-भूखे ( किलंता ) थके हुए ( मस कुणिमकंद-मूल जकिंचि-कयाहारा ) मांस, शव-मुर्दा और कन्द मूल जो कुछ भी मिला उसी का आहार करने वाले हैं ( उव्विग्गा ) उद्वेग युक्त ( उप्पुया ) उत्सुकता वाले ( असरणा ) रक्षक से हीन ( अडवी वासं ) अटवी के निवास को ( उवेंति ) प्राप्त करते हैं, जो ( वाल सत सकणिज्जं ) सैकड़ों भुजंग आदि से शङ्का जनक है ( अजसकरा ) अकीर्ति करने वाले ( भयकरा-तक्करा ) भयङ्कर चोर ( अज्ज ) आज ( कास ) किस का ( दव्व ) द्रव्य ( हरामोत्ति ) हरण करें ( इति ) इस प्रकार ( सामत्थ गुज्झ ) गुप्त मन्त्रणा-विचार (करेंति) करते हैं (बहुयस्स जणस्स ) बहुत से मनुष्यों के ( कज्ज-करणेसु ) कार्य करने में ( विग्घकरा ) विघ्न करने वाले ( मत्त-पमत्त-पसुत्ता-वीसत्थ-छिद्दघाती ) मत्त-नशे में प्रमत्त बे सुध सोये हुए और, विश्वास किये हुए लोगों का समय पर हनन करने वाले ( वसणब्भुदएसु हरण बुद्धी ) व्यसन—विपत्ति और अभ्युदय-उन्नति के प्रसङ्ग में हरण करने की बुद्धी वाले ( विगव्व रुहिर महिया ) वृक-व्याघ्र के जैसे रक्त को चाहने वाले ( परेंति ) चारों ओर भ्रमण करते हैं ( नरवति मज्जाय मतिक्कंता ) राजाओं की मर्यादा को उल्लघन करने वाले ( सज्जण जण-दुगुंछिया ) सज्जन लोगों से निन्दित ( पाव कम्मकारी ) पाप कर्म करने वाले ( स-कम्मेहिं ) अपने कर्मों के कारण ( असुभ परिणाया ) असुभ परिणाम वाले ( य ) और ( दुक्खभागी ) दु ख के भागी होते हैं ( निच्चाइल-दुहमनिव्वु इमणा ) सदा मलिन, दु ख का कारण और अशान्त मनवाले ( परदव्वहरानरा ) दूसरे के धन को चुराने वाले मनुष्य ( इह लोके चेव ) इस संसार में ही ( किलिस्संता ) क्लेश पाते हुए ( वसणसय समावण्णा ) सैकड़ों कष्टों से घिरे रहते हैं ॥ सूत्र ४।११॥

भावार्थ—" सूत्र के आदि मे चोरों के स्वभाव, प्रवृत्ति और चोरी करने के प्रकार से, चोरों के अवान्तर भेद बताये गये हैं। तत्पश्चात् सैन्य बल को साथ लेकर

परधन पर आक्रमण करने वाले लुटेरों का वर्णन किया गया है। ये लुटेरे चतुरङ्गिणी-हय, गज, रथ और पैदल रूप इन चार प्रकार की सेनाओं से चक्र, शकट आदि विविध व्यूह बनाकर परधन को लूटते हैं। इनमें कई साहसिक राजा सेना की सहायता के बिना ही स्वयं मजबूर संग्राम में प्रवेश करके दूसरों का धन हरण करते हैं। केवल परधन के लालच से संग्राम करके दूसरों को लूटते हैं। राजाओं से भिन्न पैदल चोर तथा सेनापति आदि अटवी के दुर्ग स्थानों में रहकर विविध वर्णों के चिह्नपट्टों को बांधे हुए दूसरों के प्रदेश को भी ग्रहण करते हैं। जो हजारों चपल तरल तरङ्गों से दुरवगाह है, ऐसे सागर में प्रवेश करके भी नौका आदि प्रवल साधनों से सज्जित होकर कई दूसरे के जहाजों को लूटते हैं। अनेक ग्रामों को नष्ट कर देते हैं। घर की दीवालों को फोड़ते लोगों को मारते और सर्वस्व जबर्दस्ती ले लेते हैं। ऐसा मलिन आचरण वे लोग करते हैं जो परधन से अविरत हैं अर्थात् जो परधन की कांक्षा से अलग नहीं हुए हैं। अदत्त-बिना दिये हुए-धन को खोजते हुए वे लुटेरे श्मशान में जाते और गुफाओं में प्रवेश करते हैं वहाँ पर सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, परिश्रम आदि सैकड़ों प्रकार के क्लेश सहते हैं। रखाझोन ऐसे जङ्गली वास को भी स्वीकार करते हैं। चोरों के समुद्र युद्ध तथा लूटने के प्रकार का विषय वचन मूल के अनुसार अन्वयार्थ में कहा गया है। जो स्पष्ट है। सू० ४। ११॥

मूल—सहेव केइ परस्स दव्वं-गवेसमाणा गहिता य हया य बद्धरुद्धा य तुरियं अतिधाडिया, पुरवरं समप्पिया, चोरग्गह चारभड-चाडुकराण तेहिय कप्पडप्पहार-निद्दय-आरक्खिय खर फरुस-वयण-तज्जण-गलच्छल-उच्छल्लणाहिं विमणा चारग वसहिं पवेसिया, निरयवसहि सरिस तत्थवि गोमिय-प्पहार दूमण-निब्भच्छण-कडुय-वयण-भेसणग भयाभिभूया अक्खित्त नियंसणा मलिणदंडि खंड-निवसणा उक्कोडालंच-पासमग्ग णपरायणेहिं [ दुक्ख समुदीरणेहिं ] गोम्मिय भडेहिं विविहेहिं बंधणेहिं, किं ते ?, हडि-निगड-वालरज्जुय-कुदंडग-वरत्त-लोह संकल-हत्थंदुय-वज्झपट्ट-दाम-णिक्कोडणेहिं, अन्नेहि य एवमादिएहिं गोम्मिक भंडोवकरणेहिं दुक्ख समुदीरणेहिं संकोडण

गोडणाहिं घज्झंति मंदपुण्णा । संपुड-कवाड-लोहपंजर भूमि-
घर-निरोह-कूव-चारग-कीलग-जूय-चक्क-वितत-बंधण-खंभा-
लण उद्धचलण-बंधण-विहम्मणाहि य विहेडयंता अवकोडक-
गाढ उरसिरबद्ध-उद्धपूरितफुरंत—उरकडग मोडणा मेडणाहिं
बद्धा य नीससंता सीसावेढ-उरुयावल-चप्पडग[1]संधि बंधण-तत्त-
सलाग-सूइया कोडणाणि-तच्छण-विमाणणाणिय खार-कडुय-
तित्त-नावण-जायणा-कारण-सयाणि बहुयाणि पावियंता, उर-
क्खोडी-दिन्न-गाढपेल्लण अट्ठिक-संभग्ग-सुपंसुलीगा, गलकालक
लोहदंड-उर-उदर-वत्थि [2]परिपीलिता, मत्थंतहियय संचुण्णि-
यं[3]गमंगा, आणत्तीकिंकरेहिं केति अविराहिय वेरिएहिं जमपुरिस
सन्निहेहिं पहया, ते तत्थ मंदपुण्णा चडवेला-वज्झपट्ट-[4]पाराइं-
छिवकस लत वरत्त [5]नेत्तप्पहारसय-तालियंगमंगा, किवणा
लंबंत-चम्म-वण वेयण विमुहियमणा घणकोट्टिम-नियल-जुयल-
संकोडिय-मोडिया य, कीरंति निरुच्चारा एया अन्नाय-एवमा-
दीओ वेयणाओ पावा पावेंति, अदंतिंदिया वसट्टा बहु मोह
मोहिया परधणंमि लुद्धा, फासिंदियविसय तिव्वगिद्धा, इत्थि-
गय-रूव-सद्द-रस-गंध-इट्ठ-रति-महित-भोग तण्हाइया य धण-
तोसगा, गहिया य जे नरगणा पुणरवि ते कम्मदुव्वियद्धा, उव-
णीया राय-किंकराण तेसिं वहसत्थग पाढयाण, विलउली कार-
काणं, लंचसय- गेण्हगाण कूड-कवड-माया-नियडि आयरण-
पणिहि वंचण-विसारयाणं, बहुविह अलिय-सत जंपकाण पर-
लोक-परम्मुहाण, निरयगति गामियाणं, तेहि य आणत्त-जीय
दंडा तुरियं उग्घाडिया पुरवरे सिंघाडग- तिय-चउक्क-चच्चर-चउ-
म्मुह-महापह पहेसु, वेत्त-दंडाल उड-कट्ठ-लेट्ठु पत्थर-पणालि-
पणोल्लि-मुट्ठि-लया-पाद-पण्हि-जाणु-कोप्पर-पहार संभग्ग महिय

१—क बप्पडग । २—क. पिट्ठि परिपीलिया । ३—क. पंगु पंगा ।
४—क. पोरा इति वा । ५—क वेत्त ।

गत्ता, अट्ठारस कम्मकारणा, जाइ यणभग्गा कलुणा सुक्कोट्ठकंठ गलक तालुजीहा जायंता पाणियं विगय जीवियासा, तण्हादिता वरागा तंपिय ण लभंति वज्झपुरिसेहिं घाडियंता तत्थ य खर फरुस पडह घट्टित कूडग्गह गाढ रुट्ठ निसट्ठ परामुट्ठा वज्झकरकुडि जुय नियत्था, सुरत्त कणवीर गहिय विमुकुल कंठेगुण वज्झदूत आविद्ध मल्लदामा, मरण भयुप्पण्ण सेद आयतणेहुत्तुपियकिलिन्नगत्ता, चुण्णगुंडिय सरीर रय रेणुभरियकेसा कुसुंभगोकिन्न मुद्धया छिन्नजीवियासा, घुन्नंता वज्झपाणे भीता तिलं तिलं चेव छिज्जमाणा सरीर विकत्त लोहिओलित्ता कागणिमंसाणि खाविअंता पावा खरकरसएहिं ताडिज्जमाणदेहा, वातिक नर नारि संपरिवुडा, पेच्छिज्जंता य नागरजणेण वज्झनेवत्थिया पणेज्जंति नयरमज्झेण किवण कलुणा अत्ताणा असरणा, अणाहा अबंधवा बंधुविप्पहीणा विपिक्खंता दिसोदिसिं मरण भयुव्विग्गा आघायण पडिदुवार संपाविया अधन्ना सूलग्गविलग्ग-भिन्नदेहा, ते य तत्थ कीरंति परिकप्पियंगमंगा उल्लंबिज्जंति रुक्खसालासु केइं कलुणाइं विलवमाणा अवरे चउरंग धणियबद्धा पव्वय कडगा पमुच्चंते दूरपात बहुविसम पत्थरसहा अन्ने य गयचलण-मलणय निम्मद्दिया कीरंति पावकारी, अट्ठारस खंडिया य कीरंति मुंडपरसूहिं केइ उक्कत्त कन्नोट्ठ नासा, उप्पाडिय नयण-दसण वसणा, जिब्भिंदियछिया छिन्न-कन्नसिरा, पणिज्जंते, छिज्जंते य असिणा निव्विसया, छिन्न हत्थपाया। पमुच्चंते, जावज्जीव बंधणा य कीरंति केइ। पर दव्वहरणलुद्धा, कारग्गल-नियलजुयलरुद्धा, चारगावहतसारा सयणविप्पमुक्का, मित्तजणनिरिक्खिया निरासा बहुजणधिक्कार सद्दलज्जाविता, (अलज्जाविया अणुबद्धखुहा पारद्धा सीउण्ह-तण्ह वेयण दुग्घट्ट-घट्टिया, विवन्नमुह-विच्छविया, विहल मइल दुब्बला,

१—क पावि वेगुणा। २—क वज्झपाणप्पीया। ३—क मिलकणा।

किलंता, कासंता, वाहिया य आमाभिभूयगत्ता, परूढ नह-केस-मंसुरोमा, छगमुत्तंमि णियगंमि खुत्ता तत्थेव मया अकामका वंधिऊण पादेसु कड्ढिया खाइयाए छूढा, तत्थ य वग-सुणग-सियाल-कोल-मज्जार-वंद संदंसगतुंड पक्खिगणविविहमुह सयल विलुत्तगत्ता कय विहंगा केइ किमिणा य कुहियदेहा अणिट्ठ वयणेहिं सप्पमाणा सुट्ठुकयं जं मउति पावो तुट्ठेण जणेणं हम्ममाणा लज्जावणकाय होंति सयणस्सवि दीह काल मया सता ॥ सू० ५ । १० ॥

छाया—तथैव केचिद् परस्य गवेषयन्त. द्रव्यं गृहीताश्च हताश्च बद्ध रुद्धाश्च त्वरित मति धाढिताः ( भ्रामिताः ) पुरवर समर्पिता श्चौरग्राह चार भट चाटुकाराणाम् । तैश्च कर्पट प्रहार निर्दयाऽऽरक्षिक खर परुष वचन तर्जन गलग्रहणो ( च्छलो ) च्छलना नाभिर्विमनसश्चारक वसति प्रवेशिता निरय वसति सदृशीम् । तत्रापि गौल्मिक प्रहार-दवन-निर्भत्सन कटुक वचन भेषणक भयाऽभिभूताः, आक्षिप्त निवसना मलिन दण्डि-खण्ड-निवसना, उत्कोचा लञ्च पार्श्व मार्गण पराधुणैः ( दु ख समुदीरणै ) गौल्मिक भटैर्विविधैर्बन्धनै, किं तानि ? ( तद्यथा ) काष्ठ ( हडि ) निगड-बालरज्जुक-कुदण्डक-वरत्र-लोहसङ्कल-हस्तान्दुक-वधपट्ट-दामक निष्कोट नैरन्यैश्चैवमादिकै गौल्मिक भण्डोपकरणै, दु ख समुदीरणै. सङ्कोचन मोटनाभिर्वेध्यन्ते मन्दपुण्या, सम्पुट कपाट-लोहपञ्जर-भूमिगृह निरोध-कूप-चारक-कीलक-यूप-चक्र-वितत बन्धनस्तम्भाऽऽलिङ्गनो—र्ध्वचरण बन्धन-विधर्मणाभिश्च विहेष्यमाना' ( बध्यमानाः ) अवकोटक गाढोर.-शिरो बद्धोर्ध्व पूरित-स्फुरदुर-कटक मोटनाऽऽम्रेडनाभिर्बद्धाश्च, नि श्वसन्त: शीर्षाऽवेष्टकोरुकाऽऽवञ्जन-चप्पडक-सन्धि बन्धन-तप्तशलाका-सूचीनामा-कोटनानि च ( तानि प्राप्यमाणाः ) तक्षण विमाननानि च क्षार-कटुक-तिक्त-दापन ( नावण ) यातना-कारणशतानि बहुकानि ( बहूनि ) प्राप्यमाणा । उरसिखोडी ( दीर्घकाष्ठ ) दत्तगाढ प्ररणाऽस्थिक-सभग्न-सुपार्श्वाऽस्थिका गल कालक लौहदण्डोर उदर-वस्ति परिपीडिता, मथ्यमान हृदय सञ्चूर्णिताङ्ग प्रत्यङ्गा, आज्ञप्ति किङ्करै केचिद विराधित वैरिकैर्यम पुरुषसन्निभै प्रहतास्तेत्र मन्दपुण्या', चडवेला ( चपेटा ) वर्ध्रपट्ट पाराइ ( लोह कुशो ) छिवा-

१—क मक्कुंतमि ।

कष-कव-वरत्र-मन्त्र-महाशस्त्र ताडिताऽङ्ग प्रत्यङ्गा कृपणा लम्बमान चर्म व्रण वेदना-विमुखित-मानसाः घन कुट्टिम-निगड-युगल-सङ्कोटित-मोटिताश्च क्रियन्ते निरपराधाः । एता अन्याश्चैवमादिका वेदना पापाः प्राप्नुवन्ति । अदान्तेन्द्रिया वशार्त्ताः ( विषय पीडिता ) बहु मोह मोहिता, परधनेलुब्धाः, स्पर्शेन्द्रिय विषय तीव्र गृद्धाः, स्त्रीगत रूप-शब्द-रस-गन्धेष्टरति-महित भोग तृष्णार्दिताश्च धनतोषका गृहीताश्च ये नरगणा । पुनरपि ते कर्म दुर्विदग्धा उपनीता-राजकिङ्कराणां तेषां वधशास्त्र पाठकानां, विलोपाक्षक कारकाणां लञ्चाशत ग्राहकाणां कूट कपट माया-निकृति काऽऽचरण-प्रणिधिवञ्चन- विशारदाना, बहुविधालीक शत जल्पकानां, परलोक पराङ्-मुखानां, निरयगति गामिनाम् । तैश्च आज्ञप्त जीत ( जीवित ) दण्डास्त्वरित मुद्घाटिता पुरवरे शृङ्गाटक त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख महापथ पथेषु, वेत्रदण्ड लकुट-काष्ठ लेष्टु प्रस्तर-प्रणाली-प्रणोदी मुष्टिलता-पादपार्ष्णि-जानुकूर्पर प्रहार संभग्नाऽऽमथितगात्रा अष्टादश कर्म कारणात्-यातिताङ्ग-प्रत्यङ्गाः, करुणाः, शुष्कोष्ठ कण्ठ गलक-तालु जिह्वा याचमाना पानीयं विगत जीविताशास्तृष्णार्दिता वराकास्तदपि न लभन्ते, वध्यपुरुषैः धाड्यमानाऽऽप्रेर्यमाणाः । तत्र च खर परुष पटह घट्टित कूट ग्रह गाढ रुष्ट निसृष्ट परामृष्टा वध्य कर कुटी युग निवसिताः सुरक्त कणवीर ग्रथित विमुकुल कण्ठे गुण वध्य दूताऽऽविद्ध माल्यदामानः मरण भयोत्पन्न स्वेदायत स्नेहित दुरुपित ? क्लिन्न गात्राः, चूर्णगुण्डित शरीर रजोरेणुपथ केशाः कुसुम्भ कोत्कीर्ण मूर्धजाश्छिन्नजीविताऽऽशा घूर्णमाना वध्येभ्यो भीतास्तिलं तिलं चैव छिद्यमाना शरीर उत्कृत्त लोहितावलिप्तानि काकिणी मांसानि खाद्यमाना पापा खरकरशतै (चर्मवरत्राभिः) ताड्यमान देहा, वातिक नर-नारी संपरिवृता प्रेक्ष्यमाणाश्च नागरजनेन वध्यने पथ्यिता प्रनीयन्ते नगरमध्येन कृपण करुणा अत्राणा-अशरणा अनाथा-अबान्धवा-बन्धुविप्रहीना-विप्रेक्षमाणा-दिशोदिशं मरणभयोद्विग्नाः, आघातन प्रतिद्वार सम्प्रापिता अधन्या शूलाग्र विलग्नभिन्न देहा, ते च तत्र क्रियन्ते परि-कल्पिताङ्ग प्रत्यङ्गा । उल्लम्ब्यन्ते वृक्षशाखासु केचित्करुणानि विलपन्तः, अपरे चतुरङ्ग दृढ बद्धा पर्वत कटकात्प्रमुच्यन्ते दूरपात बहुविषम प्रस्तरसहाः अन्ये च गज चरण मलन निमर्दिता क्रियन्ते पापकारिणः, अष्टादश खण्डिताश्च क्रियन्ते, मुण्डपरशुभिः केचिदुत्कोण कर्णोष्ठनासा उत्पाटित नयन-दशन वृषणा जिह्वाग्रेयाञ्छिताः, छिन्न कर्ण शिराः, प्रणीयन्ते छिद्यन्ते चाऽसिना, निर्विषयाश्छिन्न हस्तपादा प्रमुच्यन्ते

यावज्जीव बन्धनाश्च क्रियन्ते, केऽपि परद्रव्य हरण लुब्धा', कारागला-निगल-युगल रुद्धाश्चारकाऽपहृतसाराः, शयन (स्वजन) विप्रमुक्ता मित्रजन निरीक्षिता (निराकृता') निराशा बहुजन धिक्कार शब्द लज्जापिता अलज्जा अनुबद्ध क्षुधाः प्रारब्ध शीतोष्ण तृष्णा वेदना दुर्घटा घट्टिना-विवर्णमुख विच्छवयो विफल मलिन दुर्बलाः, क्लान्ताः, काशमाना व्याधिताश्च आमाभिभूतगात्राः प्ररूढ नख-केश श्मश्रुलोमानः पुरीष (छग) मूत्रे निजके क्षिप्ताः, तत्रैव मृता अकामका बध्वा पादयोराकृष्टा' खातिकायां क्षिप्ताः, तत्र च वृक शुनक-शृगाल-कोल-मार्जार चण्ड सन्दंशक तुण्ड पक्षिगण विविध मुख शकल विलुप्तगात्रा कृतविभागा', (विभगा) केऽपिकृमिमन्तश्च क्वथितदेहा, अनिष्टवचनैः शप्यमाना, सुष्ठुकृत यन्मृत इति पापः तुष्टेन जनेन हन्यमाना, लज्जापनाश्च भवन्ति स्वजनस्यापि दीर्घकालंमृता सन्त । सू० ५ । १२ ॥

## अब चोरी का फल वर्णन करते हैं ।

अन्य०— (तहेव) पूर्वोक्त प्रकार से (केइ) कई (परस्स दव्वं गवेसमाणा) दूसरे के द्रव्यों को ढूंढते हुए (गहिया) पकडे गये (य) और (हया) मारे गये (य बद्धरुद्धा) डोरी आदि से बांधे गये और रोके गए (य) और (तुरियं अतिधाडिया) जल्दी २ घुमाये गए तथा (पुरवर) नगर में पहुँचा कर (चोरग्गह-चारभड-चाडु कराण समप्पिया) चोरों को पकडने वाले, जेल के अधिकारी और चाटुकार-सिपाही वगैरह को सौंपे जाते हैं (तेहि य) और उनके द्वारा (कप्पडप्पहार-निद्दय-आरक्खिय-खर-फरुसवयण-तज्जण गलुच्छलुच्छणाहिं विमणा) कर्पट-कपडे के कोरडे का प्रहार, दयारहित कोतवालों के अत्यन्त कठोर वचन और तर्जना तथा गला पकड के पीछे हटाना, इन सब कष्टों से उदास होकर (चारक वसहिं) चारक वसति—जैलखाने में (पवेसिया) ले जाये जाते हैं, जो जैलखाना (निरयवसहि-सरिसं) नरकावास के समान है (तत्थवि) वहा पर भी (गोम्मिय-प्पहार-दूमण-निब्भच्छण-कडुय वदण-भेसणग भयाभिभूता) गुप्ति पाल के प्रहार, पीडा, आक्रोश और कटु वचन तथा भय जनक-डरावने मुखाकृति आदि भय से अभिभूत होते हैं (अक्खित्त नियंसणा) जिनके वस्त्र खींचे गए (मलिन-दंडि खंड-निवसणा) मलिन और फटे हुए चिथडे पहने हुए (उक्कोडालंच-पास-मगाण-परायणेहिं) लोगों से रिशवत व नजराना मांगने वाले [दु खों की उदीरणा करने वाले] (गोम्मिय-भडेहिं) गुप्तिपाल-अधिकारियों के द्वारा (विविहेहिं बंधणेहिं) अनेक प्रकार के

बन्धनों से बांधे जाते हैं ( किते ) वे बन्धन कौन से हैं ? 'उत्तर'—( हडि निगड वाल रज्जुय कुडंडग-वरत्त-लोहसंकल हत्थंदुय वज्झपट्ट-दाम-णिक्कोडणेहिं ) काष्ठ का खोडा, निगड-लोह की बेडी, बाल-केशों की रज्जु-डोरी कुडण्ड अन्त में डोरी वाला पाशा, वरत्रा,-चमडे की डोरी और लोहे की सांकल तथा हस्तान्दुक—एक प्रकार का बंधन वधपट्ट चमडे की पट्टी, डोरी का बना हुआ पाँव का बन्धन और निष्कोट रूप बंधनों से ( अण्णेहि य एवमादिएहिं ) और अन्य इस प्रकार के ( गोम्मिक-भण्डोवकरणेहिं ) गुप्ति पाल के भण्डोपकरण-विविध साधन ( दुक्ख समुदीरणेहिं ) जो दुःख को उत्पन्न करने वाले हैं उनसे ( संकोडण मोडणाहिं ) देह को सिकोडने व मोडने से ( वज्झंति ) बांधे जाते हैं ( मंदपुण्णा ) मन्द पुण्य वाले ( सपुड कवाड-लोह पंजर भूमिघर-निरोह कूव चारग कीलग-जूय-चक्क-विततबंधण खंभालण-उद्धचलण-बंधण-विहम्मणाहि य ) और काष्ठमय संपुट कपाट लोहे के पिंजरे और तल घरमें रोक रखना कूप अन्धकूप चारक बन्दी खाना कील यूप, युग गाडो का जुआ जो बैलों के कंधे पर दिया जाता है और चक्र से पीडा पहुँचाना, बाहु व जंघा का प्रमर्दन करके विशेष पीडा देना, खंभे में बांधना, पैर ऊपर करके बांधना इन सब कदर्थनाओं से ( विहेडयंता ) पीडित किये गए—अङ्ग प्रत्यङ्गों से मोडे-सिकोडे जाते हैं ( अवकोडक-गाढ उर-सिर बद्ध उद्ध पूरित-फुरंत-उर-कडग-मोडणा—मेडणाहिं ) गर्दन को नीचे ठेला कर जो हृदय और मस्तक में गाढ-बंध पूर्वक बांधे गये तथा हवा भर गये या जाके २ को पृष्ठि के नीचे दबाये गए हैं पूजतो छाती वाले, देह को मोडने या उलट पुलट करने अर्थात् ऊंचा नीचा करने से ( बद्धा य )

बांधे गए और ( नीससंता ) श्वास गिराते हुए ( सीसावेढ-ऊरु-यावल—चप्पडग संधि बंधण-तत्तसलाग—सूइया कोडणाणि ) चमडे से शिर को लपेट कर बांधना जांघों को विदारण करना या भजोना घुठनों आदि पर काष्ठ के यन्त्र विशेष को बांधना तपी हुई शलाका—कील और सूई के अग्रभाग को कूटकर देह में चुभोना भोंकना ( तच्छण-विमाणणाणि य ) वसूले से लकडी की तरह छीलना-तराशना, अप मानित करना और ( खार-कडुय-तित्त—नावण-जायणा-कारण सयाणि ) क्षार-तिक्ष-क्षार आदि, मरची आदि कटुक, और निम्ब आदि तिक्त पदार्थों के देने से सैकडों पीडा के कारण ( बहुयाणि ) ऐसे बहुत से कारणों को ( पावियंता ) प्राप्त करते हुए ( उरक्खोडी-दिन्न-गाढपेल्लण-अट्ठिक—संभग—सपंसुलीगा ) छाती पर बाँधे गये

वदे काष्ठ की मजबूत चोट से जो टूटी हुई अस्थि और पांसली वाले हैं (गाढ कालक-लोह दंड-उर-उदर-वत्थि-परिपीलिता ) मत्स्य वेधी अस्त्र की तरह घातक होने से जो काले लोहमय दण्ड से वक्षःस्थल, पेट और गुह्य प्रदेश तथा पीठ पर पीटे गये हैं ( मच्छंत—हियय सचुण्णियंग मंगा ) मथा गया है हृदय जिनका और अङ्ग चूर्णित किये—पीसे गये हैं ( आणत्ती किंकरेहि केति ) कई आज्ञा करने वाले किंकर पुरुषों से ( अविराहिय वेरएहिं ) विना अपराध के वैरी बने हुए एवं ( जमपुरिस सनिहेहिं ) यम पुरुषों के समान जो कठोर हैं उनसे ( पहया ) ताडना पाये हुए—पीटे गए ( ते ) वे ( मदपुण्णा ) मन्द पुण्य वाले ( तत्थ ) वहाँ ( चडवेला—वज्झपट्ट-पारा-इ —छिव-कस-लत-वरत्त-वेत्तप्पहार सय तालियग मंगा ) चपेटा, वर्ध्रपट्ट—चमडे की पट्टी, पारा—लोहमयकुशी, छिवा-चिकनी चाबुक, कष-चमडे का चाबुक, लता-बेंत की छडी, चमडे की बडी डोरी, बेंत, इन सबके सैकडों प्रहारों से जिनके अङ्गो पाङ्ग ताडित किये गये हैं वैसे ( किवणा ) बुरी दशा वाले ( लंवत-चम्मवण-वेयण-विमुहियमणा ) लटकती हुई चमडी वाले घावों को पीडासे जो चोरी मे विमुख मन वाले हैं ( घण कोट्टिम-नियल-जुयल—सकोडिय मोडियाय ) और लोहमय घन के मारने व बेडी के युगल से जो संकुचित और मोडे हुए अग वाले हैं ( निरुचारा ) भ्रमण रहित या रुकी हुई जबान वाले तथा जिनका टट्टी पेशाब तक रोक दिया गया है, ऐसे ( कीरवि ) किंकरों के द्वारा-किये जाते हैं ( एया अन्नाय ) ये और ऐसी दूस-री ( एवमादी ) इत्यादि ( वेयणाओ ) वेदनायें ( पावा ) पापी ( पावति ) पाते हैं ( अदतिंदिया वसट्टा ) असयत इन्द्रिय वाले एव विषय की परतंत्रता से पीडित ( बहुमोह मोहिया ) मोह कर्म को तीव्रता से मुग्ध बने हुए ( परघणमि लुद्धा ) जो परधन मे लुब्ध हैं ( फासिंदिय विसय तिव्वगिद्धा ) स्पर्श इन्द्रिय के विषय तीव्र आसक्ति वाले ( इत्थिगय रूव सद्द रस-गध-इट्ठ-रति महित भोग-तण्हाइयाय ) स्त्री के रूप—सौन्दर्य, मनोहर शब्द, रस व गन्ध सुगन्ध मे मानी हुई जो रति तथा स्त्री के इष्ट भोग में तृष्णा रखने वाले और ( धण तोसगा ) धन से सन्तुष्ट होने वाले ( गहिया य ) और राज पुरुषो से पकडे गए ( जे नरगणा ) जो चोर मनुष्य ( पुण-रवि ते ) फिरभी छूट कर वे ( कम्म-दुव्वियद्धा ) कर्म के वशीभूत हुए ( उवणीया राय किंकराण ) राज पुरुषों के पास पहुँचाये जाते हैं ( तेसिं वह सत्थग पाठयाणं ) वध दण्ड शास्त्र के जानकार ( विलउली कारकाणं ) वृक्षों को झोंके देने वाले या व्याकुल करने वाले या ( लंचसय गेण्हगाण ) सैंकडों प्रकार के घूस लेने वाले ( कूड-

कवड माया-नियडि—आयरण—पणिहि-वंचण विसारयाणं ) कूट—खोटे माप आदि कपट-वेष व भाषा बदलना, माया—ठगबुद्धि निकृति-धूर्तता, वंचन क्रिया इनका आचरण करने वाले अर्थात् एक चित्त होकर सदा कपट कार्यों में विशारद ( बहुवि ह अलिय-सत् संपकाणं ) बहुत प्रकार से सैंकड़ों झूठ बोलने वाले ( परलोक परम्मु हाणं ) परलोक से पराङ्मुख अर्थात् परलोक बिगड़ने की अपेक्षा नहीं करने वाले ( निरय गति गामियाणं ) एवं नरक गति में जाने वाले हैं ( तेहि य ) और उन राज पुरुषों के द्वारा ( आणत्त जीय दंडा ) को दुष्ट निग्रह के लिये किया गया दण्ड या जीवन दण्ड रूप आदेश वाले ( तुरियकया निया पुरवरे ) जल्दी से नगर के राज मार्ग में खुले किये गए ( सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर चउम्मुह-महापह-पहेसु ) शृङ्गाटक सिंघोड़े के आकार का त्रिकोण स्थान त्रिक, चतुष्क-चौक, चत्वर-चौराहा चतुर्मुख चारों ओर मार्ग वाला, देवकुल आदि महान् मार्ग और साधारण मार्ग इन सब जगहों में ( वेत्त-दंड-लउड-कट्ठ-लेट्ठु-पत्थर-पणालि-पणोलि-मुट्ठि-लया-पाद पण्हि-जाणु कोप्पर-पहार संभग्ग महियगत्ता ) वेत्र दण्ड, लकुट-डंडा काष्ठ, ढेला, पत्थर, प्रणालि शरीर प्रमाण लाठी, प्रणोली-भार आदि की लकड़ी, मुष्टि, लता पादपार्ष्णि-पैर की ऐड़ी, जानु-कूर्पर-घुटना व कोहनी इन सब के प्रहारों से भग्न किये और मथे गये देहवाले ( अट्ठारस कम्मकारणा जाइयंगमंगा ) अट्ठारह प्रकार के कर्मों के कारणों से कदर्थित अङ्ग प्रत्यङ्ग वाले ( कलुणा ) दीन ( सुक्कोट्ठ-कंठ-गलक-तालु जीहा ) जिनके ओठ कण्ठ, गला, तालु और जीभ सूखे हैं ऐसे ( पाणीयं जायंता ) पानी को माँगते हुए ( विगय जीवियासा ) जीवन की आशा छोड़े हुए ( तण्हाइया वरागा ) तृष्णा से पीड़ित बेचारे ( तंपिय न लभंति ) उस पानी को भी नहीं पाते हैं ( वज्झ पुरिसेहिं धाडियंता ) वध्य-पुरुषों पर नियुक्त अधिकारियों से प्रेरणा पाये हुए ( तत्थ य ) और वध प्रेरणा में ( खर-फरुस—पडह—घट्टिय—कूडग्गह—गाढ —रुट्ठ निसट्ठ परामुट्ठा ) अत्यन्त कठिन पटह-ढोल से पकड़ने के लिये धकेले गये तथा अत्यन्त रुष्ट कर्मचारियों के द्वारा छल पूर्वक पकड़ने के कठिन साधन—पाश विशेष से मजबूत पकड़े गये ( वज्झकर कुडि-जुय नियत्था ) वध के योग्य करकुडीयुग-वस्त्र का जोड़ा विशेष-पहने हुए हैं ( सुरत्त—कणवीर-गहिय-विमुकुल-कंठे गुण वज्झ-दूत-आविद्ध मल्लदामा ) खिले हुए-खूब लाल कनेर के फूलों से गूंथे गये सुवर्ण हार के समान कंठ में वध्य के दूत की तरह पुष्पमाला को जो पहने हुए हैं ( मरण

भयुप्पण्ण-सेद-आयस-णेहुत्तु पिय किलिन्नगत्ता ) मरण भय से उत्पन्न पसीने के कारण जैसे किसी ने थक कर तैल से शरीर मसला हो वैसे गीले शरीर वाले ( चुण्ण-गुंडिय सरीर; रयरेणु भरिय केसा ) राख आदि के चूर्ण से भरे शरीर वाले तथा हवा से उड़ी हुई धूलि के कणों से जिनके केश भरे हैं ( कुसुम-गोकिन्न मुद्धया ) कसूवा के रंग से व्याप्त केश वाले (छिन्न जीवियासा ) जीवन की आशा जिन की छूट गई है ( घुन्नता ) भय की अधिकता से जो धूज रहे हैं ( वज्झयाण भीता ) मातक पुरुषों से डरे हुए; या ( वज्झप्पाण पीता ) वध्य और दूसरे के प्राणों का पान करने-नाश करने वाले ( तिल तिल चेव छिज्जमाणा ) तिल जैसे टुकड़े २ कर के काटे गये ( सरीर विकिन्न—लोहिओलित्ता कागणि मंसाणि ) शरीर से तत्काल काटे हुए अतएव रक्त स्राव से लिप्त ऐसे मांस के छोटे २ टुकड़ों को ( खावियता ) खिलाये जाते हुए ( पावा ) पापी जीव ( खर फरुसएहिं ) अतिशय कठोर अथवा ( खर करसएहिं- ) सैकड़ों कठिन हाथों या पत्थर आदि से भरी हुई थैली से ( ताडिज्जमाण देहा ) पीटे जाते हुए शरीर वाले ( वातिक नर नारि सपरिवुडा ) वातिक-स्वच्छन्द स्त्री पुरुषों से घिरे हुए ( पेच्छिज्जंता य नागर जणेण ) और नागरिक लोकों से देखे जाते हुए ( वज्झ नेवत्थिया ) वध्य के पूर्ण वेश वाले चोर ( नयर मज्झेण ) शहर के बीच से 'वध्य भूमि में' ( पणेज्जति ) ले जाये जाते हैं ( किवण कलुणा ) अत्यन्त दीन ( अत्ताणा,—असरणा-अणाहा-अबंधवा-बंधु विप्पहीणा ) त्रास रहित, असरण गृह हीन, तथा नाथ बन्धु और बान्धवों से विप्रहीण अर्थात् प्रियजनों से दूर किये गए ( दिसोदिसिं विपिक्खता ) एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर देखते हुए ( मरण भयु व्विग्गा) मरणभय से उद्विग्न (आघायण पडिदुवार सपाविया) वध्य भूमि के प्रतिद्वार पर पहुँचाये गए ( सूलग्ग-विलग्ग भिन्न देहा ) शूली के अग्रभाग पर लगे होने से विदीर्ण-छिदे हुए शरीर वाले ( अधन्ना ) जो अधन्य-विफल हैं ( ते य तत्थ ) और वे वहां पर ( परिकप्पियग मगा कीरंति ) छिन्न भिन्न अङ्गों पाङ्ग वाले किये जाते हैं ( रुक्ख-सालासु उल्लंबिज्जति) वृक्ष की शाखाओं में लटकाये जाते हैं (केई कलुणाई विलवमाणा) कई करुणा जनक विलाप करते हुए और ( अवरे ) दूसरे ( चउरंग धणिय बद्धा ) हाथ पांव रूप चार अङ्गों में दृढ बाँधे गए ( पव्वय कडगा पमुच्चते ) पर्वत के शृङ्ग-शिखर से गिरा दिये जाते हैं ( दूरपात-बहुविसम—पत्थरसहा य ) और दूर से बहुत विषम पत्थर पर गिराये गये पतन के दुःख को सहने वाले हैं ( अन्ने ) दूसरे

( पाप कम्म मलण निमहिया कोरति ) हाथी के पैर नीचे मसलने के कारण मर्दित किये जाते हैं ( पावकारी,अट्ठारस खंडिया य ) और चोरी के पाप को करने वाले अठारहों स्थान में खण्डित ( कीरति ) किये जाते हैं जैसे—, मुसुढि पर सुहि ) मुसुंढी-कुण्ठित कुठार और परशु स ( केः वक्त-कन्नोट्ठ नासा ) कई काटे गये कान ओष्ठ और नाक वाले ( उप्पाडिय-नयण-दसण-वसणा ) आंख, दांत और वृषण-अंडकोश जिनके निकाले गये हैं वैसे ( जिब्भिंछिय छिन्न कन्न सिरा ) खींची गई जीभ वाले, कटे हुए कान और नाडी वाले ( पणिज्जते ) वध्य भूमि में लाये जाते हैं ( छिज्जंते य असिणा ) और तलवार से काटे जाते हैं ( निव्विसया ) देश से निकाले गये ( छिन्न हत्थपाया पमुच्चंते ) हाथ पांव काट कर राज पुरुषों से छोड़े जाते हैं ( जावज्जीव बंधणाय कीरंति क ) और कई चोर आजीवन कैद किये बंदी किये जाते हैं ( परदव्व हरण लुद्धा ) वे दूसरों के धन का हरण करने में लोभी ( कारग्गल नियल–जुयलरुद्धा ) जेल के कटहरे और दो बेड़ियों से रुके हुए ( चारगावहतसारा ) कारा जेल में छीने हुए द्रव्य वाले ( सयण विप्पमुक्का ) स्वजनों से छोड़े गये ( मित्तजन निरिक्खिया [ रक्खि ] या निरासा ) मित्र जनों से देखे,गये या हटाये गये) अतएव निराश ( बहुजणधिक्कार सद्द लज्जाविया ) बहुत से लोकों के धिक्कार शब्द से लज्जा पाये हुए ( अलज्जा ) निर्लज्ज ( अणुबद्धखुहा ) सदा भूखे ( पारद्ध-सीउण्ह तेण्ह वेयण दुग्घट्ट-घट्टिया ) प्रारब्ध के योग से,सर्दी गर्मी और तृषा की दुर्घट वेदना से युक्त हैं ( विवन्नमुहविच्छविया ) विरूप मुख और कान्तिहीन शरीर वाले ( विहल मलिण दुब्बला ) निष्फल मनो-रथवाले मलिन और असमर्थ हैं ( किलंता कासंता ) ग्लानियुक्त तथा खांसते हुए ( वाहिया य ) और कुष्ट आदि व्याधि वाले ( आमाभिभूयगत्ता ) आम-अपक्वरस रूप-रोग से आक्रान्त कायवाले ( परूढनह-केस-मंसुरोमा ) बधे रहने से जिनके नख, केश दाढी व रोम बढे हुए हैं ( छगमुत्तंमि नियगंमि खुत्ता ) अपने वहीं पैशाब में पड़े हुए ( तत्थेव ) परवश होकर वहाँ-मल मूत्र के स्थान पर ही ( मया अकाम का बंधिऊण पायेसु ) बिना इच्छा के ही अचिन्तित मरजाने से जो पांव में बांधकर ( कड्ढिया खाइयाए छूढा ) खींचे गए और खाई में गिरा दिये गये ( तत्थ य ) और वहाँ गिराने के बाद ( वग–सुणग–सियाल–कोल–मज्जार चंड संदंसग तुंड पक्खिगण विविहमुह सयल-विलुत्तगत्ता ) वृक, कुत्ता शृगाल, कोल बिल्ली के समूह और

सड़ाशी के समान मुख वाले पंक्षि समूह के अनेक प्रकार के सैकड़ों मुखों से उनके शव नोचे जाते हैं। (कयविहगा) उन मास भक्षी जीवों से टुकडि किये गये. (केइ किमिणा य) और कई कृमियुक्त शरीर वाले (कुहियदेहा) सडे हुए देह वाले अणिट्ठवयणेहि सप्पमाणा) लोकों के द्वारा अनिष्ट वचनों से क्लेश पाते हुए (सुट्ठुकयं ज मउत्तिपावो) अच्छा किया जो पापी मर गया इस प्रकार (तुट्ठेणं जणेण हम्म) सन्तुष्ट हुए मनुष्य से मारे जाते हैं (सयणस्स विय) और स्वजन वर्ग को भी वेचारे (दीहकाल) लम्बे समय तक (लज्जावणकाय होंति) शरमाने वाले होते हैं (मया सत्ता) मरे हुए क्या दशा भोगते हैं ?, । ५ । १२ ॥

भावार्थ— दूसरे के धनको ढूंढते हुए चोर पकडे जाते व मारे जाते हैं, बांध कर रोक रक्खे जाते हैं। शीघ्रता से चारों ओर घुमाकर नगर मे पहुंचाये जाते हैं और फिर अधिकारियों को सौंपे जाते हैं। अधिकारियों के द्वारा दिये गये विविध प्रहार और तर्जन से उदास बने हुए नरकावास के समान दुःख प्रद ऐसे बन्दिगृह मे गौल्मकों के प्रहार आदि से अभिभूत पीडा को भोगते हैं। वहाँ जो वध, बंधन, ताडन आदि दिये जाते हैं उनका वर्णन सहज है* अठारह प्रकार के चौर्य कर्मों के कारण कई चोर शूली पर चढाये जाते, कई आजीवन सजा पाते हैं और कुछ अन्धकूप आदि यातनाओं से सताये गये विना इच्छा के ही मृत्यु पाते हैं। अन्य प्रकरण सुलभ है। सू० । ५ । १२ ॥

**मूल—"पुणो परलोग समावन्ना, नरए गच्छंति निरभिरामे, अंगार पलित्तक-कप्प-अच्चत्थ-सीतवेदण-अस्सा उदिन्न-सयत-दुक्खसय समभिद्दुते, ततोवि उव्वट्टिया समाणा पुणोवि पवज्जंति तिरिय जोणिं, तहिंपि निरयोवमं अणु हवंति वेयणं। ते अणंत कालेण जति नाम कहिंपि मणुयभावं लभंति णे गेहिं णिरयगति-गमण-तिरिय भव-सयसहस्स परियट्टेहिं, तत्थवि य भवंतऽणा-रिया नीच-कुल-समुप्पण्णा आरिय जणेवि लोगवज्झा, तिरिक्ख भूता य अकुसला, काम भोग तिसिया, जहिं निबर्धति निरय-वत्तणि, भवप्पवंचकरण-पणोल्लि पुणोवि संसारा वत्तणेम मूल धम्मसुति विवज्जिया अणज्जा कूरा मिच्छत्त सुति पवन्ना य**

* परिशिष्ट मे देखिए

होंति, एगंत दंड दहणो वेदेंता, कोसिकार कीडोव्व अप्पगं अट्ठकम्म तंतुघण बंधणेय एवं नरग तिरिय-नर-अमर-गमण पेरंतचक्कवाल, जम्म-जरा-मरण-करण गंभीर दुक्ख पक्खुभिय पउर-सलिलं, संजोग वियोग-वीची-चिंता पसंग पसरिय वह-बंध-महल्ल विपुल कल्लोल-कलुण-विलवित-लोभ-कलकलिंत बोल बहुलं अवमाणण फेण, तिव्व खिसण-पुलं पुलप्पभूय-रोग वेयण-पराभव विणिवात फरुस-धरिसण-समावडिय-कठिण कम्म-पत्थर-तरंग-रंगत-निच मच्चु भय-तोयपट्ठं कसाय पायाल संकुलं, भवसय सहस्स जल संचयं, अणंत उव्वेयणयं अपोरपारं, महब्भयं भयंकरं पइ-भय, अपरिमिय-महिच्छ-कलुसमति-वाउवेग-उद्धम्ममाण आसा पिवास-पायाल-कामरति-रागदोस-बंधण बहुविह संकप्प विपुल दग-रय-रयधकारं, मोह महावत्त भोग भममाण गुप्प माणुप्फलंत-बहुगब्भवास-पच्चोणियत्त पाणिय पधावित-वसण समावन्न-रुन्न चंड-मारुय समाहया मणुन्न वीची-वाकुलित भग्ग-फुट्टंत निट्ठ-कल्लोल-संकुलजलं पमाद बहुचंड दुट्ठ-सावय समाहय उद्धायमाणग-पूरघोर विद्धंसणत्थबहुलं, अण्णाण भमंत मच्छ परिहत्थ, अनिहुतिंदिय महामगर-तुरिय-चरिय खोखुब्भमाण संताव-निचय-चलंत चवल-चंचल-अत्ताणाऽसरण पुव्वकयकम्म-संचयोदिन्न वज्ज वेइज्जमाण-दुहसय विपाक घुन्नंत जल समूहं, इड्डिरस साय-गार वोहार-गहिय कम्म पडिबद्ध सत्त-कड्ढिज्जमाण निरयतल-हुत्तसन्न-विसन्न बहुला, अरइ रइ भय-विसाय-सोग मिच्छत्त-सेल संकडं, अणाति संताण कम्म बंधण किलेस-चिक्खिल्ल सुदुत्तारं, अमर-नर-तिरिय निरय गति गमण कुडिल परियत्त-विपुल वलं, हिंसालिय अदत्तादाण मेहुण परिग्गहारंभ करण-कारावणाणु मोदण-अट्ठविह अणिट्ठ कम्म पिंडित-गुरु भारक्कंत-दुग्ग जलोघ दूर पच्चोणिज्जमाण उम्मग्ग निमग्ग-दुल्लभतलं, सारीरमणो मयाणि-दुक्खाणि उप्पियंता, सात स्साय परितावणमय उब्बुड्ड निबुड्डयं करेंता, चउरंत महंत मण

भयगं, रुद्दं संसार सागरं अट्ठिय अणालंबण पतिट्ठाण मप्पमेयं, चुलसीति जोणि सयसहस्स गुविलं, अणालोक मंधकारं, अणंत कालं निच्चं उत्तत्थ सुण्णभय-सण्ण संपउत्ता [1]वसंति उव्विग्गवास वसहिं। जहिं आउयं निबंधंति पाव कम्मकारी बंधव-जण-सयण-मित्त परिवज्जिया अणिट्ठा भवंति अणादेज्ज दुव्विणीया कुट्ठाणासण-कुसेज्ज-कुभोयणा, असुइणो कुसंघयण-कुप्पमाण-कुसंठिया, कुरूवा, बहुकोह-माण-माया-लोभा, बहु मोहा धम्मसण्ण-सम्मत्त परिब्भट्ठा, दारिद्दोवद्दवाभिभूया, निच्च परकम्म कारिणो, जीवणत्थरहिया, किविणा, परपिंडतक्कका दुक्खलद्धाहारा, अरस-विरस-तुच्छकय कुच्छिपूरा, परस्स पेच्छंता, रिद्धिसक्कार-भोयण विसेस-समुदयविहिं, निंदंता अप्पकं कयंतं च, परिवयंता इह य पुरेकडाइं कम्माइं पावगाइं, विमणसो सोएण डज्झमाणा परिभूया होंति सत्ता परिवज्जिया य, छोभा-सिप्पकला समय-सत्थ परिवज्जिया, जहाजाय पसुभूया, अवियत्ता णिच्चणीय कम्मोव जीविणो, लोय कुच्छणिज्जा, मोघमणोरहा, निरास बहुला आसापास पडिबद्ध पाणा, अत्थोपायाण--कामसोक्खे य लोयसारे होंति अफलवंतका य सुट्ठुविय उज्जमंता तद्दिव सुज्जुत्त-कम्मकयदुक्ख संठविय-सित्थपिंड-संचय-पक्खीणदव्वसारा, निच्चं अधुवधण-धण्ण-कोस-परिभोग विवज्जिया, रहिय काम भोग परिभोग सव्वसोक्खा, परसिरिभोगोवभोग-निस्साण-मग्गण परायणा, वरागा अकामिकाए विणेंति दुक्खं, णेव सुहं, णेव निव्वुतिं उवलभंति अच्चंत विपुल दुक्ख सय संपलित्ता। परस्स दव्वेहिं जे अविरया। एसो सो अदिण्णादाणस्स फलविवागो, इहलोइओ, पारलोइओ, अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो, दारुणो कक्कसो असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चति। न य अवेयइत्ता अत्थि हु मोक्खोत्ति, एवमाहंसु णायकुल

१ क—संसार सागर वसंति।

णंदणो महप्पा जिणो उ वीरवर-नामधेज्जो, कहेसी य अदिण्णादाणस्स फलविवागं, एयं तं ततियंपि अदिण्णादाणं हरदह-मरण-भय-कलुसतासण-परसंतिक भेज्ज लोभ मूलं एवं जाव चिर-परिगयमणुगयं दुरंतं । ततियं अहम्मदारं समत्तं त्तिबेमि ॥ ३ ॥ ६ ॥ सूत्र १२ ॥

छाया—पुनः परलोकं समापन्ना नरकं गच्छन्ति निरभिरामे, अङ्गारप्रदीप्तक-कल्पात्यर्थ शीतवेदनाऽसातोदीर्ण—सतत दुःख शत समभिद्रुते ततोऽप्युद्वर्तिताः सन्तः पुनरपि प्रपद्यन्ते तिर्यग् योनिम् । तत्राऽपि निरयोपमामनुभवन्ति वेदनाम् । तेऽनन्त कालेन यदि नाम कथमपि मनुष्यभावं लभन्ते नैकेषु निरयगति—गमन-तिर्यग् भवशत सहस्र परिवर्तेषु । तत्रापि च भवन्त्यनार्या नीच कुल समुत्पन्ना आर्यजनेऽपि लोक बाह्यास्तिर्यग् भूताश्च अकुशलाः, कामभोग तृषिता यत्र निबध्नन्ति निरय-वर्तिभवप्रपञ्च करण प्रणोलिं । पुनरपि संसारावर्तनेमि मूलानि । धर्मश्रुति विवर्जिता अनार्याः क्रूरा मिथ्यात्व श्रुतिप्रपन्नाश्च भवन्ति । एकान्त—दण्ड रुचयो वेष्टयन्ति कोशिकाऽऽकार कीटा इवात्मानमष्टकर्म तन्तु-घनबन्धनेन । एवं नरक तिर्यङ् नराऽमर गमन—पर्यन्त चक्रवाल जन्म जरा—मरण—करण—गम्भीर दुःख प्रक्षुभित—प्रचुर सलिलं संयोग-वियोग-वीची-चिन्ता प्रसङ्ग प्रसृत वध-बन्ध महा ( दीर्घ ) विपुल कल्लोल करुण विलपित-लोभ कलकलायमान-बोल बहुलम् अपमानन फेन तीव्र खिंसन [ पुलं पुल ] प्रभूत-रोग वेदना—पराभव विनिपात परुष धर्षणा समापतित—कठिन-कर्म प्रस्तर तरङ्ग रङ्गन्नित्य मृत्यु-भय तोय पृष्ठं, कषाय पाताल संकुलं भवशत सहस्र जलसञ्चयम् अनन्तम् उद्वेजनकम् अनवदग्रपारं, महाभयं भयङ्करं प्रतिभयम् अपरिमित महेच्छा कलुषमति-वायु वेगोद्धूयमानाऽऽशा-पिपासा पाताल-कामरति-राग द्वेष-बन्धन-बहुविध संकल्प-विपुलोदक रजोरजोऽन्धकारं मोहमहावर्त-भोग-भ्राम्यद् गुप्यदुत्पतद् बहु गर्भवास प्रत्यव निवृत्त पानीयं प्रधावित व्यसन—समापन्न—रुदित—चण्ड मारुत—समाहताऽमनोज्ञ वीची—व्याकुलित—भग्न स्फुटितानिष्ठुर—कल्लोल संकुलजलं, प्रमाद बहु चण्ड दुष्ट—श्वापद समाहतोद्धावद् बहुविध—घोर विध्वंसनाऽनर्थ बहुलम् अज्ञान भ्रमन्मत्स्य परिहस्तम् । अनिभृतेन्द्रिय-महामकर त्वरित—चरित क्षोभ्यमाण—सन्ताप नित्यक चलच्चपल चञ्चल त्राणाऽशरण पूर्वकृत कर्म सञ्चयोदीर्ण—वज्र वेद्यमान दुःखशत विपाक-घूर्णमानजलसमूहम् ऋद्धि-रस सात गौरवापहार गृहीत कर्म प्रति

बद्ध सत्त्वाऽऽकृष्यमाण नरक तलाभिमुखसन्न विषण्ण बहुलाऽरति-रतिभय विषाद शोक-मिथ्यात्व शैल सङ्कटम्, अनादि सन्तान कर्म बन्धन क्लेश-चिक्खिल्ल सुदुस्तारम्, अमर-नर-तिर्यङ्-निरयगति गमन कुटिल-पर्यस्त-विपुलवेलम्, हिंसाऽलीकाऽदत्ताऽदान मैथुन-परिग्रहाऽरम्भ करण-कारणाऽनुमोदनाऽष्टविधाऽनिष्टकर्म-पिण्डित-गुरु भाराऽऽक्रान्त दुर्गजलौघ दूर [ निमज्जमान ] प्रणोद्यमानोन्मग्न-निमग्न-दुर्लभतलम्, शरीर मनोमयानि दुःखान्युत्पिबन्त, साताऽसात-परितापनमयम्, उन्मग्न-निमग्ने कुर्वन्त, चतुरन्त महान्त मनवदग्र, रुद्र, संसार सागरम्। अस्थितानां मनालम्बन मप्रतिष्ठानमप्रमेयम्, चतुर शीति योनिशत सहस्र गुपिलम्, अनालोकमन्धकारमनन्त-कालम्, नित्यमुत्त्रस्तशून्यभयसंज्ञा-सम्प्रयुक्ता वसन्ति-उद्विग्नवासवसतिम्। यत्राऽऽयुर्निबध्नन्ति पाप कर्म कारिणो बान्धवजन-स्वजन मित्र-परिवर्जिता, अनिष्टा भवन्ति-अनादेय दुर्विनीता कुस्थानाऽऽसन-कुशय्या-कुभोजना अशुचय, कुसहनन-कु प्रमाण-कुसंस्थाना, ( स्थिता ) कुरूपा. बहुक्रोध मान माया लोभा, बहुमोहा, धर्म संज्ञा-सम्यक्त्वप्रभ्रष्टा दारिद्र्योपद्रवाऽभिभूता नित्यपर कर्म कारिणो जीवनाऽर्थरहिता, कृपणा, पर पिण्डतर्कका, दुःखलब्धाऽऽहारा, अरस विरस तुच्छ कृत कुक्षिपूरा, परस्य प्रेक्षका, ऋद्धि सत्कार भोजन विशेष समुदयविधि, निन्दन्त -आत्मानं कृतान्तं च परिवदन्त, इह च पुराकृतानि कर्माणि पापकानि विमनस शोकेन दह्यमानाः परिभूता भवन्ति-सत्त्व परिवर्जिताश्च [ क्षोभणीय ] क्षोभशिल्प-कला-समय-शास्त्र परिवर्जिता, यथा जात पशुभूता, अप्रणीता नित्य नीचकर्मोपजीविनो लोक कुत्स-नीया मोघ मनोरथा, निराशा-बहुला, आशा पाश प्रतिबद्ध प्राणा अर्थोपादान कामसौख्ये च लोकसारे भवन्त्यफलवन्तश्च। सुष्ठ्वपि च उद्यच्छन्तस्तद्दिवसोद्युक्त-कर्मकृत-दुःख संस्थापित-सिक्थ-पिण्ड सञ्चय-प्रक्षीण द्रव्यसारा, नित्यमध्रुव-धन-धान्य कोश-परिभोग-विवर्जिता, रहित-काम भोग-परिभोग सर्वसौख्याः, परश्री भोगोपभोग-निश्राण मार्गण परायणा, वराका अकामिकया विनयन्ति दुःखम्। नैव सुखं नैव निर्वृतिमुपलभन्ते, अत्यन्त विपुल दुःखशत सम्प्रदीप्ता, परस्य द्रव्याद् येऽविरता। एष सोऽदत्तादानस्य फल विपाक ऐहिलौकिक पारलौकिकोऽल्पसुखो, बहुदुःखो महाभयो, बहुरजः प्रगाढो दारुण कर्कशोऽसातो वाससहस्रैमुच्यते। न चाऽवेदयित्वाऽस्ति मोक्ष इति, एवमाख्यातवान् ज्ञातकुलनन्दनो महात्मा जिनस्तु वीर वरनामधेय कथयिष्यति चाऽदत्तादानस्य फल विपाकम्। एतत् तत् तृतीयमप्य-

पत्ताऽभ्यार्न हरवह मरण-भय कालुष्य त्रासन पर सरका मवा लोभ मूलमवं चावम चिर परिगत मनुगर्तं दुरन्तम् । तृतीयमधमद्वारं समाप्तम् । इति ब्रवामि ॥ ३ ॥ सूत्र । ६ । १२ ॥

अन्वयार्थ— ( पुणो परलोक समापन्ना ) मरजाने के बाद फिर परलोक गये हुए वे चोर ( नरए गच्छति ) नरक में जाते हैं ( निरभिरामे ) जो नरक सुन्दरता से हीन है और ( अंगार पलित्तक-कप्प-अच्चत्थ-सीत वेदण अस्सा उदिन्न-सयत दुक्ख सयसमभिदुते ) अग्नि से जलते हुए घर के समान जो अत्यन्त शीत वेदना वाला और असाता-दु ख से उदीरणा पाये हुए अगावार सैकड़ों दुःखों से व्याप्त घिरा हुआ है ( ततोवि उव्वट्टिया समाणा ) उस नरक स्थान से निकले हुए ( पुणोवि पवज्जंति ) फिर भी प्राप्त करते हैं ( तिरियजोणिं ) तिर्यंच योनि को ( तहिंपि ) वहाँ पर भी ( निरयोवमवेयण ) नरक के समान वेदना को ( अणुभवंति ) अनुभव करते हैं ( अणंतकालेणं ) अनन्त काल से ( जतिणाम ) अगर कदाचित् ( ते ) वे-चोर के जीव ( कहिंचि ) किसी प्रकार या कहीं भी ( मणुयभावं ) मनुष्यता को ( णेगेहिं ) अनेक ( निरय गति गमण तिरियभवसय सहस्स परियट्टेहिं ) नरक गति में जानेरूप और तिर्यंच भव के लाखों परिवर्तन होजाने पर ( लभंति ) प्राप्त करते हैं ( तत्थवि य ) और वहाँ मनुष्य भव के लाभ में भी ( भवंतऽणारिया ) अनार्य होजाते हैं, जो ( नीयकुलसमुप्पण्णा ) नीच कुल में पैदा हुए हैं ( आरियजणेवि ) अनार्य मनुष्य में उत्पन्न होकर भी ( लोगवज्झा तिरिक्खभूता य ) लोकों से बहिष्कृत और पशु के समान ( अकुसला ) तत्त्व ज्ञान में अनिपुण ( काम भोग तिसिया ) काम भोग की तृषा वाले ( जहिं ) जहाँ मनुष्य भव का बन्ध हुआ वहाँ ( निरय वत्तणि-भवप्पवंच-करणपणोल्लि पुणोवि संसारावत्तणेम मूले ) नरक गति संबन्धी अनेक भव करने से पुन उसी में प्रवृत्ति परायण जीव, पुनः पुनरावर्तन से संसार रूप नींव वाले दुःखों के मूल कर्मों को ( निबंधंति ) बांधते-संचय करते हैं ( धम्म सुति विवज्जिया ) धर्म शास्त्र से विवर्जित-विकल ( अणज्जाकूरा ) अनार्य क्रूर—हिंसाकारी उपदेश देने वाले ( मिच्छत्तसुति पवनाय होंति ) और वे मिथ्यात्व प्रधान श्रुति-सिद्धान्त को स्वीकार करने वाले होते हैं ( एगंत दंड रुइणो ) एकान्त-सब तरह से-हिंसा को रुचि वाले ( कोसिकार कीडोव्व अप्पगं ) रेशम के कीड़े की तरह अपने आपको ( अट्ठकम्मतंतु-घन बंधणेनं ) आठ प्रकार के कर्मरूप तन्तुओं के

सघन बन्धन से ( वेढेंति ) वेष्टित करते हैं ( एवं ) इस प्रकार ( नरग-तिरिय-नर अमर गमण पेरंत चक्कवालं ) नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव गति में गमनागमन परिधि वाले ( जम्म-जरा-मरण-करण-गंभीर-दुक्ख-पक्खुभिय-पउरसलिलं ) जन्म, जरा मरण रूप साधन वाला गम्भीर दुःख ही जहां अत्यन्त क्षुब्ध प्रचुर पानी है ( संजोग-विओग वीची चिंता पसंग-पसरिय- वह—बंध—महल्ल विपुल-कल्लोल-कलुण-विलावत-लोभ-कलकलिंत-बोल बहुलं ) संयोग, वियोग रूप तरङ्ग वाला, चिन्ता के प्रसङ्ग रूप फैलाव वाला, और जो वध—बन्धन रूप लम्बाई से बड़ा और विस्तीर्ण कल्लोल वाला है, दीनता से विलाप युक्त, लोभ रूप कल-कल करती हुई ध्वनि की अधिकता वाले (अवमाणणफेण) अपमान रूप फेन वाले ( तिव्व-खिंसणपुलंपुल-प्पभूय-रोग-वेयण पराभव विणिवात-फरुस-धरिसण-समावडिय-कठिण-कम्म-पत्थर-तरंग रंगत-निच्च मच्चुभयतोयपट्ठं ) तीव्र निन्दा, निरन्तर उत्पन्न हुए अनेक रोगों की वेदनायें, अनादर का संयोग और कठिन वचनों का सघर्ष, ये सब जिनसे प्राप्त हों ऐसे कठिन कर्म रूप पत्थरों से तरङ्ग की तरह चलायमान सदा-अटल मृत्यु भय रूप जल के पृष्ठ भाग वाले ( कसाय पायाल सकुलं ) ४ कषाय रूप पाताल कलशों से व्याप्त ( भवसय सहस्स जल संचय अणंतं ) लाखों भवरूप जल सञ्चय वाले, अन्त रहित ( उव्वेजणय अणोरपारं ) उद्वेगजनक अपार एवं अति विस्तीर्ण ( महब्भय-भयंकर पइभय ) महाभयानक, भयङ्कर और जो प्रत्येक वस्तु में भय उत्पन्न करने वाला है ( अपरिमिय-महिच्छ-कलुसमति वाउ वेग उद्धम्ममाण—आसा-पिवास-पायाल—काम-रति-राग—दोस-बंधण-बहुविह संकप्प-विपुल-दग—रय-रयघकारं ) अपरिमित-बड़ी इच्छा वाले मलिन मति रूप वायु के वेग के कारण आशा पिपासा रूप पाताल कलशे या समुद्रतल से उत्पन्न हुआ जो विषय में अभिरुचि, राग द्वेष रूप बन्धन और अनेक प्रकार के सङ्कल्परूप विस्तीर्ण पानी के रजःकण हैं उन के वेग से भवसमुद्र अन्धकार युक्त है ( मोह-महावत्त-भोग-भममाण—गुप्पमाणुच्छलंत-बहु गब्भवास-पच्चोणियत्त पाणियं ) जहाँ मोह ही महा आवर्त है, भोग-इन्द्रिय के विषय ही परिभ्रमण करते हुए व्याकुल होते और उछलते हुए बहुत गर्भवास-मध्य भाग-में उछलकर मोले लौटे हुए प्राणी हैं ( पधावित वसण-समावन्न-रुन्न-चंड-मारुय-समाहया—मणुन्न वीची—वाकुलिय भग्ग-फुट्टत—निट्ठ कल्लोल—सकुलजलं) इधर उधर फैले हुए व्यसनों को प्राप्त कर रोने वालों का प्रलाप रूप प्रचण्ड वायु से

दुक्खाऽऽणं हरदह मरणं-भय कालुष्य त्रासन पर घरका भया। धिम मूलमय पावम् चिर परिगत मनुगतं दुरन्तम्। तृतीयमधर्मद्वारं समाप्तम्। इति ब्रवीमि ॥ ३ ॥ सूत्र। ६। १२॥

अन्वयार्थ— ( पुणो परलोक समावण्णा ) मरजाने के बाद फिर परलोक गये हुए वे चोर ( नरय गच्छंति ) नरक में जाते हैं ( निरभिरामे ) जो नरक सुन्दरता से हीन है और ( अंगार पलित्तक-कप्प-अच्चत्थ-सीत वेदण अस्सा उदिन्न-सयत दुक्ख सयसमभिदुते ) अग्नि से जलते हुए घर के समान जो अत्यन्त शीत वेदना वाला और असाता-दुःख से शरीरणा पाये हुए लगातार सैकड़ों दुःखों से व्याप्त घिरा हुआ है ( ततोवि उव्वट्टिया समाणा ) उस नरक स्थान से निकले हुए ( पुणोवि पवज्जंति ) फिर भी प्राप्त करते हैं ( तिरियजोणिं ) तिर्यक् योनि को ( तहिंपि ) वहाँ पर भी ( निरयोवमवेयण ) नरक के समान वेदना को ( अणुहवंति ) अनुभव करते हैं ( अणंतकालेणं ) अनन्त काल से ( जतिनाम ) अगर कदाचित् ( ते ) वे-चोर के जीव ( कहिंचि ) किसी प्रकार या कहीं भी ( मणुयभावं ) मनुष्यता को ( णेगेहिं ) अनेक ( निरय गति गमण तिरियभवसय सहस्स परियट्टेहिं ) नरक गति में जानेरूप और तिर्यग भव के लाखों परिवर्तन होजाने पर ( लभंति ) प्राप्त करते हैं ( तत्थवि य ) और वहाँ मनुष्य भव के जन्म में भी ( भवंतऽणारिया ) अनार्य होजाते हैं, जो ( नीयकुलसमुप्पण्णा ) नीच कुल में पैदा हुए हैं ( आरियजणेवि ) अनार्य मनुष्य में उत्पन्न होकर भी ( लोगवज्झा तिरिक्खभूता य ) लोकों से बहिष्कृत और पशु के समान ( अकुसला ) तत्त्व ज्ञान में अनिपुण ( काम भोग तिसिया ) काम भोग की तृषा वाले ( जहिं ) जहाँ मनुष्य भव का जन्म हुआ वहाँ ( निरय वत्तणि-भवप्पवंच-करणपणोल्लि पुणोवि संसारावत्तणेम मूले ) नरक गति संबन्धी अनेक भव करने से पुनः पत्तो में प्रवृत्ति परायण जीव पुनः पुनरावर्तन से संसार रूप नींव वाले दुःखों के मूल कर्मों को ( निबंधंति ) बांधते-संचय करते हैं ( धम्म सुति विवज्जिया ) धर्म शास्त्र से विवर्जित-विकल ( अणज्जाकूरा ) अनार्य क्रूर—हिंसाकारी उपदेश देने वाले ( मिच्छत्तसुति पवन्नाय होंति ) और वे मिथ्यात्व प्रधान श्रुति-सिद्धान्त को स्वीकार करने वाले होते हैं ( एगंत दंड रुइणो ) एकान्त-रूप तरह से-हिंसा की रुचि वाले ( कोसिकार कीडोव्व अप्पगं ) रेशम के कीड़े की तरह अपने आपको ( अट्ठकम्मतंतु-घण बंधणेणं ) आठ प्रकार के कर्मरूप तन्तुओं के

सघन बन्धन से ( वेढेंति ) वेष्टित करते हैं ( एवं ) इस प्रकार ( नरग-तिरिय-नर अमर गमण पेरत चक्कवाले ) नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव गति में गमनागमन परिधि वाले ( जम्म-जरा-मरण-करण-गंभीर-दुक्ख-पक्खुभिय-पउरसलिलं ) जन्म, जरा मरण रुप साधन वाला गम्भीर दुःख ही जहां अत्यन्त क्षुब्ध प्रचुर पानी है ( संजोग-विओग वीची चिंता पसंग-पसरिय- वह—बंध—महल्ल विपुल-कल्लोल-कलुण-विलावव-लोभ-कलकलित-बोल बहुलं ) संयोग, वियोग रूप तरङ्ग वाला, चिन्ता के प्रसङ्ग रूप फैलाव वाला, और जो वध—बन्धन रूप लम्बाई से बड़ा और विस्तीर्ण कल्लोल वाला है, दीनता से विलाप युक्त, लोभ रूप कल-कल करती हुई ध्वनि की अधिकता वाले (अवमाणणफेण) अपमान रूप फेन वाले ( तिव्व-खिंसणपुलंपुल-प्पभूय-रोग-वेयण पराभव विणिवात-फरस-धरिसण-समावडिय-कठिण-कम्म-पत्थर-तरंग रंगत-निच्च मच्चुभयतोयपट्ठं ) तीव्र निन्दा, निरन्तर उत्पन्न हुए अनेक रोगों की वेदनायें, अनादर का संयोग और कठिन वचनों का संघर्ष, ये सब जिनसे प्राप्त हों ऐसे कठिन कर्म रूप पत्थरों से तरङ्ग की तरह चलायमान सदा-अटल मृत्यु भय रूप जल के पृष्ठ भाग वाले ( कसाय पायाल संकुल ) ४ कषाय रूप पाताल कलशों से व्याप्त ( भवसय सहस्स जल संचय अणतं ) लाखों भवरूप जल सञ्चय वाले, अन्त रहित ( उव्वेजणय अणोरपारं ) उद्वेगजनक अपार एवं अति विस्तीर्ण ( महब्भय-भयंकर पइभय ) महाभयानक, भयङ्कर और जो प्रत्येक वस्तु में भय उत्पन्न करने वाला है ( अपरिमिय-महिच्छ-कलुसमति वाउ वेग उद्धम्ममाण—आसा—पिवास—पायाल—काम—रति—राग—दोस-बंधण-बहुविह संकप्प-विपुल-दग—रय-रयधकारं ) अपरिमित-बड़ी इच्छा वाले मलिन मति रूप वायु के वेग के कारण आशा पिपासा रूप पाताल कलशे या समुद्रतल से उत्पन्न हुआ जो विषय में अभिरुचि, राग द्वेष रूप बन्धन और अनेक प्रकार के सङ्कल्परूप विस्तीर्ण पानी के रजःकण हैं उन के वेग से भवसमुद्र अन्धकार युक्त है ( मोह-महावत्त-भोग-भममाण-गुप्पमाणुच्छलंत-बहु गब्भवास-पच्चोणियत्त पाणियं ) जहाँ मोह ही महा आवर्त है, भोग-इन्द्रिय के विषय ही परिभ्रमण करते हुए व्याकुल होते और उछलते हुए बहुत गर्भवास-मध्य भाग-में उछलकर पीछे लौटे हुए प्राणी हैं ( पधावित वसण-समावन्न-रुन्न-चंड-मारुय-समाहया—मणुन्न वीची-वाकुलित भग्ग-फुटंत—निट्ठ कल्लोल—संकुलजल ) इधर उधर फैले हुए व्यसनों को प्राप्त कर रोने वालों का प्रलाप रूप प्रचण्ड वायु से

आघात पाये हुए मनोज्ञ तरङ्गों से चपल और नाना स विविध-चपल कल्लोलों से व्याप्त जलवाला है (पमाव बहुचंड दुट्ठ सावय-समाहय उद्धायमाण पूरघाय विद्धंसमाण बहुलंब ( ये आदि प्रमाद ही बहुत रौद्र व दुष्ट श्वापद हिंसक जन्तु हैं उनके आघात स उठते हुए पुरुष आदि रूप मगरों का समूह हो रहा है उसके भयङ्कर विनाशक अनर्थों स जो बहुल-व्याप्त है (अण्णाण भमन मच्छ परिहत्थं) अज्ञान रूपी भ्रमण करते हुए बड़ मत्स्यों से युक्त ( अणिहुतिंदिय—महा मगर—तुरिय-चरिय खोखुब्भमाण-संताव-निचय-चलंत-चवल-चंचल—अत्ताणऽसरण-पुव्वकय कम्म-संचयोदिण्ण वज्ज वेइज्जमाण दुह सय विपाक घुण्णंत जल समूह ) अनुपशान्त इन्द्रिय रूप बड़े मगरों के जल्दी चलने या चेष्टा करने स जो अधिक क्षुब्ध तथा नित्य सन्ताप वाला है, चलता हुआ चपल व चञ्चल और त्राण रहित एव अशरण प्राणियों के पूर्वकृत कर्म के संचय से उदय पाये हुए-पापों का भोगा जाता हुआ सैकड़ों दुःख रूप विपाक हो भ्रमण करता हुआ जल समूह है ( इड्ढि-रस-सात-गारवोहार-गहिय-कम्म पडिबद्ध सत्त-कड्ढिज्जमाण-निरयतलहुत्त सन्न—विसन्न-बहुला-अरइ-रइ—भय—विसाय सोग-मिच्छत्त सेल संकड ) ऋद्धि, रस और साता ये तीन गौरव रूप अपहार-जल-चर विशेष से गृहीत और कर्म बन्ध स जकड़े हुए मानो नीचे जाते हुए जो नरक रूप पाताल तल के सन्मुख सन्न और विषण्ण-खेद युक्त-हैं, उन से बहुल अरति, रति, भय, दीनता, शोक तथा मिथ्यात्व रूप पर्वतों से संकट ( अणादि-संताण कम्म-बन्धण-किलेस-चिक्खिल्ल सुदुत्तार ) अनादि—आदि रहित सन्तान वाला कर्म बंधन ] और रागादि क्लेश रूप कीचड़ के कारण बहुत कठिनता से तरने योग्य ( अमर-नर तिरिय निरयगतिगमण-कुडिल-परियत्त-विपुल वेलं ) देव, मनुष्य तिर्यञ्च और निरय-नरक-गति में जाने रूप कुटिल परिवर्तन युक्त विस्तीर्ण वेला-जल वृद्धि वाले ( हिंसालिय—अदत्तादाण-मेहुण—परिग्गहारंभ—करण—कारावणाणुमोयण-अट्ठ-विह अणिट्ठकम्म-पिंडिय गुरुभारक्कंत—दुग्ग—जलोघ—दूर-पणोलिज्जमाण—उम्मग्ग निमग्ग-दुल्लभतलं ) हिंसा, झूठ चोरी, मैथुन और परिग्रह-संग्रह, आरम्भ के करने कराने व अनुमोदन से संचित आठ प्रकार के अनिष्ट कर्मों के भारी बोझ से जो दबे हुए हैं, व्यसन रूप जल के प्रवाह से दूर फैंके जाते हुए और पानी में ऊपर नीचे होने से जिसका तल प्रदेश मिलना दुर्लभ है ( सरीर मणोमयाणि दुक्खाणि ) शरीर व मन सम्बन्धी दुःखों को ( उप्पियंता ) प्राप्त करते हुए ( सातस्साय

परित्तापण मय ) माना-सुख और दु ख से उत्पन्न परितापना वाले ( उब्बुड्ड निब्बुड्डय ) सुख दु ख रूप उच्च नीच दशा को ( करेंता ) करते हुए ( चउरत महंत मणवयग्ग रुद्द ( रुद्दं ) ससार सागर ) दिशा व गति से चार तरफ अन्त वाले, बडे अन्त रहित और अत्यन्त विशाल ससार सागर को ( अट्ठियं अणालबणमपतिट्ठाणमप्पमेय ) मयम में अस्थित आलम्बन रहित अप्रतिष्ठान-आधार रहित या प्राण रक्षा के कारण से रहित तथा अल्पज्ञों से नहीं जानने योग्य ( चुलसीति जोणि सय—सहस्सगुविल ) चोरासी-लाख जीव योनिओ से गुपिल-व्याप्त ( अणालोकमधकार ) अज्ञान के अन्धकार स्वरूप ऐसे समार सागर में ( अणंतकाल ) अनन्त काल ( णिच्च उत्तत्थ सुन्न भयसन्न संपउत्ता ) सदा त्रास युक्त शून्य—कर्तव्य विचार में मूढ—और भयसज्ञा सहित जीव ( वसंति ) रहते हैं ( उव्विग्गवास वसहिं ) जो समार उद्विग्न जनों का निवासस्थान है ( जहिं ) जिस ग्राम कुल आदि में ( पावकम्मकारी ) पाप कर्म करने वाले ( आउय ) आयु को ( निवंधति ) बंध करते हैं, वहा ( बधव जण सयण मित्त-परिवज्जिया , बाधव जन स्वजन तथा मित्रों से ले परिवर्जित-रहित ( अणिट्ठा ) अनिष्ट ( भवति ) होते हैं,( अणादेज्ज दुव्विणीया ) फिर अग्राह्य वाक् एव दुर्विनीत-विनय से भ्रष्ट ( कुठाणासण कुसेज्ज कुभोयणा) अयोग्य व खराव स्थान,आसन शय्या, और खराब भोजन वाले (असुइणो ) अशुचि-शुचि रहित या धर्म श्रुति से हीन ( कुसंघयण-कुप्पमाण-कुसंठिया-कुरूवा ) सेवट्ट आदि अशुभ सहनन वाले, अधिक लम्बे या अधिक छोटे हुड आदि आकार वाले कुरूप सुन्दरता से हीन ( बहुकोह-माणा माया-लोभा—बहुमोहा ) बहुत क्रोध, मान, माया और लोभ वाले, बहु मोहा-अधिक कामी या अज्ञानी ( धम्म सन्न-सम्मत्त-पब्भट्ठा ) धर्म बुद्धि और सम्यक्त्वसे परिभ्रष्ट ( दारिद्दोवद्दवाभिभूया ) दरिद्रता के उपद्रव से घिरे हुए ( निच्च पर कम्म कारिणो ) सदा दूसरों के काम करने वाले ( जीवणत्थ-रहिया ) जीने योग्य द्रव्य से रहित या जीवन के पवित्र उद्देश्य से रहित ( किवणा-पर पिंड-तक्का ) रक, भिखारी, तथा दूसरे के दिये हुए पिण्ड को ताकने वाले अर्थात् परमुखापेक्षी ( दुक्खलद्धाहारा ) दु ख से आहार का लाभ करने वाले ( अरस विरस तुच्छकय कुच्छिपूरा ) अरस-हींग आदि रस रहित, विरस-पुराने-बासी और तुच्छ आहार से उदर भरण करने वाले ( परस्स ) दूसरे के ( रिद्धि-सक्कार-भोयण विसेस समुदयविहिं पेच्छता ) ऋद्धि—संपत्ति, सत्कार और

भोजन के विशिष्ट प्रकार के संग्रह और तरीके को देखते हुए-तरसते ( निदंता-प्पणं ) अपनी निन्दा करते हुए ( कयंत च परिवयंता ) और कृतान्त—दैव को बुरा कहते हुए ( इह य ) इस जन्म में ही ( पुरे कडाइं कम्माइं पावगाइं ) पूर्व कृत जन्मान्तर के किये हुए-अशुभ कर्मों का निन्दन करते हुए ( विमणसो ) उदास मन वाले ( सोएण डज्झमाणा ) शोक से जलते हुए ( परिभूया होंति ) अनादर युक्त होते हैं, ( सत्त परिवज्जिया य ) और सामर्थ्य रहित ( छोभा ) असहाय-क्षोभपाने योग्य ( सिप्प कला समयसत्थ परिवज्जिया ) शिल्प-चित्रकला आदि कला-धनुर्वेद आदि और समयशास्त्र-जैन बौद्ध शैव आदि के सिद्धान्त शास्त्र, इन सब से परिवर्जित अर्थात् अनजान होते ( जहाजाय पसुभूया ) मूर्ख और पशु के समान ( अवि-यत्ता ) अप्रीति उत्पन्न करने वाले ( णिच्च नीयकम्मोवजीविणो ) सदा नीच कर्मों से जीविका चलाने वाले ( लोय कुच्छणिज्जा ) लोक में निन्दनीय ( मोघ मणोरहा निरास बहुला ) निष्फल मनोरथ वाले व निराश की अधिकता वाले ( आसापास पडिबद्धपाणा ) आशा के पाश में बंधे हुए प्राण वाले ( अत्थोपायाण कामसोक्खे य लोगसारे ) अर्थ संग्रह-धन संचय तथा काम सुखरूप लोक के सारांश में ( सुट्ठ'वि उज्जमंता ) अच्छी तरह से उद्यम करते हुए भी ( अफलवंतका होंति ) निष्फल होते हैं, ( तिविणसुज्जुसुकम्म कय—दुक्खसंठविय—सित्थपिंड-संचय-परा खीण-दव्वसारा ) प्रतिदिन तत्पर होकर किये गये श्रम से दुःख पूर्वक मिलाये गये सिक्थ-गिरे हुए आहार के अंशको संचय करने पर भी घटते हुए द्रव्य-सार वाले खाने भोजन के सिवाय कुछ भी नहीं बचाने वाले ( निच्च ) सदा ( अधुव-धण-धन्न कोस परिभोग विवज्जिया ) अस्थिर धन धान्य और कोष के स्थिर रहने पर भी जो परिभोग से रहित हैं ( रहिय काम-भोग-परिभोग सव्व सोक्खा ) काम—शब्द रूप भोग—गंध रस और हृष्ट स्पर्श के परिभोग में आनन्द रहित हैं ( परसिरि भोगोव भोग निस्साण मग्गण परायणा ) दूसरे की लक्ष्मी से भोगोपभोग में निश्रा—आश्रय की खोज करने वाले ( वरागा अकामिकाए ) बिना इच्छा के बेचारे ( विणेंति दुक्खं ) दुःख को वहन करते हैं ( णेव सुहं णेव णिव्वुइं उवलभंति ) न सुख को और न कभी शान्ति को ही वे प्राप्त करते हैं ( अच्चंत विपुल दुक्खसय संपलित्ता ) अत्यन्त विस्तीर्ण सैंकड़ों दुःखों से जलते रहते ( जे परस्स दव्वेहिं अविरया ) जो दूसरे के द्रव्य से निवृत्ति रहित हैं ॥

उपसंहार—( एसोसो ) ऐसा यह—( अदिण्णादाणस्स फल विवागो ) अदत्तादान का फल रूप विपाक ( इहलोइओपारलोइओ ) मनुष्य लोक और परलोक सम्बन्धी (अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो ) अल्प सुख वाला, अधिक दु:ख वाला, महाभयानक, कर्मरज की अधिकता से गाढ ( दारुणो कक्कसो असाओ ) भयङ्कर, कठोर और दु:ख रूप है ( वाससहस्सेहिं मुच्चति ) हजारों वर्षों से छूटता है ( न य अवेयइत्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति ) विना भोगे इससे छुटकारा नहीं होता है ( एवमाहसु णायकुलणंदणो महप्पा जिणो उ वीरवर नाम धेज्जो ) इस प्रकार ज्ञात-कुल-नन्दन जिनवर महावीर नाम वाले महात्मा ने कहा है ( कहेसी य अदिण्णा-दाणस्स फल विवागं ) और अदत्तादान के फल रूप विपाक को कहेंगे ( एयं तं ततियपि अदिन्नादाणं ) यह वह तीसरा आस्रवद्वार भी अदत्तादान नाम का हुआ ( हर-दह-मरणभय—कलुस—तासण-परसंतिक-भेज्ज-लोभमूल एव जाव चिर-परिगत मणुगत दुरत ) हरण, जलन और मरण भय वाला तथा यावत् दूसरे के धनग्रहण रूप लोभ के मूल वाला इस प्रकार यावत् चिरकाल से रहा हुआ भव-परम्परा से साथ चलने वाला और दुरत—दु:ख से अन्त वाला है ( ततियं० ) इस प्रकार तीसरा अधर्मद्वार पूर्ण हुआ, ऐसा मैं कहता हूं ॥ सू० ६ । १२ ॥

भावार्थ-सूत्र के इस अंश में बताया गया है कि वे चोर मर कर नरक में जाते और सैकड़ों दु:खों का वहां अनुभव करते हैं। वहां से निकले भी तो नरक के समान फिर तिर्यञ्च योनि में वेदना भोगते हैं। अनन्त काल से अगर कहीं मनुष्य जन्म प्राप्त किया तो भी अनार्य व नीच कुल में उत्पन्न होते हैं, आर्य होकर भी लोक-बहि-ष्कृत तथा तिर्यञ्च के समान अकुशल यावत् धर्म, श्रुति रहित और क्रूर व मिथ्यात्वी होते हैं। एकान्त हिंसा की रुचि के कारण अपनी आत्मा को रेशम के कोड़े की तरह आठ कर्मों के तन्तुओं से वे वेष्टित करते हैं। इस प्रकार अनन्त काल संसार-सागर में निवास करते हैं। ये पाप कर्म करने वाले मित्रादि रहित, अनिष्ट, साधन विकल, शरीर के आकार, प्रकार व रचना से हीन एव कुरूप होते हैं। अधिक कषाय वाले, धर्म बुद्धि से रहित, दरिद्री, दास, और योग्य अन्न जल आदि जीवनोचित सामग्री में भी मुंहताज होते हैं। दूसरे के द्रव्य की इच्छा रखने वाले प्राणी कभी सुख व शान्ति नहीं पाते और अत्यन्त दुखी होते हैं। उपसंहार पूर्ववत् ही समझ लेवें। इस प्रकार तीसरा अधर्म द्वार पूर्ण हुआ । ३ । सू । ६ । १२

## चौरासी ८४ लक्ष जीव योनि–

७ लाख पृथ्वी काय ७ लाख अपकाय ७ लाख तेजस्काय, ७ लाख वायु काय १० लाख प्रत्येक वनस्पति, १४ लाख साधारण वनस्पति, २ लाख द्वीन्द्रिय, २ लाख त्रीन्द्रिय, २ लाख चतुरिन्द्रिय ४ लाख नारक,—४ लाख देव, ४ लाख तिर्यञ्च, और १४ लाख मनुष्य, ऐसे ८४ लाख जीवों की योनियाँ हैं।

# "चतुर्थम् अब्रह्माध्ययनम्"

सम्बन्ध-तीसरे अध्ययन के बाद चौथे अध्ययन का प्रारम्भ करते हैं, सूत्र में किये हुए निर्देश के अनुसार अब्रह्म में आसक्त चित्त वाला प्राय. अदत्त का ग्रहण करता है। पञ्च द्वारों से अब्रह्म वर्णन करते हुए श्री सुधर्म स्वामी पहले इसका स्वरूप वर्णन करते हैं-

**मूल-"जंबू! अबंभं च चउत्थं सदेव मणुयासुरस्स लोयस्स पत्थणिज्जं, पंक-पणय-पासजालभूय, थी-पुरिस-नपुंसवेद-चिंधं,तव संजम बंभचेरविग्घं, भेदायतण-बहुपमादमूल, कायर-कापुरिस सेवियं, सुयणजण वज्जणिज्जं, उड्ढ-नरय-तिरिय-तिलोक्क, पइट्ठाणं,जरा-मरण-रोग-सोग बहुलं,वध बंधविघात दुब्विघायं, दंसण-चरित्त मोहस्स हेउभूय चिरपरिगयमणुगयं दुरंत चउत्थं अधम्मदारं ॥ सू० १ । १३ ॥**

छाय-"हे जम्बू ! अब्रह्म च चतुर्थं सदेव मनुजाऽसुरस्य लोकस्य प्रार्थनीयं, पङ्क-पनक पाशजालभूतं, स्त्री पुरुष-नपुंसक वेद चिह्नम्, तपः संयम ब्रह्मचर्य विघ्नः, भेदायतन-बहुप्रमादमूलम्, कातर कापुरुष सेवितम्, सुजनजन वर्जनीयम् ऊर्ध्व नरक-तिर्यक्-त्रैलोक्य प्रतिष्ठानं, जरा-मरण-रोग-शोक बहुलम्, बध-बन्धन-विघात दुर्विघातम्, दर्शन चारित्र मोहस्य हेतुभूतम्, चिर-परिगतमनुगतम् दुरन्त चतुर्थ-मधर्मद्वारम् ॥ ० १ । १३ ॥

अन्व-'( जंबू ! ) हे जम्बु ! ( अबंभं च ) तीसरे के बाद अब्रह्म नाम का (चउत्थं) चौथा आस्रव द्वार है ( सदेवमणुया सुरस्स लोयस्स पत्थणिज्जं) देव,सहित मनुष्य और असुर लोक का प्रार्थनीय है ( पंक-पणय-पासजालभूय ) कीचड, चिकनी काइ, पाश और जाल के समान ( थी पुरिस नपुमवेद चिंध ) स्त्री, पुरुष और नपुसक वेदका चिह्न है (तव, सजम बंभचेर विग्घ ) तप, सयम और ब्रह्मचर्य का विघ्न ( भेदायतण बहु पमादमूल ) चारित्र भग का स्थान और अनेक प्रमादों का मूल कारण है ( कायर कापुरिस सेवियं ) कायर तथा अधर्म मनुष्यों से सेवित ( सुयणजण वज्ज-

खिज्जं ) शुभजन कर्मों से परिहार करने योग्य ( उड्ढ नरय तिरिय तिल्लोक पइट्ठाणं ) ऊर्ध्वलोक नरकलोक, अधोलोक, तिर्यग् मध्यलोक रूप त्रिलोक में प्रतिष्ठान स्थिति वाला ( जरा मरण रोग सोग बहुले ) जरा, मरण और रोग शोक की अधिकता वाला ( वध बंध विघाय दुव्विघायं ) वध बन्धन और नाश से दुष्कर विघात वाला ( दंसण चरित्त मोहस्स हेउभूयं ) दर्शन मोह और चारित्र मोह का कारण ( चिर परिगयमणुगयं दुरंतं चउत्थं अधम्मदारं ) अनादि काल से परिचित पीछे २ आने वाला और दुःख से अन्त हो ऐसा यह चतुर्थ अधर्मद्वार है' ॥ सू० १ ॥ १३ ॥

भाव—सुधर्म स्वामी फरमाते हैं—हे जम्बू ! अब्रह्म यह चतुर्थ आस्रव है, देव, मनुष्य और असुर आदि जीवों से प्रार्थनीय, प्राणियों को फंसाने व कसाने के कारण कीचड़ तथा जाल के समान है, स्त्री पुरुष और नपुंसक वेद का चिह्न, तप संयम आदि में विघ्न चारित्र भङ्ग का स्थान और विविध प्रमादों का मूल है। कायर व नीच जन से सेवित, सुजन-सत्पुरुषों से छोड़ा हुआ तीनों लोक में आश्रय पाया हुआ जरा मरण और रोग शोक की प्रचुरता वाला यावत् दर्शन मोह और चारित्र मोह का हेतु है। शेष पूर्ववत् ॥ सू० १ । १३ ॥

मूल—"तस्स य णामाणि गोण्णाणि इमाणि होंति तीसं तं जहा १ अबंभं २ मेहुणं ३ चरंतं ४ संसग्गि ५ सेवणाधिकारो ६ संकप्पो ७ बाहणा पदाणं ८ दप्पो ९ मोहो १० मणसंखोभो ११ अणिग्गहो १२ वुग्गहो १३ विघाओ १४ विभंगो १५ विब्भमो १६ अधम्मो १७ असीलया १८ गामधम्मतित्ती १९ रती २० रागो, २१ कामभोगमारो २२ वेरं २३ रहस्सं २४ गुज्झं २५ बहुमाणो २६ बंभचेरविग्घो २७ वावत्ति २८ विराहणा २९ पसंगो ३० कामगुणो त्ति वि य, तस्स एयाणि एवमादीणि नामधेज्जाणि होंति तीसं ॥ सू० २ । १४ ॥

छाया—तस्य च नामानि गौणानि भवन्ति त्रिंशत् तानि यथा, अब्रह्म मैथुनम् चरत् संसर्गिः, सेवनाधिकारः, संकल्पः, बाधना पदानाम्, दर्पः, मोहः, मनःसंक्षोभः, अनिग्रहः, विग्रहः, विघातः, विभङ्गः, विभ्रमः, अधर्मः, अशीलता, ग्रामधर्म तृप्तिः, रतिः रागः, कामभोगमारः वैरं रहस्यम् गुह्यम् बहुमानः ब्रह्मचर्यविघ्नः,

१ क—[illegible] विशा।

व्यापत्तिः विराधना, प्रसङ्गः, कामगुण., इत्यपि च तस्य एतानि एवमादीनि नामधेयानि भवन्ति त्रिंशत् ॥ सूत्र २ । १४ ॥

अन्व०—( तस्स य ) और उस अब्रह्म के ( इमाणि गोन्नाणि ) ये कहे जाने वाले गुण निष्पन्न ( नामाणि ) नाम ( तीसं होंति ) तीस होते हैं ( तं जहा ) जैसे कि–( अवभ ) अब्रह्म–अशुभ आचरण ( मेहुणं ) मैथुन –स्त्री पुरुष का कर्म ( चरंत ) चरत्—विश्व को व्याप्त करने वाला ( संसग्गि ) संसर्गि-स्त्री पुरुष के विशेष संसर्ग वाला ( सेवणाधिकारो ) सेवना अधिकार–चोरी आदि की प्रतिसेवना का अधिकारी (सकप्पो) सङ्कल्प—विकल्प से होने वाला ( बाहणा पदाण ) बाधना–संयम स्थान या प्रजा को बाधा करने वाला (दप्पो ) दर्प-अभिमान से होने वाला (मोहो ) मोहोदय से होने वाला ( मण संखेवो ) मनः संक्षेप अथवा मन. संक्षोभ-मन को संकुचित या क्षुब्ध करने वाला ( अणिग्गहो ) अनिग्रह–विषय में प्रवृत्त मन को निग्रह नहीं करने वाला ( वुग्गहो ) विग्रह–कलह का कारण ( विघाओ ) विघात–गुणों का नाश करने वाला ( विभंगो ) विभंग-गुणों का खंडन करने वाला ( विब्भमो ) विभ्रम–सुख की भ्रान्ति करने वाला ( अधम्मो ) धर्म विरुद्ध ( असीलया ) अशीलता–दुश्शीलपन ( गामधम्मतित्ती ) ग्राम धर्मतृप्ति-तप्ति शब्दादि—कामगुणों में तृप्ति करना या काम गुणों का गवेषण करना ( रति ) बुरा प्रेम ( रागो ) राग—विषयानुराग ( काम भोग मारो ) काम भोगों के साथ मरण वाला ( वेरं ) वैर-शत्रुता का कारण ( रहस्स ) रहस्य–एकान्त में छिपके करने योग्य ( गुज्झं ) गुह्य–छिपाने योग्य व अवाच्य ( बहुमाणो ) बहुमान–बहुतों का माना हुआ ( बंभचेर विग्घो ) ब्रह्मचर्य का विघ्न ( वावत्ति ) व्यापत्ति—सद्गुणों से गिराने वाला ( विराहणा ) विराधना–एक देश से व्रत खण्डन का कारण ( पसंगो ) प्रसङ्ग–कामगुणों मे प्रसङ्ग करना ( काम गुणोत्ति वि य ) और कामगुण इस प्रकार ( तस्स एयाणि ) उस अब्रह्म के ये पूर्वोक्त ( एवमादीणि ) इस प्रकार के अन्य, इत्यादि ( नाम धेज्जाणि ) नाम ( तीसं होंति ) तीस होते हैं ॥ सू० २ । १४ ॥

भावार्थ—" उस अब्रह्म के ये गुण युक्त ३० नाम होते हैं, जो ऊपर कहे जा चुके हैं। ये केवल मुख्य २ बातों का सङ्केत मात्र है। अतएव एवमादीनि, यह विशेषण है, इससे दूसरे नामों की सूचना हो रही है। इसलिये तीस ही नाम निश्चित न समझकर दुराचार, विषय भोग आदि नाम भी समझ लेने चाहिये। सू० २ । १४ ॥

## अब इसके सेवन करने वालों को कहते हैं।—

मूल—'तं च पुण निसेवंति सुरगणा, स अच्छरा, मोह मोहिय-मती, असुर-भुयग-गरुल-विज्जु-जलण दीव उदहि दिसि पवण थणिया १०। अणवन्नि-पणवन्निय-इसिवाइय-भूयवाइय-कंदिय महाकंदिय—कुहंड-पयंग देवा ८। पिसायभूय-जक्ख-रक्खस किंनर किंपुरिस—महोरग-गंधव्वा ८। तिरिय-जोइस-विमाण-वासि-मणुय गणा जलयर—थलयर-खहयरा य मोह-पडिबद्ध चित्ता, अवितण्हा, काम-भोग तिसिया, तण्हाए बलवईए मह-ईए समभिभूया, गढिया य अतिमुच्छिया य अबंभे उस्सण्णा, ताम-सेण भावेण अणुम्मुक्का, दंसण-चरित्त-मोहस्स पंजरं पिव करेंति [1]अण्णोण्णं सेवमाणा। भुज्जो असुर—सुर—तिरिय-मणुय-भोग रति-विहार संपउत्ता य चक्कवट्टी सुरनरवति सक्कया सुर वरव्व देवलोए, भरह णग णगर [2]णियम—जणवय-पुरवर-दोणमुह-खेड कब्बड मडंब-संवाह पट्टण—सहस्स मंडियं, थिमिय मेयणियं एग-च्छत्तं, ससागरं भुंजिऊण वसुहं नरसीहा नरवई नरिंदा नर-वसभा मरुदवसभकप्पा अब्भहियं रायतेय—लच्छीए दिप्पमाणा सोमा रायवंसतिलगा, रवि—ससि-संख-वरचक्क-सोत्थिय पडाग जव मच्छ-कुम्म-रहवर भग भवण-विमाण-[3]तुरय-तोरण-गोपुर मणिरयण—नंदियावत्त-मुसल-णंगल-सुरइयवर कप्परुक्ख-मिग वति भद्दासण सुरुचि थूभवर-मउड—सरिय-कुंडल-कुंजर—वर वसभ-दीव मंदिर-गरुल-ज्झय इंदकेउ-दप्पण—अट्ठावय-चाव-बाण-नक्खत्त मेह मेहल-वीणा जुग-छत्त-दाम—दामिणि-कमंडलु-कमल-घंटा-वरपोत-सूई—सागर—कुमुदागर—मगर—हार गागर-नेउर णग-णगर वइर किन्नर मयूर-वरराय हंस—सारस-चकोर-चक्कवाग मिहुण-चामर-खेडग—पव्वीसग-विपंचि—वरतालियंट सिरिया भिसेय मेइणि खग्गंकुस-विमल कलस भिंगार-वद्धमाणग पसत्थ

---

१ क-अण्णो मण्णं २ क-नियम ३ क-तुरंग

उत्तम विभत्तवर-पुरिसलक्खण धरा। बत्तीसं वरराय सहस्साणु-जायमग्गा, चउसट्ठि-सहस्स पवर जुवतीण णयणकंता, रत्ताभा पउम-पम्ह-कोरंटग—दाम चंपक सुतयवरकणक—निहसवण्णा, सुजाय-सव्वंग सुंदरंगा, महग्घवर पट्टणुग्गय विचित्त राग-एणि-पेणि-णिम्मिय-दुगुल्ल-वरचीण पट्टकोसेज्ज-सोणी सुत्तक विभूसि-यंगा, वरसुरभि-गंधवर-चुण्णवासवरकुसुम-भरिय सिरया, कप्पिय छेया यरिय-सुकय-रइत-माल-कडगं गय-तुडिय-पवर भूस-ण पिणद्धदेहा, एकावलि-कंठ सुरइय-वच्छा, पालंब-पलंबमाण सुकय-पडउत्तरिज्ज-मुद्दिया पिंगलंगुलिया, उज्जल-नेवत्थ-रइय चेल्लग विरायमाणा, तेएण दिवाकरोव्व दित्ता, सारय-नव-त्थणिय महुर-गंभीर निद्धघोसा, उप्पन्न-समत्त-रयण—चक्क-रयण-प्पहाणा, नवनिहिं वइणो, समिद्ध कोसा, चाउरंता चाउराहिं सेणाहिं समणुजातिज्जमाणमग्गा, तुरगवती, गयवती, रह-वती, नरवती, विपुलकुलवीसुयजसा, सारय—ससि—सकल सोमवयणा, सूरा तेलोक्क-निग्गय-पभावलद्धसद्दा, समत्त भर-हाहिवा, नरिंदा, ससेलवण काणणच हिमवत सागरं तं, धीरा भुत्तूण भरहवासं जियसत्तू पवर रायसीहा, पुव्वकड तवप्पभावा, निविट्ठ संचियसुहा, अणेगवाससयमायुवंतो भज्जाहि य जण-वयप्पहाणाहिं लालियता-अतुल सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे य अणुभ-वेत्ता तेवि उवणमंति मरणधम्मं, अवितत्ता कामाणं।।सू०।३।१५।

छाया—"तत्र पुनर्निषेवन्ते सुरगणाः साप्सरसो मोहमोहितमतयः असुर-भुजग-गरुड-विद्युज्ज्वलण द्वीपोदधि-दिक्-पवन-स्तनिताः १०। अणपन्निक पणपन्निक-ऋषि-वादिक-भूतवादिक-क्रन्दित-महाक्रन्दित-कूष्माण्ड-पतङ्गदेवा ८। पिशाच भूत-यक्ष-राक्षस-किन्नर-किम्पुरुष-महोरग गन्धर्वा ८। तिर्यग्-ज्यौतिष-विमानवासि मनुजगणाः, जलचर-स्थलचर-खेचराश्च मोहप्रतिबद्धचिन्ता, अवितृष्णाः काम भोग तृषिताः, तृष्णया बलवत्या महत्या समभिभूता गृद्धाश्चातिमूर्च्छिताश्च अब्रह्मणि, अवसन्नास्तामसेन

१ क-सुतत्त इति पाठेन भाव्य २ क-नवनिहि पइणा

भावेनाऽनुमुक्ता, दर्शन चारित्र मोहस्य पञ्जरमिव कुर्वन्ति अन्योऽन्यं ( परस्पर ) सेव-
मानाः। भूयोऽसुर-सुर-तिर्यङ्-मनुज भोग रति विहार सम्प्रयुक्ताश्च चक्रवर्तिनः सुर
नरपति सत्कृता सुरवरा इव देव लोके भरत-नग-नगर-निगम जनपद-पुरवर
द्रोणमुख-खेट-कर्बट-मडम्ब-संवाह-पत्तन सहस्रमण्डिता स्तिमितमेदिनीकामेकच्छत्रां,
ससागरां भुक्त्वा वसुधां, नरसिंहा नरपतयो नरेन्द्रा नरवृषभा मरुद् ( म ) वृषभकल्पा
अभ्यधिकं राजतेजोलक्ष्म्या दीप्यमानाः सौम्या राजवंशतिलकाः रवि-शशि शङ्ख-वर-
चक्र-स्वस्तिक पताका-यव-मत्स्य कूर्म-रथवर-भग-भवन-विमान-तुरग-तोरण-गोपुर
मणिरत्न-नन्द्यावर्त-मुसल-लाङ्गल-सुरचितवरकल्पवृक्ष-मृगपति-भद्रासन-सुरुचि-स्तूप-
वरमुकुट-मुक्तावली कुण्डल-कुञ्जर-वरवृषभ-द्वीप-मन्दर-गरुड-ध्वजेन्द्रकेतु दर्पण
अष्टापद-चाप-बाण-नक्षत्र मेघ-मेखला-वीणा-युगच्छत्र-दाम-दामिनी-कमण्डलु-
कमल-घण्टा-वरपोत-सूची सागर-कुमुदाकर-मकर-हार-स्त्री परिमान ( गागर )
नूपुर-नग-नगर-वज्र-किन्नर-मयूरवर-राजहंस-सारस-चकोर-चक्रवाक-मिथुन-
चामर खेटक-पव्वीसक-विपञ्ची-वरतालवृन्त श्रीकाभिषेक-मेदिनी-खड्गाऽङ्कुश-
विमल कलश-भृङ्गार-वर्धमानक-प्रशस्तोत्तम-विभक्त वर पुरुष लक्षणधरा। द्वात्रिं-
शद्राज सहस्राऽनुयात मार्गाः, चतुःषष्टिवरयुवतीनां नयनकान्ताः, रक्ताभा पद्म-
गर्भ कोरण्टक-दाम चम्पक सुतप्तवर कनक-निकषसवर्णाः सुजात-सर्वाङ्ग सुन्दराङ्गाः,
महार्घवर पत्तनोद्गत विचित्ररागैणी-प्रेणी ( चर्म ) निर्मित-दुकूलवर चीनपट्ट
कौशेयक श्रोणी सूत्रक विभूषिताङ्गाः, वरसुरभिगन्धवर चूर्णवास वरकुसुम भरित-
शिरस्काः कल्पित छेकाचार्य-सुकृत-रचित माला-कटकाङ्गद तुटिका, प्रवर भूषण
पिनद्धदेहा, एकावली कण्ठ सुरचितवक्षसः प्रलम्ब प्रलम्बमान सुकृत पटोत्तरीय मुद्रि-
का-पिङ्गलाऽङ्गुलयः, उज्ज्वल नेपथ्य-रचित-चेल्लक-विराजमानाः तेजसा दिवाकरा
इव दीप्ताः, शारद नवस्तनित-मधुर गम्भीर स्निग्धघोषाः, उत्पन्न समस्तरत्न-चक्ररत्न
प्रधानाः नवनिधिपतयः, समृद्धकोशाश्चातुरन्ताश्चतुर्भिः सेनाभिः समनुयायमान
मार्गाः, तुरगपती-गजपती-रथपती-नरपती-विपुल कुल विश्रुत यशस, शारद शशि
सकलसौम्यवदना, शूराः त्रैलोक्यनिर्गत प्रभाव लब्धशब्दाः समस्त-भरताधिपा नरेन्द्राः,
सशैलवन-काननं च हिमवत्सागरान्तं धीरा भुक्त्वा भरतवर्षं जितशत्रव प्रवरराजसिंहाः
पूर्वकृततपः, प्रभावाः, निविष्ट संचित सुखाः, अनेक वर्षशतायुष्मन्तो भार्याभिश्च
जनपद प्रधानाभिर्लाल्यमाना अतुल शब्द-स्पर्श-रस-रूप गन्धांश्चाऽनुभूय तेऽपि उपन-
मन्ति मरण धर्मम् अवितृप्ता कामेषु। सू० । ४ । १५ ॥

अन्वयार्थ—( तं च पुण ) और फिर उस चौथे अब्रह्म को ( निसेवंति ) सेवन करते हैं ( सुरगणा स अच्छरा ) अप्सरा सहित वैमानिक देव समूह, ये कैसे हैं ? ( मोह मोहियमती ) मोह से मोहित बुद्धि वाले ( असुर-भुयग-गरुल-विज्जुजलण-दीव-उदहि—दिसि-पवण-थणिया ) १ असुर कुमार २ भुजंग—नाग कुमार ३ गरुड-ध्वजवाले—सुपर्ण कुमार, ४ विद्युत्कुमार, ५ अग्निकुमार, ६ द्वीपकुमार, ७ उदधि-कुमार, ८ दिक्कुमार, ९ पवनकुमार, और १० स्तनितकुमार, ऐसे दश भवन पति ( अणवन्नि—पणवन्निय—इसिवाइय भूयवादिय कंदिय महाकंदिय· -कूहंड पयंगदेवा ) १ अणपन्नि, २ पणपन्निक, ३ ऋषिवादिक, ४ भूतवादिक, ५ क्रन्दित, ६ महाक्रन्दित, ७ कूष्माण्ड और पतङ्ग देवरूप व्यन्तर विशेष ( पिसाय—भूय-जक्ख—रक्खस-किन्नर—किंपुरिस-महोरग-गंधव्वा ) १ पिशाच, २ भूत, ३ यक्ष, ४ राक्षस, ५ किंनर, ६ किम्पुरुष ७ महोरग और ८ गन्धर्व ये आठ जाति के व्यन्तर देव ( तिरिय-जोइस-विमाणवासि मणुयगणा) तिर्यग् लोक मे जो ज्योतिष्क, विमान वासी-ज्योतिष्क देव तथा मनुष्यगण ( जलयर-थलयर-खहयरा य ) और जलचर, स्थलचर व खेचर-आकाश मार्ग मे चलने वाले पशु पक्षिगण ( मोह पडिवद्धचित्ता ) जो मोह मे बंधे चित्त वाले हैं ( अवितण्हा काम भोगतिसिया ) प्राप्त विषय में बिना बुझी हुई प्यास वाले अर्थात् सन्तोप रहित व अप्राप्त काम भोग की तृषा वाले ( तण्हाए बलवईए महईए समभि-भूया ) बलवती और अधिक विषय वाली, महती—बडी भोग लालसासे घिरे हुए ( गढिया य ) और ग्रथित—विषयों मे गुथे हुए-गृद्ध हैं ( अतिमुच्छिया य अबंभे ) फिर अब्रह्म—मैथुन मे अत्यन्त आसक्त बने हुए ( उस्सण्णा ) कीचड के जैसे फसे हुए हैं ( तामसेण भावेण ) तमोगुण रूप भाव से ( अणुमुक्का ) नहीं छूटे हुए ( अन्नोन्न सेवमाणा ) अब्रह्म को परस्पर सेवन करते हुए 'देव आदि' ( दंसण चरित्त-मोहस्स पंजरपिव करेंति ) दर्शन मोह तथा चारित्र मोह के बन्ध को आत्म रूप पक्षी के लिये पञ्जर जैसा करते हैं, ( भुज्जो असुर—सुर—तिरिय—मणुअ—भोग—रति विहार संपउत्ता ) फिर विशेष रूप से कहते हैं—और असुर, सुर तिर्यञ्च और मनुष्यों के भोग में—रति-आसक्ति प्रधान अनेक क्रीडाओं से युक्त जो ( देव लोए सुरवरुव्व ) देवलोक मे प्रधान देव की तरह 'यहाँ' ( सुर नरवति सक्कया चक्कवट्टी ) सुरेन्द्र और नरेन्द्र से सत्कार पाये हुए चक्रवर्ती 'हैं' ( भरह—णग—णगर—णियम—जणवय पुरवर—दोणमुह—खेड—कव्वड—मडब—संवाह—पट्टण सहस्स मंडिय ) भरत-भारत वर्ष के नग—पर्वत, नगर, निगम—वणिक् प्रधान वस्ती, जनपद-देश, पुरवर-

राजधानी रूप शहर और द्रोणमुख, खेट, कर्बट, मडम्ब, संवाह—रक्षा के लिये धान्य आदि के संवहन योग्य दुर्ग विशेष और पत्तन इनके हजारों समूह से शोभित ( थिमिय-मेयणियं एगच्छत्तं ) स्तिमित-निभय धन समूह वाली एकच्छत्र (ससागर वसुहं भुंजिऊण ) समुद्र सहित पृथ्वी का पालन करके ( नरसीहा नरवई नरिंदा नरवसभा ) नरसिंह-मनुष्यों में सिंह के समान, नरपति, नरेन्द्र-मनुष्यों में इन्द्र, नर वृषभ-पुरुषश्रेष्ठ ( मरुय वसभकप्पा ) मरुद्वृषभ—मरुभूमि के बलिमान् वृषभ के समान कार्यभार को निभाने वाले ( रायतेय लच्छीए अब्भहियं ) राजतेज की लक्ष्मी से अतिशय ( दिप्पमाणा ) दीप्यमान-दीपते हुए ( सोमा रायवंसतिलगा ) सौम्य आकृति वाले, राजवंश में तिलक रूप ( रवि—ससि-संख-वरचक्क—सोत्थिय पडाग-जव—मच्छ—कुम्म-रहवर-भग-भवण—विमाण—तुरग—तोरण—गोपुर मणि रयण नंदियावत्त-मुसल-लंगल) सूर्य, चन्द्र शङ्ख वरचक्र-प्रधानचक्र, स्वस्तिक, पताका यव मत्स्य कूर्म, रथवर उत्तमरथ भग-योनि, भवन विमान, तुरग-घोड़ा तोरण, गोपुर-नगर का द्वार, मणि रत्न-कर्केतन आदि नन्द्यावर्त—नव कोण का स्वस्तिक विशेष मूसल और लांगल—हल ( सुरइय-वरकप्परुक्ख-मिगवति-भद्दासण-सुरुचि थूभवर-मउड—सरिय—कुंडल—कुंजर—वरवसभ-दीव- मंदिर-गरुलज्झय-इंदकेउ-दप्पण-अट्ठावय-चाव-बाण—नक्खत्त-मेह मेहल वीणा-जुग-छत्त—दाम ) अच्छी रचना वाला या सुरचित-उत्तम कल्पवृक्ष मृगपति-सिंह भद्रासन—आसन विशेष सुरूचि या सुरुचि-आभरण विशेष, स्तूप-प्रस्तम्भ, उत्तम मुकुट, सरिका-मुक्तावली आदि कुंडल-कान का आभरण कुंजर—हाथी उत्तमवृषभ द्वीप जल के बीच का भूमिभाग मन्दर-मेरुपर्वत या मन्दिर, गरुड़ ध्वजा, इन्द्र केतु—इन्द्रयष्टि-लकड़ी पर चिह्न विशेष, दर्पण-काँच, अष्टापद-द्यूत का पाशा अथवा कैलाश पर्वत, चाप-धनुष बाण नक्षत्र मेघ, और मेखला-कमर का डोरा, वीणा, युग-गाड़ी का जूआ छत्र दाम-माला तथा ( दामिनि—कमंडलु-कमल-घंटा—वरपोत-सूइ-सागर-कुमुदागर-मगर-हार गागर-नेउर णग णगर-वइर—किन्नर-मयूर-वररायहंस-सारस चकोर—चक्कवाग ( ग ) मिहुण—चामर—खेडग-पव्वीसग विपंचि—वरतालियंट सिरियाभिसेय-मेइणि-खग्गंकुस विमल कलस-भिंगार वद्धमाणग-पसत्थ उत्तम विभत्त वर पुरिस लक्खणधरा) दामिनी-डोरी कमंडलु-कुण्डी कमल घण्टा उत्तम जहाज सूआ—सूई सागर कुमुद वन्य विकासि कमल का समूह मकर हार-आभरण विशेष गागर-स्त्रो के पहिनने का घाघरा नूपुर—पांव का भूषण नग—पर्वत, नगर,

वञ्च, किन्नर,—देव या वाद्य विशेष, मयूर-मोर, उत्तम राजहंस, सारस, चकोर, और चक्रवाक-चकवा चकवी का जोडा, चामर, खेटक-पाटिया विशेष, पव्वीसक और विपञ्ची-वाद्यविशेष, श्रेष्ठ तालवृन्त-उत्तम पंखा, लक्ष्मी का अभिषेक, मेदिनी—पृथ्वी, खड्ग-तलवार, अङ्कुश, निर्मल कलस, भृङ्गार -झारी, वर्द्धमानक-शरावा अथवा पुरुष के कंधे पर आरूढ पुरुष, इन शुभकारी उत्तम पुरुषों के प्रधान लक्षणों को शुद्ध रूप से धारण करने वाले ( बत्तीसं वर राय सहस्साणु जायमग्गा ) पीछे चलने वाले बत्तीस हजार उत्तम राजाओं से अनुगत मार्ग वाले ( चउसट्ठि सहस्स-पवर जुवतीण-णयण-कंता ) चौसठ हजार उत्तम युवतियों के नयनाभिराम ( रत्ताभो ) लाल कान्ति वाले ( पउमपम्ह कोरंटग—दाम—चंपक सुतय-वर कणग-निहसवण्णा ) कमल का गर्भ, कोरंट, फूलों की माला, चम्पक-चम्पा का फूल और अच्छी तरह तपे हुए उत्तम सुवर्ण की रेखा के जैसे वर्ण वाले ( सुजाय सव्वंग-सुंदरंगा ) अच्छी तरह से निष्पन्न सभी अङ्गों से सुन्दर शरीर वाले ( महग्घवर पट्टणुग्गय विचित्त राग एणि पेणि णिम्मिय दुगुल्लवरचीणपट्ट कोसेज्ज सोणीसुत्तक विभूसियंगा ) बहु मूल्य उत्तम पट्टन में बने हुए तथा अनेक प्रकार के रङ्ग वाले और हरिणी के चर्म से निर्मित वस्त्र, दुकूल वृक्ष विशेष की वल्क-छाल को जल के साथ ऊखल में कूटकर उस के सूत से बनाये हुए वस्त्र दुकूल वस्त्र कहाते हैं, वरचीन —दुकूल वृक्ष की छालके भीतरी तन्तुओं-हीरकों से बनाये गये अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र अथवा चीन देश में बने हुए, पट्ट-पट्टसूत्र-पाट के कपडे, कौशेयक-कीट से बने हुए रेशमी वस्त्र और श्रोणी सूत्र-कटिसूत्र-कंदोरा इनसे विभूषित शरीर वाले ( वर सुरभिगंध – वर चुण्ण वास-वर-कुसुम भरिय सिरया ) उत्तम सुगन्धित पदार्थ, सुगन्धि युक्त चूर्ण, वास और प्रधान फूलों से भरे हुए शिर वाले ( कप्पिय-छेया यरिय—सुकय-रइत्त-माल-कडगंगय तुडिय-पवर भूसण-पिणद्धदेहा ) कुशल आचार्य से अच्छी तरह बनाये गये इष्ट और मन को आनन्द देने वाले माला, कटक—कंकण, अङ्गद—भुज बन्ध, त्रुटिक-बाहु रक्षक-बहरखा तथा अन्य मुकुट आदि प्रवर भूषण—शरीर पर पहने हुए हैं ( एकावलि कंठ-सुरइयवच्छा ) एकावली-सुवर्ण आदि की एक लडी माला कण्ठ में डालकर हृदय प्रदेश को सुशोभित करने वाले ( पालंव-पलंबमाण-सुकय-पडउत्तरिज्ज-मुद्दिया पिंगलंगुलिया ) लम्बे लटकते हुए उत्तम रचना युक्त उत्तरीय वस्त्र वाले तथा अङ्गूठियों से पीली अङ्गुली वाले ( उज्जल नेवत्थ—रइय—चेल्लग-विरायमाणा ) सुख प्रद-उज्जवल वेष के वस्त्रों से विराजमान ( तेएण दिवाकरोव्व दित्ता ) तेज

से सूर्य के समान दीप्ति वाले ( सारय नव थणिय महुर गंभीर णिद्ध घोसा ) शरत्काल के नवीन उत्पन्न गर्जारव के समान मधुर गम्भीर और स्निग्ध प्रेमयुक्त ध्वनि वाले ( उप्पण्ण समत्तरयण चक्करयणप्पहाणा ) उत्पन्न हुए सभी रत्नों के स्वामी और चक्ररत्न की प्रधानता वाले ( नवनिहिवइणो ) नव निधान के मालिक तथा ( समिद्ध कोसा ) समृद्ध—परिपूर्ण खजाने वाले ( चाउरंता ) चार समुद्र रूप अन्त—पर्यन्त वाले ( चाउरंगाहिं सेणाहिं ) हाथी घोड़े रथ और पदाति रूप—चतुरंगिनी सेनाओं से ( समणुजाइज्जमाणमग्गा ) अच्छी तरह अनुगमन किये हुए मार्ग वाले ( तुरगवई गयवई रहवई नरवई ) घोड़ों के स्वामी, गज के स्वामी रथ के स्वामी और जो मनुष्यों के अधिपति हैं ( विपुल कुल विस्सुय जसा ) विस्तीर्ण कुल और प्रख्यात कीर्तिवाले ( सारयससि सकल सोम वयणा सूरा ) शरद ऋतु के पूर्णचन्द्र की तरह सौम्य मुख वाले शूर—पराक्रमी हैं ( तेलोक्क निग्गय पभाव—लद्ध—सद्दा ) त्रिलोकी में फैले हुए प्रभाव वाले व प्रसिद्धि पाये हुए ( समत्त भरहाहिवा नरिंदा ) समस्त भरत क्षेत्र के स्वामी नरेन्द्र ( ससेल—वण—काणणं च धीरा ) और वे धीर शैल—पर्वत वन और काननों से युक्त ( हिमवंत सागरंतं भरहवासं ) हिमवान—क्षुद्रहिम गिरि और समुद्र से अन्त वाले भारतवर्ष का ( भुत्तूण ) भोगकर ( जिय सत्तू पवर राय-सीहा ) शत्रु रहित प्रधान राजसिंह ( पुव्वकड तवप्पभावा ) पूर्वकृत तपस्या के प्रभाव से ( निविट्ठ संचिय सुहा ) संचित सुखों को भोगने वाले होते हैं ( अणेगवास सयमाउवंता ) सैकड़ों वर्ष की आयु वाले 'य' ( भज्जाहि य जणवयप्पहाणाहिं ) देश में प्रधान ऐसी भार्याओं से ( लालियंता ) विलास करते हुए ( अतुल सद्द-फरिस रस-रूव गंध य ) और अतुल शब्द स्पर्श रूप और गंध का ( अणुभवेत्ता ) अनुभव करके ( तेवि ) वे भी ( कामाणं अवितित्ता मरणधम्मं उवणमंति ) काम से याने विषय भोग से बिना तृप्ति पाये ही मृत्यु को प्राप्त करते हैं। सू। १५।

मूल— भुज्जो भुज्जो बलदेव वासुदेवा य पवर पुरिसा महा-बल परक्कमा, महाधणुवियट्टगा महासत्तसागरा, दुद्धरा धणुद्धरा नरवसभा, रामकेसवा भायरा सपरिसा वसुदेव—समुद्दविजय-माइय दसाराणं पज्जुन्न—पइव—संब—अनिरुद्ध—निसढ—उम्मुय सारण—गय सुमुह—दुम्मुहाईण जायवाणं अद्धुट्ठाणवि कुमार कोडीणं हिययदइया देवीए रोहिणीए देवीए देवकीए य आणंद

हियय भावनंदणकरा, सोलस रायवर सहस्साणु जातमग्गा, सोलस देवीसहस्स-वरणयण हियय-दयिया, णाणामणि-कणग-रयण-मोत्तिय-पवालधण-धन्न संचय-रिद्धि-समिद्ध कोसा, हय-गय-रह-सहस्ससामी, गामागर-णगर-खेड-कव्वड-मडंब-दोण-मुह-पट्टणासम-संवाह सहस्स थिमिय निव्वुय मुदित जण विविह सस्स निप्फज्जमाण-मेइणि-सर-सरिय-तलाग-सेल-काणण-आरा-मुज्जाण-मणाभिराम परिमंडियस्स दाहिणड्ढ वेयड्ढ गिरि विभत्तस्स, लवणजलहि-परिगयस्स, छव्विह कालगुण काम जुत्तस्स, अद्ध भरहस्स सामिका, धीरकित्तिपुरिसा, ओहबला, अइबला, अनिहया अपराजियसत्तु-मद्दण-रिपुसहस्समाण-महणा, साणु-क्कोसा, अमच्छरी, अचवला, अचंडा, मितमंजुल-पलावा-हसिय-गंभीर महुरभाणिया, अब्भुवगयवच्छला, सरण्णा, लक्खण-वंजण-गुणोववेया, माणुम्माण पमाण-पडिपुन्न सुजाय-सव्वंग-सुंदरंगा, ससिसोमागार कंतपियदंसणा अमरिसणा, पयंड-डंडप्पयार-गंभीर दरिसणिज्जा, तालद्ध उव्विद्ध गरुलकेऊ, बल-वग-गज्जंत-दरित दप्पित-मुट्ठिय चाणूरमूरगा, रिट्ठ-वसभ-घातिणो केसरिमुह विप्फाडगा, दरितनागदप्पमहणा, जमल-ज्जुण भंजगा, महासउणि-पूतणारिऊ कंस मउड मोडगा, जरा-सिंध माण महणा, तेहि य अविरल सम सहिय चंड मंडल-समप्पभेहिं, सूरमिरीयकवयं विणिम्मुयंतेहिं, सपतिदंडेहिं आयवत्तेहिं धरिज्जंतेहिं विरायंता, ताहि य पवर गिरि कुहर विह-रण समुट्ठियाहिं निरुवहय-चमर पच्छिम सरीर संजाताहिं अमइल-सियकमल विमुकुलुज्जलित रयतगिरि-सिहर-विमल ससि किरण सरिस कलहोय निम्मलाहिं पवणाहय चवल चलिय-सललिय-पणच्चिय-वीइ पसरिय-खीरोदग-पवर सागरु-प्पूरचंचलाहिं, माणस सर-पसर-परिचियावास-विसदवेसाहिं, कणगगिरि सिहर संसिताहिं, उवाउप्पात-चवल-जाणियसिग्घ-

सेयाहिं, हंसवधूयाहिं, चव कामिया, नाणामणि कणग महरिह तवणिज्जुज्जल विचित्त दंडाहिं, सललियाहिं, नरवति सिरिसमुदय प्पगासण करीहिं वर पट्टणुग्गयाहिं, समिद्ध रायकुल सेवियाहिं, कालागुरुपवर कुंदुरुक्क तुरुक्क धूवस वास विसद—गंधुद्धया भिरामाहिं चिल्लिकाहिं, 'उभयोपासंपि चामराहिं, उक्खिप्प माणाहिं, सुहसीतलवातवीतियंगा अजिता अजितरहा हल मुसल कणग पाणी संख चक्क-गय-सत्ति-णंदगधरा पवरुज्जल सुकत विमल कोथूभ तिरीडधारी, कुंडल उज्जोवियाणणा, पुंडरीय णयणा एगावली कंठ-रतियवच्छा सिरिवच्छ सुलंछणा वरजसा सव्वोउय सुरभि कुसुम—सुरइय-पलंब सोहंत वियसंत चित्त वणमाल-रतियवच्छा, अट्ठसय-विभत्त-लक्खण पसत्थ सुंदर विराइयंगमंगा। मत्तगय वरिंद—ललियविक्कम विलसिय गती कडिसुत्तगनील पीत कोसिज्जवाससा, पवर दित्ततया, सारय नवथणिय—महुर गंभीर—निद्धघोसा नरसीहा, सीहविक्कम गई, अत्थमिया, पवर रायसीहा सोमा बारवइ पुण्णचंदा पुव्व कयतवप्पभावा, निविट्ठ संचिय सुहा, अणेगवास सयमाउवंतो भज्जाहि य जणवयप्पहाणाहिं लालियंता, अतुलसद्द—फरिस रस—रूव—गंधे अणुभवेत्ता, ते वि उवणमंति मरणधम्मं अवितत्ता कामाणं ॥ ४। १५ ॥

छाया—" भूयो भूयो बलदेव वासुदेवाश्च प्रवर पुरुषा महाबलपराक्रमा महाधनु-विकर्षका महासत्त्वसागराः, दुर्धरा धनुर्धरा नरवृषभा 'रामकेशवा भ्रातरः सपरि षदो वसुदेव-समुद्रविजयादिक दशाऽर्हाणां प्रद्युम्न प्रतिव शम्बाऽनिरुद्ध—निषधोल्मुक-सारण—गज-सुमुख—दुर्मुख आदीनां यादवानामर्धचतुर्थानामपि कुमार कोटीनां हृदय-दयिताः देव्या रोहिण्या देव्या देवक्याश्चाऽऽनन्द हृदय—भावनन्दनकराः, षोडश राजवर सहस्रानुयातमार्गाः षोडश देवी सहस्र वर नयन हृदयदयिता नानामणि-कनक-रत्नमौक्तिक—प्रवाल-धन—धान्य—सञ्चयर्द्धिसमृद्ध कोषा हय—गज रथ-

१ क—धूवस । २ क—विराइयंगुमंगा । ३ क—भवाहराध बहुवचनम् ।

सहस्रस्वामिनो, ग्रामाकर-नगर—खेट-कर्बट—मडम्ब द्रोणमुख-पत्तनाऽऽश्रम-
संवाह—सहस्र—स्तिमित निर्वृत्त-प्रमुदित जन—विविध सस्य-निष्पद्यमान-मेदिनी-
सरःसरित्-तडाग-शैल-काननाऽऽरामोद्यान-मनोऽभिराम-परिमण्डितस्य, दक्षिणार्द्ध-
वैताढ्य गिरिविभक्तस्य लवण जलधि परिगतस्य षड्विधकाल गुण काम युक्तस्य अर्द्ध-
भरतस्य स्वामिकाः, धीरकीर्तिपुरुषा-ओघबला-अतिबला-अनिहता-अपराजित—शत्रु-
मर्दन-रिपुसहस्र-मानमथनाः सानुक्रोशाः, अमत्सरा अचपला अचण्डा मितमञ्जुल-
प्रलापा., हसित गम्भीर मधुरभणिता', अभ्युपगतवत्सला., शरण्या, लक्षणव्यञ्जन
गुणोपपेता , मानोन्मान प्रमाण परिपूर्ण सुजात सर्वाङ्ग सुन्दराङ्गाः, शशि सौम्याकार-
कान्तप्रियदर्शना., .अमर्षणाः, प्रचण्ड दण्ड प्रचार गम्भीरदर्शनीयास्ताल ध्वजोद्विद्ध-
गरुडकेतवो-बलवद्गर्ज दृप्त दर्पित-मौष्टिक-चाणूर मारकाः,रिष्ट वृषभघातिनः, केसरि
मुखविस्फाटका , दृप्तनाग-दर्पमथना., यमलार्जुन भञ्जका', महाशकुनि पूतना रिपवः,
कंस मुकुट मोटका , जरासन्ध मानमथनास्तैश्चाविरल-सम-सहित चन्द्रमण्डलसम-
प्रभैः, सूर्यमरीचिकवच विनिर्मुञ्चद्भि , सप्रतिदण्डैरातपत्रैर्ध्रियमाणैर्विराजमानाः,
तैश्चप्रवर-गिरि-कुहर विहरण समुत्थितैर्निरुपहत-चमरपश्चिम शरीरसञ्जातै-अमलिनः,
सितकमल-विमुकुलोज्ज्वलित-रजतगिरि—शिखर-विमलशशि-किरण सदृश—कल-
धौतनिर्मलै , पवनाऽऽहत चपल चलित ललित प्रवृत्त वीचो प्रसृत परिचिताऽऽनास
विशदवेशाभिः, कनकगिरिशिखरसंश्रिताभि , अवपातोत्पात चपल ( वस्त्वन्तर )
जयनशीघ्र-वेगाभिर्हंसवधूभिश्चैव कलिता. नानामणि कनक महार्ह-तपनीयोज्ज्वल
विचित्रदण्डै., सललितैर्नरपति श्रीसमुदाय प्रकाशन करैर्वरपट्टनोद्गतै , समिद्ध राज-
कुलसेवितै., कालागुरु प्रवर ;कुन्दुरुक्क-तुरुष्क-धूपवश वास-विशद-गन्धोद्धूताऽऽभि-
रामैश्चिल्लिकाभिरुभयपार्श्वयोरपि, चामरै रुत्क्षिप्यमाणै , शुभ शीतल—वात-वीजिताङ्गाः,
अजिताः, अजितरथाः, हलमुशल कनक पाणय., शङ्ख-चक्र-गदा-शक्ति-नन्दक धराः,
प्रवरोज्ज्वल सुकृत विमल-कौस्तुभ—किरीट धारिण , कुण्डलोद्योतिताननाः , एकावली-
कण्ठ रचितवक्षस्का , श्रीवत्स सुलाञ्छना, वरयशस्का , सर्वर्तुक—सुरभि-कुसुम-सु-
रचित-प्रलम्ब शोभमान-विकसच्चित्रवनमाला रचित-वक्षस्का , अष्टशत-विभक्त-लक्षण-
प्रशस्त-सुन्दर विराजिताङ्गोपाङ्गा, मत्तगजवरेन्द्र ललित—विक्रम विलसित गतय ,
कटिसूत्रक नील-पीत-कौशेयवाससः , प्रवरदीप्ततेजस्का., शारद नवस्तनित-मधुर-
गम्भीर-स्निग्धघोषा ,नरसिंहा ,सिंहविक्रमगतय ,अस्तमिता., प्रवरराजसिंहा , सौम्याः,

द्वारावती पूर्णचन्द्रा', पूर्वकृत तपः प्रभावाः निविष्ट सञ्चितसुखा अनेकवास सत्र मासुपमन्तो मार्गमिव जनपद प्रधानामिर्गोयमाना, अतुल शब्द-स्पर्श-रस-रूप गन्धान् अनुभूय तेऽपि उपनमन्ति मरणधर्ममवितृप्ता कामेसु। ४।१५।

अन्वयार्थ—(भुज्जो भुज्जो) फिर इसी प्रकार (बलदेव वासुदेवा य पवर पुरिसा) बलदेव और वासुदेव रूप उत्तम पुरुष (महाबल परक्कमा महाधणु वियट्टका महासत्त सागरा) जो बड़े शारीरिक बल तथा पराक्रम वाले, बड़े धनुष को खींचने वाले और महान साहस के समुद्र हैं (दुद्धरा धणुद्धरा) दुर्धर तथा प्रधान धनुर्धारी (नर वसभा) नरों में वृषभ याने श्रेष्ठ (रामकेसवा भायरो सपरिसा) बलराम तथा कृष्ण अथवा बलदेव वासुदेव दोनों भाई, परिवार सहित भी, 'भोग में मग्न हो मस्त होगए' विशेष कहते हैं—(वसुदेव समुद्दविजयमादिय दसाराणं) वसुदेव और समुद्रविजय आदि दशारों के (पज्जुन्न-पतिव-संब-अनिरुद्ध-निसढ उम्मुय-सारण गय—सुमुह—दुम्मुहादीण जायवाणं अछुट्ठाणवि कुमार कोडीणं हियय-दइया) प्रद्युम्न कुमार, प्रतिव शाम्ब अनिरुद्ध कुमार, निषध, औत्सुक सारण, गज-कुमार, सुमुख और दुमुख आदि यादवों के तथा साढ़े तीन कोटि कुमारों के जो हृदय वल्लभ हैं (देवीए रोहिणीए देवीए देवकीए य) देवी रोहिणी और देवी देवकी के (आणंदहियय भाव नंदणकरा) आनन्द रूप हृदय के भाव को बढ़ाने वाले (सोलस रायवर सहस्साणु जायमग्गा) मार्ग में सोलह हजार राजा जिनके साथ चलते हैं (सोलस देवी सहस्स वरणयण—हिययदइया) सोलह हजार रानियों के नेत्रों व हृदयों के प्रधान प्रिय (नानामणि-कणग रयण-मोत्तिय-पवाल-धण-धण्ण-संचय-रिद्धि समिद्ध कोसा) अनेक प्रकार के मणि,सुवर्ण,रत्न-कर्केतन आदि मौक्तिक, प्रवाल-मूँगा धन-गिनने योग्य धान्य—तोलने योग्य के संचय रूप लक्ष्मी से समृद्ध भरपूर-भण्डार वाले (हय-गय रह-सहस्ससामी) हजारों हाथी, घोड़े व रथों के स्वामी (गामागर-णगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह—पट्टणासम-संवाह-सहस्स-थिमिय-णिव्वुय—पमुदित जण विविह-सास निप्फज्जमाण मेइणि-सर-सरिय-तलाग सेल-काणण-आरामुज्जाण-मणाभिराम परिमंडियस्स) ग्राम, आकर नगर, खेड, कब्बड मडंब द्रोणमुख पत्तन आश्रम और संवाह पूर्व कथित स्वरूप वाले इन हजारों बस्तियों के निर्भय स्थिर-स्वस्थ और प्रमुदित लोक वाला, अनेक प्रकार के धान्य से अङ्कुरित पृथ्वी और सर नदी तालाब, पर्वत कानन, उपवन, आराम-जो पुरुषों के

रमण करने-योग्य-वन विशेष और मनोहर उद्यान-बगीचों से परिमण्डित ऐसे भारत-वर्ष का ( दाहिणड्ढ-वेयड्ढ—गिरि विभत्तस्स-लवण जलहि-परिगयस्स छव्विह-काल-गुण-कमजुत्तस्स--अद्धभरहस्स ) वैताढ्य पर्वत से विभाग पाये हुए दक्षिण के अर्ध भाग रूप, और लवण समुद्र से तीन दिशाओं में घिरे हुए छः प्रकार के कालगुण यानी ऋतुओं के कार्य—क्रम से युक्त अर्द्ध भरत के ( सामिका ) नाथ हैं, ( धीरकित्ति पुरिसा ) धीरों के योग्य कीर्ति वाले पुरुष, ( ओहबला, अइबला, अनिहया ) ओह—अविच्छिन्न—अखूट बल वाले, अतिशय बली, किसी से नहीं मारे गये ( अपराजिय-सत्तुमद्दण—रिपुसहस्समाणमहणा ) किसी से नहीं हारे हुए, शत्रुओं का मर्दन करने वाले, हजारों शत्रुओं के मानों को मथन करने वाले ( साणुक्कोसा अमच्छरी ) दयावान् तथा मत्सर—द्रोह से रहित ( अच-वला अचडा ) चपलता रहित, बिना कारण क्रोध नहीं करने वाले ( मित मंजुल—पलावा ) परिमित और मधुर सलाप वाले ( हसिय गंभीर महुर भणिया ) गम्भीर हास्य और गम्भीर ध्वनि वाले ( अब्भुवगयवच्छला सरण्णा ) आश्रितों के वत्सल व शरण दाता ( लक्खण वंजण गुणोववेया ) लक्षण, व्यञ्जन-तिल-मशा आदि और गुण, दया आदि इन सबों से युक्त ( माणुम्माण पमाण पडिपुन्न सुजाय सव्वंगसुंद-रंगा ) मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण तथा अच्छे बने हुए सभी अवयवों से सुन्दर शरीर वाले ( ससि सोमागार कंतपियदसणा ) चन्द्र की तरह सौम्य आकार और कान्त व प्रियदर्शन वाले ( अमरिसणा ) अपराधों को नहीं सहने वाले या कार्य में आलस्य रहित ( पयंड—दंड-प्पयार-गंभीर-दरिसणिज्जा ) प्रचण्ड दण्ड विशेष का विधान करने वाले या प्रकाण्ड सेना के विस्तार वाले तथा देखने में गम्भीर मुद्रा वाले ( तालद्ध उव्विद्ध गरुल केऊ ) उठी हुई ताल वृक्ष की ध्वजा वाले और गरुड केतु वाले 'बलराम और कृष्ण' ( बलवग—गज्जंत-दरित—दप्पित-मुट्ठिय-चाणूर—मूरगा ) बलवान तथा मेरे समान कौन है ? इस प्रकार गाजते हुए अह-ङ्कारियों में दर्पवाले, मौष्टिकमल्ल और चाणूर नामक मल्ल को चूर्ण करने वाले ( रिट्ठ-वसभघातिणो ) कंस के अरिष्ट नामक बैल को मारने वाले ( केसरिमुह विप्फाडगा ) केसरी का मुह फाडने वाले ( दरित नागदप्पमहणा ) दुष्ट नाग के दर्प को मथने वाले ( जमलज्जुण भंजगा ) अर्जुन वृक्ष के रूप को धारण करने वाले दो विद्या-धरों के मान भङ्ग करने वाले 'श्री कृष्ण' ( महासउणि पूतनारिवू ) महा शकुनि और पूतना के शत्रु ( कंस मउड मोडगा ) युद्ध के लिये तत्पर ऐसे कंस के मुकुट को

मोड़ने वाले ( जरासिंधमाण महणा ) जरासन्ध नामक राजा के मान को मथन करने वाले ( तेहि य अविरल—सम—सहिय—चंद-मंडल समप्पभेहिं सूर—मिरीय-कवयं—विणिम्मुयंतेहिं सपति—दंडेहिं आयवत्तेहिं धरिज्जंतेहिं ) और छिद्र रहित सुस्पष्टशलाका वाले तथा झिलमिलाते चन्द्र मण्डल के समान प्रभावाले, सूर्य की किरणों के समान चारों ओर प्रभा-समूह को फैलाते हुए प्रतिदण्ड वाले,[1] सिरपर धारे जाते हुए—' छत्रों से ( विरायंता ) विराजमान हैं।

( ताहि य ) और उन चामरों से युक्त था ( पवर गिरि कुहर विहरण समुट्ठियाहि ) ऊंचे पहाड़ की गुफा में चमरी गाय के विचरते समय उखड़े हुए ( निरुवहय चमर

1—पाठान्तर में छत्र का वर्णन फिर ऐसा मिलता है अब्भपडल पिंगलुज्जलाहि अविरल सम सहिय चंद मंडल समप्पभाहिं मंगल सयभत्ति—छेय—चित्तियखिखिणि—मणि—हेमजाल विरइय—परिगय—पेरंत—कणग—घंटिय—पयलिय-खिणिखिणिंत—सुमहुर—सुइ-सुह-सद्दाल सोहिएहिं सपयरग—मुत्तदाम—लंबत भूसणेहिं नरिंद—वामप्पमाण—रुंदपरिमंडलेहिं सीयायव-वायवरिस—विसदोसणासएहिं तमरय—मलबहुल पडल—धाडण—पहाकरेहिं मुद्धसुह-सिवच्छायसमणुबद्धेहिं वेरुलियदंडसज्जिएहिं वयरामय—वत्थि-निउण—जोइय—अट्ठसहस्स-वरकंचणसलाग-निम्मिएहिं सुविमल—रयय—सुछुच्छइएहिं निउणोविय-मिसिमिसिंत मणि—रयण-सूर मंडल—वितिमिर कर—निग्गय—पडिहय पुणरवि—पच्चोवयंत चंचल मरीइ कवय विणि-म्मुयंतेहिं।—'बड़े बादल की तरह पीले और उज्ज्वल छिद्र रहित बराबर दिखनेवाले व चन्द्र मण्डल के समान प्रभा वाले हुए, छत्र चित्री के द्वारा मङ्गलकारी सैकड़ों चित्रितियों से चित्र युक्त छोटी घंटिका और रत्न जटित सोने की जाल की रचना से चारों ओर घिरे हुए, प्रान्त भाग में हिलती हुई सुवर्ण घंटिकाओं के खिनखिनाहट से अतिशय मधुर और कर्णप्रिय शब्दों से शोभित प्रतरगण युक्त लटकती हुई मोती की माला के भूषण वाले राजा के फैलाये हुए बाहुओं के प्रमाण गोल व विस्तार वाले सर्दी गर्मी धूप हवा वर्षा और विषमयवाली दोषों का मिटाने वाले अन्धकार तथा धूलिमल के सघन पटल को नष्ट करने वाली प्रभा वाले मस्तक को सुखकारी निराकुल छाया के माहात्म्य वाले वैडूर्यरत्न के निर्मलदण्डों पर सजे हुए, वज्रमय मध्यभाग पर चतुर शिल्पियों से जोड़े हुए और एक हजार आठ उत्तम सोने की शलाकाओं से जो निर्मित हैं खूब साफ चांदी के वस्त्र से अच्छी तरह ढके हुए, कुशल शिल्पियों से साफ किये हुए और चमक चिलचिलाते मणिरत्न की किरणों से सूर्यमण्डल की तिमिरनाशक बाहर पड़ती हुई किरणों की तरह किरण समूह को फैलाने वाले ( धारे जाते हुए ) ऐसे छत्रों से शोभायमान ॥

पच्छिम सरीर संजाताहिं ) रोग रहित चमरो गौ की पूछ के पिछले भाग में ( अमइल-सिय-कमल-विमुकुलुज्जलित-रयत-गिरि-सिहर-विमल-ससि-किरण—सरिसकलहोय निम्मलाहिं ) निर्मल और खिला हुआ श्वेत कमल तथा उज्ज्वल किये हुए चांदी के पर्वत का शिखर एव निर्मल चन्द्र की किरणों के समान तथा स्वच्छ चांदी जैसे निर्मल ( पवणाहय-चवल-चलिय-सललिय-पणच्चिय-वोइ-पसरिय-खीरोदगवरसागरुप्पूर चचलाहिं ) वायु से ताडित होकर जैसे चपल हो वैसे चलता हुआ, लीला के साथ प्रवृत्त तरङ्गों से फैले हुए उत्तम क्षीरोदधि-क्षीर समुद्र-के उत्पूर की तरह चञ्चल, ( माणस-सर—पसर—परिचियावास—विसदवेसाहिं ) मानस-सरोवर के विस्तार में परिचित आवास और सफेद वेष वाली-( कणग-गिरि-सिहर-ससिताहिं ) सुवर्ण गिरि के शिखर पर आश्रय रखने वाली ( उवाउप्पात-चवल जयिण-सिग्घवेगाहिं हस वधूयाहिं चेव कलिया ) नीचे जाने व ऊपर उठने में चपल वस्तुओं को जीतने योग्य शीघ्र वेगवाली जैसे हंस वधु-हंसनिओं को तरह जो ( नाणामणि—कणगमहरिह—तवणिज्जुज्जल—विचित्त दंडाहिं सललियाहिं ) अनेक प्रकार की मणियाँ और सुवर्ण तथा बहु मूल्य तपनीय-लाल सोने के उज्जवल व विचित्र दड वाले लालित्य-युक्त ( नरवति-सिरि समुदय-प्पगासणकरीहिं ) राज लक्ष्मी के समुदाय को प्रकट करने वाली ( वरपट्टणुग्गयाहिं समिद्धरायकुल सेवियाहिं ) श्रेष्ठ बाजार में निर्मित तथा समृद्ध राजकुलों से सेवित, ( कालागुरु-पवर-कुदुरक्क-तुरुक्क-धूववस-वासविसद-गधुद्धूयाभिरामाहिं ) काला, अगुरु, प्रधान कुदुरुक्क-चीडा, तुरुक्क-सोल्हक, इनके धूप के कारण प्रकट, एव स्पष्ट गन्ध की वासना से रमणीय ( चिल्लिकाहिं उभओ पासपि चामराहिं उक्खिप्पमाणाहिं ) दीपते हुए तथा दोनों बाजू उछाले ज ते हुए चामरों से विराजमान ( सुह-सीतल-वातवीजियगा ) सुखकारी चामरों की शीतल हवा से वीजित शरीर वाले ( अजिता अजितरहा ) किसी से नहीं जीते गए-तथा अजित रथ वाले ( हल-मुसल-कणग पाणी ) हल मूसल और बाण को हाथ में लिये हुए-बलदेव ( सख-चक्क-गय-सत्ति-णंदगधरा ) शङ्ख, चक्र-सुदर्शन चक्र और कौमुदी नामक गदा व शक्ति-त्रिशूल तथा नन्दक नाम के खड्ग को धारण करने वाले कृष्ण हैं ( पवरुज्जल-सुकत-विमल-कोथुभ-तिरीडधारी ) उत्तम श्वेत तथा सुरचित-निर्मल कौस्तुभमणि और किरीट-मुकुट को धारण करने वाले ( कुडल-उज्जोवियाणणा ) कुण्डल से उद्योतित मुख वाले पुडरीयणयणा ) पुडरीक-कमल—के समान नेत्र वाले ( एगावली-कठ—रतियवच्छा ) कण्ठ मे पहनी हुई एकावली-सुवर्ण

आभा से आह्लादक वक्षस्थल वाले ( सिरिवच्छ सुलंछणा वरवच्छा ) श्रीवत्स के चिह्न से युक्त वक्ष वाले, सब ऋतुओं के सुगन्धित फूलों से गूंथी हुई, लम्बी शोभायमान और विकास युक्त, चित्र विचित्र वनमाला से प्रीतिप्रद वक्षस्थल वाले ( अट्ठसय विभत्त—लक्खण—पसत्थ—सुन्दर—विराइयंगमंगा ) स्वस्तिक आदि विभक्त युक्त एक सौ आठ उत्तम लक्षणों से सुन्दर और विशेष शोभा युक्त अङ्गों वाले ( मत्त-गय वरिंद—ललिय-विक्कम—विलसिय गई ) मदोन्मत्त गजेन्द्र के समान धीर-गम्भीर गतिवाले ( कडि सुत्तग-नील पीय-कोसिज्ज वाससा ) कटि सूत्र, प्रधान नीले और पीले कौशेयक वस्त्र वाले ( पवर दित्ततेया ) उत्कृष्ट दीप्ति युक्त तेज वाले ( सारय-नव-थणिय-महुर-गंभीर निद्ध घोसा ) शरद् काल के नव जलधर के समान गम्भीर व स्निग्ध ध्वनि वाले ( नरसीहा सीह विक्कमगई ) मनुष्यों में सिंह, सिंह के समान पराक्रम और गमन वाले ( सोमा बारवइ पुण्ण चंदा ) सौम्य आकृति वाले द्वारिका नगरी के पूर्णचन्द्र ( पुव्वकय-तवप्पभावा, निविट्ठ संचिय सुहा ) पूर्वकृत तपस्या के प्रभाव से प्राप्त और संचित सुख वाले ( अणेगवाससयमाउवंतो ) अनेक सैकड़ों वर्षों की आयु वाले ऐसे 'बलदेव और वासुदेव रूप' ( भज्जाहिंय जणवय पहाण लालियंता ) प्रधान राजसिंह, जनपद के प्रधान ( भज्जाहिं य जणवयप्पहाणाहिं ) और देश की प्रधान स्त्रियों से ( लालियंता ) विलास करते हुए ( अतुलसद्द-फरिस-रस-रूव—गंधे अणुभवेत्ता ) अनुपम शब्द स्पर्श रस, और गन्धों का अनुभव करके ( कामाणं अवितित्ता ) काम भोगों में तृप्ति रहित ( तेवि मरण धम्मं उवणमंति ) वे बलदेव एवं वासुदेव भी मरण धर्म—मृत्यु—को प्राप्त कर जाते हैं। ४।१५॥

## अब मांडलिक राजा व युगलिकों का वर्णन करते हैं—

मूल—"भुज्जो मंडलिय नरवरेंदा, सबला सअंतेउरा सपरिसा, सपुरोहियाऽमच्च दंड नायक—सेणावति-मंत-नीति कुसला, नाणा मणिरयण-विपुल धण—धन्न—संचय निही, समिद्ध कोसा, रज्ज-सिरिं विपुल मणुभवित्ता विक्कोसंता, बलेण मत्ता, तेवि उवणमंति मरण धम्म अवितत्ता कामाणं । भुज्जो उत्तर कुरु देवकुरु—वण विवर—पाय चारिणो, नरगणा, भोगुत्तमा, भोग लक्खणधरा, भोग सस्सिरीया, पसत्थ-सोम-पडिपुण्ण रूव-दरिसणिज्जा, सुजात

सव्वंग-सुंदरंगा, रत्तुप्पल-पत्त-कंत-कर-चरण-कोमलतला, सुपइट्ठिय-कुम्म-चारु-चलणा, अणुपुव्व-सुसंहय अंगुलीया, उन्नय-तणु-तंब-निद्धनखा,संठिय सुसिलिट्ठ गूढ गोंफा, एणी-कुरुविंद-वत्त-वट्टाणु पुव्वि जंघा, समुग्ग-निसग्ग-गूढ जाणू, [1]वर वारण-मत्त-तुल्ल-विक्कम विलासितगती, वर तुरग-सुजाय गुज्झ देसा, आइन्न हयव्व-निरुवलेवा,पमुइय-वर तुरग-सीह-अतिरेग वट्टिय कडी, गंगावत्त-दाहिणावत्त-तरंग -भंगुर-रविकिरण-बोहिय-विकोसायंत-पम्ह गंभीर-विगडनाभी, साहत-सोणंद-मुसल-दप्पण निगरिय-वर कणग-च्छरु सरिस-वर वइर-वलियमज्झा, उज्जुग-सम साहिय जच्च-तणु कसिण-णिद्ध-आदेज्ज-लडह-सूमाल-मउय रोमराई, झस-विहंग-सुजात-पीणकुच्छी, झसोदरा, पम्ह-विगड नाभा, संनतपासा, संगयपासा, सुंदर पासा, सुजात-पासा, मित माइय-पीण-रइयपासा, अकरंडुय-कणग-रुयग-निम्मल-सुजाय-निरुवहय देहधारी, कणग-सिलातल-पसत्थ-समतल-उवइय विच्छिन्न-पिहुल वच्छा, जुयसंनिभ-पीण-रइय-पीवर-पउट्ठ-संठिय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठ-सुनिचित-घण-थिर-सुबद्ध संधी, पुरवर-वरफलिह-वट्टियभुया, भुयईसर-विपुल भोग-आयाण-फलि उच्छूढ दीह बाहू, रत्ततलो-वतिय-मउय-मंसल-सुजाय-लक्खण-पसत्थ-अच्छिद्द जालपाणी, पीवर-सुजाय-कोमल वरंगुली, तंब-तालिण-सुइ-रुइल-निद्ध नखा, निद्ध-पाणिलेहा,-चंद-पाणिलेहा, सूर-पाणिलेहा, सख-पाणिलेहा, दिसा सोवत्थिय-पाणिलेहा, रवि-ससि-संख-वरचक्क-दिसा सोवत्थिय विभत्त-सुविरइय-पाणिलेहा,वर महिस-वराह-सीह [2]सद्दूल-सीह-नाग-वर-पडिपुन्न-विउल खंधा, चउरंगुल सुप्पमाण-कंबुवर-सरिसग्गीवा, अवट्ठिय-सुविभत्त-चित्त मंसू, उवाचिय-मंसल-पसत्थ-सद्दूल-विपुल हणुया, ओयविय सिलप्प वाल-बिंबफल-

१क-गय-गमण सुजाय सन्निभोक्क वर-२ क-सद्दल रिसह ।

ससिमा-धरोट्ठा पंडुर-ससि-सकल-विमल संख गोक्खीर फेण कुंद दगरय मुणालिया-धवल दंतसेढी, अखंड दंता, अप्फुडियदंता, अविरलदंता, सुणिद्धदंता, सुजायदंता,एगदंत सेढिव्व अणेगदंता, हुयवह निद्धंत धोय तत्त तवणिज्ज रत्ततला-तालुजीहा,गरुलायत उज्जुतुंग नासा, अवदालिय पोंडरीय नयणा, कोकासिय धवल पत्तलच्छा, आणामिय-चाव रुइल किण्हब्भराजि संठिय-संगया यय सुजाय सुभगा, अल्लीण-पमाण जुत्त सवणा, सुसवणा, पीण मंसल कवोल देसभागा, अचिरुग्गय बालचंद-संठिय महानिडाला, उडुवतिरिव-पडिपुण्ण-सोमवयणा,—छत्तागारुत्तमंगदेसा, घणनिचिय-सुबद्ध-लक्खणुण्णय-कूडागार निभ-पिंडियग्गसिरा, हुयवह-निद्धंत धोय तत्त-तवणिज्ज रत्तकेसंत-केसभूमी, सामली-पोंड-घणनिचिय-छोडिय मिउ विसत-पसत्थ-सुहुम-लक्खण सुगंधि सुंदर-भुयमोयग भिंग-नील-कज्जल-पहट्ठ-भमरगण निद्ध निगुरुंब-निचिय-कुंचिय—पयाहिणावत्त—मुद्ध सिरया, सुजात सुविभत्त संगयंगा, लक्खण वंजण गुणोववेया, पसत्थ बत्तीस लक्खण धरा, हंसस्सरा, कुंचस्सरा, दुंदुभिस्सरा, सीह-स्सरा, (ओघ) सरा, मेघसरा, सुस्सरा, सुस्सर, निग्घोसा, वज्जरिसह, नाराय संघयणा, समचउरंस, संठाण, संठिया, छाया उज्जोवियंगमंगा, पसत्थच्छवी, निरातंका, कंकग्गहणी, कवोत परिणामा, सउणि पोस पिट्ठंत रोरुपरिणया, पउमुप्पल सरिस गंधुस्सास सुरभिवयणा, अणुलोम वाउवेगा, अवदाय निद्धकाया विग्गहिय-उन्नय कुच्छी अमयरस-फलाहारा, तिगाउयस मूसिया तिपलिओवमट्ठितिका, तिण्णिय पलिओवमाइं परमाउ पालयित्ता ते वि उवणमंति मरण धम्म, अवितत्ता कामाणं। पमया वि य तेसिं होंति सोम्मा सुजाय सव्वंग सुंदरीओ पहाण महिला गुणेहिं जुत्ता, अतिकंत-विसप्पमाण-मउय-

१८—बिब्बोसिय पवर-क-मलमरा, आ० स०

सुकुमाल-कुम्म सठिय-सिलिट्ठ चरणा, उज्जु-मउय-पीवर सुसा-हतंगुलीओ, अब्भुन्नत—रतित-तलिण-तब-सुइनिद्धनखा, रोम रहिय वट्ट-संठिअ-अजहन्न पसत्थ-लक्खण-अकोप्प-जघजुयला, सुणिम्मित—सुनिगूढ जाणु, मसल – पसत्थ—सुबद्ध-संधी, कयली—खंभातिरेक-सठिय—निव्वण-सुकुमाल—मउय-कोमल अविरल-सम सहित-सुजायवट्ट-पीवर-निरंतरोरू, अट्ठावय-वीइ-पट्ट-सठिय-पसत्थ-विच्छिन्न-पिहुलसोणी, वयणायामप्पमाण-दुगुणिय-विसाल-मंसल-सुबद्ध-जहण-वर धारिणीओ, वज्जवि-राइय-पसत्थ-लक्खण निरोदरीओ, तिवलि-वलिय-तणु नमिय-मज्झियाओ, उज्जुय-समसहिय-जच्चतणु-कसिण-निद्ध-आदेज्ज-लडह—सुकुमाल-मउय-सुविभत्त—रोमराती ओ, गंगा वत्तग-पदाहिणावत्त-तरंगभंग-रविकिरण-तरुण-बोधित-आकोसायंत-पासा, सुजातपासा, संगतपासा, मियमाथिय-पीण-रतितपासा, अकरंडुय—कणग-रुयग-निम्मल-सुजाय-निरुवहय—गायलट्ठी, कंचणकलस-पमाण समसाहिय-लट्ठ चूचुय-आमेलग-जमल-जुयल-वट्टिय-पओहराओ, भुयंग-अणुपुव्व-तणुय-गोपुच्छ-वट्ट-समस-हिय-नमिय-आदेज्ज-लडहवाहा, तंबनहा, मसलग्गहत्था, कोमल पीवर वरंगुलीया; निद्ध पाणिलेहा, ससि-सूर-संख-चक्क-वरसो-त्थिय-विभत्त—सुविरइय-पाणिलेहा, पीणुण्णय-कक्ख-वत्थिप्प-देस-पडिपुन्न-गलकवोला, चउरंगुल-सुप्पमाण-कंबुवर-सरिसगीवा; मंसलसंठिय—पसत्थ-हणुया, दालिम—पुप्फ-प्पगास-पीवर-पलंब-कुंचित वराधरा, सुंदरोत्तरोट्ठा, दधि-दग-रय-कुंद-चंद-वासंति-मउल-अच्छिद्द—विमलदसणा, रत्तुप्पल-पउमपत्त-सुकु-माल-तालुजीहा, कणवीर-मउलऽकुडिलऽब्भुन्नय-उज्जु-तुंग-नासा, सारद-नवकमल कुमुत-कुवलयदल-निगर-सरिस-लक्खण -पसत्थ-अजिम्हकंत नयणा, आनामिय-चाव-रुइल—किण्हब्भराइ-संगय-सुजाय-तणु-कसिण-निद्ध भुमगा, अल्लीण-पमाण जुत्त-सवणा,

सुस्सवणा, पीणमउय गंडलेहा, चउरंगुल-विसाल-सम सिराओ, कोमुदि रयणिकर विमल-पडिपुन्न-सोमवयणा, छत्तुन्नय उत्तमंगा, अकविल-सुसिणिद्ध-दीहसिरया छत्तज्झय-जूव थूभ—दामिणि कमंडलु-कलस-वावि-सोत्थिय पडाग—जव-मच्छ-कुम्म-रहवर मकर-ज्झय-अंक-थाल-अंकुस अट्ठावय-सुपइट्ठ—अमर-सिरिया भिसेय-तोरण-मेइणि-उदधिवर-पवरभवण—गिरिवर-वरायंस-सललिय—गय-उसभ-सीह—चामर—पसत्थ-बत्तीस लक्खण-धरीओ, हंस १सरिच्छ गतीओ, कोइल-महुर-गिराओ, कंता, सव्वस्स अणुमयाओ, ववगय-वलि-पलिय-वंग-दुव्वन्न-वाहि-दोहग्ग-सोयमुक्काओ, उच्चत्तेण य नराण थोवूण मूसियाओ, सिंगारागार-चारुवेसाओ, सुंदर-थण—जहण-वयण-कर-चरण-णयणा, लावण्णरूव—जोव्वण—गुणोववेया, नंदणवण—विवर चारिणीओव्व अच्छराओ उत्तरकुरु-माणुसच्छराओ, अच्छेरग पेच्छणिज्जियाओ तिन्नि य पलिओवमाइं परमाउं पालयित्ता ताओऽवि उवणमंति मरणधम्मं, अवितित्ता कामाणं ॥ सू ४ । १५ ॥

छाया— 'भूयो माण्डलिक-नरवरेन्द्राः, सबलाः, सान्तःपुराः, सपरिषदः,-सपुरोहिताऽमात्य-दण्डनायक-सेनापति-मन्त्र-नीति कुशलाः, नानामणि-रत्न-विपुल-धन-धान्य—सञ्चय-निधि-समृद्ध-कोशा राज्यश्रियं विपुलमनुभूय विक्रोशन्तो बलेन मत्तास्तेऽप्युपनमन्ति मरणधर्ममवितृप्ता कामेषु। भूयः उत्तरकुरु-देवकुरु-वन-विवर पाद चारिणो नरगणाः, भोगोत्तमाः, भोग लक्षणधरा भोगसश्रीकाः, प्रशस्तसौम्य परिपूर्ण—रूपदर्शनीया सुजात—सर्वाङ्ग—सुन्दराङ्गा रक्तोत्पलपत्र-कान्तकर-चरण कोमल तलाः, सुप्रतिष्ठित—कूर्म चारु-चरणा आनुपूर्व्य-सुसंहताऽङ्गुलीका उन्नत तनु ताम्र—स्निग्धनखाः, संस्थित-सुश्लिष्ट-गूढ-गुल्फा, एणी-कुरुविन्द वृत्त वर्तितानुपूर्वजङ्घाः, समुद्गक-निमग्न गूढ जानवो वरवारण मत्त-तुल्य-विक्रम-विलासित-गतय वरतुरग सुजात गुह्यदेशा आकीर्ण हय इव निरुपलेपाः,-प्रमुदित-वरतुरग-सिंहातिरेक वर्तित-कटयो गङ्गावर्त-दक्षिणाऽऽवर्त-तरङ्ग—भङ्गुर-रविकिरण बोधित—विकोशायमान पद्म गम्भीर-विकटनाभय संहित-सोपान-( त्रिपार्श्वपीठिका ) सुसम-पण निगडित-[illegible]

१-क—सरिच्छ गतीओ

त्सरु सदृश-वरवज्र वलित-मध्याः, ऋजुक-सम-सहित-जात्यतनुक-कृष्ण-स्निग्धादेय लडह ( मनोज्ञ )-सुकुमार मृदुल-रोमराजय , झष-विहग सुजात पीन कुक्षय , झषोदरा',पद्म विकट-नाभय', सन्नतपार्श्वा , सङ्गत पार्श्वा., सुन्दरपार्श्वाः, सुजातपार्श्वाः, मितमात्रिक-पीन-रतिदपार्श्वा., अनस्थि [ अकरण्डुक ] कनक-रुचक निर्मल सुजात निरुपहत-देह-धारिण , कनकशिलातल प्रशस्त-समतलोपचित विच्छिन्न- पृथुल विपुलवक्षस , युग-सन्निभ-पीन-रतिद-पीवर-प्रकोष्ठ संस्थित सुश्लिष्ट-लष्ट सुनिचित घन-स्थिर सुबद्धसन्धय , पुरवर वरपरिघ—वर्तितभुजा ,-भुजगेश्वर-विपुल भोगाऽऽदान-फलिकाच्छूढ-दीर्घ-बाहव., रक्ततलोप चयिक मृदुक-मासल-सुजात—लक्षण-प्रशस्ताऽच्छिद्र—जाल-पाणयः. पीवर—सुजात-कोमल-वराङ्गुलय', ताम्र-तलिन शुचि-रुचिर—स्निग्ध-नखाः. स्निग्ध-पाणिरेखाश्चन्द्र पाणिरेखा. सूर्य—पाणिरेखा , शङ्खपाणिरेखाश्चक्र—पाणिरेखा, दिक्स्वस्तिक—पाणिरेखा,-रवि शशि—शङ्ख –वर चक्र –दिक् स्वस्तिक-विभक्त सुविरचित—पाणिरेखा, वरमहिष—वराह—सिंह—शार्दूल सिंह—नागवर-परिपूर्ण—विपुलस्कन्धाश्चतुरङ्गुल—सुप्रमाण - कम्बुवर - सदृशग्रीवा,-अवस्थित -सुवि-भक्त—चित्र [ शोभाद् भुत कूर्चकेशा ] मश्रव , उपचित-मासल—प्रशस्त—शार्दूल-विपुलहनुका', परिकर्मित —शिल प्रवाल-बिम्बफल सन्निभाऽधरोष्ठा' पाण्डुर—शशि सकल-विमल शङ्ख -गोक्षीर-फेन-कुन्द--दकरजो- मृणालिका—धवल दन्त श्रेणयः, अखण्ड दन्ता, अस्फुटित दन्ता अविरल दन्ता , स्निग्ध दन्ता सुजात दन्ता, एकदन्त श्रेणिरिव, अनेक दन्ता', हुतवहनिर्ध्मात धौत-तप्त तपनीयरक्ततलास्तालुजिह्वा, गरुडा-यत-ऋजुतुङ्गनासिका अवदारित—पुण्डरीक नयनाः, विकसित-[ कोकासित ] धवल-पत्रल-पक्ष्माण , [ पत्रलाक्षा ] आनामित चाप-रुचिर--कृष्णाभ्र--राजि-संस्थित सङ्गता-यत-सुजातभ्रूव , आलीन प्रमाणयुक्त श्रवणा ,सुश्रवणा ,पीन-मासल-कपोल देशभागा., अचिरोद्गत बाल चन्द्र-संस्थित महाललाटा उडुपतिरिव परिपूर्ण सौम्यवदनाश्छत्रा-कारोत्तमाङ्गदेशा ,घननिचित सुबद्ध-लक्षणोन्नत कूटाकार- निभ-पिण्डिताग्रशिरस्का ,हुत वह-निर्ध्मात धौत-तप्त तपनीयरक्त-केशान्त केशभूमय ,शाल्मली वृन्त फल-घन-निचित-छोटित-मृदुविशदप्रशस्त-सूक्ष्म लक्षण-सुगन्धि सुन्दर-भुजमोचक भृङ्ग-नील-कज्जल-प्रहृष्ट भ्रमरगण-स्निग्ध-निकुरम्ब निचित कुञ्चित प्रदक्षिणावर्त मूर्द्धशिरोजा , सुजात सुवि-भक्त-सङ्गताङ्गा लक्षण-व्यञ्जन गुणोपपेता , प्रशस्त-द्वात्रिंशल्लक्षणधरा , हंसस्वरा ,क्रौ-ञ्चस्वराः, दुन्दुभिस्वरा , सिंहस्वरा , [ ओघ ] स्वरा , मेघस्वरा , सुस्वरा , सुस्वरनिर्घो-षा, वज्रर्षभ-नाराच-संहनना ,,समचतुरस्र संस्थान-संस्थिता., छायो द्योतिताङ्गोपाङ्गाः,

प्रशस्तच्छवयो निरातङ्का कङ्कग्रहणीका कपोत परिणामा, शकुनि पोष-पृष्ठान्तरोरु-परिणताः, पद्मोत्पल-सदृश गन्धोच्छ्वास-सुरभिवदना, अनुलोम वायुवेगाः अव दात-स्निग्ध-कालाः, (कृष्णाः) विग्रहिकासन्न मुन्नती मृगरस फलाहाराश्चि गव्यूति समुच्छ्रिताः त्रिपल्योपमस्थितिकाः, त्रीणि च पल्योपमानि परमायुः पालयित्वा तेऽप्युपनमन्ति मरणमभमवितृप्ता कामेषु।

प्रमदा अपि च तेषां भवन्ति सौम्या, सुजात—सर्वाङ्ग—सुन्दर्य प्रधान—महिला गुणैर्युक्ता—अतिकान्त—विसर्पन्मृदुक—सुकुमार—कूर्म-संस्थित-शिष्ट चरणाः ऋजु-मृदुक—पीवर—सुसंहताऽङ्गुलीका अभ्युन्नत—रतिद तलिन—ताम्र—शुचिस्निग्धनखा, रोमरहित—वृत्त संस्थित—प्रशस्त लक्षणाऽजघन्याऽकोप्य जङ्घा युगला, सुनिर्मित—सुनिगूढ—जानु मांसल—प्रशस्त—सुबद्ध सन्धयः, कदली—स्तम्भातिरेक—संस्थित निर्विष्णा—सुकुमार—मृदुक—कोमलाऽविरल—सम सहित—सुजात वृत्त-पीवर-निरन्तरोरव:, अष्टापद—वीचि—पृष्ठ-संस्थित—प्रशस्त—विस्तीर्ण पृथुल-श्रोणयः, वदनायाम—प्रमाण—द्विगुणित—विशाल—मांसल-सुबद्ध-जघनवर धारिण्यः वज्र विराजित—प्रशस्तलक्षण—निरुदर्ये त्रिवली—वलित—तनु—नतमध्या ऋजुक-सम—सहित—जात्यतनु—कृष्ण—स्निग्धाऽऽदेय—लडह (ललित) सुकुमार मृदुक-सुविभक्त रोम राजयो गंगावर्तक-प्रदक्षिणावर्त्त-तरङ्ग भङ्ग-रवि-किरण तरुणबोधित विकसित—पद्म गम्भीर—विकटनाभयः, अनुद्भट—प्रशस्त—सुजात—पीनकुक्षयः, सन्नत पार्श्वाः सुजात-पार्श्वा सङ्गतपार्श्वा—मित-मात्रिक—पीन रचित पार्श्वा, अकरंडुक—कनक—रुचक-निर्मल—सुजात निरुपहत—गात्रयष्टय, काञ्चन-कलश प्रमाण-सम सहित लष्ट चूचुकाऽऽमेलक यमल युगल वर्तित-पयोधरा, भुजङ्गाऽनुपूर्व तनुक-गोपुच्छ वृत्त-सम सहित नमिताऽऽदेय-ललित बाहव ताम्रनखाः, मांसलाग्रहस्ता, कोमल पीवर वराङ्गुलीकाः स्निग्ध पाणिलेखा, शशि—सूर्य—शङ्ख चक्र वर स्वस्तिक विभक्त—सुविरचित-पाणिलेखाः, पीनोन्नत—कक्ष वस्ति प्रदेशा परिपूर्ण गल-कपोला चतुरङ्गुल—सुप्रमाण-कम्बुवर-सदृश ग्रीवाः, मांसल-संस्थित-प्रशस्त-हनुका दाडिम पुष्प प्रकाश-पीवर-प्रलम्ब कुञ्चित वराऽधरा, सुन्दरोत्तरोष्ठा, दधि—दक—रज—कुन्द चन्द्र-वासन्ती-मुकुला-च्छिद्र विमलदशना रक्तोत्पल पद्मपत्र सुकुमार-तालु जिह्वा, करवीर मुकुल—कुटिलाऽभ्युन्नत-ऋजुतुङ्ग नासिका शारद-नव—कमल—कुमुद-कुवलय-दल—निकर-सदृश लक्षण-प्रशस्ताऽजिह्मकान्त नयना आनामित-चाप-रुचिर कृष्णा भ्राजि-संहत-सुजात-तनु-कृष्ण स्निग्धभ्रुव। आलीन-प्रमाणयुक्त-श्रवणाः सुश्रवणाः,

पीनमृष्ट-गण्डलेखा', चतुरङ्गुल-विशाल-सम-ललाटाः, कौमुदी-रजनीकर-विमल-प्रतिपूर्ण-सौम्यवदना', छत्रोन्नतोत्तमाङ्गाः, अकपिल-सुस्निग्ध-दीर्घ शिरोजा', छत्र-ध्वज-यूप-स्तूप-दामिनी-कमण्डलु-कलस-वापी-स्वस्तिक-पताका-यव-मत्स्य-कूर्म-रथवर-मकर-ध्वजाङ्क-स्थालाऽङ्कुशाऽष्टापद—सुप्रतिष्ठकाऽमर-श्रीकाऽभिषेक-तोरण-मेदिन्युदधिवर-प्रवर भवन-गिरिवर-वरादर्श-सललितगज-ऋषभ-सिंह-चामर-प्रशस्त द्वात्रिंशल्लक्षण धारिण्यो, हंससदृशगतयः कोकिल—मधुरगिरश्च, कान्ताः सर्वेषाम्, अनुमता, व्यपगत, वलीपलित—व्यङ्ग दुर्वर्ण—व्याधि दौर्भाग्य शोक मुक्ता, उच्चत्वेन नराणां स्तोकोन मुच्छ्रिताः, शृङ्गाराऽगारचारुवेषाः सुन्दर स्तन-जघन—वदन—कर-चरण नयना , लावण्य-रूप-यौवन-गुणोपपेताः, नन्दन वन—विवर चारिण्य इवाऽप्सरसः, उत्तरकुरु मानुष्याप्सरसः, आश्चर्य प्रेक्षणीयाः, त्रीणि पल्योपमानि परमायूंषि पालयित्वा ता अपि उपनमन्ति मरणधममवितृप्ताः कामेषु ॥ । सू० ५ । १५ ॥

अन्व०—( भुज्जो मण्डलिय नर वरिंदा ) फिर मण्डलाधिपति राजा जो ( सबला सअंतेउरा सपरिसा ) सैन्य वाले अन्तः पुर तथा परिषद्-उत्तम सभा वाले ( सपुरोहिया ) पुरोहित सहित याने जिनके पास-शान्ति कर्म कराने वाले हैं, तथा-(अमच्च-दंडनायक-सेणावती-मत नीति—कुसला ) अमात्य-प्रधान, दण्डनायक-कटक का नायक और सेनापति, इन सब से युक्त, और जो गुप्त विचार एव नीति मे कुशल हैं ( नाणामणि-रयण-विपुल-धण-धन्न-सचय-निही समिद्ध कोसा ) अनेक प्रकार के मणि रत्न तथा विस्तीर्ण धन धान्य के सञ्चय और निधियों से परिपूर्ण खजाने वाले वे ( रज्जसिरिं विपुलमणुभवित्ता ) विस्तार युक्त राज्य लक्ष्मी को भोगकर ( विक्कोसंता ) दूसरों को बुरा कहते हुए या कोष रहित हुए (बलेण मत्ता) अपने बल से मदोन्मत्त ( तेवि ) वे माण्डलिक नरेन्द्र भी ( कामाण अवितत्ता ) काम भोगों के विषय मे अतृप्त बने हुए ( मरण धम्म उवणमंति ) मरण धर्म को प्राप्त करते हैं । ( भुज्जो उत्तर कुरु-देवकुरु-वण-विवर—पाद—चारिणो नरगणा ) ऐसे ही फिर उत्तर कुरु और देवकुरु—नामक क्षेत्र के वन प्रदेशों में पैदल फिरने वाले मनुष्य जो—युगलिक कहाते हैं ( भोगुत्तमा भोग लक्खणधरा भोग सस्सिरीया ) भोगों से उत्तम भोग सूचक उत्तम लक्षणों को धारण करने वाले उत्तम भोगों से शोभायुक्त ( पसत्थ-सोम-पडिपुन्न-रूव-दरिसणिज्जा ) प्रशस्त, सौम्य और प्रतिपूर्ण रूप के कारण देखने योग्य हैं ( सुजात-सव्वंग-सुदरंगा ) सुजात सभी अंगों से सुन्दर शरीर वाले ( रत्तुप्पल-पत्त-कत-कर-चरण—कोमलतला ) रक्त—लाल कमल पत्र की तरह-कान्त और कोमल

हाथ पैर के तल वाले ( सुपइट्ठिय-कुम्म-चारु चलणा ) अच्छी तरह बैठे हुए कच्छप के जैसे सुन्दर चरण वाले ऐसे ( अणुपुव्व—सुसंहयंगुलीया ) क्रम से बढ़ती हुई व घटती हुई परस्पर मिली हुई अंगुली वाले ( उन्नय तणुतंब—निद्धनखा ) ऊंचे, पतले और ताम्बे की तरह कुछ लाल वर्ण के चिकने नख वाले ( संठिय—सुसिलिट्ठ-गूढ़ गोंफा ) योग्य आकार वाले अच्छी तरह जुड़े हुए और मांस से ढके हुए गुल्फ हैं जिनके ( एणी—कुरुविंदावत्त-वट्टाणुपुव्वि-जंघा ) हरिणी और कुरु विन्द नामक तृण के समान क्रम से गोल जंघा वाले ( समुग्ग-निसग्ग-गूढ़ जाणू ) डब्बे की सन्धि के समान निसर्ग गूढ़—मांस के कारण स्वभाव से छिपे जानु—घुटने हैं जिनके ऐसे ( वर वारण-मत्त—तुल्ल-विक्कम-विलासियगति ) मत्त-गजेन्द्र के समान पराक्रम और विलास युक्त गति वाले ( वरतुरग सुजाय-गुज्झदेसा ) उत्तम घोड़े के समान सुजात गुह्य प्रदेश-मल द्वार-वाले ( आइन्न-हयव्व—निरुवलेवा ) जाति सम्पन्न घोड़ों की तरह जिन के मल द्वार के लेप से रहित होते हैं ( पमुइय वर तुरग—सीह अतिरेग—वट्टियकडी ) प्रमोद युक्त उत्तम घोड़े व सिंह की कमर के समान अधिक गोल कटिभाग वाले ( गंगावत्त दाहिणावत्त-तरंग-भंगुर रवि किरण-बोहिय-विकोसायंत-पम्हगंभीर-वियडनाभी ) गंगा के आवर्त की तरह दक्षिण की ओर घूमती हुई तरंग युक्त सूर्य की किरण से खिले हुए विकास शील कमल के समान, गम्भीर और विकट नाभिवाले ( साहय-सोणंद-मुसल दप्पण-निगरिय-वर—कणग च्छरु सरिस वर वइर—वलियमज्झा ) समेटी हुई त्रिपादिका मुसल, दर्पण—दण्ड युक्त कांच और शुद्ध किये हुए उत्तम सुवर्ण के खड्ग की मूठ तथा उत्तम वज्र की तरह पतला है मध्य भाग जिनका ( उज्जुग—सम सहिय-जच्च-तणु-कसिण-निद्ध आदेज्ज-लडह सूमाल मउय—रोमराई ) सरल—समान रूप से मिले हुए स्वाभाविक पतले काले, चिकने या मनोहर सौभाग्य युक्त सुन्दर एवं अतिशय कोमल और रमणीय रोम राजि वाले ( झस विहग-सुजाय पीण-कुच्छी झसोदरा ) मत्स्य और पक्षी के समान उत्तम रचना युक्त कुक्षि वाले अतएव—झषोदरा-मत्स्य जैसे पेटवाले ( पम्ह वियड नाभा ) कमल की तरह विकट नाभि वाले ( संनयपासा संगयपासा सुंदरपासा सुजायपासा मित माइय-पीण-रइयपासा ) अच्छी तरह नमे हुए मिले हुए सुन्दर और सुजात-उत्तम रचना युक्त परिमित एवं मात्रा से युक्त पीन—पुष्ट से गूढ़ और रमणीय पार्श्व वाले ( अकरंडुय-कणग रुयग—निम्मल—सुजाय निरुवहय देहधारी ) मांस से पुष्ट होने के कारण पृष्ठास्थि रहित एवं सोने की जैसी कान्ति वाले निर्मल सुजात

और रोग रहित देह को धारण करने वाले ( कणग-सिलातल-पसत्थ-समतल-उवइय-विच्छिन्न पिहुल-वच्छा ) सुवर्णमय शिलातल के समान प्रशस्त, समतल-सब जगह बराबर, मासयुक्त और अत्यन्त विस्तीर्ण बडे वक्षस्थल वाले ( जुयसंनिभ-पीण-रइय पीवर-पउट्ठ-संठिय-सुसिलिट्ठ- विसिट्ठ-लट्ठ-सुनिचित- घणथिर-सुबद्ध सधी ) गाडी के जुए के समान पुष्ट, रमणीय और बडे कलाची तथा विशिष्ट स्थान वाली, अच्छी तरह मिली हुई विशिष्ट-मनोहर, अत्यन्तभरी हुई,बहुत प्रदेश के कारण सघन, स्थिर और सुबद्ध-नसों से अच्छी तरह बधी हुई सांधे-हड्डी की जोड है जिनकी ( पुरवर-वरफलिह-वट्टिय भुया ) बडे नगर की श्रेष्ठ परिघा-आगल-के समान गोल भुजा वाले ( भुयईसर-विपुल भोग आयाण-फलिउच्छूढ-दीहबाहू ) बडे सर्प के विस्तीर्ण शरीर के समान रमणीय तथा अपने स्थान से निकाली हुई परिघा के जैसे दीर्घ लम्बी बाहू वाले (रत्ततलोव-तिय-मउय-मंसल-सुजाय-लक्खण-पसत्थ अच्छिद्द जालपाणी ) लाल तल वाले, मास से उपचित-भरे हुए या योग्य, मृदु-कोमल, मासयुक्त, सुजात, प्रशस्त-शुभ-लक्षण वाले और मिली हुई अँगुलिओ के कारण छिद्र रहित हाथ वाले ( पीवर-सुजाय-कोमल-वरगुली ) मास से पुष्ट, सुन्दर और कोमल श्रेष्ठ अँगुली वाले ( तब-तलिण-सुइ-रुइल-निद्धनखा ) ताम्र, पतले, पवित्र, कान्तियुक्त और चिकने नख वाले, ( निद्ध पाणि लेहा, चदपाणि लेहा, सूरपाणिलेहा, सखपाणिलेहा, चक्कपाणिलेहा,) चिकनी रेखा वाले, चन्द्र- सूर्य- शङ्ख और चक्र-की तरह हाथ की रेखा वाले ( दिसा सोवत्थियपाणिलेहा ) दिशा स्वस्तिक जैसी दक्षिणावर्त हस्त रेखा वाले ( रवि-ससि-सख-वरचक्क-दिसासो-वत्थिय विभत्त सुविरइय पाणिलेहा ) सूर्य, चन्द्र, शङ्ख, श्रेष्ठचक्र और दिक्स्वस्तिक के विभागयुक्त अच्छी हस्तरेखा वाले ( वरमहिस-वराह-सीह-सद्दूल-सिंह नागवर पडिपुन्न-विउलखधा ) श्रेष्ठ भैंसा, अच्छा वराह-सूकर,-सिंह,-शार्दूलसिंह, या वृषभ और उत्तम हाथी के जैसे प्रतिपूर्ण और विस्तीर्ण खंधे वाले, ( चउरगुल-सुप्प-माण-कबुवर-सरिसगीवा ) चार अँगुल प्रमाण प्रधान शङ्ख के समान शुभ ग्रीवा वाले ( अवट्ठिय-सुविभत्त-चित्तमसू ) अवस्थित-घट बढ रहित, खूब शुद्ध और विभागवाली शोभा से अद्भुत श्मश्रु-दाढी वाले ( उवचिय-मंसल-पसत्थ-सद्दूल-विपुल-हणुया ) मास से पुष्ट-भरी हुई, प्रशस्त शार्दूलसिंह के समान हणु-चिबुक-दाढो वाले ( ओयवियसिलप्पवाल-बिंबफलसंनिभाधरोट्ठा ) साफ किये हुए,-शिल

प्रवाल-मूंगे तथा बिंबफल के समान लाल नीचे के होठ वाले ( पंडुरससिसकल-विमल-संख-गोखीर-फेण-कुंद-दगरय-मुणालिया-धवल दंत सेढी ) श्वेत चन्द्र खण्ड की तरह निर्मल शंख, गोक्षीर-गौ का दूध, फेन-पानी ऊपर के झाग, कुंद का फूल, पानी के कण, और मृणालिका-पद्मिनी के नाल गत तन्तु के जैसे धवल-स्वच्छ दांत की श्रेणि वाले ( अखंडदंता, अप्फुडियदंता, अविरलदंता, सुणिद्धदंता, सुजायदंता, एगदंतसेढिव्व अणेगदंता ) अखण्ड दांत वाले, बिना फूटे दांत वाले, मिले हुए दांत वाले, खूब चिकने-चमक युक्त दांत वाले, अच्छे बने हुए दांत वाले, अनेक दांत भी जिनके एक दांत की पंक्ति के जैसे हैं ( हुयवह-निद्ध त-धोय-तत्त तवणिज्ज-रत्ततला-तालुजीहा ) अग्नि से जलकर धुल गया है मल जिसका एवं तपनीय लाल सुवर्ण के समान लाल तल युक्त तालु और जीभ वाले, ( गरुलायत-उज्जु-तुंग नासा ) गरुड़ के समान लम्बी, सरल और ऊँची नासिका-नाक वाले, ( अवदालिय पोंडरीयनयणा ) खिले हुए कमल के समान नेत्र वाले ( कोरासिय-धवल-पत्तलच्छा ) विकसित धौल और पद्म युक्त आंख वाले ( आणामिय-चाव-रुइल-किण्हब्भराजि-संठिय-संगयाययसुजायभूमगा ) थोड़े नमे हुए धनुष के समान सुन्दर, काले मेघ की रेखा के आकार वाले, सौम्य, लम्बे तथा सुनिष्पन्न भ्रू हैं जिनके ( अल्लीण-पमाणजुत्तसवणा ) मर्यादा से लीन और प्रमाणयुक्त श्रवण-कान वाले ( सुसवणा ) अच्छे कान वाले ( पीण-मंसल-कवोल-देसभागा ) मोटे, मांस युक्त कपोल भाग-गाल वाले, ( अचिरुग्गय-बालचंद-संठिय-महानिडाला ) तत्काल उदय पाये हुए बाल चन्द्र के समान आकार के बड़े ललाट-भाल-वाले ( उडुवति-पडिपुण्ण-सोमवयणा ) चन्द्र के समान प्रतिपूर्ण व सौम्य मुख वाले, ( छत्तागारुत्तमंगदेसा ) छत्र के समान आकार युक्त उत्तमाङ्ग-मस्तक के भाग वाले ( घण-निचिय-सुबद्ध-लक्खणुण्णय-कूडागारनिभ-पिंडियग्गसिरा ) लोह मुद्गर के जैसे निबिड-ठोस-अच्छी तरह स्नायु से बंधा हुआ लक्षण से ऊँचा और शिखर युक्त भवन के समान गोल पिण्ड सहित मस्तक के अग्रभाग वाले ( हुय वह-निद्ध त-धोतवत्त-तवणिज्ज-रत्त कसंत-केसभूमी ) अग्नि में जलाकर धोये हुए और तपाए हुए तपनीय के समान लाल है केश का अन्त और मस्तक की त्वचा जिनकी एवं ( सामलि-बोड-घण-निचिय-छोडिय-मिउविसय-पसत्थ-सुहुम-लक्खण-सुगंधि-सुन्दरभुयमोयग भिंग-नीलकज्जल-पहट्ठ भमरगण-निद्ध निकुरुंब-

निचिय-कुंचिय-पयाहिणावत्त मुद्धसिरया ) शाल्मली वृक्ष के अत्यन्त निविड और छोटित-मिले हुए, फूल के समान कोमल, विशद-स्पष्ट, प्रशस्त-मङ्गल कारक, सूक्ष्म-चिकने ( पतले ) लक्षण सम्पन्न, सुगन्धि वाले सुन्दर और भुज मोचक रत्न व भृङ्ग भँवरा नील-रत्न, कज्जल और प्रसन्न भँवरों के समूह की तरह स्निग्ध-चिकने समूह रूप से मिले हुए, कुंचित-टेढे नमे हुए और प्रदक्षिणावर्त मस्तक के केशवाले ( सुजाय-सुविभत्त-सगयगा, लक्खण वजण गुणोववेया ) सुजात, सुविभक्त-अच्छी तरह विभागयुक्त और योग्य अङ्ग वाले लक्षण, व्यञ्जन-मशा तिल आदि एवं अन्य गुणों से युक्त हैं ( पसत्थ बत्तीस लक्खण धरा ) उत्तम बत्तीस लक्षणों को धारण करने वाले ( हंसस्सरा, कुंचस्सरा दुंदुहिस्सरा, सीहस्सरा, ओघस्सरा, मेघस्सरा,सुस्सरा ) हंस के जैसे स्वर वाले, क्रौंच पक्षी के समान स्वर वाले, दुंदुभि के जैसे स्वर वाले, सिंह के समान स्वर वाले, अविच्छेद से अभंगस्वर वाले, मेघ जैसे गम्भीर स्वर वाले और सुस्वर-सुन्दर स्वर वाले ( सुस्सर निग्घोसा ) सुस्वर-ध्वनि वाले ( वज्ज-रिसह-नाराय-संघयणा ) वज्र-ऋषभ नाराच-संहनन वाले ( समचउरंस-संठाण-सठिया ) समचतुरस्र सस्थान के आकार वाले ( छाया उज्जोवियगमंगा ) कान्ति से प्रकाशयुक्त अङ्गोपाङ्ग वाले ( पसत्थच्छवी निरातका ) प्रशस्त त्वचा वाले, व रोगरहित ( कंकग्गहणी, कवोत परिणामा ) ककपक्षी के समान नीरोग गुदाशय वाले, कपोत के जैसे आहार की परिणति वाले याने प्रबल पाचन शक्ति वाले ( सगुणि-पोस-पिट्ठ तरोरु परिणया ) पक्षी की तरह मलोत्सर्ग में लेपरहित गुदा वाले, तथा पृष्ठ, पार्श्व और उरु-जघा के योग्य परिणाम वाले ( पउमुप्पलसरिस-गंधुस्सास-सुरभिवयणा ) पद्म-कमल और उत्पल कमल के समान सुगन्धयुक्त श्वास से सुगन्धित मुखवाले ( अणुलोमवाउवेगा ) अनुकूल वायुवेग वाले ( अवदायनिद्धकाला ) गौरवर्ण के समान स्वच्छ स्निग्ध-चिकने श्यामरङ्ग वाले, (विग्गहिय उन्नय कुच्छी ) शरीर के अनुरुप ऊँचे कुक्षि-उदर वाले ( अमयरसफलाहारा ) अमृत के जैसे रसपूर्ण फलों का आहार करने वाले ( तिगा उय समूसिया ) तीन कोशकी उचाई वाले ( तिपलिओवमट्ठितिका ) तीन पल्योपम की स्थिति वाले, ( तिन्निय पलिओवमाइ परमाउ पालयित्ता ) तीन पल्योपम की परमायु को पालकर ( ते वि ) येयुगलिक मनुष्य भी ( अवितत्ता कामाण ) काम भोगो में अतृप्त हुए ( मरण धम्म उवणमति ) मरणधर्म-मृत्यु को प्राप्त करते हैं ।

(*भवंति य ते सिं*) और उनकी स्त्रियां भी (सोम्मा) सौम्य गुणवती (सुजाय-सव्वंग सुंदरीओ) उत्तम रीति से उत्पन्न हुए सर्वांगों से सुन्दर (पहाण महिलागुणेहिंजुत्ता) महिलाओं के प्रधान गुणों से युक्त (होंति) होती हैं, फिर (*अतिकंत-विसप्पमाण-मउय-सुकुमाल-कुम्म संठिय-सिलिट्ठ चलणा*) अत्यन्त मनोहर, चलते हुए भी बहुत कोमल, काछुवे के आकार के सुन्दर पांववाली (उज्जु मउय-पीवर-सुसंहतंगुलीओ) सरल, कोमल, मांसयुक्त और अच्छी तरह अन्तर रहित-अंगुली वाली (अब्भुन्नतरतिय-तलिण-तंब-सुइनखनखा) ऊंचे, सुखदायी, पतले, ताम्रवर्ण के और स्वच्छ तथा चिकने नखवाली (रोमरहिय-वट्ट-संठिय-अज हन्न-पसत्थ-लक्खण अक्कोप्पजंघजुयला) रोमरहित, गोल संस्थान वाली, बहुत शुभ लक्षणों से युक्त और रमणीय जंघा युगल वाली (सुणिम्मियसुनिगूढ जाणू मसलपसत्थ सुबद्ध संधी) अच्छी तरह बने हुए बहुत गूढ़-दृष्टि में नहीं आने योग्य जानु-घुटनों के मांसयुक्त प्रशस्त और नसों से अच्छी तरह बंधी हुई संधि-जोड़वाली (कयली खंभातिरेक संठिय-निव्वण-सुकुमाल-मउय कोमल-अविरल समसहिय-सु जाय-वट्ट-पीवर-निरंतरोरू] कदली के स्तम्भ की उत्तम आकृति युक्त, व्रणरहित अत्यन्त कोमल परस्पर नजदीक में रही हुई, सम-प्रमाणसे बराबर, लक्षणों से युक्त, सुनिष्पन्न, गोल, मांसयुक्त और परस्पर समान ऊरू साथलवाली (अट्ठावय वीइ-पट्ट-संठिय-पसत्थ-विच्छिन्न पिहुल सोणी) अष्टापद-जूआ खेलनेका एक प्रकार का पासा उसकी या तरङ्ग के आकार की रचनावाले पृष्ठ के समान संस्थान वाली शुभ और अत्यन्त विस्तीर्ण श्रोणि-कटि यानि कमर है जिनकी ऐसी' (वयणायामप्प माण-दुगुणिय-विसाल-मंसलसुबद्ध-जहणवर-धारिणीओ) मुख की लम्बाई के प्रमाण से द्विगुण यानि २४ अँगुल की विशाल मांस युक्त और अच्छी तरह बंधे हुए प्रधान जघन कटिके पूर्व भाग वाली (वज्जविराइय-पसत्थलक्खण निरोदरीओ) मध्य में पतली होने से वज्र की तरह विराजमान प्रशस्त लक्षण वाली और कृश उदर वाली हैं (तिवलि-वलिय-तणु नमिय-मज्झियाओ) तीन रेखाओं से बल युक्त कृश और नम हुए मध्य भागवाली (उज्जुयसम-संहिय-जच्च-तणु-कसिण-निद्ध-आदेज्ज-लडह-सुकुमाल-मउय सुविभत्त-रोम राईओ) सरल, समान, लक्षणों से युक्त, स्वभाव से उत्तम सूक्ष्म कृष्ण-काला स्निग्ध-चिकना रमणीय ललित, अत्यन्त कोमल और अच्छी तरह विभागयुक्त रोमराजि वाली (गंगावत्त-पदा

हिणावत्त-तरंग-भग-रवि-किरण-तरुण-बोधित-आकोसायंत-पउम-गभीर वि गडनाभा ) गंगावर्त की तरह प्रदक्षिणावर्त, तरङ्ग के जैसे भङ्गयुक्त, तरुण सूर्य किरणों से प्रबोधित-विकाशयुक्त पद्म के समान गम्भीर तथा विकट नाभि वार (अणुब्भड-पसत्थ-सुजात-पीणकुच्छी) योग्यप्रमाणोपेत, प्रशस्त, सुजात और मांस -कुक्षिवाली (सन्नत पासा, सुजात पासा, संगतपासा, मियमाथिय पीण रतितपास अच्छे बने हुए पार्श्व वाली, सुजात पार्श्व वाली योग्य पार्श्व वाली, परिमित मात्रा मांसल और प्रसन्नता कारक पार्श्व वाली ( अकरंडुय-कणग-रुयग निम्मल-सुजा निरुवहय-गायलट्ठी ) दृष्टि से नहीं आने योग्य पीठ की हड्डी वाले और सुवर्ण च कान्ति के समान निर्मल सुजात तथा रोग रहित गात्रयष्टि-शरीरवाली ( कंच कलस-पमाण-समसहिय-लट्ठ-चु चुय आमेलग-जमल-जुयल-वट्टिय-पओहराओ सुवर्ण कलस के जैसे प्रमाण के, सम, लक्षणयुक्त, मनोहर, स्तन मुख के शिखरयुक्त समश्रेणि में दो गोलाकार पयोधर वाली ( भुयंग-अणुपुव्व-तणुय-गोपुच्छ-वट्टस सहिय-नमिय-आदेज्ज-ललइ बाहा ) सर्प के समान क्रम से नीचे पतले तथा गोपुच्छ के जैसे गोल, समान, लक्षणयुक्त, नमे हुए और रमणीय व शोभायुक्त बाहुवाल ( तंब नहा ) ताम्रवर्ण के नखवाली ( मंसलग्गहत्था ) मांस से उपचित हाथ के अ भाग वाली ( कोमल-पीवर-वरंगुलीया ) कोमल और स्थूल श्रेष्ठ अँगुली वाल ( निद्धपाणिलेहा,ससि-सूर-संख-चक्क-वरसोत्थिय-विभत्त-सविरइय-पाणिलेहा स्निग्ध हाथ की रेखावाली, चन्द्र, सूर्य, शङ्ख, प्रधानचक्र और स्वस्ति की विभागयुक्त अच्छी रचना सहित हाथ मे रेखावाली ( पीणुण्णय-कक्ख वत्थिप्पदेस-पडिपुण्णगल-कवोला ) मांसल, ऊँचे, कांख और बस्तिप्रदेश-गुह्य भा वाली तथा प्रति पूर्ण गला व कपोलवाली ( चउरंगुलसुप्पमाण-कंबुवर-सरिसगीवा चार अँगुल प्रमाण के प्रधान शङ्ख के जैसी ग्रीवा-गर्दन वाली (मंसल-सठिय-पसत्थ हणुया ) मांसयुक्त और योग्य आकार की प्रशस्त हनु-ठोढ़ी वाली ( दालिम-पुप्फ-प्पगास-पीवर-पलंब-कु चित-वराधरा ) दाड़िम के फूल जैसा लाल और बडा कुछ लटकता हुआ तथा थोडा वक्र ऐसे श्रेष्ठ नीचे के होठ वाली, ( सु दरोत्तरोट्ठा ) सुन्द उत्तरोष्ठ-ऊपर के ओंठ वाली ( दधि-दग-रय-कु द-चद-वासति-मउल-अच्छिद्द विमलदसणा ) दही पानी के कण, कुन्द-वासन्ति के फूल, चन्द्र और वासन्ती मुकुल की तरह श्वेत निर्मल और छिद्र रहित दांत वाली ( रत्तुप्पल-पउमपत्त-सुकु-माल-तालुजीहा ) रक्त उत्पल के जैसे लाल और पद्मपत्र की तरह सुकुमाल ताल

व जीभ वाली ( कणवीर-मुकुल-अकुडिल-अब्भुन्नय-उज्जुतुंगनासा ) कनवीर वृक्ष के मुकुल की तरह सीधा आगे में उठा, सरल और ऊँची नासिका वाली ( सारय-नव-कमल-कुमुद कुवलयदल-निगर-सरिस-लक्खण-पसत्थ-अजिम्ह-कंतनयणा ) शरद् ऋतु के सूर्य विकासी नवीन कमल,-कुमुद-चन्द्र विकासी कमल, और कुवलय-नीलोत्पल कमल के पत्र समूह के समान लक्षणों से प्रशस्त तथा कुटिलता रहित मनोहर नयनवाली ( आनामिय-चाप-रुइल-किण्हब्भराइ-संगय-सुजाय-तणु-कसिण-निद्ध भुमगा ) थोड़े से नमाये हुए धनुष की तरह सुन्दर, काले बादल की रेखाओं के समान संगत,-सुजात, पतले, कृष्णवर्ण युक्त और स्निग्ध भृकुटीवाली ( अल्लीण-पमाण जुत्त सवणा मर्यादा से लीन और प्रमाण युक्त श्रवण-कानवाली ( सुस्सवणा ) अच्छे कानवाली ( पीणमट्ठ-गंडलेहा ) पीन-मांसल और शुद्ध कपोल स्थल वाली ( चउरंगुल-विसाल-समणिडाला ) चार अँगुल के विशाल और विषम ता रहित ललाट वाली ( कोमुदि-रयणिकर-विमल-पडिपुन्न-सोमवयणा ) कार्तिक पूर्णिमा के चन्द्र की तरह निर्मल प्रतिपूर्ण और सौम्य मुखवाली ( छत्तुन्नय-उत्तमंगा) छत्र की तरह ऊँचे शिर वाली ( अकविल-सुसिणिद्ध-दीहसिरया ) पीलेपन रहित काले, लम्बे व चिकने केश वाली ( छत्तज्झय-जूय-थूभ-दामिणि-कमंडलु-कलस-वावि-सोत्थिय-पडाग-जव-मच्छ-कुम्भ-रहवर-मकरज्झय- अंक-थाल-अंकुस-अट्ठावय-सुपइट्ठ-अमर सिरियाभिसेय-तोरण-मेइणि उदधिवर-पवरभवण-गिरिवर-वरायंस-सललिय गय-उसभ-सीह चामर पसत्थ बत्तीस लक्खण धरीओ ) छत्र १ ध्वज २ यूप ३ स्तूप ४ दामिनी-माला विशेष ५ कमण्डलु ६ कलश ७ वापी ८ स्वस्तिक ९ पताका १० यव ११ मत्स्य १२ कूर्म १३ प्रधान रथ १४ कामदेव १५ अंक १६ स्थाल १७ अंकुश १८ अष्टापद १९ सुप्रतिष्ठक थाल रखने की तिपाई स्थापना २० अमर-देवता मयूर २१ लक्ष्मी का अभिषेक २२ तोरण २३ पृथ्वी २४ उदधि-समुद्र २५ श्रेष्ठ भवनों का प्रधान भवन २६ प्रधानगिरि २७ उत्तम दर्पण २८ और लीलायुक्त गज २९ वृषभ-बैल ३० सिंह ३१ तथा चामर ३२ इन उत्तम बत्तीस लक्षणों को धारण करने वाली ( हंससरिच्छगईओ ) हंस के समान गति वाली (कोइलमहुर गिराओ) कोकिल के समान मधुर वाणी वाली ( कंता सव्वस्स अणुमयाओ ) कान्त और सब लोक के लिए अभिमत चाहने योग्य हुई होती हैं ( ववगय-वलि पलिय वंग दुव्वण्ण वाहिदोहग्ग सोगमुक्काओ वलि-झुर्रियां के सिकुड़न तथा पलित सुफेद के

अनुकूल केश पकना आदि विरूपता से रहित, तथा दुर्वर्ण-खराब रंग, व्याधि, दुर्भाग्य और शोक से मुक्त रहने वाली उच्चत्तेण्य नराण थोवूण मूसियाओ ) और ऊँचाई में पुरुषों से कुछ कम ऊँची होती है। सिंगारागार-चारुवेसाओ ) शृङ्गार के घर के समान सुन्दर वेषवाली ( सुन्दर-थण-जहण-वयण-कर-चरण-नयणा ) सुन्दर स्तन, जघन, मुख, तथा हाथ पैर व आंखवाली ( लावण्ण रूव जोव्वण गुणोववेया ) लावण्य, सौन्दर्य, व यौवन तथा अङ्गना समुचित गुणों से शोभित रहने वाली ( नंदण-वण विवर-चारिणीओव्व अच्छराओ उत्तरकुरु-माणुसच्छराओ ) नन्दन वन की कन्दराओं में विहार करने वाली अप्सराओं की जैसी वे उत्तर कुरु प्रदेश की मनुष्य अप्सरायें ( अच्छेरगपेच्छणिज्जियाओ ) जो आश्चर्य के साथ देखने योग्य हैं ( तिन्निय पलिओवमाइं परमाउं पालयित्ता ) तीन पल्योपम जितनी परम आयु को पालकर ( ताओऽवि ) ऐसी पूर्व कही गई वे अप्स-रायें भी ( कामाण-अवितत्ता ) कामों के विषय से तृप्त नहीं होती हुई ( मरणधम्मं उवणमंति ) मरण धर्म को प्राप्त करती हैं ॥ ५ ॥ १५ ॥

भावार्थ-"इस मैथुनके मोह से व्याकुल हुए अप्सरा सहित देवगण इसका सेवन करते हैं। वे देव इस प्रकारके हैं-असुरकुमार आदि दश भवन पतिदेव, अण पन्निक, पण पन्निक और पिशाच आदि सोलह जाति के व्यन्तर देव। तिरछे लोक मे रहने वाले ज्योतिष्क देव और ऊर्ध्वलोक के विमानवासी देव, ये सब देवगण तथा मनुष्य व जलचर आदि पशुगण, काम भोग की तृषा वाले बड़ी इच्छा से व्याकुल और इसी मे आसक्त बने हुए जीवगण विषय का सेवन करते हैं। ऐसी तामसी भावना के कारण ये सब अपनी आत्मा के लिये दर्शन मोह और चारित्र मोह का पिंजरा सा बना लेते हैं। विशेष रूप से मर्त्यलोक के काम प्रधान नर नारियों का परिचय देते है-"चक्रवर्ती-देव, दानव तथा साधारण मनुष्यों के भोग में रति का अनुभव करने वाले, देव लोक में इन्द्र की तरह नरेन्द्र और देवेन्द्र से सत्कार पाने वाले हैं। भरतक्षेत्र के हजारो ग्राम नगर आदि क्षेत्रों में सागर पर्यन्त छ: खण्ड से विभक्त ऐसी पृथ्वी के राज्य को भोगकर वे भी काम भोग में अतृप्त हुए मरते हैं, जो सूर्य चन्द्र आदि अनेक उत्तम लक्षणों को धारण करने वाले, बत्तीस हजार राजाओं से घिरे हुए और ६४ चौंसठ हजार प्रधान स्त्रियों के स्वामी हैं। रूप लावण्य और कान्ति से सर्वाङ्ग सुन्दर तथा वस्त्रालङ्कारों से सुशोभित होते हैं। शब्द भी उनके

मधुर गम्भीर होते हैं १४ रत्न और ९ निधान इनकी सन्निधि में रहते हैं। १४ रत्नों के नाम-१ सेनापति रूपरत्न, २ गाथापतिरत्न, ३ पुरोहितरत्न, ४ अश्वरत्न, ५ वर्द्ध की रत्न, ६ गजरत्न, ७ स्त्री रत्न, रूप सात प्राणिरत्न, सात प्राणिभिन्न रत्न जैसे ८ चक्ररत्न, ९ छत्र रत्न १० चर्मरत्न, ११ मणिरत्न, १२ काकणिरत्न, १३ खड्गरत्न, और १४ दण्ड रत्न ये एकेन्द्रियरत्न होते हैं। हाथी घोड़े रथ और पदाति रूप चार प्रकार की सेनाओं के स्वामी, वंशमुकुट व विस्तीर्ण कीर्ति वाले वे समस्त भारत भूमि के साथ पूर्वकृत सुकृत से प्राप्त सुखों को सैकड़ों वर्षों तक भोगते हैं, सैकड़ों वर्षों तक उत्तम स्त्रियों के साथ विलास करते हुए भी धन शब्द स्पर्शादि सुखों से बिना तृप्ति के ही वे मरण प्राप्तकर जाते हैं। ऐसे बलदेव वासुदेव आदि महापुरुष भी जो अतिशय बल सम्पन्न, धनुर्धारी तथा दुर्द्धर व शक्ति के सागर होते हैं। वर्तमान के बलदेव वासुदेव का वर्णन करते हैं-"राम केशव कहाने वाले बलदेव वासुदेव रूप दोनों भाई परिषद् युक्त तथा वसुदेव समुद्र विजय आदि दश दशारों के या प्यारे हैं ( थ ) जनक यादव व प्रद्युम्न कुमार, शांबकुमार आदि साढे तीन कोटि कुमारों के हृदय वल्लभ थे। बलदेव की माता रोहिणी और वासुदेव-कृष्ण की माता देवकी के हृदय को प्रसन्न करने वाले थे। सोलह हजार राजा जिनके पीछे चलते थे। और जिनकी सोलह हजार रानियां थीं। मणि, रत्न, और सुवर्ण आदि धन धान्य से इनके भण्डार पूर्ण-भरे रहते, तथा हजारों हाथी घोड़े और रथों के ये अधिपति थे। ग्राम नगर आदि हजारों बसतियों से युक्त एवं पर्वतादि से मनोरम दक्षिण भरतार्द्ध के शासन करने वाले थे। ये घोरयशस्वी अतिशय शक्तिशाली और हजारों शत्रुओं के मान मथन करने वाले, तथा परम दयालु थे। मत्सर भाव रहित-स्थिर प्रकृति वाले व शान्त तथा मित मधुर भाषी थे। इनका हास्य गम्भीर होता था। शरणागत वत्सल एवं लक्षण व्यञ्जन और गुणों से युक्त थे। यावत् दर्शनीय थे ताल वृक्ष और गरुड़ की क्रमशः वालों की ध्वजायें थीं। अत्यन्त अहंकारी मौष्टिक और चाणूर नामक मल्ल के-मान प्राय मर्दन करने वाले अरिष्ट नामक बैल का दमन करने वाले केशी नामक दुष्ट अश्व और दुष्ट ( काली ) नाग का मथन करने वाले हैं। मारने के अभिप्राय से वृक्ष रूप बने हुए दो विद्याधरों का कृष्ण ने मारा किया अतएव ये यमलार्जुन भंजक कहाते हैं। महा शकुनि और पूतना नामक विद्याधरियों के शत्रु, कंस के मुकुट गिराने वाले

और जरासंध के मानका मथन करने वाले हैं, अनेक विशेषणयुक्त छत्र तथा हंस जोड़े के जैसे समुज्ज्वल चामर से विराजमान थे। हल मूशल बाण रूप अस्त्रधारी बलराम थे, और पाञ्चजन्य नामक शङ्ख, सुदर्शन नामक चक्र और कौमोद की नामक गदा एवं शक्ति व नन्दक नामक खङ्ग को धारण करने वाले श्रीकृष्ण थे। शरीर शोभा के अलङ्करणों का वर्णन सहज है। अत. अन्वयार्थ से समझे। यावत् द्वारवती नगरी के लिये पूर्णचन्द्र के जैसे विराजमान वे वलदेव वासुदेव भी कामोपभोग में अतृप्त ही चले गये। ऐसे माण्डलिक राजा भी बल, वाहन, सभा, अन्तःपुर-स्त्री वर्ग खजाना और विस्तीर्ण राज्य लक्ष्मी को अत्यधिक भोगकर बलवीर्य से मदोद्धत दूसरे को बुरा कहते हुए कामोपभोग मे अतृप्त ही ससार से चल वसे। इसी प्रकार देवकुरु, उत्तरकुरु आदि क्षेत्रों के युगलिक मनुष्य, जो भोग प्रधान जीवन वाले हैं, अन्य विशेषण तथा नख शिख पूर्ण शरीराकृति का वर्णन सहज होने से अन्वयार्थ पर से ही समझे। यावत् सुजात अच्छी तरह विभागयुक्त और उत्तम शरीर वाले होते हैं। लक्षण आदि से युक्त, ३२ लक्षणों के धारक और हस आदि के समान गम्भीर व मधुर स्वर वाले होते हैं। उनकी शारीरिक रचना सर्व श्रेष्ठ होती है। उनके शरीर कान्तियुक्त तथा रुजा रहित होते हैं। मलस्थान भी उनके पक्षिवत् मल लेप रहित एव निर्मल होते है। उनकी जाठराग्नि कबूतर सी प्रदीप्त रहती है (शेष सुगम है)। वे भी काम भोगों मे अतृप्त ही ससार से विदा होते है। इनकी स्त्रियाँ भी सौम्या व सर्वाङ्गसुन्दरियाँ तथा प्रधान स्त्री गुणो से शोभा युक्त होती हैं। इनका भी नख शिख वर्णन युगलिक पुरुषो के समान है, अतएव अन्वयार्थ से ही समझ लेवे। छत्र ध्वज आदि ३२ लक्षणों को धारण करने वाली, हस जैसी गति वाली और कोकिला के समान मधुर स्वरवाली, अनिन्द्य सुन्दरी और सभी के लिये प्रिय दर्शना होती हैं। यावत् नन्दनवन विहारिणी अप्सराओं के समान उत्तरकुरु आदि क्षेत्रों की ये, मनुष्याप्सरायें होती हैं। तीन पल्य के उत्कृष्ट आयु को भोगकर भोगों में अतृप्त ही ये भी ससार से चल वसती हैं। सू० ४। १५॥

अब मैथुन जिस प्रकार सेवन किया जाता और जो फल देता है इसको साथ ही कहते हैं-"

मूल-"मेहुणसन्नासंपगिद्धा य मोहभरिया, सत्थेहिं हणंति एक्कमेक्कं विसयविसउदीरएसु, अवरे परदारेहिं हम्मंति, विसुणिया धणनासं सयण-

विप्पणासं च पाउणंति, परस्सदाराओ जे अविरया, मेहुणसन्न संपगिद्धा य मोहभरिया अस्सा हत्थी गवा य महिसा, मिगा य मारेंति एक्केक्कं। मणुयगणा वानरा य पक्खीय विरुज्झंति, मित्ताणि खिप्प भवंति सत्तू, समये धम्मेगणे य भिंदंति पारदारी। धम्मगुणरया य बंभयारी, खणेण उब्भट्ठए चरित्ताओ। जसमंतो सुव्वया य पावेंति अयसकित्ति। रोगत्ता वाहिया पविड्ढिंति रोयवाही। दुवे य लोया दुआराहगा भवंति–इह लोए चेव परलोए, परस्सदाराओ जे अविरया। तहेव केइ परस्सदारं गवेसमाणा, गहिया हया य बद्धरुद्धा य एवं जाव गच्छंति विपुलमोहाभिभूयसन्ना।

छाया–"मैथुन संज्ञा संप्रगृद्धाश्च मोहभरिताः, शस्त्रैर्घ्नन्ति–एकैकं, विषय-विषे-उदीरकेषु, केचनाऽपरे परदारेष्वहन्यन्ते, विधुता धननाशं, स्वजन-विप्रणाशञ्च प्राप्नुवन्ति, परस्य दारेभ्यो येऽविरता', मैथुनसंज्ञासम्प्रगृद्धाश्च मोहभृता–अश्वा, हस्तिनो गावश्च, महिषा मृगाश्च मारयन्ति, परस्परमेकैकं,–मनुजगणा वानराश्च पक्षिणश्च विरुन्धन्ति, मित्राणि क्षिप्रं भवन्ति शत्रवः, समयान् धर्मान् गणांश्च भिन्दन्ति पारदारिका', धर्मगुणरताश्च ब्रह्मचारिणः क्षणेन परावर्तन्ते च चरित्रात्–,यशस्विन' सुव्रताश्च प्राप्नुवन्ति–अयशस्कीर्तिम्, रोगार्ता व्याधिता' प्रवर्धयन्ते रोगव्याधीन, द्वयोर्लोकयोदुराराधका भवन्ति (द्वौलोकौ दुराराध्यौ भवत'), इह लोके चैव पर लोके चैव, परस्य दारेभ्यो येऽविरताः, तथैव केऽपि परस्य दारान्गवेषयन्तो गृहीता हताश्च बद्धरुद्धाश्च। एवं यावद्गच्छन्ति विपुल मोहाभिभूतसंज्ञा।

अन्वयार्थ–(मेहुणसन्ना–संपगिद्धा य मोहभरिया) फिर मैथुन संज्ञा में आसक्त जीव अज्ञान या काम के भरे हुए (एक्कमेक्कं सत्थेहिं हणंति) एक दूसरे को शस्त्रों से मारते हैं, (विसयविस उदीरएसु) विषय रूप विष के प्रवर्तकों में (अवरे) दूसरे–कई (परदारेहिं हम्मंति) पर स्त्री के साथ गमन करते हुए मारे जाते हैं (विसुणिया) क्रमशः से प्रसिद्धि पाये हुए (धणनास सयण विप्पणासं च पाउणंति) धन के नाश और स्वजनवियोग को प्राप्त करते हैं, (परस्स दाराओ जे अविरया) पर स्त्री के गमन से जो अविरत होते हैं। (मेहुणसन्नासंपगिद्धा य मोह भरिया) और मैथुन संज्ञा मे आसक्त और मोह से भरे हुए (अस्सा, हत्थी गवा य महिसा मिगा य मारेंति एक्कमेक्कं) घोड़, हाथी और बैल भैंस और मृग एक दूसरे को मारते रहते हैं (मणुय गणा वानरा य) मनुष्य समूह और वानर (पक्खीय

विरुज्झति ) और पक्षी परस्पर लड़ते हैं, ( मित्ताणि खिप्पं भवंति सत्तू ) मैथुन कर्म से मित्र शीघ्र ही शत्रु हो जाते हैं ( समये धम्मेगणे य भिदंति पारदारी ) समय-सिद्धान्त के अर्थ, धर्म और गणों जाति मर्यादा को परदार लम्पट भङ्ग करते याने सदोष करते हैं, ( धम्मगुण रया य बंभयारी खणेण उल्लोट्टए चरित्ताओ ) और धर्म गुण में रक्त करने वाले ब्रह्मचारी क्षण भरमें चारित्र से लौट पड़ते हैं, ( जसमंतो सुव्वयाय) कीर्तिमान् और सुव्रती भी ( पावेंति अयसकित्ति ) अयश-अकीर्ति को पाते हैं ( रोगत्ता वाहिया ) ज्वर आदि के रोगी तथा कुष्ठ आदि व्याधि से ग्रस्त ( रोयवाही पवड्ढति ) अपने रोग व व्याधि को बढ़ाते हैं ( दुवे य लोया दुआराहगा भवंति ) और दोनो लोक कठिन से आराधने योग्य ( वाले ) होते हैं जैसे-( इह लोए चेव परलोए ) इस लोक और ऐसे परलोक-दोनों का आराधन उनको कठिन होता है ( परस्स दाराओ जे अविरया ) जो परस्त्री से विरत नहीं होते हैं, ( तहेव केइ परस्स दारं गवेसमाणा ) इसी प्रकार कई पर स्त्री की गवेषणा-खोज करते हुए-( गहिया, हया य बद्धरुद्धा य ) पकड़े गये और मारे गये तथा बांधकर रोके गये हैं ( एवं जाव गच्छति विपुल मोहाभिभूयसन्ना ) इस प्रकार यावत् विस्तीर्ण मोहसे दबे हुए ज्ञान वाले 'नरक में' जाते हैं।

मू०-"मेहुणमूलं च सुव्वए तत्थ तत्थ वत्तपुव्वा संगामा जणक्खयकरा,-सीयाए दोवईए कए, रुप्पिणीए, पउमावईए, ताराए, कंचणाए, रत्तसुभद्दाए, अहिल्लियाए, सुवन्नगुलियाए, किन्नरीए, सुरूवविज्जुमतीए, रोहणीए य । अन्नेसु य एवमादिएसु बहवो महिलाकएसु सुव्वंति अइक्कंता संगामा, गामधम्ममूला इहलोए ताव नट्ठा परलोए वियनट्ठा, महया मोह तिमिसंधकारे घोरे तसथावर सुहुमबादरेसु पज्जत्तमपज्जत्त साहारणसरीर पत्तेयसरीरेसु य, अंडज-पोतज-जराउय-रसज-संसेइम-समुच्छिम-उब्भिय-उववादिएसु य नरग-तिरिय-देव-माणुसेसु, जरा-मरण-रोग-सोग-बहुले, पलिओवम सागरोवमाई अणादीयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंत संसार कंतारं अणुपरियट्टंति जीवा मोहवससन्निविट्ठा । एसोसो अबंभस्स फल विवागो इहलोइओ पारलोइओ य अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ बहुरयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ वास सहस्सेहिं मुचती, न य अवेदयित्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति , एवमाहंसु नायकुलनंदणो महप्पा जिणोउ वीरवरनामधेज्जो,

काएसीय अम्मस्स फलविवागं, एवंते अबंभंपि चउत्थं सदेव मणुयासुरस्स लागस्स पत्थणिज्जं, एवं चिरपरिचियमणुगयंदुरंतं, चउत्थं अधम्मदारं समत्तं त्तिबेमि ॥ ४ ॥ सूत्र ६ । १६ ॥

छाया–"मैथुन मूलं च श्रूयन्ते तत्र तत्र पूर्वस्मिं समामा जनक्षयकराः, सीतायां द्रौपद्या कृते, रुक्मिण्याः, पद्मावत्यास्ताराया:, काञ्चनाया, रक्त सुभद्राया, अहि-ल्याया', सुवर्णगुलिकाया', किन्नर्या , सुरूपविद्युन्मत्या, रोहिण्याश्च । अन्यासु चैव महिषु बहवामहिलाकृतेषु श्रूयन्तेऽतिक्रान्ता' संग्रामा ग्रामधर्ममूला' ।

इह लोके तावन्नष्टा ,परलोकेऽपिनष्टा,महति मोहतमिस्रान्धकारे घोरे त्रसस्थावर सूक्ष्मबादरेषु पर्याप्तऽपर्याप्त-साधारण-शरीर प्रत्येकशरीरेषु च अण्डज-पोतज-जरायुज रसज-संस्वेदिम-संमूर्छिमोद्भिज्जौपपातिकेषु च, नरक तिर्यग्देव मनुष्येषु, जरा मरण रोग शोक बहुले, पल्योपम सागरोपमानि अनादिकमनवदग्रं दीर्घमध्वानं चतुरन्त संसारकान्तारमनुपरिवर्तन्ते जीवा मोहवश संनिविष्टा । एषस अब्रह्मणः फल विपाक ऐहलौकिक पारलौकिकश्चाल्पसुखो बहुदुःखो, महाभयो बहुरजः प्रगाढो दारुणः , कर्कशोऽसातो वर्षसहस्रैर्मुच्यते, न च अवेदयित्वा अस्तिमोक्ष इति, एवमा-ख्यातवान् ज्ञातकुलनन्दनो महात्मा 'जिनस्तु वीरवरनामधेय', कथितवांश्च अब्रह्मणः फलविपाकम् एतच्चतुर्थमपि चतुर्थं सदेवमनुजासुरस्य लोकस्य प्रार्थनीयम् एवं चिरपरिचितमनुगतं दुरन्तं । चतुर्थमधर्मद्वारं समाप्तमिति ब्रवीमि ॥ ४ ॥ ६ । १६ ॥

अन्व०–"( मेहुणमूलंच ) और मैथुन मूलक (तत्थतत्थ वत्त पुव्वासंगामा सुव्वए) उन शास्त्रों में पहले हुएभये संग्राम सुने जाते हैं ( जणक्खयकरा ) जो युद्ध नर संहार करने वाले हैं , जैसे–( सीयाए, दोवईएकए ) सीता और द्रौपदी के लिये–राम रावणका और पद्मनाभ व पाण्डवों का युद्ध हुआ ( रुप्पिणीए ) रुक्मिणी के लिये कृष्ण और शिशुपालका युद्ध हुआ ( पउमावईए ) पद्मावती के लिये–कृष्ण का अनेक राजाओंसे युद्ध हुआ ( ताराए ) तारा के वास्ते–साहसगति व सुग्रीव का युद्ध हुआ ( कंचणाए ) कञ्चना के लिये युद्ध हुआ (रत्तसुभद्दाए ) रक्तसुभद्रा के लिये कृष्ण और अर्जुन का युद्ध ( अहिल्लियाए ) अहल्या या अहिल्लिका के लिये हुआ अप्रसिद्ध युद्ध ( सुवण्णगुलियाए ) सुवर्णगुलिका के लिये उदायन और चण्डप्रद्योतन का युद्ध (किन्नरीए ) किन्नरी और ( सुरूवविज्जुमतीए ) सुरूपविद्युन्मती के लिये ( रोहि-

णीए य ) और रोहिणी के लिये वसुदेवका युद्ध ( अन्नेसु य एवमादिएसु ) अ
इत्यादि अन्य ( बहवो ) बहुत से ( महिलाकएसु ) स्त्रियों के प्रयोजनसे ( अब्भ
संगामा सुव्वंति ) सुत पूर्व संग्राम सुने जाते हैं, ( गामधम्ममूला ) जिनका विषः
भोगही मूल कारण है, विषय सेवन करने वाले-( इहलोएताव नट्ठा ) इस लोक मे
अकीर्तिके कारण नष्ट होते हैं ( परलोए वियणट्ठा ) और परलोक में भी नष्ट होते
(महया मोह तिमिसंधकारे) महामोहरूप अत्यन्त अन्धकार वाले (घोरे)घोर-परलो
(तसथावर सुहुमबादरेसु) त्रस स्थावर तथा सूक्ष्म और बादर नाम कर्मवाले (पज्जत्त
पज्जत्त साहारणसरीर पत्तेय सरीरेसु य) और पर्याप्त व अपर्याप्त तथा साधारण शरी
नाम कर्मवाले और प्रत्येक शरीरीपन मे ( अंडज-पोतज-जराउय-रसज-संसे
समुच्छिम उब्भिय -उववाइएसुय ) अण्डज, पोतज, जरायुज क्रमसे अण्डा से पै
होने वाला अण्डज- पक्षी, पोतज हाथी आदि और जड़ के साथ उत्पन्न होने व
जरायुज, रसमें पैदा होने वाले रसज, स्वेद-पसीने से पैदा होने वाले संस्वेदिम, वि
गर्भ के उत्पन होने वाले समूर्च्छिम , और भूमि को फोड़कर पैदा होने वाले उद्भि
तथा उपपात-एकाएक अन्यस्थानसे दूसरेस्थान में जाने वाले सहसाशय्या में पै
होने वाले जीव औपपातिक-देव तथा नारक आदि, इन जीवों को संक्षेपमें कहें
( नरग-तिरिय-देव-माणुसेसु ) नरक, तिर्यञ्च, देव और मनुष्य रूप योनि
ओंमें 'पर्यटन करते हुए जीव,' ( जरा मरण रोग सोग बहुले ) जरा मरण, रो
और शोक की प्रधानता वाले 'संसार में' नष्ट होते हैं, ( पलिओवम-सागरोवमाइं
अनेक पल्योपम व सागरोपम तक ( मोहवस संनिविट्ठा जीवा ) मोहके कारण ब्र
ह्मके सेवन में लगे हुए जीव ( अणादीयं अणवदग्ग ) आदि अन्त रहित-और ( दी
मद्धचाउरंत संसार कंतार ) दीर्घ-लम्बे मार्गवाले-चार गतिओं से युक्त इस संस
रूप अटवी मे ( अणुपरियट्टंति ) भटकते रहते हैं ।

उपसंहार-"( एसोसो अबंभस्स फलविवागो ) इस प्रकार यह अब्रह्म सेवन क
फलरूप विपाक-आखीरी परिणाम ( इहलोइओ पारलोइओ य ) इस लोक सम्बन्ध
और परलोक सम्बन्धी ( अप्पसुहो बहुदुक्खो महब्भओ ) अल्प सुख वाला, बह
दु खवाला-तथा महाभयङ्कर है, ( बहुरयप्पगाढो, दारुणो, कक्कसो, असाओ
कर्मरज की अधिकता से प्रगाढ, भयङ्कर और कठोर, असाता रूप है ( वाससहस्से
मुच्चती ) हजारो वर्षों से छूटता है ( न य अवेदयित्ता अत्थिहुमोक्खोति ) बिना

इस कर्म विपाक से मोक्ष-छुटकारा-नहीं होता है, (एवमाहंसु नायकुल नन्दनो महप्पा) ज्ञातकुल नन्दन महात्माने इसप्रकार कहा है, (जिणोउ वीरवर नाम धेज्जो) महावीर नामके जिनेन्द्र ने (कहेसीय अबभस्स फलविवाग) और अब्रह्म के फलविपाकको कहा है (इंगे) (ए यं तं अबंभंपिचउत्थं) यह अब्रह्म नामक वह चौथा अधर्मद्वार भी हुआ, (सदेवमणुआसुरस्स लोगरस पत्थणिज्जं, एवं चिरपरि-चियमणुगम दुरत चउत्थं अधम्मद्वारं समत्तं त्तिबेमि) जो देव, मनुष्य और असुर सहित लोक-संसार का प्रार्थनीय है, इस प्रकार यावत् अधिक कालका परिचित, साथी और दुःख से अन्तवाला है। ऐसा चौथा अधर्मद्वार समाप्त हुआ, ऐसा मैं कहता हूँ। सू० ६। १६।

भावार्थ-"इस सूत्र में बताया गया है कि मैथुन संज्ञा के वशीभूत जीव एक दूसरे को मारते हैं। कई जीव विषय के व्यासङ्ग में लग्न हुए मारे जाते हैं। कुकर्म से प्रकाशित हुए कई धन जन व प्राणों की क्षति उठाते है। मैथुन से निवृत्त नहीं होने वालों की यह दशा है। विषय में आसक्त हुए मद घोड़े, हाथी आदि पशु परस्पर-एक दूसरे को मारते हैं और नर, वानर पक्षी भी इस कारण से लड़ते हैं। मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। और दुराचारी लोग सम्प्रदाय सिद्धान्त एवं धर्ममर्यादा को भी भंग करते हैं। इस कुब्रह्मस्य के उपासक लोग सदाचारी रहकर भ्रष्ट नीचे गिरजाते हैं। और कीर्तिमान् भी अकीर्तियुक्त हो जाते हैं। इस व्यभिचार से जीव रोगी बनते और फिर उस रोग को बढ़ाते रहते हैं। संक्षेप में कहना चाहिए कि दुराचारियों के लिये दोनों लोक दुराराध्य-अर्थात् विफल हो जाते हैं। क्योंकि इस लोक में पकड़े जाने पर वध बन्धन आदि दुःख सहने पड़ते हैं और परलोक में भी नरकगामी बनते हैं। इस मैथुन के पछाड़े गत काल में कई जनसंहारी समाम हुए हैं, जिनका विशदवर्णन शास्त्रों में सुन पड़ता है। जैसे-सीता के लिये राम रावण का, द्रौपदी के लिये कौरव पाण्डवों का, तथा तारा के लिये बृहस्पति व सुग्रीव का, इत्यादि सैकड़ों युद्ध प्रसिद्ध हैं। विषयी लोग-उभयलोक को अपने हाथ से नष्ट करते हैं। आजीवन त्रसस्थावर पर्यायों में भटकते हुए चतुर्गतिक संसार में पल्योपम सागरोपम कालतक पर्यटन करते रहते हैं। उपसंहार स्पष्ट ही है। सू० ६। १६।

# अथ "पञ्चम आस्रव" प्रारम्यते

सम्बन्ध-"पूर्व अध्ययन में अब्रह्म का स्वरूप कहा गया, वह परिग्रह के होने पर ही होता है, इसलिये इस अध्ययन में परिग्रह को पांच द्वारों से कहेंगे,-प्रथम परिग्रह का स्वरूप बताते हुए श्री सुधर्म स्वामी महाराज फरमाते हैं-

मूल-"जंबू ! इत्तो परिग्गहो पंचमो उ नियमा णाणामणि-रयण-कणग-महरिह-परिमल-सपुत्त-दार-परिजण-दासीदास-भयग-पेस-हय-गय-गोमहिस-उट्ट-खर-अय-गवेलग-सीया-सगड-रह-जाण जुग्ग-संदण-सयणासण-वाहण-कुविय-धणधन्न-पाण-भोयणाच्छायण-गंध-मल्ल-भायण भवण विहिं चेव बहुविहीयं, भरहं णग-णगर-णियम-जणवय-पुरवर-दोणमुह-खेड-कब्बड-मडंब-संबाह-पट्टणसहस्स परिमंडियं, थिमियमेइणीयं, एगच्छत्तं ससागरं भुंजिऊण वसुहं, अपरिमिय मणंत तण्ह-मणुगय-महिच्छसार-निरयमूलो, लोभकलिकसाय-महक्खंधो, चिंतासय निचिय विउलसालो, गारव पविरल्लियग्ग विडवो, नियडि तया पत्त पल्लव धरो, पुप्फफलं जस्स कामभोगा, आयास विसूरणा, कलह पंकपियग्ग सिहरो, नरवतिसंपूजितो, बहुजणस्स हियय दइओ इमस्स मोक्खवर-मोत्ति मग्गस्स-फलिहभूओ चरिमं अहम्मदारं । १ । १७ ।

छाया-"हेजम्बू ! इत. परिग्रह पञ्चमस्तु नियमात्-नाना-मणि-कनक रत्न-महार्ह-परिमल-सपुत्रदार-परिजन-दासीदास-भृतक-प्रेष्य-हय गज गो-महिषोष्ट्र-खराऽज-गवेलक-शिबिका-शकट-रथ यान-युग्य-स्यन्दन शयनाऽऽसन-वाहन-कुप्य-धन धान्य पान-भोजनाच्छादनगन्धमाल्य भवनविधिम्, चैवं बहुविध, भारत [नाम] नग-नगर-निगम-जनपद-पुरवर-द्रोणमुख-खेट-कर्वट-मडम्ब-सम्बाह-पट्टणसहस्रपरिमण्डितम्, स्तिमित मेदिनीकमेकच्छत्रं ससागरं भुक्त्वा

वसुधामपरिमिताऽनन्ततण्हाणुगत-महेच्छासार निरयमूला, लोभ कलिकषाय महास्कन्ध, चिन्ताऽऽयास निचित विपुलशालो, गौरवपल्लवितान विटपा, निकृति त्वचा पत्र पल्लव धर, पुष्पफलं, यस्य काम भोगा:, आयास विसूरणा कलह प्रकम्पि ताऽऽग्रशिरा, नरपतिसम्पूजितो बहुजनस्य हृदयदयित। अस्य मोक्षवर मुक्ति मार्गस्य परिघो भूत ( त ) चरममधर्मद्वारम्। सूत्र १। १७॥

अन्वय०-"( जंबू ! इत्तो ) हे जम्बू ! इस चौथे आस्रव के बाद ( परिग्गहो पंचमो य ) परिग्रह-पांचवां आस्रव ( नियमा ) निश्चय से होता है, यह कैसा है ?-( णा णामणि-कणग-रयण-महरिह-परिमल-सपुत्तदार-परिजण-दासीदास-भयग-पेस-हय-गय-गो-महिस-उट्ट-खर-अय-गवेलग- सीया-सगड-रह-जाण-जुग्ग-संदण-सयणासण-वाहण-कुविय-धण धन्न-पाण भोयणाच्छायण-गंधमल्ल-भायण-भवण विहिं चेव बहुविहीयं ) अनेक प्रकार के मणि, कनक-सोना, रत्न-कर्केतन आदि, बेशकीमती सुगन्धि द्रव्य पुत्र और स्त्री सहित परिवार, दासीदास और काम करने वाले भृतक, तथा खास काम पर भेजने योग्य-प्रेष्य, घोड़े, हाथी, गाय, भैंस, ऊंट, गधा, बकरे की जाति और गवेलक व शिविका-पालकी, शकट-गाड़ी तथा रथ, यान व युग्य-वाहन विशेष तथा स्यन्दन-क्रीडारथ, शयन, आसन और वाहन व कुप्य-घर के उपयोगी सामान, धन, धान्य, भक्ष्य खाने के पदार्थ और पेय, आच्छा दन-शरीर ढकने का वस्त्र, गंध-कपूर आदि, माल्य-पुष्पमाला, भाजन और भवन के अनेक प्रकार के विधान को ( णग-णगर-निगम-जणवय-पुरवर-दोणमुह-खेड कब्बड मडंब-संवाह-पट्टण-सहस्स परिमंडियं ) तथा नग-पर्वत, नगर-शहर, निगम-वणिग् लोगों का निवास स्थान-मण्डी, जनपद-देश, पुरवर-प्रधान शहर, द्रोणमुख-जलमार्ग और स्थलमार्ग दोनों से जाते योग्य नगर, खेड कर्बट, मडम्ब, संवाह और हजारों पत्तनों से मंडित ( भरहं ) भरत क्षेत्र को ( थिमिय मेइणीयं ) निर्भयजनयुक्त मेदिनी वाली ( ससागरं भुत्तूं ) समुद्र सहित पृथ्वी को ( एगच्छत्त ) एकच्छत्र-अखंड राज्य से ( भुंजिऊण ) भोगकर, अब परिग्रह का वृक्षरूप से वर्णन करते हैं-( अपरिमिय मणंततण्ह मणुगय महिच्छसार-निरयमूलो ) अपरिमित अनन्त तृष्णा के साथ रहने वाली बड़ी इच्छा ही अक्षय्य और अशुभफल वाले जिसके मूल हैं, ( लोभ-कलि-कसाय-महक्खंधो ) लोभ, कलि-कलह, और कषाय-क्रोध मान आदि रूप महास्कन्ध वाला ( चिंतायास

निचिय विपुल सालो ) चिन्ता और मनस्ताप आदि की अधिकता से या निरन्तर सैकड़ों चिन्ताओं से विस्तीर्ण शाखावाला ( गारव पविरल्लियग्ग विडवो ) ऋद्धि आदि के गौरव ही विस्तारयुक्त शाखा के अग्रभाग हैं जिसमें ( नियडि-तयापत्त-पल्लवधरो ) दूसरे को ठगने के लिये किये गये वंचनाप्रकार या कपट रूप त्वचा पत्र और फूल को जो धारण करने वाला है, (पुप्फफलं जस्स कामभोगा ) तथा काम भोगही जिस वृक्ष के फूल व फल हैं ( आयास विसूरणा कलह पकं पियग्ग सिहरो ) शरीर और मन का खेद, तथा कलह ये ही जिस वृक्ष के कम्पमान होने वाले अग्र शिखर हैं ( नरवतिसपूजितो ) राजाओं से पूजित ( बहुजणस्सहियय दइओ ) बहुत लोकों का हृदयवल्लभ ( इमस्स मोक्खवर मोत्ति मग्गस्स ) इस-प्रत्यक्ष-विद्यमान मोक्ष-कर्म मोक्ष-के निर्लोभितारूप मार्ग का ( फलिहभूओ ) यह परिग्रह आगल के समान रोध करने वाला है ( चरिम अहम्मदारं ) यह अन्तिम अधर्मद्वार है ।१।१७।

भावार्थ-"सुधर्मस्वामी महाराज जम्बू नामक अपने शिष्य से फरमाते हैं कि अब्रह्म के बाद पाचवा अधर्म द्वार परिग्रह है । अनेक प्रकार के मणि सुवर्ण आदि जङ्गम तथा स्थावर सचेतन और अचेतन रूप बहुत प्रकार के साधनों को तथा गिरि नगर आदि हजारों वसतिओं से मण्डित भरत क्षेत्रको और समुद्र सहित पृथ्वीके एक-च्छत्र राज्य को भोगने पर भी जो तृप्ति रहित हैं । इसकी वृक्ष के साथ तुलना करते हैं -अपरिमित अनन्त तृष्णारूप बडी इच्छा व अशुभफलही इसका मूल है , लोभ कलह और कषाय इसके बडे स्कन्ध हैं ,सैकडों प्रकार की चिन्तायें इसकी विशाल शाखायें और अहङ्कार ही विस्तारयुक्त इसका शिखर है । अनेक प्रकार के छल कपट ही, जिसकी त्वचा पत्र व फूल हैं , कामभोग ही इसके फल फूल हैं । इसी प्रकार अन्य तुलना समझें यावत् निर्लोभितारूप मोक्षमार्ग का यह आगल के समान रोध करने वाला पंचम अधर्म द्वार है ॥ १ । १७ ॥

अब परिग्रह के नाम कहते हैं-

मूल-"तस्स य नामाणि इमाणि गोण्णाणि होंति तीसं, तंजहा-परिग्गहो १, संचयो २ चयो ३, उवचओ ४, निहाणं ५, संभारो ६, संकरो ७, [1]आयरो ८, पिंडो ९, दव्वसारो १०, तहामहिच्छा ११, पडिबंधो १२, लोहप्पा १३, महद्दी[2] १४, उवकरणं १५, संरक्खणाय १६,

१ क पद आयारो, २ क. महिद्दी ।

भारो १७, संपाउप्पायको १८, कलिकरंडो १९, पवित्थरो २०, अणत्थो २१, संथवो २२, अगुत्ती २३, आयासो २४, अविओगो २५, अमुत्ती २६, तण्हा २७ अणत्थको २८, आसत्ती २९, असंतोसोत्तिवि य ३० तस्स एयाणि एवमादीणि नामधेज्जाणि होंति तीसं । २ । १८ ।

छाया—"तस्य च नामानि इमानि गौणानि भवन्ति त्रिंशत्, तानि यथा—परिग्रहः १, सञ्चय २, चय ३, उपचय ४, निधानम् ५, सम्भार ६, संकर ७, आदर ८, पिण्ड ९, द्रव्यसार १०, तथा महेच्छा ११, प्रतिबन्ध ( अभिष्वङ्ग ) १२, लोभात्मा ( लोभ स्वभाव ) १३, महर्द्धि १४, उपकरणम् १५, संरक्षणा च १६, भार १७, सम्पातोत्पादक १८, कलिकरण्ड १९, प्रविस्तार २०, अनर्थ २१, संस्तव २२, अगुप्ति २३, आयास २४, अवियोग २५, अमुक्ति २६, तृष्णा २७, अनर्थक २८, आसक्ति ( आसङ्ग ) २९, असन्तोष ३०, इत्यपि, तस्यैतानि एवमादीनि नामधेयानि भवन्ति त्रिंशत् ॥ सू० २ । १८ ॥

अन्व०— " ( तस्स य ) फिर स्वरूप के बाद उस परिग्रह के ( इमाणि ) ये आगे कहे गये ( गोण्णाणि ) गुणनिष्पन्न ( तीसं ) तीस ( नामाणि ) नाम ( हुंति ) होते ( तंजहा ) जैसे कि वे इस प्रकार हैं—( परिग्गहो ) परिग्रह—शरीर आदि का सब तरह ग्रहण करना , ( संचओ ) संचय—अधिक मात्रा में संग्रह करना ( चओ ) चय—वस्तुओं को जुटाना, ( उवचओ ) उपचय ( निहाणं ) निधान ( संभारो ) संभार को अच्छी तरह से धारण किया जाय ( संकरो ) संकर—वस्तुओं को एक दूसरे से मिलाना (आयरो) आदर—वस्तुओं में आदर बुद्धि करना (पिंडो) पिण्ड (दव्वसारो) द्रव्यसार वाला (तहा महिच्छा) वैसे ही महेच्छा-तीव्र इच्छा (पडिबंधो) प्रतिबन्ध-पदार्थों में प्रतिबन्ध होना ( लोहप्पा ) लोभात्मा-लोभमय आत्मा बनना, ( महद्दि ) महर्द्धि-अपरिमित याचनावाला ( उवकरणं ) उपकरण (संरक्खणा य) और संरक्षणा—धन-शरीर आदि की विशेष रक्षा करना ( भारो ) भार—आत्मा का विशेष भारी करने वाला ( संपाउप्पायको ) संपातोत्पादक—झूठ आदि पापकों का पैदा करने वाला ( कलिकरंडो ) कलहों की पेटी ( पवित्थरो ) प्रविस्तार—धनधान्य आदि का विस्तार ( अणत्थो ) अनर्थ—अनर्थों का हेतु (संथवो) संस्तव—बारबारों का परिचय (अगुत्ती) अगुप्ति—इच्छा के संगोपन न होने । आयासो ) आयास—खेद कारण ( अविओगो ) अवियोग धन आदि का नहीं छोड़ना (अमुत्ती) अमुक्ति अनास

(तण्हा) तृष्णा (अणत्थको) अनर्थक-परमार्थसे निरर्थक अनर्थ को करनेवाला (आसत्ती) आसक्ति-अधिकमोह (असंतोसोत्तिविय) इसप्रकार असन्तोष यहभी (य) उस परिग्रहके (एयाणि एवमादीणि नामधेज्जाणि तीसहोंति) ये कहे गये तीस और इसीतरह के दूसरे नाम होते हैं ॥ २ ॥ १८ ॥

भावार्थ-इससूत्र में परिग्रह के तीस नाम कहे गये हैं जैसे-परिग्रह १ सञ्चय २ चय ३ उपचय ४ निधान ५ सम्भार ६ सङ्कर ७ आदर ८ पिण्ड ९ द्रव्यसार १० महेच्छा ११ प्रतिबन्ध १२ लोभात्मा १३ महार्द्धि १४ उपकरण १५ और संरक्षण १६ भार १७ सम्पातोत्पादक १८ कलिकरण्ड १९ प्रविस्तर २० अनर्थ २१ संस्तव२२ अगुप्ति२३ आयास २४ अवियोग २५ अमुक्ति २६ तृष्णा २७ अनर्थक २८ आसक्ति २९ और असन्तोष ३० इसप्रकार परिग्रह के ये तीसनाम अन्वर्थक-सार्थक होते हैं । २ । १८ ॥

मूल-"तंच पुण परिग्गहं ममायंति लोभघत्था, भवनवर विमाणवासिणो परिग्गहरुती, परिग्गहे विविह करणबुद्धी, देव-निकायाय, असुर-भुयग-गरुल-विज्जुज्जलण-दीव-उदहि-दिसि-पवण-थणिय, अणवंनिय-पणवंनिय-इसिवातिय- भूतवाइय- कंदिय- महाकंदिय-कुहंड-पतंगदेवा, पिसाय-भूय-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस-महोरग-गंधव्वा य, तिरियवासी पंचविहा जोइसिया य देवा, बहस्सती, चंद-सूर-सुक्क-सनिच्छरा, राहु-धूमकेउ बुधाय, अंगारकाय, तत्ततवणिज्ज कणयवण्णा, जे य गहा जोइसंमि[1] चारं चरंति, केऊ य गतिरतीया, अट्ठावीस तिविहा य नक्खत्त-देवगणा, नाणा संठाण संठियाओय तारगाओ, ठियलेस्सा-चारिणो य अविस्साम मंडलगती उवरिचरा, उड्ढलोगवासी दुविहा-वेमाणिया य देवा, सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोग- लंतक-महासुक्क- सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुया कप्पवर विमाणवासिणो, सुरगणा, गेवेज्जा, अणुत्तरा दुविहा कप्पातीया विमाणवासी, महिड्ढिका उत्तमा सुरवरा एवं च ते चउव्विहा सपरिसावि देवा ममायंति, भवण वाहण जाण विमाण सयणासणाणि य नाणा विहवत्थभूसणा[2] पवर पहरणाणि य नानामणि-पंचवन्नदिव्वं च भायणविहिं, नाणाविह कामरूवे, वे उव्वित

१ क. जोइसियम्मि, २ क. भूसणाणि य,

अच्छर गणसंघाते, दीवसमुद्दे, दिसाओ, विदिसाओ, चेतियाणि, वणसंडे, पव्वते गामनगराणि य, आरामुज्जाण काणणाणिय, कूव-सर-तलाग वावि-दीहिय देवकुल-सभ-प्पव-वसहि माइयाइं बहुकाइं, कित्तणाणि य परिगेण्हित्ता परिग्गहं विपुलदव्वसारं देवावि सइंदगा न तित्तिं न तुट्ठिं उवलभंति।

छाया-"तं च पुन परिग्रहं ममायन्ते लोभग्रस्ता भवनवर विमान वासिन, परिग्रह रुचय परिग्रहे विविध करणबुद्धयो देवनिकायाश्चाऽसुरभुजग-गरुड विद्युज्ज्वलन द्वीपो-दधि दिक्-पवन-स्तनिताऽणपन्निक-पणपन्निक ऋषि वादिवारिक-भूतवादिक-क्रन्दित महाक्रन्दित-कूष्माण्ड-पतङ्गा देवा, पिशाच-भूत-यक्ष-राक्षस-किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-गन्धर्वाश्च, तिर्यग् वासिन पञ्चविधा ज्योतिष्काश्च देवा, बृहस्पति चन्द्र सूर्य शुक्र शनिश्चरा, राहु धूमकेतु बुधाश्चाङ्गारकाश्च तप्ततपनीय कनक वर्णा, ये च ग्रहा ज्योतिष्केषु चार चरन्ति, केतवश्च गतिरतयः, अष्टाविंशति विधाश्च नक्षत्र देव-गणा, नाना संस्थानसंस्थिताश्च तारका, स्थितलेश्याश्चारिणश्चाऽविश्राममण्डल गतय, उपरिचरा ऊर्ध्वलोकवासिनो द्विविधा वैमानिकाश्च देवाः, सौधर्मेशान-सन त्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्मलोक- लान्तक- महाशुक्र- सहस्राराऽऽनत-प्राणताऽऽरणाऽ-च्युता कल्पवर विमान वासिन सुरगणा, ग्रैवेयका अनुत्तरा द्विविधा कल्पातीता विमानवासिना महर्द्धिका उत्तमा सुरवरा। एवञ्च ते चतुर्विधा सपरिषदोऽपि देवा ममायन्ते, भवन-वाहन-यान-विमानशयनाऽऽसनानि च, नानाविध वस्त्रभूषणानि प्रवरप्रहरणानि च, नानामणि पञ्चवर्ण-दिव्यञ्च भाजनविधिं, नानाविध कामरूपा विकुर्विताऽप्सरो गण सङ्घातान्, द्वीपसमुद्रान्, दिशो, विदिशश्चैत्यानि, वनखण्डान् पर्वतांश्च, ग्रामनगराणि च, आरामोद्यानकाननानि च, कूपसरस्तडाग-वापी-दीर्घिका देवकुल-सभाप्रपा-वसत्यादीनि बहुकानि, कीर्तनानि च परिगृह्य परिग्रहं विपुल द्रव्य सारं देवा अपि सेन्द्रका न तृप्तिं न तुष्टिमुपलभन्ते।

अन्वयार्थ-"(तं च पुण परिग्गहं) और फिर उस परिग्रह का (ममायंति) स्वीकार करते हैं (लोभघत्था भवणवरविमाणवासिणो) लोभग्रस्त प्रधान भवन और विमानवासी देव (परिग्गहरुती, परिग्गहे विविह करणबुद्धी) जो परिग्रह की रुचि वाले हैं, तथा परिग्रह में वृद्धि करने की बुद्धि वाले हैं, (देव निकाया य) और देवसमूह (असुर-भुजग-गरुड विज्जुजलण-दीव-उदहि दिसि पवण-थणिय

असणवन्निय-पणवन्निय-इसिवातिय-भूतवाइय-कंदिय-महाकंदिय-कुहंड-पतंगदेवा ) जैसे-असुर कुमार १, नागकुमार २, गरुड-सुपर्णकुमार ३, विद्युत्कुमार ४, अग्नि-कुमार ५, द्वीपकुमार ६, उदधिकुमार ७, दिक्कुमार ८, पवनकुमार ६, और स्तनित कुमार १०, ये दश भवनपति, अणपन्निक १, पणपन्निक २, इपिवादिक ३, भूतवा-दिक ४, क्रन्दित ५, महाक्रन्दित ६, कूष्माण्ड ७, और पतङ्गदेव ८, ये आठ व्यन्तर जाति के देव, ( पिसाय-भूय-जक्ख-रक्खस-किनर किंपुरिस महोरग-गन्धव्वाय ) और पिशाच १, भूत २, यक्ष ३, राक्षस ४, किन्नर ५, किम्पुरुष ६, महोरग ७, तथा गन्धर्व ८ ये आठ व्यन्तर विशेष [ कुल १६ जाति के व्यन्तर देव ] ( तिरियवासी पंचविहा जोइसिया य देवा ) और तिर्यग् लोक में रहने वाले पाच प्रकार के ज्यो-तिष्क देव ( वहस्सती, चंद-सूर-सुक्क-सनिच्छरा ) बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र व शनैश्चर ( राहु-धूम-केउ-बुधा य, अंगारका य, तत्त-तवणिज्ज-कणयवण्णा ) राहु, धूमकेतु और बुध तथा तपाये हुए लाल सुवर्ण के समान वर्ण वाले अङ्गारक-मङ्गल ग्रहविशेष ( जे य गहा जोइसमि चारं चरंति ) और जो दूसरे ग्रह ज्योतिश्चक्र में संचार करते हैं ( केउ य गतिरतीया ) और केतु, गति में प्रसन्नता का अनुभव करने वाले ( अट्ठावीसतिविहा य नक्खत्त देवगणा ) और अट्ठाईस प्रकार के नक्षत्र देवों का समूह ( नाणा-संठाण संठियाओ य तारगाओ ) फिर अनेक प्रकार के संस्थान-आकार वाले तारक-तारागण ( ठियलेस्सा चारिणो य अविस्साम मंडलगई उव-रिचरा ) स्थिर कान्ति वाले-मनुष्य क्षेत्र से बाहर के ज्योतिष्क, और मनुष्य क्षेत्र के भीतर संचार करने वाले जो तिर्यग् लोक के ऊपरी भाग में वर्तमान तथा अविश्रान्त मडल-वर्तुलाकार-गति से चलने वाले हैं, ( उड्ढलोगवासी दुविहा वेमाणिया य देवा ) और उर्द्धलोक में बसने वाले दो प्रकार के-कल्पोपपन्न, तथा कल्पातीत-वैमानिक देव हैं। 'कल्पोपपन्न देवों को कहते हैं'-( सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद बंभलोग-लंतक-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुया कप्पवर वि-माण वासिणो सुरगणा ) सौधर्म १, ईशान २, सनत्कुमार ३, माहेन्द्र ४, ब्रह्मलोक ५, लान्तक ६, महाशुक्र ७ सहस्रार ८, आणत ६, प्राणत १०, आरण ११ और अच्युतकल्प १२ के प्रधान विमानों में रहने वाले देव समूह ( गेवेज्जा अणुत्तरा दुविहा कप्पातीया विमाणवासी ) ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानवासी ये दो प्रकार के कल्पातीत 'कल्प-मर्यादा-के-बन्धनों से रहित' ( महिड्ढिका उत्तमा सुरवरा )

महर्द्धिक, उत्तम और प्रधान देव हैं ( एवं च ते ) और इस प्रकार वे ( चउव्विहा सपरिसाविदेवा ) चार प्रकार के परिषद् सहित भी देव ( भवण-वाहण-जाण विमाण-सयणासणाणि ) भवन, वाहन-हाथी आदि, यान-रथ आदि अथवा घूमने के विमान और विमान-पुष्पक आदि तथा शय्या और आसन-भद्रासन सिंहासन आदि; ( नाणा विहवत्थ भूसणा-पवर-पहरणाणि ) और अनेक प्रकार के वस्त्र, भूषण तथा उत्तम प्रहरण-शस्त्रों को ( णाणामणि-पंचवन्न-दिव्वं च भायणविहिं ) और नाना भांति की मणियों के पांच वर्ण के दिव्य भाजन आदि को तथा ( णाणाविह-कामरूवे, वेउव्विय-अच्छरगण-संघाते इच्छानुसार अनेक प्रकार के रूपवाले, वस्त्र आदि से विशेषशोभावाली अप्सरा समूह को ( दीव-समुद्दे, दिसाओ, विदिसाओ, चेतियाणि, वणसंडे पव्वते य द्वीपसमुद्र, दिशा-पूर्व आदि दिशायें, ईशान आदि विदिशायें चैत्य-मायवक चैत्य या ऐसे चैत्य स्तूप आदि, वनखण्ड और पर्वतों को ( गाम णगराणि य ) ग्राम, नगर और ( आरामु ज्जाण काणणाणिय ) आराम उद्यान-बगीचा व कानन-जंगलों को और ( कूव-सर-तलाग-वाविदीहिय-देवकुल-सभ-प्पव-वसहि माइयाइं ) कूप, सर-सरोवर तालाब, वापी-बावड़ी, दीर्घिका-लम्बीवापी, देवकुल-देवल सभा, प्रपा-प्याऊ और वसति इत्यादि ( बहुकाइं कित्तणाणि य ) और कीर्तनीय-स्तुति के लायक धर्मस्थानों को ( ममायंति ) ममत्व भावसे स्वीकार करते हैं ( विपुल दव्वसारं परिग्गहं ) विपुल द्रव्य वाले परिग्रह को ( परिगेण्हित्ता ) ग्रहण करके ( सइंदगा देवावि ) इन्द्र सहित सब देव भी ( न तित्तिं न तुट्ठिं उवलभंति ) न तृप्ति और न सन्तोष को ही प्राप्त करते हैं।

मूल-"अच्चंत विपुल लोगामिभूतं[1] सत्ता, वासहर-इक्खुगार-वट्ट पव्वय-कुंडल-रुयगवर-माणुसोत्तर-कालोदधि-लवण सलिल-दहपति-रतिकर-अंजणकसेल दहिमुहउप्पातुप्पाय[2]-कंचणक-चित्त विचित्त-जम कवर-सिहर कूडवासी, वक्खार अकम्मभूमिसु, सुविभत्त-भागदेसासु, कम्मभूमिसु जेऽविचनरा चाउरंत चक्कवट्टी, वासुदेवा, बलदेवा, मंडलीया, इस्सरा, तलवरा, सेणावती, इब्भा, सेट्ठी, रट्ठिया, पुरोहिया, कुमारा,

१ क०-लोगामिभूमासमा, २ क०-उप्पायउप्पाय०

दंडणायगा, माडंबिया, सत्थवाहा, कोडुंबिया, अमच्चा, एए अन्ने य एवमाती परिग्गहं संचिणंति, अणंतं असरणं दुरंतं, अधुवमणिच्चं, असासयं पावकम्मनेम्मं, अवकिरियव्वं, विणासमूलं, वहबंध-परिकिलेस बहुलं, अणंत संकिलेस कारणं, ते तं धण-कणग-रयण-निचयं पिंडिंता चेव लोभघत्था संसारं अतिवयंति सव्वदुक्ख संनिलयणं । सू० । ३ । १८ ।

छाया-" अत्यन्त विपुल लोभाभिभूत सत्त्वा, वर्षधरेषुकार-वृत्त पर्वत-कुण्डल रुचकवर-मानुषोत्तर-कालोदधि-लवण सलिल-ह्रदपति-रतिकराऽञ्जनक शैल-दधिमुखावपातोत्पात-काञ्चन-चित्र-विचित्र-यमक-वर शिखर-कूट वासिनः, वक्षस्काराऽकर्मभूमिषु सुविभक्तभागदेशासु, कर्मभूमिषु येऽपिचनराश्चातुरन्त चक्रवर्तिनो वासुदेवाः, वलदेवा, माण्डलिकाः, ईश्वरास्तलवराः, सेनापतयः, इभ्याः, श्रेष्ठिनो, रथिकाः, [ राष्ट्रिकाः ] पुरोहिताः, कुमाराः, दण्डनायकाः, माडम्बिकाः, सार्थवाहाः कौटुम्बिका, अमात्याः, एतेऽन्ये चैवमादयः परिग्रह संचिन्वन्ति-अनन्तमशरणं दुरन्तमनित्यमशाश्वतं पापकर्मनेमिकम्, अपकरणीयं, विनाशमूल वधबन्ध परिक्लेशबहुलम्, अनन्त सक्लेशकारणम्, ते तं धन-कनक-रत्ननिचयं-पिण्डयन्तश्चैव लोभग्रस्ताः संसारमति पतन्ति सर्व दुःखसंनिलयनम् । ३ । १८ ॥

अन्व०-"( अच्चत विपुल लोभाभिभूत सत्ता ) अत्यन्त विशाल लोभ से घिरी-हुई बुद्धि वाले हैं, तथा ( वासहर-इक्खुगार-वट्ट पव्वय-कुंडल रुचगवर माणुसोत्तर कालोदवि-लवणसलिल-दहपति-रतिकर अंजणक-सेल-दहिमुह-वपा-तुप्पाय-कंचणक-चित्त-विचित्त-जमकवर-सिहर कूडवासो ) वर्षधर-हिमवान् आदि वर्षधर पर्वत, इषुकार,-धातकी खंड और पुष्करवर द्वीप के अर्द्धभाग करने वाले दक्षिण उत्तर लम्बे पर्वत विशेष, वृत्तपर्वत-शब्दापाति आदि गोलाकार पर्वत, कुंडल-जम्बुद्वीप से ग्यारहवें कुण्डलनामक द्वीप में कुण्डलाकार के पर्वत, रुचकवर-तेरहवें रुचक द्वीप के भीतर मण्डलाकार रुचकवर पर्वत, मानुषोत्तर-मनुष्यक्षेत्र की सीमा बनाने वाले मानुषोत्तर पर्वत, कालोदधिसमुद्र, लवण समुद्र, सलिला-गगा आदि महानदियाँ ह्रदपति-पद्मह्रद आदि महाह्रद,तथा रतिकर पर्वत-आठवें नन्दीश्वर नामक द्वीप के कोण में रहे हुए चार झल्लरी के संस्थान के पर्वत, अञ्जनक पर्वत नन्दीश्वर के चक्रवाल में रहे हुए कृष्णवर्ण के पर्वत विशेष, दधिमुख-अंजनक पर्वतों के पासकी सोलह पुष्करिणी में रहे हुए १६ पर्वत, अवपात पर्वत-जिनपर वैमानिक

देव आकर मनुष्यक्षेत्र के लिए उतरते हैं, उत्पात पर्वत–भवनपति देव जिन स्थानों से ऊपर उठकर मनुष्यक्षेत्र में आते हैं, जैसे तिगिच्छ कूट आदि, काञ्चनक–उत्तरकुरु और देवकुरु क्षेत्र में रहे हुए सुवर्णमय पर्वत, चित्र विचित्र–निषधपर्वत के पासकी शीतोदा नदी के किनारे चित्रकूट व विचित्रकूट नामके पर्वत, यमकवर–नीलवान् वर्षधर के समीप की शीतानदीके तटपर रहे हुए २ यमकवर पर्वत, शिखर समुद्रमें रहे हुए गोस्तूप आदि पर्वत और कूट–नन्दन वनके कूट आदि इनपर रहने वाले 'ऐसे देव भी तृप्ति नहीं पाते, फिर अन्य प्राणियों की तो बात ही क्या' ? ( वक्खार अकम्म भूमिसु सुविभत्त भागदेसासु कम्मभूमिसु ) वक्षस्कार–विजय के विभाग करने वाले चित्रकूट आदि, तथा अकर्मभूमि–हैमवत आदि भोग्य भूमि के क्षेत्रों में तथा अच्छी तरह विभागयुक्त देशवाली–कर्मभूमि–भरत आदि पन्द्रह भूमियों में ( जेऽविय नरा ) और जो भी मनुष्य देवों की तरह रहते हैं 'उन मनुष्यों का विशेष प्रकार–( चाउरंत चक्कवट्टी, वासुदेवा, बलदेवा ) चारों ओर अन्त वाले षट् खण्ड भूमि के स्वामी चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव ( मंडलीया ) माण्डलिक–मण्डलके अधिपति–महाराजा ( इस्सरा, तलवरा, सेणावती, इब्भा, सेट्ठी, रट्ठिया ) ईश्वर–युवराज आदि या भोगिक, तलवर–शिरपर सुवर्णपट्ट को बांधे हुए राजस्थानीय, सेनापति–सैन्य के नायक, इभ्य–हाथी को ढक देवे जितने विशाल धन राशि के स्वामी, श्रेष्ठी–श्रीदेवता से अलंकृत चिह्न को मस्तक पर धारण करने वाले श्रेष्ठी–सेठ–राष्ट्रिक–राष्ट्र–देशकी चिन्ता करने वाले अर्थात् राष्ट्र की उन्नति और अवनति के विचार में नियुक्त अधिकारी विशेष ( पुरोहिया, कुमारा, दंडणायगा, माडंबिया, सत्थवाहा, कोडुंबिया, अमच्चा ) पुरोहित शान्तिकर्म आदि करने वाले, कुमार–युवराज, दण्ड नायक–कोतवाल आदि, माडंबिक–छोटे राजा, सार्थवाह–बहुत से लोगों को साथ लेकर चलने वाले व्यापारी, कौटुम्बिक–ग्राम के मुख्य होकर जो सेवक हैं, अर्थात् राज्याश्रित मुख्य पुरुष, अमात्य–प्रधान ( एए अन्ने य एवमादी ) ये पूर्व कहे हुए विशिष्टलोक और इस प्रकार के दूसरे–इत्यादि मनुष्य ( परिग्गहं संचिणंति ) परिग्रह का संचय करते है ( अणंतं असरणं दुरंतं अधुवमणिच्चं असासयं ) जो परिग्रह अनन्त–परिमाण रहित, अशरण–दुःखसे बचाने में असमर्थ, दुरन्त–दुःखमय अन्तवाला, अध्रुव–निश्चलता रहित अनित्य–अस्थिर और प्रतिक्षण विनाश होने से अशाश्वत है (पावकम्मनेम्मं अवकिरियव्वं, विणासमूलं, वहबंध परिकिलेस

हुलं, अर्थात सकिलेसकारणं ) पाप कर्म का मूल, ज्ञानियों के लिये त्यागने योग्य, विशाल बहुत गम्भीर या विनाश के मूल वाला, परजीवो के मारने बांधने और क्लेश देने की प्रधानता वाला याने परिग्रह के कारण परजीवों को अधिक मात्रा में वध बन्धन और परिताप होता है, चित्त के अपरिमित क्लेश का कारण है ( ते तं धण-कणग-रयण-निचयं ) इस प्रकार के उस धन-सुवर्ण तथा रत्न के समूह को वे देव आदि ( पिंडिता चेव लोभघत्था ) सञ्चय करते हुए ही लोभ से ग्रसे गये ( सव्वदुक्ख संनिलयणं ससारं अतिवयंति ) सब प्रकार के दु खो के घररूप ससार मे जा पड़ते हैं।

भावार्थ-पूर्वोक्त परिग्रह को लोभ के वशीभूत भवनपति आदि देव स्वीकार करते हैं। देवों के विविध प्रकार और परिग्रह मे आने वाले पदार्थों का वर्णन सहज है। अकर्मभूमि और कर्मभूमि के निवासी मानवो मे कर्मभूमि के मनुष्य ही अधिक परिग्रह वाले हैं। इसलिए उनका विशेष वर्णन करते हैं-चक्रवर्ती आदि परिग्रह का सञ्चय करते हैं। यह परिग्रह अनन्त अशरण यावत् अनन्त दु खो का कारण है। लोभ के अधीन वे देव आदि इसका सञ्चय करते हुए ही दु खमय ससार में गिर जाते हैं। सू० ३। १८।

परिग्रह का सञ्चय जिस प्रकार किया जाता है उसका वर्णन करते हैं—

मूल—"परिग्गहस्स य अट्ठाए सिप्पसयं सिक्खए बहुजणो, कलाओ य बावत्तरिं सुनिउणाओ लेहाइयाओ सउण[1]रुयावसाणाओ, चउसट्ठिं च महिलागुणे रतिजणणे, सिप्पसेवं, असि मसि किसि वाणिज्जं, ववहारं अत्थ-सत्थ-इसत्थ[2]-च्छरुगयं, विविहाओ य जोग जुंजणाओ, अन्नेसु एवमादिएसु बहुसु कारणसएसु जावज्जीवं नडिज्जए, संचिणंति मंदबुद्धी परिग्गहस्सेव य अट्ठाए करंति पाणाण वहकरणं, अलिय नियडि साइ सपओगे, परदव्व अभिज्जा, सपरदार[3] अभिगमणा सेवणाए आयास विसूरणं कलह भंडण वेराणि य, अवमाणण विमाणणाओ, इच्छा महिच्छ-प्पिवास सततितिसिया, तण्हगेहिलोभघत्था, अत्ताणा, अणिग्गहिया करेंति कोहमाण मायालोभे, अकित्तणिज्जे परिग्गहे, चेव होंति नियमा सल्ला, दंडा, य गारवा य, कसाया, सन्ना य, कामगुण, अण्हगा य, इंदियलेसा-

१ क गणियप्पहाणाओ, २ क. इसुसत्थे, ३ क. सपरदार,

ओ, मयख मपग्रागा, सचित्ताचित्तमीसगाइं दव्वाइं अणंतकाइं इच्छंति परिघेत्तुं, सदेवमणुयासुरमिलोए लोभपरिग्गहो जिणवरहिं भणिओ, नत्थिएरिसो पासो पडिबंधो अत्थि सव्वजीवाणं सव्वलोए। सू० ४।१६॥

छाया—"परिग्रहस्य चार्थाय शिल्पशतं शिक्षन्ते बहुजन, कलाश्च द्वासप्तती सुनि पुणा लेखादिका शकुनरुतावसाना (गणित प्रधाना) चतुःषष्टीश्च महिलागुणान् रतिजनकान्, शिल्पसेवाम्, असिमसिकृषिवाणिज्यं, व्यवहारमर्थशास्त्रेषुशास्त्रत्सरु, प्रगत, विविधाश्च योगयोजना अन्येष्वेवमादिषु बहुषु कारणशतेषु यावज्जीवमं नटयन्ति (नयन्ति) सञ्चिन्वन्ति मन्दबुद्धय परिग्रहस्यैवार्थायकुर्वन्ति प्राणिनां वध करणम्, अलीक-निकृति-साति सम्प्रयोगे परद्रव्याऽभिध्या सपरदाराभिगमनाऽऽसेवनया आयासविसूरणं कलह भण्डनवैराणिच, अवमानन विमानना इच्छा महेच्छा पिपासा सततवृषिता, तृष्णागृद्धिलोभग्रस्ता, अत्राणा, अनिगृहीता कुर्वन्ति क्रोधमान मायालोभान् अकीर्तनीयाम्, परिग्रहे चैव भवन्ति नियमा (त्),शल्यानि, दण्डाश्च, गौरवाणिच, कषाया ,संज्ञाश्च,कामगुणा आस्रवाश्च,इन्द्रियलेश्या, शयनसम्प्रयोगा, सचित्ताऽचित्त-मिश्रकाणीनि द्रव्याणि, अनन्तकानीच्छन्ति परिग्रहीतुं सदेवमनुजाऽसुरेलोके लोभपरिग्रहो जिनवरैर्भणितो,नाऽस्तीदृश पाश प्रतिबन्धो ऽस्ति सर्वजीवानां सर्वलोके ॥ सू० ४।१६ ॥

अन्व०—"(परिग्गहस्स य अट्ठाए) और परिग्रह के लिये (बहुजणोसिप्प सयं सिक्खए) बहुत स लोग सैकड़ों शिल्प सीखते हैं (कलाओ य बावत्तरिं सुनि पुणाओ लेहाइयाओ सउणरुयावसाणाओ गणियप्पहाणाओ) और अतिशय निपुण बहत्तर कलायें जिनमे लेखनकला आदि-प्रारम्भिक है, शकुनरुत-पक्षियों के शब्दज्ञान-जहां अन्तिम और गणित कला जहां प्रधान है ऐसी (चउसट्ठिंच महिला गुणे रतिजणणे) और स्त्री के चौसठ,गुण या कलायें जो रति-अनुराग पैदा करने वाले हैं,उन्हें सीखते हैं (सिप्पसेवं) शिल्प पूर्वक सेवा (असि मसि किसि वाणिज्जं, ववहारं, अत्थ सत्थ ईसत्थ च्छरुप्पगयं) असि-खड्गादिशस्त्राभ्यास, मषी-लिपि विज्ञान कृषि-खेती का कर्म और वाणिज्य तथा व्यवहार को, अर्थशास्त्र-राजनीति आदि इषु-शस्त्र-धनुर्वेद शास्त्र छुरिका आदि मुष्टि में ग्रहण करने का उपाय (विविहाओ य जोग जुंजणाओ) और अनेक प्रकार के वशीकरण आदि योग रचना को परिग्रह के लिये लोक सीखते हैं, (अन्नेसु एवमाइएसु बहुसु कारणसएसु जावज्जीवं

नडिज्जए ) इस प्रकार के अन्य इत्यादि बहुत से-कारणशत-परिग्रह के सैकड़ोंहेतु-ओं-से प्रवृत्ति करते हुए जीवन पर्यन्त लोक नृत्य करते हैं ( मच्चिणंति मंदबुद्धी ) मन्दबुद्धि लोक परिग्रह का सञ्चय करते हैं ( परिग्गहस्सेव य अट्ठाए ) और परिग्रह के मतलब से ही ( पाणाण वहकरणं करंति ) जीवों की हिंसा के कार्य करते हैं ( अलिय नियडि साइसंपओगे परदव्व अभिज्जा ) भूठ, आदरपूर्वक दूसरे को ठगना, और वस्तु में मिलावट करके उसको उत्कृष्ट बताना, तथा परद्रव्य में लोभ करना ( सपरदार अभिगमणा सेवणाए आयासविसूरणं ) स्वदार गमन में शरीर और मनके खेद को तथा पर स्त्री के सेवन में मानसिक पीड़ा को प्राप्त करते हैं ( कलह भंडण वेराणि य अवमाणणविमाणणाओ ) वचन से कलह, शरीर से भाडन-लडाई तथा वैर और अपमान-विनय भङ्ग एवं कदर्थनाओं को ( इच्छा महिच्छप्पिवास सतत तिसिया तण्हगेहि लोभघत्था ) सामान्य इच्छा और चक्र-वर्ती के समान बड़ी इच्छा रूप पिपासा-प्यास से निरन्तर तृषा वाले, तथा तृष्णा गृद्धि अप्राप्त अर्थ की अभिलाषा और लोभ से ग्रसे गये ( अत्ताणा, अणिग्गहिया करेंति कोहमाण माया लोभे ) त्राण रहित और इन्द्रिय आदिपर निग्रह नहीं रखने वाले क्रोध मान माया एवं लोभरूप दुर्भाव को करते हैं ( अकित्तणिज्जे ) जो दुर्भाव निन्दा के कारण हैं ( परिग्गहे चेव नियमा सल्ला दंडा य गारवा य ) और परिग्रह में भी ( ही ) निश्चय से शल्य मायाशल्य आदि और दण्ड-मनोदण्ड आदि और गारव-ऋद्धि,रस तथा सातारूप तीन गारव और ( कसाया सन्ना य काम गुण अण्हगाय इंदियलेसाओ होंति ) क्रोध आदि चार कषाय, आहारसञ्ज्ञा आदि चार सञ्ज्ञायें और शब्दरूप आदि पांच काम गुण, तथा पांच आस्रव, श्रोत्र आदि पांच असंयत इन्द्रियाँ, कृष्ण आदि अशुभ लेश्यायें होती हैं ( सयण सपओगा ) स्वजनों के सयोग तथा ( सचित्ताचित्तमीसगाइ अणतकाइ दव्वाइ परिघेत्तुं इच्छंति ) सचित्त अचित्त और मिश्र ऐसे अनन्त द्रव्यों को ग्रहण करना चाहते हैं ( सदेव मणुया सुरमिलोए ) देव-वैमानिक देवता मनुष्य तथा असुर सहित लोक-ससार में ( लोभ परिग्गहो जिणवरेहिं भणिओ ) लोभ से परिग्रह या लोभरूप परिग्रह तीर्थङ्करों ने कहा है ( नत्थि एरिसो पासो पडिबंधो ) ऐसा पाश अन्य नहीं है ( पडिबंधो अत्थि सव्वजी वाणं सव्वलोए ) सब जीवों के लिये यह परिग्रह देवमनुष्य आदि सब लोक में मोहबन्ध का प्रमुख स्थान है । ४ । १६ ॥

भावार्थ—"परिग्रह के लिए ही बहुत से आदमी सैकड़ों प्रकार की शिल्पशिक्षा ग्रहण करते हैं तथा ७२ बहत्तर प्रकार की कलाए जिनमें सुन्दर लेखन आदि मिश्रित हैं, पक्षियों के शब्द ज्ञान और गणित कला एवं चौसठ प्रकार के महिलागुण जो अनुरागोत्पादक हैं उनको सीखते हैं। तलवार, लेखन, खेती, व्यापार, लोकव्यवहार अर्थशास्त्र याने राजनीति, धनुर्वेद, वशीकरण आदि योग रचना को भी लोग परिग्रह के लिए ही सीखते एवं यावज्जीवन उन्हीमें रमते रहते हैं।

परिग्रह के लिए ही जीवहिंसा, झूठ, परवञ्चन, सम्मिश्रण, परद्रव्य में लोभ आदि घृणित कार्यों में उलझे रहते हैं। परिग्रही को स्व और परदार में भी शान्ति नहीं मिलती। वह वचन से कलह, शरीर से लड़ाई, तथा निरर्थक वैर और अपमान की इच्छा को बनाये रखता है। साधारण धनी से लेकर चक्रवर्ती पर्यन्त की इच्छा से वह सतत सन्तप्त रहता है तथा अप्राप्त अर्थ की अभिलाषा उसके दिल में लगी रहती है। इस तरह अवशेन्द्रिय बनकर वह क्रोध, मान, माया, एवं लोभरूप दुर्भावनाओं का शिकार बना रहता है जो निन्दनीय है। परिग्रह से ही शल्य और मनोदण्ड आदि तीन दण्ड, ऋद्धि, रस तथा सुखानुभवरूप गारव (गौरव) क्रोध आदि चार कषाय, आहार आदि चार संज्ञाएं और शब्दरूप आदि पांच काम गुण तथा पांच आस्रव, श्रोत्र आदि पांच असंयत इन्द्रियां तथा कृष्ण आदि अशुभ लेश्याएं होती हैं। परिग्रही, सचित्त, अचित्त और मिश्र रूप से अनन्त द्रव्यों को सदा ग्रहण करने की इच्छा रखते हैं। सब जीवों के लिए मनुष्य तथा असुर लोक में लोभ परिग्रह के समान दूसरा कोई बन्धन नहीं है यही मोह बन्ध का प्रमुख स्थान है—ऐसा जिनवरों ने कहा है। ४। १८॥

मूल—"परलोगम्मि य नट्ठा, तमंपविट्ठा, महया मोह मोहियमती, तिमिसंधकारे तसथावर सुहुमबादरेसु, पज्जत्तमपज्जत्तग एवं जाव परियट्टंति, दीहमद्धं जीवा लोभवससनिविट्ठा। एसोसो परिग्गहस्स फलविवाओ इहलोइओ परलोइओ अप्पसुहो बहुदुक्खो, महब्भओ, बहुरयप्पगाढो, दारुणो कक्कसो, असाओ वाससहस्सेहिं मुच्चइ, नयअवेदित्ता अत्थिहु मोक्खोत्ति, एव माहंसु नायकुलनंदणो महप्पाजिणोउ वीरवर नाम धेज्जो, कहेसी य परिग्गहस्स फल विवागं। एसोसो परिग्गहो पंचमोउ नियमा नाणामणि

कणग रयणमहरिह एवं जाव इमस्स मोक्खवर मोत्तिमग्गस्स फलिहभूयो। चरिमं अधम्मदारं समत्त। सू० ५।२०॥

छाया—"परलोके च नष्टास्तमः प्रविष्टा, महामोह मोहितमतयस्तमिस्रान्धकारे त्रसस्थावर सूक्ष्मबादरेषु पर्याप्ताऽपर्याप्तकेषु, एवंयावत्परिवर्तन्ते [ पर्यटन्ति ] दीर्घ-मध्वान जीवा लोभवशसंनिविष्टा । एषस परिग्रहस्यफलविपाक ऐहिलौकिकः पारलौकिकोऽल्पसुखो बहुदुःखो महाभयो बहुरज प्रगाढो, दारुण कर्कशोऽसातो वर्षसहस्रैर्मुच्यते नाऽवेदयित्वाऽस्ति हि मोक्षइति, एवमाख्यातवान् ज्ञातकुलनन्दनो महात्मा जिनस्तु वीरवर नामधेय',कथयिष्यतिच परिग्रहस्य फलविपाक म। एषस-परि-ग्रह पञ्चमस्तु नियमेन ( मात् । नानामणि कनकरत्न महार्ह, एवयावदस्य मोक्षवर मौक्तिक मार्गस्य परिघभूतं चरममधर्मद्वार समाप्तम् ॥ सू० ५ ।२० ॥

अन्व—"(परलोगमि य नट्ठातमपविट्ठा) परलोक और इसलोक में सन्मार्ग से च्युत होने के कारण नष्ट तथा अज्ञानरूप अन्धकार में निमग्न हैं ( महयामोह मोहियमती) अतिशय मोह से मोहित मतिवाले जीव ( तिमिसंधकारे तसथावर सुहुमबादरेसु पज्जत्तमपज्जत्तग एव जाव रात्रि की तरह अज्ञानरूप अन्धकार में त्रस, स्थावर, सूक्ष्म और बादर स्थानों मे पर्याप्त तथा अपर्याप्त रूप से इस प्रकार यावत् लोभवस संनिविट्ठा जीवा दीहमद्ध परियट्ट ति, लोभ के कारण परिग्रह में लगे हुए जीव दीर्घ-लम्बे मार्ग वाले ससार मे परिभ्रमण करते हैं ( ऐसोसो परिग्गहस्स फलविवागो ) यह वह परिग्रह का फलस्वरूप विपाक (इहलोइओ, परलोइओ, अप्पसुहो, बहुदुक्खो, महब्भओ, बहुरयप्पगाढो, दारुणो, कक्कसो ) इसलोक सम्बन्धी, तथा परलोक सम्बन्धी अल्पसुख और बहुत दुःख वाला, महाभय को उत्पन्न करने वाला, कर्मरज की अधिकता से अत्यन्त गाढ, दारुण और कर्कश—कठोर है ( असाओ वाससहस्सेहि मुच्चइ दुःखरूप वह परिणाम हजारो वर्षो से छूटता है ( न अवेदित्ता-अत्थिहुमो-क्खोति ) बिना भोगे उस कटु फल से मोक्ष नहीं होता है ( एवमाहंसु नायकुल नंदणो महप्पा जिणोउ वीरवर नाम धेज्जो ) इस प्रकार ज्ञात कुल नन्दन महात्मा महावीर नाम के तीर्थङ्कर ने कहा है ( कहेसी य परिग्गहस्सफल विवाग ) और परि ग्रह के फलरूप विपाक को कहेगा (एसोसो परिग्गहो पचमो उ नियमा ) वह [वैसा] यह परिग्रह पाचवा निश्चयसे अधर्मद्वार है ( नाणा मणि कणग रयण महरिह एवं जाव इमस्स मोक्खवर मोत्तिमग्गस्स फलिह भूयो ) अनेक प्रकार के मणि सुवर्ण रत्न

आदि मूल्यवान् पार्थिवसम्पत्ति और इस प्रकार अगम स्थावर अन्य सम्पत्ति रूप परिग्रह इस निर्लोभितारूप मोक्ष के प्रधान मार्ग का आगल के जैसा अवरोध करने वाला है ( परिम अधर्म्मद्वार समत्त ) ( अन्तिम अधर्मद्वार पूर्ण हुआ ॥ सू० ५।२० ॥

भावार्थ—परिग्रह के कारण लोक इस संसार में वैर विरोध आदि से और परलोक में दुर्गति-गमन से नष्ट होते हैं। मोह से मुग्ध मति वाले प्राणी त्रसस्थावर आदि पर्यायों को अनुभव करते हुए यावत् चिर काल तक संसार में परिभ्रमण करते हैं। परिग्रह के इस फल विपाक को प्रभु महावीर ने कहा है आदि। यह परिग्रह नियम से पाचवां अधर्मद्वार है यावत् मोक्षमार्ग का विरोधी है। इस प्रकार पांचवां अधर्मद्वार पूर्ण हुआ ॥ सू० ५।२० ॥

हिंसा आदि पांचो अधर्मद्वार का निम्न गाथा से निगमन करते हैं—

मू०—एएहिं पचहिं असवरेहिं, रयमादिणित्तु अणुसमयं ।
चउव्विह गति ( ह ) पेरंतं, अणुपरियट्ट ति संसारं ॥ १ ॥

छाया—एतैः पञ्चभिरस्रवरैः,—रज आचित्याऽनुसमयम् ।
चतुर्विधगतिपर्यन्तं,—मनुपरिवर्तन्ते संसारम् ॥ १ ॥

मू०—सव्वगई पक्खंदे, काहेंति अणंतए अकयपुण्णा ।
जे य न सुणंति धम्मं, सोऊण य जे पमायंति ॥ ॥

छाया—सर्वगतिप्रस्कन्दान्, करिष्यन्त्यनन्तानकृतपुण्या ।
ये च न शृण्वन्ति धर्म, श्रुत्वा च ये प्रमाद्यन्ति ॥ २ ॥

मू०—"अणुसिट्ठ पि बहुविहं, मिच्छादिट्ठीयरा [ य जेणरा ] [1]अबुद्धीया ।
बद्धनिकाइयकम्मा, सुर्णे ( ण ) ति धम्मं न य करेंति ॥ ३ ॥

छाया—अनुशिष्टमपि बहुविधं, मिथ्यादृष्टयोनरा अबुद्धिका ।
बद्धनिकाचितकर्माणः शृण्वन्ति धर्मं न च कुर्वन्ति ॥ ३ ॥

मू०—किं सक्का काउं जे, जं णेच्छह ओसहं मुहा पाउं ।
जिणवयणं गुणमधु ( हु ) रं, विरेयणं सव्वदुक्खाणं ॥ ४ ॥

छाया—किं शक्यं कर्तुं ये, यन्नेच्छथौषधं मुधा पातुम् ।
जिन वचनं गुणमधुरं, विरेचनं सर्वदुःखानाम् ॥ ४ ॥

---

१ य जे नरा अहमा।

मू०—पंचेव य उज्झिऊणं, पंचेव य रक्खिऊण भावेण ।
कम्मरय विप्पमुक्का, सिद्धिवर मणुत्तरं जंति ( त्तिबेमि ) ॥ ५ ॥
छाया—पञ्चैव चोज्झित्वा, पञ्चैव च रक्षित्वा भावेन ।
कर्मरजो विप्रमुक्ता. सिद्धिवर मनुत्तरं यान्ति ॥ ५ ॥ इति ब्रवीमि ॥

* इति पंचासवदारा समत्ता *

अन्वयार्थ—"( एएहिं पंचहिं असवरेहिं ) पूर्वोक्त इन पांच असंवर-आस्रवों से ( अणुसमयं ) प्रति समय ( रयमादिणत्तु ) जीवस्वरूप को रंगने के कारण ज्ञाना-वरण आदि कर्मरज का सञ्चय करके ( चउव्विहगतिपेरंतं संसारं ) चार प्रकार की गति रूप अन्त वाले संसार मे ( अणुपरियट्टति ) पर्यटन करते हैं । १ ।

( अकयपुण्णाजे ) पुण्य से हीन जो प्राणी है 'वे' ( अणतए ) अनन्त ( सव्वगई ) पक्खंदे ) देव आदि सब गतियों के अनन्त गमनों को ( काहेंति ) करेंगे, कौन ? ( जे य ण सुणंति धम्मं ) जो लोग धर्मको नहीं सुनते और ( जे य ) जोभी ( सोऊण ) सुनकर ( पमायंति ) आचरण में प्रमाद करते हैं ॥ २ ॥

( मिच्छादिट्ठीअबुद्धीयानरा ) मिथ्या दृष्टिवाले अज्ञानी नर ( बद्धनिकाइयकम्मा ) आत्मप्रदेश में निकाचित कर्मों को बाधने वाले ( अणुसिट्ठं पि बहुविह ) गुरुजनों से उपदिष्ट बहुत प्रकार के ( धम्म ) धर्म को ( सुणेंति न य करेंति ) सुनते हैं परन्तु उसका आचरण नहीं करते हैं ॥ ३ ॥

( मुहा ) निस्स्वार्थबुद्धि से दिये गये ( जिणवयणं ओसहं ) जिनवचन रूप औषध को (ज णेच्छह पाउं ) जिसलिये तुम पीना नहीं चाहते हो इसलिये (गुणमहुर) मूलोत्तर गुण से मधुर तथा ( सव्वदुक्खाण विरेयणं ) सब दु खों का विरेचन यह जिनवचन रूप औषध ( किं सक्का काउं जे ) क्या कर सकता है ? ॥४॥

( पचेवयउज्झिऊणं ) हिंसा आदि पाच आस्रवों को छोड़कर और ( पचेवभावेण रक्खिऊण ) अहिंसा आदि पाचो सवरों का भाव से पालन करके ( कम्मरय विप्प-

मुक्त ) कर्मरज से सर्वथा मुक्त हुए जीव ( सिद्धिवरमणुत्तरंगति ) सम्पूर्ण कर्मों के क्षय से मिलने योग्य उत्तम और सर्वश्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥ सर्वथा कर्मों से मुक्त हुए जीव उत्तम सिद्धि गति को पाते हैं ।

भावार्थ—"इन पांच गाथाओं का सार इसप्रकार है-इन वर्णितरूप वाले पांच आस्रवों से प्रतिसमय कर्म परमाणुओं का संचय करके जीव संसार में पर्यटन करते हैं । जो पुण्यहीनप्राणी धर्म को नहीं सुनते, अथवा सुनकर धर्ममें प्रमाद करते हैं आचरण में नहीं लाते, वे देव आदि गतियों में अनन्त बार जन्म ग्रहण करते हैं । मिथ्यादृष्टि अज्ञानीजीव आकण्ठ गाढ अशुभ कर्म के उदय से गुरु के उपदेश किये गये बहुत प्रकार के धर्म का श्रवण करके भी आचरण में नहीं लाते हैं ॥ ३ ॥ निस्पृह भाव से दिये गये जिन वचन रूप औषध को जो तुम पीना भी नहीं चाहते, तो उन दुःखों का नाश करने वाला और गुणों से मधुर यह औषध क्या कर सकता है ? हिंसा आदि पांच आस्रवों का त्याग कर और अहिंसा सत्य आदि संवरों का पालन करके सर्वथा कर्मों से निर्मुक्त हुए जीव उत्तम सिद्धि गति को पाते हैं ॥ १-५ ॥

## ❀ इति अधर्मद्वार सम्पूर्ण हुए ❀



श्री प्रश्नव्याकरणसूत्रस्य

# परिशिष्टम्

## विशिष्टपद टिप्पणानि

# ※ उत्तर खण्ड ※

## प्रथमं संवर द्वारम्

सम्बन्ध-"पूर्व खण्ड मे कर्मबन्ध के कारण भूत हिंसा, झूठ आदि पांच आस्रवों का वर्णन किया। यहां उनके विपरीत अहिंसा, सत्य आदि पाच संवर जो कर्म प्रवाह को रोकने के कारण हैं, उनका वर्णन किया जायगा।

संवराध्ययन का उपक्रम करते हुए सर्व प्रथम सूत्रकार संग्रहणी गाथाओं से प्रतिज्ञा प्रकट करते हैं, जो इस प्रकार है—

मू०—"जंबू !—एत्तो संवरदाराइं—पंच वोच्छामि आणुपुव्वीए।
जह भणियाणि भगवया, सव्वदुहविमोक्खणट्ठाए ॥ १ ॥
पढमं होइ अहिंसा, बितियं सच्चवयणंतिपन्नत्तं।
दत्तमणुन्नाय संवरो य, बंभचेरमपरिग्गहत्तं च ॥ २ ॥
तत्थ पढमं अहिंसा, तसथावर सव्वभूयखेमकरी।
तीसे सभावणाओ ( ए ) किंचीवोच्छंगुणुद्देसं ॥ ३ ॥

छाया-'हे जम्बू ! इत संवरद्वाराणि पञ्चवक्ष्यामि आनुपूर्व्या।
यथा भणितानि भगवता सर्वदुःख विमोक्षणार्थाय ॥ १ ॥
प्रथम भवत्यहिंसा, द्वितीय सत्यवचनमितिप्रज्ञप्तम्।
दत्त मनुज्ञात संवरश्च, ब्रह्मचर्यमपरिग्रहत्वञ्च ॥ २ ॥
तत्र प्रथमाऽहिंसा, त्रसस्थावर सर्वभूत क्षेमकरी।
तस्या सभावनाया किञ्चिद्वक्ष्यामि गुणोद्देश्यम् ॥ ३ ॥

१ प्रथम संवराध्ययन का प्रतिज्ञासूत्र-

अन्वयार्थ—"( जंबू ) हे जंबू ( एत्तो ) आस्रवद्वार के बाद अब यहां से ( आणुपुव्वीए पंच संवरदाराइं वोच्छामि ) पहल दूसरे आदि क्रम से पांच संवरद्वारों-अर्थात् कर्म निरोध के उपायों-को कहूंगा। ( भगवया जह भणियाणि ) भगवान् ने जैसे उन संवराध्ययनों को कहे हैं ( सव्वदुह विमोक्खणट्ठाए ) सब दुःखों से छुटकारा पाने के लिये, मैं इनको कहूंगा, पांचों के नाम-( पढम ) प्रथम ( अहिंसा ) अहिंसारूप संवर ( होइ ) होता है ( बितियं ) दूसरा ( सच्चवयणंति ) सत्य वचनरूप ( दत्तमणुन्नाय संवरो य ) और दाता से दिया गया व आज्ञा प्राप्त भशन आदि का ग्रहण तीसरा संवर ( पन्नत्तं ) कहा गया है ( बंभचेरमपरिग्गहत्तं च ) ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह चतुर्थ तथा पञ्चम संवर है।

( तत्थ ) अहिंसा आदि इन पांच संवरों में ( पढमं अहिंसा ) प्रथम संवर अहिंसा है, जो-( तसथावर सव्व भूय खेमकरी ) त्रसस्थावररूप सब प्राणियों का क्षेम करने वाली है (सभावणाओतोसे ) पांच भावनाओं से युक्त उस अहिंसा के ( किंची गुणुद्देस वोच्छं ) कुछ-अल्पमात्र-गुण वर्णन या गुण भाग को कहूँगा।

भाव-" 'प्रथम गाथा में'-आस्रवों के बाद भगवान के कथनानुसार सर्व दुःखों के विनाशार्थ मैं संवर द्वारों को कहूंगा। इस प्रतिज्ञा वाक्य से आस्रव संवर का सम्बन्ध और संवरों का कथनरूप अभिधेय तथा दुःखनाशरूप हेतु बताया गया है। जिससे सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन की स्पष्टता हो जाती है।

दूसरी गाथा में-अहिंसा १ सत्य २ दत्तानुज्ञात ३ ब्रह्मचर्य ४ और अपरिग्रह ५ ऐसे पांचों संवरों का नाम रूपसे परिचय दिया गया है।

तीसरी गाथा में-कहा गया है कि त्रस स्थावररूप जीवमात्र का क्षेमविधान करने वाली अहिंसा प्रथम संवर है। भावनायुक्त उस अहिंसा के कुछ गुण भाग का कथन करूंगा।

अध्ययन के प्रारम्भ में शास्त्रकार पांचों संवरों के उत्कीर्तन पूर्वक अहिंसा का स्वरूप कहते हैं-

मूल-"ताणि उ इमाणि सुव्वय ! महव्वयाइं, 'लोकहिय सव्वयाइं, सुयसागर देसियाइं, तव संजम महव्वयाइं, सीलगुणवरव्वयाइं, सच्चज्जव-

१ लोयधिइय व्वयाइं ( पा० )

व्वयाइं नरगतिरिय मणुय देवगति-विवज्जकाइं, सव्वजिणसासणगाइं, कम्मरयविदारगाइं, भवसयविणासणकाइं, दुहसय विमोयणकाइं, सुहसय पवत्तणकाइं, कापुरिस दुरुत्तराइं, सप्पुरिस निसेवियाइं, निव्वाण गमण मग्ग सग्गपणायगाइं, संवरदाराइं पंच कहियाणि उ भगवया।

छाया-"तानिविमानि सुव्रत ! महाव्रतानि, लोकहितसद्व्रतानि, श्रुतसागर देशितानि, तप सयममहाव्रतानि, शीलगुणवरव्रतानि, नारकतिर्यङ् मनुजदेवगति विवर्जकानि, सर्वजिन शासनकानि, कर्मरजो विदारकाणि, भवशत विनाशकानि, दु खशतविमोचकानि, सुखशतप्रवर्तकानि, कापुरुष दुरुत्तरकाणि, सत्पुरुष निषेवितानि, निर्वाणगमनमार्गस्वर्गप्रणायकानि, सवरद्वाराणि पञ्च कथितानि तु भगवता।"

अन्व०-"( सुव्वय ! ) हे सुव्रतमुने ! ( ताणि उ इमाणि महव्वयाणि ) पूर्व कहे गये वे अहिंसा आदि, ये महाव्रत-हैं ( लोकहिय सव्वयाइ सुयसागर देसियाइ ) संसार में धैर्य देने वाले या चित्त की शान्ति रखने वाले सद्व्रत शास्त्र सागर मे दिखाये गये हैं, ( तव सजम महव्वयाइ ) अनशन आदि महातप और सयम जिनमे नष्ट नहीं होते अर्थात् तप व सयम के रक्षण करने वाले ( सीलगुण वरव्वयाइं ), शील और उत्तमगुणो के समूह वाले ( सच्चज्जवव्वयाइ ) सत्य एवं सरलता प्रधान व्रत ( नरग-तिरिय मणुय-देवगति-विवज्जकाइ ) नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिरूप ससार का विवर्जन-उच्छेद-करने वाले ( सव्वजिण सासणगाइ ) सब तीर्थङ्करों से कहे गये होने से शासनरूप ( कम्मरय-विदारगाइ ) कर्मरज के विदारण करने वाले ( भवसय विणासणकाइ, दुहसय विमोयणकाइं ) सैकडो भवों को मिटाने वाले इसीलिये-सैकडों दु खो से छुडाने वाले ( सुहसय-पवत्तणकाइ ) और सैकडो सुखों को मिलाने वाले हैं-( कापुरिसदुरुत्तराइ, सप्पुरिसनिसेवियाइ ) कायर पुरुषों के द्वारा दु ख से पार करने योग्य और सत्पुरुषो से सेवन किये गये हैं ( णिव्वाणगमणमग्ग सग्गपणायगाइ ) निर्वाण गमन में मार्ग के समान तथा स्वर्ग मे ले जाने वाले ( सवरदाराइ पच कहियाणि उ भगवया ) ऐसे पांच संवर द्वारों को भगवान ने कहे हैं।

मूल-"तत्थ पढमं अहिंसा जासा सदेवमणुयासुररसलोगस्स भवति दीवो, ताणं, सरणं, गती पइट्ठा १ निव्वाणं २ निव्वुई ३ समाही ४ [1]सत्ती

[1] क. सती।

५ कित्ती ६ कन्ती, ७ रती य ८ विरती य ९ सुयग १० तित्ती ११ दया १२ विमुत्ती १३ खंती १४ सम्मत्ताराहणा १५ महंती १६ बोही १७ बुद्धी १८ धिती १९ समिद्धी २० रिद्धी २१ विद्धी २२ ठिती २३ पुट्ठी २४ नंदा २५ भद्दा २६ विसुद्धी २७ लद्धी २८ विसिट्ठदिट्ठी २९ कल्लाणं ३० मंगलं ३१ पमोओ ३२ विभूती ३३ रक्खा ३४ सिद्धावासो ३५ अणासवो ३६ केवलीणट्ठाण ३७ सिवं ३८ समिई ३९ सील(लं) ४० संजमो ४१ यिय सील 'परिघरो ४२ संवरो ४३ य गुत्ती ४४ ववसाओ ४५ उस्सओ ४६ जन्ना ४७ आययणं ४८ जतण ४९ मप्पमावो ५० अस्सासो ५१ वीसासो ५२ अभओ ५३ सव्वस्सवि अमाघाओ ५४ चोक्खपवित्ता ५५ सूती ५६ पूया ५७ विमल ५८ पभासा ५९ य निम्मलतर ६० त्ति, एवमादीणि नियगगुण निम्मियाइं पज्जवनामाणि होंति अहिंसाए भगवती ए। सूत्रम् १। २१॥

छाया-"तत्र प्रथमं अहिंसा यासा सदेव मनुजाऽसुरस्य लोकस्य भवति द्वीप, त्राण, शरणं, गति, प्रतिष्ठा-१ निर्वाणम् २ निर्वृत्ति ३ समाधि ४ शक्तिः ५ कीर्ति ६ कान्ति ७, रतिश्च ८ विरतिश्च ९ श्रुताङ्ग तृप्ति १० ११, दया १२ विमुक्तिः १३ क्षान्ति १४, सम्यक्त्वाऽऽराधना १५, महती १६, बोधि १७, बुद्धि १८ धृति १९, समृद्धि २०, ऋद्धि २१, वृद्धि २२, स्थिति २३, पुष्टि २४, नन्दा २५ भद्रा २६, विशुद्धि २७, लब्धि २८, विशिष्ट दृष्टि २९, कल्याणम् ३०, मङ्गलम् ३१ प्रमोद ३२, विभूति ३३, रक्षा ३४, सिद्धावास ३५, अनास्रव ३६, केवलिनां स्थानम् ३७, शिवम् ३८, समिति ३९, शीलम् ४०, संयम ४१ इति च, शीलपरिगृह ४२, संवर ४३, च गुप्ति ४४, व्यवसाय ४५, उच्छ्रय ४६ यज्ञ ४७, आयतनम् ४८, यतना ४९ अप्रमाद ५० आश्वास ५१, विश्वास ५२ अभय ५३ सर्वस्याप्यमाघात-अमारि ५४, चोक्ष पवित्रा ५५, शुचि ५६ पूजा-पूजा ५७, विमला ५८, प्रभासा ५९ च निर्मलतरा ६०। इत्येवमादीनि निजकगुणनिर्मितानि पर्यायनामानि भवन्ति-अहिंसाया भगवत्या ॥सू० १। २१॥

अ ज०- प्रथम संवर का स्वरूप कहते हैं-(तत्थपढमं अहिंसा) उन पांच संवरों में अहिंसा प्रथम संवर है ( जा सा ) जो यह अहिंसा ( सदेव-मणुया-सुरस्स लोगस्स दीवा ताणं भवति ) देवता मनुष्य तथा असुर सहित लोक के लिए संसार

१ क आसयणा। २ यात इति वा।

समुद्र में डूबते हुए को द्वीप के समान आश्रयदाता या दीपक की तरह मार्ग दर्शक है इसलिये त्राण-विपत्ति से रक्षण करने वाली होती है, 'फिर यह अहिंसा'-( सरणं गई ) शरण-सम्पत्तिदायक या घरके समान रक्षक तथा गति याने कल्याणार्थिओं के आश्रयण करने योग्य है। अब अहिंसा के नाम कहते हैं-( पइट्ठा ) सब गुण तथा सुख इसमें रहते हैं इसलिये इसे 'प्रतिष्ठा' कहते हैं ( निव्वाणं निव्वुई ) मोक्ष का हेतु तथा चित्त शान्ति का कारण होने से यह 'निर्वाण' तथा निर्वृति कहाती है, ( समाही ) समता का कारण होने से 'समाधि' ( सत्ती ) आत्मबल का कारण होने से यह 'शक्ति' अथवा शान्ति है ( कित्ती ) सुयश के कारण होने से कीर्ति ( कंती ) कान्ति-कमनीयता का कारण ( रती य ) और रति-सन्तोष का कारण ( विरतीय ) और विरति-हिंसा रूप पाप से निवृत्ति वाली ( सुयंगतित्ती ) श्रुताङ्ग-श्रुतज्ञान इसका कारण है, और तृप्ति-आत्मसन्तोष का कारण होने से यह तृप्ति है ( दया ) दया-प्राणिओं की रक्षा ( विमुत्ती ) विमुक्ति-बन्धमुक्ति का कारण (खंती) क्षान्ति-क्रोध निग्रहरूप ( सम्मत्ताराहणा ) सम्यक्त्वाराधना-सम्यक्त्वधर्म की आराधना करने वाली ( महती ) महती-सभी धार्मिक अनुष्टानो का इसमें समावेश होने से यह बृहती है ( बोही ) सद्धर्म की प्राप्ति अहिंसारूप है, अत अहिंसा को 'बोधि' कहते है अथवा सम्यक्त्व का कारण होने से अहिंसा 'बोधि' कहाती है ( बुद्धी ) बुद्धि-बुद्धि की सफलता का कारण ( धिती ) धृति-चित्त की स्थिरता से पालने योग्य ( समिद्धी रिद्धी ) ऋद्धि समृद्धि का कारण होने से अहिंसा भी 'समृद्धि ऋद्धि' नामवाली है ( विद्धी ) वृद्धि ( ठिती ) अनादि अनन्त मोक्ष स्थिति का कारण होने से 'स्थिति' ( पुट्ठी ) पुष्टि-पुण्यवृद्धि का कारण, ( नंदा ) नन्दा-समृद्धि दायक ( भद्दा ) भद्रा-कल्याण करने वाली ( विसुद्धी ) विशुद्धि-आत्मशुद्धि का कारण ( लद्धी ) लब्धि-विशिष्टलब्धिओं का हेतु ( विसिट्ठदिट्ठी ) उत्तम दृष्टि रूप होने से विशिष्ट दृष्टि ( कल्लाण मंगलं ) कल्याण और विघ्न विनाशक होने से इसको मङ्गल भी कहते हैं ( पमोओ ) प्रमोद-हर्षोत्पादक ( विभूती ) सर्व वैभव का कारण होने से विभूति ( रक्खा ) रक्षा ( सिद्धावासो ) सिद्धावास-मोक्षवास-का कारण ( अणासवो ) अनास्रव-कर्मबन्ध के निरोध का उपाय ( केवलीणठाणं ) केवलिओं का स्थान ( सिव ) उपद्रव रहित होने से शिव ( समिई ) समिति-सम्यक् प्रवृत्ति ( सील ) पवित्र आचार रूप होने से शील ( संजमोत्ति य ) और यतना प्रधान होने

से इसे संयम कहते हैं, ( सील परिघरो ) शील परिगृह–चारित्र का स्थान ( संवरो य ) संवर और ( गुत्ती ) गुप्ति–अशुभ योगों का निरोध ( ववसाओ ) व्यवसाय–उत्तम प्रकार का निश्चय ( उस्सओ ) उच्छ्रय–भाव की उन्नति ( जन्नो ) यज्ञ–भाव से वीतराग की आराधना के कारण अहिंसा यज्ञ कहाती है ( आयतणं ) आयतन–गुणों का मन्दिर, ( जयण ) यजन–अभयप्रदान अथवा यतन प्राणिरक्षण ( अप्पमाओ ) अप्रमाद–प्रमाद का परिहार ( आसासो ) आश्वास–प्राणियों के लिये आश्वासनरूप ( वीसासो ) विश्वास–विश्वास का कारण ( अभओ सव्वस्स वि ) अभय–प्राणिमात्र के लिये निर्भय स्थान ( अमाघाओ ) अमाघात–अमारी ( चोक्ख पवित्ता ) चोक्ष पवित्रा–अतिशय पवित्र ( सूई ) शुचि–भावशुद्धिरूप ( पूया ) पवित्रता का कारण होने से पूजा या भाव से देवाराधन का अङ्ग होने से अहिंसा पूजा भी कहाती है ( विमल ) विमल–अशुभ भावरूप मल से रहित ( पभासा ) प्रभासा–अतिशय दीप्तिशाली ( य निम्मलतर त्ति ) और निर्मलतर–अतिशय निर्मल या जीव को निर्मल बनाने वाली है,( एवमाईणि नियय गुण निम्मियाइं ) इस प्रकार के निज गुणों से या अपने यथार्थ गुणों से बने हुए ( अहिंसाए भगवईए पज्जव नामाणि होंति ) अहिंसाभगवती के पूर्वोक्त पर्याय नाम होते हैं॥ सू० १॥ १॥

भावार्थ–सूत्रकार कहते हैं कि हे सुव्रत जम्बूमुने ! ये पूर्वोक्त अहिंसा आदि पंच महाव्रत संसार की वृत्ति देने वाले, श्रुत सागर में कहे गये और तप संयम के रक्षक हैं। शमशील गुणों की प्रधानता वाले, तथा सर्व सत्त्वानुकम्पक और नरक तिर्यग आदि गतियों के उच्छेदक हैं। सब तीर्थंकरों से कहे गये ये कर्मरज के विदारक तथा सैकड़ों भवों के दुर्गति के नाशक और शुभ के प्रवर्तक हैं। कायर पुरुषों को पालन करने में कठिन व सत्पुरुषों से सेवित हैं। अतएव इन पांच संवरद्वारों को भगवान ने कहे हैं।

अहिंसा का स्वरूप–इन पांचों में अहिंसा प्रथम संवर है। जो देव और मनुष्यों से युक्त समस्त संसार का दीपरूप होने से रक्षण करने वाली है। लोकार्थियों और परमार्थियों से प्रशंसित मानी गई है। उसके गुणनिष्पन्न नाम इस प्रकार हैं–" [illegible] १ निर्वाण २ निर्वृति ३ समाधि ४ शक्ति ५ कीर्ति ६ कान्ति ७ रति ८ और विरति ९ श्रुताङ्ग और तृप्ति १०–११ दया १२ विमुक्ति १३ क्षान्ति १४ सम्यक्त्वआराधना १५ महती १६ बोधि १७ बुद्धि १८ धृति १९ समृद्धि २० ऋद्धि २१ वृद्धि २२ स्थिति २३ पुष्टि २४ नन्दा २५ भद्रा २६ विशुद्धि २७ लब्धि २८ विशिष्टदृष्टि २९ कल्याण ३०

मङ्गल ३१ प्रमोद ३२ विभूति ३३ रक्षा ३४ सिद्धयावास ३५ अनास्रव ३६ केवलिस्थान ३७ शिव ३८ समिति ३६ शील ४० संयम ४१ और शील परिग्रह ४२ संवर ४३ गुप्ति ४४ व्यवसाय ४५ उच्छ्रय ४६ यज्ञ ४७ आयतन ४८ यजन या यतन ४६ अप्रमाद ५० आश्वास ५१ विश्वास ५२ अभय ५३ अमाघात-अमारि ५४ चोक्ष पवित्रा ५५ शुचि ५६ पूता अथवा पूजा ५७ विमल ५८ प्रभासा ५६ और निर्मलतरा ६० इत्यादि नियतगुणों से निष्पन्न भगवती अहिंसा के 'पर्यायनाम' होते हैं। मतलब यह है कि अहिंसा के भीतर छिपे-जो जो गुण हैं, तावन्मात्र के प्रकाशक ये ६० नाम हैं। इनके वाचक नाम तो सहस्रों हो सकते हैं। सूत्र १। २१॥

मूल-"एसा सा भगवती अहिंसा, जा सा भीयाण विव सरणं, पक्खीणं पिव [1]गमणं, तिसियाणं पिव सलिलं, खुहियाणं पिव असणं, समुद्दमज्झेव पोतवहणं, चउप्पयाणं व आसमपयं, दुहट्टियाणं च (व) ओसहिबलं, अडवीमज्झे विसत्थगमणं, एत्तो विसिट्ठतरिका अहिंसा जासा पुढविजल अगणि मारुय वणस्सइ बीज हरित जलचर थलचर खहचर तसथावर सव्वभूय खेमकरी। एसा भगवती अहिंसा जासा अपरिमियनाण दंसण धरेहिं, सीलगुण विणय तव संजम नायकेहिं, तित्थंकरेहिं, सव्वजगजीव वच्छलेहि, तिलोगमहिएहिं, जिणचदेहिं, सुट्ठुदिट्ठा, ओहिजिणेहिं विण्णाया, उज्जुमतीहिं विदिट्ठा, विपुलमतीहिं विविदिता, पुव्वधरेहिं अधीता, वेउव्वीहिं पतिन्ना, आभिणिबोहियनाणीहिं, सुयनाणीहिं, मणपज्जवनाणीहिं, केवलनाणीहिं, आमोसहिपत्तेहिं, खेलोसहिपत्तेहिं, जल्लोसहिपत्तेहिं, विप्पोसहिपत्तेहिं, सव्वोसहिपत्तेहिं, बीजबुद्धीहिं, कुट्ठबुद्धीहिं, पदाणुसारीहिं, संभिन्नसोतेहिं, सुयधरेहिं, मणबलिएहिं, वयबलिएहिं, कायबलिएहिं, नाणबलिएहिं, दंसणबलिएहिं, चरित्तबलिएहिं, खीरासवेहिं, महुआसवेहिं, सप्पियासवेहिं, अक्खीणमहाणसिएहिं, चारणेहिं, विज्जाहरेहिं, चउत्थभत्तिएहि, [2] एवं जाव छम्मासभत्तिएहिं, उक्खित्तचरएहिं, निक्खित्तचरएहिं, अंतरचरएहिं, पंतचरएहिं, लूहचरएहिं, समुदाणचरएहिं, अन्नइलाएहि, मोणचरएहिं, संसट्ठकप्पिएहिं, तज्जाय संसट्ठकप्पिएहिं, उवनिहिएहिं, सुद्धेसणिएहिं, संखादत्तिएहिं, दिट्ठलाभिएहिं, अदिट्ठलाभिएहिं, पुट्ठलाभिएहिं, आ-

१ गगण-इति सगतम्। २ क. फासु ओवणीय।

यंविलिएहिं, पुरिमड्डिएहिं, एकासणिएहिं, निव्वितिएहि, भिक्खपिंडवाइएहिं, परिमियपिंडवाइएहि, अंताहारेहि, पंताहारेहि, अरसाहारेहि, विरसाहारेहि, लूहाहारेहि, तुच्छाहारेहि, अंतजीविहि, पंतजीविहि, लूहजीविहि, तुच्छजीविहि, उवसंतजीविहि, पसंतजीविहि, विवित्तजीविहि, अखीरमहुसप्पिएहि, अमज्जमंसासिएहि, ठाणाइएहि, पडिमंठाइहि, ठाणुक्कडिएहि, वीरासणिएहि, णेसज्जिएहि, डंडाइएहि, लगंडसाईहि, एगपासगेहि, आयावएहि, अप्पावएहि, अणिट्ठुभएहि, अकंडूयएहिं, धुतकेसमंसुलोमनखेहि, सव्वगाय पडिकम्मविप्पमुक्केहि, समणुचिण्णा, सुयधर–विदितत्थकायबुद्धीहि, धीरमतिबुद्धिणो य जेते आसीविस उग्गते य कप्पा, निच्छयववसाय पज्जत्तकय मतीया, णिच्चं सज्झायज्झाण–अणुबद्ध धम्मज्झाणा, पंचमहव्वय–चरित्तजुत्ता, समितासमितिसु समित पावा, छव्विहजगवच्छला निच्चमप्पमत्ता, एएहि, अन्नेहि य जासा भगवती।

छाया–"एषा सा भगवती अहिंसा, या सा भीतानामिव शरणम्, पक्षिणामिव गम(ग)नं, तृषितानामिव सलिलम्, क्षुधितानामिवाऽशनम्, समुद्रमध्येव पोतवहनम्, चतुष्पदानां वाऽऽश्रमपदम्, दुःखस्थितानाञ्चौषधीबलम्, अटवीमध्य 'विश्वस्त'(सार्थ) गमनम्, इतोविशिष्टतरिकाऽहिंसा, या सा पृथवीजलाऽग्नि मारुत वनस्पति बीज हरित जलचर स्थलचर खेचर त्रसस्थावर सर्वभूत क्षेमकरी। एषा भगवती–अहिंसा यासाऽपरिमितज्ञान दर्शनधरैः, शीलगुणविनयतप संयमनायकैस्तीर्थङ्करैः, सर्व जगज्जीववत्सलैः, त्रिलोकीमहितैर्जिनचन्द्रैः सुदृष्टा, अवधिजिनैर्विज्ञाता, ऋजु मतिभिर्विदृष्टा, विपुलमतिभिर्विविदिता, पूर्वधरैरधीताविकुर्वितैः प्रतीर्णा, आभिनि बोधिकज्ञानिभिः श्रुतज्ञानिभिः मनःपर्ययज्ञानिभिः, केवलज्ञानिभिः, आमर्षौषधिप्राप्तैः श्लेष्मौषधिप्राप्तैर्जल्लौषधिप्राप्तैः, विप्रौषधिप्राप्तैः सर्वौषधिप्राप्तैः, बीजबुद्धिभिः, कुष्ठ बुद्धिभिः, पदानुसारिभिः, संभिन्नश्रोतोभिः श्रुतधरैर्मनोबलिकैः, वचनबलिकैः, काय बलिकैः,–ज्ञानबलिकैर्दर्शनबलिकैश्चारित्रबलिकैः क्षीरास्रवैर्मध्वास्रवैः, सर्पिरास्रवैः रक्षीणमहानसिकैश्चारणैर्विद्याधरैश्चतुर्थभक्तैः रेवं यावत् षण्मासभक्तैः, उत्क्षिप्तचरकैः निक्षिप्तचरकैः रन्तचरकैः प्रान्तचरकैः रूक्षचरकैः, समुदानचरकैः, स्मशाने–र्द्दीपाऽन्नभा जिभिः,–मौनचरकैः संसृष्टकल्पिकैः, तज्जातसंसृष्टकल्पिकैरौपनिधिकैः शुद्धैषणिकैः, संख्यादत्तिकैः दृष्टलाभिकैः, स्पृष्टलाभिकैः, पृष्टलाभिकैराचाम्लिकैः, (आयम्बिलिकैः)

पुरिमार्द्धिकैरेकाशनिकै, र्निर्विकृतिकैर्भिन्नपिण्डपातिकैः, परिमित पिण्डपातिकैरन्ताऽऽहारैः, प्रान्ताऽऽहारैररसाऽऽहारैर्विरसाऽऽहारै, रुक्षाऽऽहारैस्तुच्छाऽऽहारैरन्तजीविभि., प्रान्तजीविभी, रूक्षजीविभिः तुच्छजीविभि रुपशान्त जीविभिः प्रशान्तजीविभिर्विविक्तजीविभिरक्षीरमधुसर्पिष्कैरमद्यमांसाशिभिः, स्थानायितै (स्थानाभिग्राहकै.) प्रतिमास्थायिभिः, स्थानोत्कटुकै., वीरासनकैर्नैषद्धिकै,-दण्डायतिकै,-र्लगण्डशायिभिरेकपार्श्विकैरातापनैरप्रावृतै, रनिष्ठीवकैरकण्डूयकै,-धूतकेशश्मश्रुरोम नखै., सर्वगात्र प्रतिकर्मविप्रमुक्तै. समनुचीर्णा, श्रुतधरविदितार्थकायबुद्धिभिर्धीरमति बुद्धयश्च ये, ते-आशीर्विषोग्रतेज.कल्पा निश्चय व्यवसाय पर्याप्तकृतमतिका नित्य स्वाध्यायध्यानाऽनुबद्ध धर्मध्याना, पञ्चमहाव्रत चरित्रयुक्ता., समिता समितिषु, शमितपापा, षड्विधजगद्वत्सला, नित्यमप्रमत्ता, एतैरन्यैश्च या साऽनुपालिता भगवती।

अन्व०-" (एसा सा भगवती अहिंसा) यह वह भगवती अहिंसा (जासा) जो यह (भीयाण विव सरणं) भीतों-डरे हुए-के लिये रक्षक के समान रक्षा करने वालीसी (पक्खीण पिव गमणं) पक्षिओं के लिये आकाश-गमन-की तरह हित कारी (तिसियाण पिव सलिलं) प्यासो के लिये पानी के समान और (खुहियाणं पिव असणं) भूखों के लिये भोजन की तरह (समुद्दमज्झेव पोतवहणं) समुद्र के मध्यमें जहाज की तरह (चउप्पयाण च आसम पय) चौपाये जीवों के लिये आश्रम स्थान-वाडे-की तरह (दुहट्टियाणं च ओसहिबल) और रोगिओं के लिये औषधी की तरह तथा (अडवीमज्झे विसत्थगमणं) अटवी में भूले हुए-को जैसे सार्थ-जन-समूह का मिलना हितकर होता है (एत्तो विसिट्ठतरिका अहिंसा) इन सबसे अतिशय विशिष्ट अहिंसा प्राणिओं के लिये हितकारिणी है (जासा) जोकि वह (पुढविजल-अगणि-मारुय-वणस्सइ-बीज हरित-जलचर-जयलर-खहचर-तस-थावर-सव्वभूय खेमकरी) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक तथा बीज व हरित एवं जलचर, स्थलचर, खेचर रूप त्रस स्थावर जीवमात्रके लिये क्षेम करने वाली (एसा भगवती अहिंसा) यह भगवती अहिंसा है, (जासा) जो कि (अपरिमिय नाणदसणधरेहिं) अपरिमित ज्ञान और दर्शन को धारण करने वाले (सीलगुण-विणय-तव-संजमनायकेहिं) शील रूप गुण और तप संयम व विनय इनके नायक (सव्वजगजीववच्छलेहिं) सभी जगज्जीवोंके वत्सल (तिलोगमहि-

यहिं ) त्रिलोकके पूजित ( विपरमंदेहिं ) जिनसामान्यमेंचन्द्र के समान एस ( विर्ल करेहिं ) तीर्थंकरों से ( सुदट्ठुदिट्ठा ) अच्छी तरह-केवल ज्ञानरूप मस्तकके द्वारा-देखी गई है ( ओहिजिणेहिं विण्णाया ),अवधिज्ञानियों से सम्यग् जानी गई ( उजु मतीहिंविदिट्ठा ) ऋजुमतियोंसे विशेष रूपसे देखीगई ( विपुलमतीहिंविविदिता ) विशेष माहिणीबुद्धि वाले मनःपर्ययज्ञानियोंसे अच्छ तरह जानी हुई ( पुव्वधरेहिं अधीता ) पूर्वधरोंसे मूलरूप में पढ़ी गई ( वेउव्वीहिं पतिन्ना ) वैक्रियलब्धिवाले मुनियोंसे आजीवन पाली गई है ( आभिणिबोहियनाणीहिं सुयनाणीहिं मणपज्जवनाणीहिं ) आभिनिबोधिक-मतिज्ञान वाले, श्रुतज्ञान वाले और मनःपर्यवज्ञान वाले ( केवलनाणीहिं ) केवलज्ञानी ( आमोसहिपत्तेहिं खेलोसहिपत्तेहिं जल्लोसहिपत्तेहिं ) जिनका-आमर्ष अङ्ग स्पर्शही औषधिरूप है ऐसे आमर्षौषधि प्राप्त, वे श्लेष्मौषधि और जल्लौषधि लब्धिवाले और-जिनके श्लेष्म मेलही औषधि जैसे बन जाते हैं (विप्पो सहि पत्तेहिं सव्वोसहिपत्तेहिं ) जिनके मलमूत्र औषधिरूप हों वैसी लब्धि वालेमुनि-विप्रौषधिप्राप्त और जिनके स्पर्श आदि-सब औषधिका कार्य करते हों वे सर्वौषधिप्राप्त कहाते हैं ( बीयबुद्धीहिं कुट्ठबुद्धीहिं पदाणुसारीहिं ) बीज की तरह अर्थमात्र को पाकर अनेक पदार्थों का ज्ञान करने वाली-बीजबुद्धिवाले, कोष्ठबुद्धि-कोठे की तरह एक वार आये हुए विषयों को सदास्मृति में रखने वाले, पदानुसारी-एक पद से सैकड़ों पदों का अनुसरण करने की बुद्धि वाले, ( संभिन्न सोएहिं ) संभिन्न श्रोत्र-शरीर के सब अवयवों से श्रवण करने की लब्धि वाले अथवा प्रत्येक इन्द्रियों से अन्य इन्द्रिय आदि इन्द्रियविषयों का ज्ञान करने वाले ( सुयधरेहिं ) विशिष्ट श्रुत को धारण करने वाले ( मणबलिएहिं वयबलिएहिं कायबलिएहिं ) मनोबली-निष्प्रकम्पचित्त वाले, वाग्-बली-दृढ प्रतिज्ञावाले और कायबली-परिषहों में स्थिर शरीर वाले, ( णाणबलिएहिं दंसणबलिएहिं चरित्तबलिएहिं ) ज्ञानबली, दर्शनबली-स्थिर श्रद्धावाले, चरित्रबली-निर्मल चरित्र वाले । ( खीरासवेहिं मधुआसवेहिं सप्पिआसवेहिं ) क्षीरास्रव-क्षीर की तरह मधुर वचन वाले, मधु आस्रव-जिसमें मधु के समान वचन में माधुर्य हो वैसी लब्धिवाले, सर्पिरास्रव-घृत की तरह-स्निग्ध वचन रूप लब्धि वाले (अक्खीण महाणसिएहिं ) अक्षीण महानसिक-अपने लिये लाये भोजन से लाखों मनुष्यों को खिलाने पर भी जबतक स्वयं न भोजन करले तबतक वो भोजन बना रहे, वैसी लब्धि वाले ( चारणेहिं ) आकाश गमन की लब्धि वाले चारण-जंघाचारण और

विद्या चारण ऐसे दो प्रकार के हैं ( विज्जाहरेहिं ) विद्याधर-विशिष्ट विद्या वाले ( चउत्थभत्तिएहि एवं जाव छम्मासभत्तिएहिं ) चतुर्थ भक्तिक-उपवास व्रत वाले ऐसे षष्ठ अष्टम आदि यावत् षण्मास भक्त-छ मास के तप करने वाले, ( उक्खित्त चरएहिं निक्खित्तचरएहिं ) उत्क्षिप्त चरक-पकाने के भाजन से बाहर निकाले गये आहार का ही गवेषण करने वाले, निक्षिप्त चरक-थाली आदि में रक्खे हुए आहार की गवेषणा करने वाले ( अंतचरएहिं पंतचरएहि लूहचरएहिं ) अन्तचरक-सेके हुए चने आदि की गवेषणा करने वाले, प्रान्त चरक-खाने से बचे हुए चने आदि तथा बासी पदार्थ की गवेषणा करने वाले, रूक्ष आहार की गवेषणा करने वाले ( समुदाण चरएहिं ) सामूहिक भिक्षा के लिये भ्रमण करने वाले ( अन्नइलाएहिं ) रात्रि के अन्न को खाने वाले ( मोणचरणहिं ) मौनचर्या वाले ( संसट्ठकप्पिएहि तज्जाय ससट्ठकप्पिएहिं ) संसृष्ट-भरे हुए हाथ या पात्र से आहार लेने के कल्प वाले, जो पदार्थ ग्रहण करने के हैं उसीसे भरे हुए हाथ आदि से भिक्षा लेने के कल्प वाले, ( उवनिहिएहिं ) समीप मे भिक्षा के लिये जाने वाले या पास में रहे हुए पदार्थ को ही लेने वाले ( सुद्धेसणिएहिं ) शुद्ध-दोष रहित एषणा वाले ( सखादत्तिएहिं ) ४।६, आदि सख्या प्रधान दत्ति वाले ( दिट्ठलाभिएहि अदिट्ठलाभिएहि ) दृष्ट स्थान से मिली हुई या दृष्ट पदार्थ के भागयुक्त भिक्षा लेने वाले, अदृष्टदाता से अथवा अदृष्ट वस्तु के ग्रहण वाले (पुट्ठलाभिएहिं) महाराज ? यह पदार्थ ले सकते हैं क्या ? इस प्रकार प्रश्न पूर्वक मिले हुए आहार को ग्रहण करने वाले ( आयंबिलिएहिं ) आयंबिल तप वाले (पुरिमड्ढिएहिं) पुरिमार्द्ध-दोपौरुषीके व्रत वाले (एकासणिएहिं) एकाशन करने वाले (निव्वितिएहिं) विगय घी, दही, दूध, आदि रस रहित भोजन करने वाले ( भिन्नपिंडवाइएहिं ) फूटे बिखरे हुए ओदनादि-पिण्ड को ही ग्रहण करने वाले (परिमियपिंड वाइएहिं) घर व भोजन के परिमाणयुक्त पिण्ड-आहार को ग्रहण करने वाले ( अंताहारेहिं ) सेके चने आदि का आहार करने वाले, ( पंताहारेहिं ) प्रान्त आहारी ( अरसाहारेहि ) हिंग आदि के संस्कार रहित अरस आहार करने वाले ( विरसाहारेहिं ) रस रहित-पुराने पदार्थ का आहार करने वाले ( लूहाहारेहिं तुच्छाहारेहिं ) रूक्ष आहारी तथा तुच्छ-अल्प आहार करने वाले ( अत जीविहिं पंत जीविहिं लूह जीविहिं तुच्छ जीविहिं ) अन्त जीवी, प्रान्त जीवी, रूक्ष जीवी और तुच्छ जीवी (उवसंत जीविहिं पसंत

जीविहिं ) अन्तवृ त्ति की अपेक्षा-उपशान्त जीवी-उपशान्त कषाय वाले, वहिवृ त्ति से प्रशान्त जीवी-सौम्य जीवन वाले ( विवित्त जीविहिं ) विविक्त-निर्दोष भक्त आदि से जीने वाले (अखीर महु सप्पिएहिं) दूध, मधु और घृत के त्यागी (अमज्ज मंसासिएहिं ) मद्यमांस रहित भोजन वाले ( ठाणाइएहिं ) ऊर्द्ध्व स्थान-खड़े रहने आदि रूप अभिग्रह करने वाले ( पडिमं ठाईहिं ) प्रतिमा-कायोत्सर्ग से या मासिकी आदि भिक्षु प्रतिमा से रहने वाले ( ठाणुक्कडिएहिं ) उत्कटुक आसन से बैठने वाले ( वीरासणिएहिं ) वीरासन से बैठने वाले ( णेसज्जिएहिं ) निषद्या-आसन विशेषरूप पर्यंकासन ( डंडाइएहिं ) दण्ड की तरह लम्बे-सीधे शयनरूप आसन वाले ( लगंडसाईहिं ) टेढ़े काष्ठ की तरह मस्तक और एड़ी को जमीन पर टेककर कुब्ज सोने वाले ( एगपासगेहिं ) एक पार्श्व से ही सोने वाले ( आयावएहिं ) आतापना लेने वाले ( अप्पावएहिं ) देह ढकने के लिये चादर आदि नहीं रखने वाले ( अणिट्ठुभएहिं ) मुंह से थूक नहीं थूकने वाले ( अकंडुयएहिं ) शरीर को नहीं खुजलाने वाले ( धुत केसमंसुलोमनखेहिं ) केश, दाढ़ी, मूंछ और रोम-कांख आदि के बाल तथा नखों के संस्कार रहित याने इनकी काट छांट नहीं करने वाले ( सव्व गाय पडिकम्म विप्पमुक्केहिं ) सम्पूर्ण शरीर की अभ्यङ्ग आदि से शोभा नहीं करने वाले, पूर्वोक्त विविध गुण-विशिष्ट मुनियों से (समणुचिण्णा) आसेवन की गई अहिंसा तथा ( सुयधर विदितत्थ कायबुद्धीहिं ) श्रुतधर और शास्त्र की अर्थ-राशि को समझने योग्य बुद्धि वाले महात्माओं से पालन की गई है ( धीरमति बुद्धिणोय ) और स्थिर अवग्रहादि मतियुक्त तथा औत्पत्तिकी आदि बुद्धि वाले ( जेते ) जो वे मुनिवर ( आसी विस उग्गतेय कप्पा ) उग्र विषधर नाग के समान उग्र तेजवाले ( निच्छय ववसाय पज्जत्तकयमतीया ) निश्चय-पदार्थ ज्ञान और परिपूर्ण पुरुषार्थ में कृ मति वाले (णिच्चं) सदा (सज्झायज्झाण अणुबद्धधम्मज्झाणा) वाचनादि पञ्च-विध स्वाध्याय तथा ध्यान चित्त निरोध करने वाले व निरन्तर आज्ञा विचय आदि धर्म ध्यान वाले (पंच महव्वयचरित्त जुत्ता) पञ्च महाव्रतरूप चारित्र से युक्त (समिया समितिसु) ईर्या आदि समितियोंमें सम्यक् प्रवृत्ति वाले (समित पावा) उपशम या क्षय कर दिये हैं पाप जिन्होंने ऐसे (छव्विह जगवच्छला) पृथ्वी आदि के छः प्रकार के जीव युक्त जगत के वत्सल हितैषी (निच्चमप्पमत्ता) सदा प्रमाद रहित (एएहिं) इन (अण्णेहिय) और इस प्रकार के अन्य भी महात्माओं से ( जाऽसा अणुपालिया ) जो अहिंसा

अनुकूल रूप से पालन की गई है (सा भगवती) वह भगवती अहिंसा है। इस प्रकार अहिंसा का स्वरूप कहके अब अहिंसकों को क्या करना चाहिए? इसको कहते हैं-"

मूल-"इमं च पुढविदग अगणि मारुय तरुगण तस थावर सव्वभूय संजम दयट्ठयाते सुद्धं उञ्छं गवेसियव्वं, अकतमकारिमणाहूयमणुद्दिट्ठं, अकीयकडं, नवहिय कोडिहिं सुपरिसुद्धं, दसहिय दोसेहिं विप्पमुक्कं, उग्गम उप्पायणेसणासुद्धं, ववगय चुय चाविय चत्त देहं च, फासुयं च, न निसज्ज कहापओयणक्खा सुओवणीयंति, न तिगिच्छामंतमूल भेसज्ज कज्ज हेउं, न लक्खणुप्पायसुमिण जोइस निमित्त कहकप्प उत्तं, न विडंभणाए, नवि रक्खणाते, नवि सासणाते, नवि दंभण रक्खण सासणाते भिक्खं गवेसियव्वं, नवि वंदणाते, नवि माणणाते, नवि पूयणाते, नवि वंदण माणण पूयणाते भिक्खं गवेसियव्वं, नवि हीलणाते, नवि निंदणाते, नवि गरहणाते, नवि हीलण 'निंदण' गरहणाते भिक्खं गवेसियव्वं नवि भेसणाते, नवि तज्जणाते, नवि तालणाते, नवि भेसण तज्जण तालणाते भिक्खं गवेसियव्वं, नवि गारवेणं, नवि कुहण याते, नवि वणीमयाते, नवि गारव कुहवणीमयाए भिक्खं गवेसियव्वं, नवि मित्तयाए, नवि पत्थणाए, नवि सेवणाए, नवि मित्त पत्थण सेवणाते भिक्खं गवेसियव्वं, अन्नाए अगढिए अदुट्ठे अदीणे अविमणे अकलुणे अविसाती अपरितंत जोगी जयण घडण करण चरिय विणय गुण जोग संपउत्ते भिक्खू भिक्खेसणाते निरते, इमंचणं सव्वजीव रक्खण दयट्ठाते पावयणं भगवया सु कहियं अत्तहियं पेचाभावियं आगमेसिमद्दं सुद्धं नेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्ख पावाण विउसमणं ॥ सू० २। २२॥

छाया-"इदञ्च पृथ्वीदकाऽग्नि मारुत तरुगण त्रस स्थावर सर्वभूतसंयम दयार्थाय शुद्धमुञ्छं गवेषणीयम्, अकृतमकारित मनाहूतमनुद्दिष्टमक्रीतकृतम्, नवभिः कोटिभिः

१ क फासु-ओवणीयं।

सुपरिशुद्ध, दशामिश्रदोषैर्विप्रमुक्तम्, उद्गमोत्पादनैषणा शुद्धं व्यपगत च्युत च्यावित त्यक्तदेहं च प्रासुकञ्च न निषद्या कथा प्रयोजनाऽऽख्या श्रुतोपनीतमिति, न चिकित्सा मन्त्र मूल भैषज्यकार्यहेतुकं, न लक्षणोत्पात स्वप्न [ स्मरण ] ज्योतिष निमित्त कथा कुहक प्रयुक्तम्, नापिदम्भनया, नापि रक्षणया, नापि शासनया, नापि दम्भना-रक्षणा-शासनाभिर्भैक्षं गवेषयितव्यम्, नापि वन्दनया, नापि माननया, नापि पूजनया, नापि वन्दना-मानना-पूजनाभिर्भैक्षं गवेषयितव्यम्, नापि हीलनया, नापि निन्दनया, नापि गर्हणया, नापि हीलना निन्दना गर्हणाभिर्भैक्षं गवेषयितव्यम्, नापि भीषणया, नापि तर्जनया, नापि ताडनया, नापि भीषणा तर्जना ताडनाभिर्भैक्षं गवेषयितव्यम्, नापि गौरवेण, नापि क्रोधनया, नापि वनीपकतया, नापि गौरव क्रोधना (कुपना) वनीपकताभिर्भैक्षं गवेषयितव्यम्, नापि मित्रतया, नापि प्रार्थनया, नापि सेवनया, नापि मित्रता-प्रार्थना-सेवनाभिर्भैक्षं गवेषयितव्यम्, अज्ञात अग्रथितः-अगृध्नुः, अदुष्ट, अदीन अविमना अकरुणः अविषादी, अपरितान्तयोगी, यतन घटन करण चरण (चरित) विनय गुण योग सम्प्रयुक्तो भिक्षुर्भिक्षैषणायां निरतः। इदं च नतु सर्वजीव रक्षण दयार्थाय प्रवचनं भगवता सुकथितम्,-आत्महितं, प्रैत्यभाविकम्, आगमिष्यद्भद्रं, शुद्धं न्यायोपेतम् अकुटिलमनुत्तरम्, सर्वदुःखपापानां व्युपशमनम्। सूत्र २। २२॥

अन्व०-"( इमं च पुढवि दग अगणि मारुय तरुगण तसथावर सव्वभूय संयम दयट्ठयाए ) और पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वृक्ष समूह, और त्रस, स्थावर रूप सब जीवों पर संयम व दया के लिये इस ( सुद्धं उञ्छं गवेसियव्वं ) शुद्ध उञ्छ-अनेक घरों की भिक्षा से प्राप्त आहार की गवेषणा करनी चाहिए जो आहार-( अकतम कारिमणाहूयमणुद्दिट्ठं ) साधुओं के लिये किया हुआ न हो, न दूसरों से बनवाया हो अनाहूत-गृहस्थ के द्वारा निमन्त्रण पूर्वक दिया हुआ याने बुलाके दिया गया भी नहीं हो अणु-उद्देशिक दोषयुक्त नहीं हो, ( अकीयकडं ) साधु के लिए खरीदकर लाया हुआ नहीं हो, इसी बात को विस्तार से कहते हैं-( नवहिय कोडिहिं सुपरिसुद्धं ) और जो नव कोटि से विशुद्ध हो ( दसहिय दोसेहिं विप्पमुक्कं ) शङ्कित आदि दश दोषों से रहित और ( उग्गम उप्पाय एसणासुद्धं ) उद्गम-उत्पादन और एषणा से शुद्ध-निर्दोष हो ( ववगय चुय चावियचत्तदेहं च ) जिस आहार से स्वयं जीव अलग होगये तथा पृथ्वी आदि के जीव जिसमें चव-मर गये अथवा दाता ने जिसे

निर्जीव कर दिये वैसे त्यक्त देह-निर्जीव बने हुए अथवा अपगत-सामान्यरूप से अचेतनता प्राप्त, च्युत-जीवन क्रियाओं से भ्रष्ट, च्यावित-आयुक्षय के कारण जीवन क्रियाओं से रहित और त्यक्तदेह-जीव के संसर्ग से होने वाली वृद्धि से हीन ( फासुयच ) और प्राशुक-निर्जीव आहार को ( न निसज्जकहापओयणक्खासु ओवणीयंति ) 'गोचरी में गया हुआ' घरमें बैठकर दी जाने वाली धर्मकथा के प्रयोजन से या दाता को खुश करने के लिये नट की तरह प्रयुक्त कथा-प्रतिबद्ध श्रुत के कारण जो नहीं लाया गया है वैसी भिक्षा की गवेषणा करनी चाहिए। ( तिगिच्छा मंत मूल भेसज्ज कज्जहेउं ) चिकित्सा-रोग के प्रतीकार, मन्त्र, मूलकृताञ्जलि आदि औषधी की जड और भैषज-अनेक द्रव्यों से बनी दवा आदि के हेतु से भिक्षा ( न ) नहीं लेनी चाहिए ( नलक्खणुप्पायसुमिणजोइस निमित्तकहकप्पउत्त ) लक्षण-स्त्री पुरुष आदि के चिह्न विशेष, उत्पात-प्रकृति के अतिशय विकार धूल वृष्टि आदि, स्वप्न, ज्योतिषशास्त्र, निमित्त-चूडामणि आदि निमित्त शास्त्र, कथा-अर्थ कथा आदि और दूसरे को विस्मय उत्पन्न करने के प्रयोग इन कारणों से आकृष्ट होकर दाता ने जो द्रव्य देनेको निकाले हैं उनको नहीं ग्रहण करे (नवि डंभणाए) माया कपटके प्रयोग से भी भिक्षा नहीं लें ( नवि रक्खणाते) दाताके पुत्र आदि की रक्षा के प्रयोग से भी भिक्षा नहीं लें ( न वि सासणाते ) शिक्षा सिखा कर भी भिक्षा नहीं लें अथवा अनुशासन करके भी भिक्षा नहीं लें ( नवि दंभणरक्खण सासणाते ) कपट, रक्षा, एवं अनुशासन का एकसाथ प्रयोग करके भी ( भिक्खं गवेसियव्व ) भिक्षाकी गवेषणा नहीं करनी चाहिए ( नवि वंदणाते ) वन्दना करके भी भिक्षा नहीं लें ( नवि माणणाते ) आसन आदि से दाता का मान करके भी भिक्षा नहीं लें ( नवि पूयणाते ) मस्तक पर चन्दन लगाना या नमकर मुंह पत्ती आदि देने रूप पूजा से भी भिक्षा नहीं लें ( नवि वदण माणण पूयणाते भिक्खं गवेसियव्व ) वन्दन मान और पूजा के एक साथ प्रयोग से भी भिक्षा नहीं लें ( नवि हीलणाते ) दाता की जाति आदि की हीलना करके भी नहीं लें, ( नवि निंदणाते ) दाता की या देय वस्तु की निन्दा करके भी नहीं लें, ( नविगरहणाते) हीलना करके भी नहीं लें ( नवि हीलणनिंदणगरहणाते भिक्ख गवेसियव्वं ) हीलना, निन्दा और गर्हणा के एक साथ प्रयोग करके भी भिक्षा की गवेषणा नहीं करनी चाहिए, (नवि भेसणाते) भय दिखाकर भी भिक्षा नहीं लें, ( नवि तज्जणाते ) तर्जन करके भी नहीं लें ( नवि तालणाते ) चपेटा आदि

की साधना से भी भिक्षा नहीं लेवे। (न वि भेसण्ण तज्जण तासणाते भिक्खं गवे सियव्वं) भय प्रदर्शन, तर्जन और ताड़ना इन तीनों के साथ प्रयोग से भी भिक्षा नहीं लें (नवि गारवेणं) मैं राज पूजित हूं इस प्रकार गर्व से भी भिक्षा नहीं लें। (नवि कुहणा याते) दरिद्रता के भाव से या क्रोध करके भी नहीं ले (नवि वणीमयाते) मंगतों की तरह दीनता दिखाकर भी नहीं लें (नवि गारव कुहणवणीमयाए भिक्खं गवसियव्वं) गर्व, क्रोध तथा याचकता इन तीनों के प्रयोग से भी भिक्षा की गवेषणा नहीं करे (नवि मित्तयाए) मित्रता करके भी भिक्षा नहीं लें (नवि पत्थणाए) प्रार्थना करके भी न ले (नवि सेवणाए) सेवा करके भी भिक्षा नहीं ले (नवि मित्त पत्थण सेवणाते भिक्खं गवेसियव्वं) मैत्री, प्रार्थना व सेवा इन तीनों के साथ प्रयोग से भी भिक्षा की गवेषणा नहीं करनी चाहिए (अन्नाए) अपना सम्बन्ध नहीं कहने स जो गृहस्थों से नहीं जाना गया है (अगढिए) तथा अन्न लेने पर भी मोह रहित अथवा आहार में गृध्नुता रहित, (अदुट्ठे) अदुष्ट—आहार पर या दाता पर द्वेष नहीं करने वाले (अदीणे) क्षोभ रहित (अविमणे) उदासीनता रहित (अकलुणे) दीनता रहित (अविसाती) विषाद रहित (अपरितंत जोगी) सत्कर्म में थकावट रहित मन, वचन आदि योग वाला होने से (जयण घडण करण चरिय विणय गुण जोग संपउत्ते) यतन प्राप्त संयम योग में उद्यम और अप्राप्त संयम योग की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने वाला तथा विनय का सेवन करने वाला व क्षमा आदि गुणों से युक्त जो (भिक्खू) साधु (भिक्खेसणाते निरते) भिक्षा की एषणा से निरत—तत्पर रहता है (इमंचणं सव्वजीव रक्खण दयट्ठाते) और सब जगत के जीवों की रक्षा रूप दया के लिये इस (पावयणं) प्रवचन को (भगवया) भगवान् ने (सुकहियं) सम्यक प्रकार से कहा है (अत्तहियं) जीवों के हित रूप आर (पेच्चाभावियं) परलोक में सुख देने वाला है (आगमेसिभद्दं) भविष्य में कल्याण का कारण व (सुद्धं) शुद्ध है (नेयाउयं) न्याययुक्त, (अकुडिलं) अकुटिल-सरल, (अणुत्तरं) सब श्रेष्ठ तथा (सव्वदुक्खपावाणं) सब दुःख और पापकर्मों का (विउसमणं) उपशम न करने वाला है ॥२।२२॥

भावार्थ—"यह अहिंसा भगवती प्राणियों की परम रक्षा करने वाली है। भयभीत प्राणियों को जैसे शरण का पक्षियों को आकाशगमन का, प्यासे को पानी का,

भूखे को भोजन का, समुद्र में डूबते हुए को जहाज का, चतुष्पदोंको आश्रयस्थानका, रोगियों को औषधिका और अटवीमें भूले हुए को सार्थ का आधार होता है। इससे भी अधिक अहिंसा प्राणिओं के लिये हित साधिका है। क्योंकि भयभीत आदि को शरण आदि से कभी हित के बदले अहित भी हो सकता है, परन्तु अहिंसा से होने वाला हित ध्रुव और अटल है। जो पृथ्वी जल आदि त्रसस्थावर जीवमात्र के लिये क्षेम व रक्षण करने वाली है, वह अहिंसा ही संसार मे भगवती है अन्य नहीं।

इसको जानने वाले व सेवन करने वाले भी विशिष्ट ज्ञानी महापुरुष हैं, जैसे अनन्तज्ञानी शीलसंयम आदि गुणों के प्रधान नायक, त्रिलोकी पूज्य और जगत् के हितैषी तीर्थङ्कर महाराज ने केवलज्ञानसे इसका सम्यक् निश्चय एवं अनुभव किया है। अवधिज्ञानी और सामान्यविशेष दृष्टिवाले मन.पर्यवज्ञानिओं से अच्छी तरह जानी व देखी गई है। पूर्वधारिओं ने शास्त्र में इसका अध्ययन किया है। वैक्रिय लब्धिवाले तथा मतिज्ञानी व केवलज्ञानी महात्माओं ने आजीवन इसका पालन किया है।

तपस्या की विशिष्ट साधना से कई महात्मा अतिशय शक्ति सम्पन्न होजाते है, जिनको लब्धिधारक कहते हैं। इस प्रकार के लब्धिधारिओं में से कुछ का यहां निम्नलिखित उल्लेख मिलता है। जैसे कि स्पर्शमात्र से रोग निवारण करने की लब्धि वाले आमर्षौषधिक। ऐसे कइओं के श्लेष्म रोगनिवारक होते है। एक ऐसीलब्धिधारी होते हैं कि उनके शरीर पर का मल रोगनिवारक होता है। कई महात्माओं के मलमूत्र तक रोगनिवारक होते हैं। किसी महात्मा के शरीर की सभी चीजें औषधिवत् रोगनिवारक होती हैं। बीजबुद्धि, कोष्ठबुद्धि और पदानुसारी आदि ये सब विशिष्टबुद्धिधारक होते हैं। मन, वाणी और शरीर के स्थिर बल को धारण करने वाले तथा निर्दोष ज्ञानादि रत्नत्रय को धारण करने वाले हैं। इसलिये इनके वचन मानो क्षीर मधु और घृत के जैसे मधुर स्निग्ध एवं पौष्टिक होते हैं। अक्षीण महानस लब्धिवाले स्पष्ट हैं। जघा या विद्या के बल से आकाश मार्ग मे चलने की विशिष्ट शक्ति वाले चारण कहाते हैं। चतुर्थभक्त-उपवास से लेकर छः मास तक के तपस्वी मुनिओं ने इसका आराधन किया। ऐसे ही उत्क्षिप्त आदि

विविध अभिग्रहों से जो भिक्षा करने वाले हैं जैसे उपशान्त दशा वाले निर्दोष आहार के ग्राहक मुनियोंसे सेवित हैं।

सामान्यतया मुनि लोग मद्य मांस रहित भोजन वाले, और अधिकता से दूध घृत तथा मधु के वर्जन करने वाले होते हैं। कई अनुकूलता के अनुसार स्थाना-चित एवं विविध आसन वाले होते हैं।

विशेष इस प्रकार है-सिंहासन पर पांव लटका के बैठा हुआ पुरुष जब आसन के हटाने पर भी उसी तरह बैठा रहे उसको वीरासन कहते हैं। आतापना करने वाले यावत्, जो सदा प्रमाद रहित हैं। ऐसे और अन्य विशिष्ट व्रतियों से जो पालन की गई वह भगवती अहिंसा प्रथम संवर रूप है।

आगे अहिंसकों को कैसी और किस प्रकार से भिक्षा लेनी चाहिए? इस बातको दिखाते हैं।

पृथ्वी आदि सभी प्राणी मात्र के संयम तथा दया के लिये मुनि को निम्न प्रकार की शुद्ध भिक्षा लेनी चाहिए, जो आहार साधु के लिये नहीं किया हो और कराया गया भी नहीं हो। पुलाकर दिया हुआ और साधु के लिये खरीदा हुआ भी नहीं हो। नव कोटि शुद्ध तथा ४२ प्रकार के एषणा दोषों से रहित यावत् निर्दोष निर्जीव हो वैसा ले सकते हैं। किन अविधियों को टालकर लेना यह बताया जाता है-"

घरमें बैठकर कथा सुनानेसे मिलाहुआ नहीं लेना। चिकित्सा,मन्त्र,मूल आदि प्रयोग बताकर भी भिक्षा नहीं लेनी चाहिए। इसी प्रकार शारीरिक लक्षण आदि बताकर भी भिक्षा प्राप्त नहीं करे।कपट,रक्षा और अनुशासन करके तथा स्तुति,मान या पूजा के द्वारा भी भिक्षा ग्रहण नहीं करे। गृहस्थकी हीलना,निन्दा और गर्हा करके अथवा कराना, ताड़ना और तर्जना से भी भिक्षा नहीं ले। गर्व क्रोध या भिखारी की तरह दीनता दिखाकर एवं मैत्री, प्रार्थना तथा सेवा के द्वारा भी भिक्षा प्राप्त नहीं करे अथवा गृहस्थ को बिना किसी प्रकार का स्वार्थ भय और दीनता दिखाये मुनि भिक्षा ग्रहण करे। इससे अपनी मोह-वृद्धि और गृहस्थों में स्वार्थ बुद्धि नहीं होगी ऐसे मुनियों का स्वरूप निम्न प्रकार है-

न अपना परिचय गृहस्थों को स्वयं नहीं देते और न आहार आदि में आसक्त होते हैं। द्वेष लोभ व उदासीनता से दूर, नहीं मिलने पर भी

खेद ग्लानि नहीं करते । बिना विश्रान्ति के योगशील बने रहते है । यावत् ऐसे भिक्षु भिक्षैपणा में तत्पर रहते है । अहिंसा एवं अहिंसक साधु के स्वरूप को कहने वाले इस प्रवचन को भगवान् महावीर ने जगज्जीवो के रक्षणार्थ कहा है। यह आत्मा को हितकारी व परलोक में सुखदायी और भविष्य में भद्र का कारण है। शुद्ध न्याययुक्त तथा मोक्ष का सर्व श्रेष्ठ सरल मार्ग है । इससे सब दु ख और पापो का शमन होता है।

अब पूर्वोक्त अहिंसा व्रत की पांच भावनाओ को कहते है-"

मूल-"तस्स इमा पंच भावणातो पढमस्स वयस्स होंति पाणातिवाय-वेरमण-परिरक्खणट्ठयाए, पढमं ठाण-गमण-गुण-जोग-जुंजण-जुगंतर निवातियाए दिट्ठीए ईरियव्वं, कीडपयंग-तस-थावर-दयावरेणनिच्चं पुप्फ-फल-तय-पवाल-कंद-मूल-दग-मट्टिय-बीज-हरिय-परिवज्जिएण समं, एवं खलु सव्व पाणा न हीलियव्वा, न निंदियव्वा, न गरहियव्वा, न हिंसियव्वा, न छिंदियव्वा, न भिंदियव्वा, न वहेयव्वा, न भयं दुक्खंच किंचिलब्भा पावेउं, एवं ईरिया समिति जोगेण भावितो भवति अतरप्पा असबलमसंकिलिट्ठ-निव्वण-चरित्त-भावणाए अहिंसए संजए सुसाहू ॥ १ ॥

बितीयं च मणेण पावएणं पावगं अहम्मियं दारुणं निस्संसं वहबंध परिकिलेस बहुलं, ( भय ) जरा मरण परिकिलेस-संकिलिट्ठं न कयावि मणेण पावतेणं पावगं किंचि वि झायव्वं, एवं मणसमितिजोगेण भावितो भवति अंतरप्पा, असबलमसंकिलिट्ठ-निव्वण-चरित्त भावणाए अहिंसए संजए सुसाहू ॥ २ ॥

ततियं च वतीते पावियाते पावगं[1] न किंचिवि भासियव्वं, एवं वति समिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा, असबलमसंकिलिट्ठ-निव्वण-चरित्त भावणाए अहिंसओ संजओ सुसाहू ॥ ३ ॥

चउत्थं आहार एसणाए सुद्धं उंछं गवेसियव्वं, अन्नाए अगढिते[2] अदुट्ठे,[3] अदीणे, अकलुणे, अविसादी, अपरितंत जोगी जयण-घडण-करण

१—क० अहम्मिक दारुणं निसस वह बंध परिकिलेस बहुल जरा मरण परिकिलेस संकिलिट्ठ, नकयाविवइए पावियाए (ओ) पावग ।
२ क अकहिए। ३ असिट्ठे।

चरिय-विणय-गुण जोग संपओगजुत्ते भिक्खू भिक्खेसणाए जुत्ते, समुदाणेऊण भिक्खचरियं उंछ घेत्तूण आगतो गुरु जणस्स पासं, गमणागमणातिचारे पडिक्कमण पडिक्कंते, आलोयणदायणं च दाऊण गुरुजणस्स गुरुसंदिट्ठस्स वा, जहोवएसं निरइयारं च अप्पमत्तो पुणरवि अणेसणाए पयतो पडिक्कमित्ता पसंते आसीण सुहनिसन्ने मुहुत्तमेत्तं च झाण-सुहजोग-नाण-सज्झाय-गोवियमणे, धम्ममणे, अविमणे, सुहमणे, अविग्गहमणे, समाहियमणे, सद्धा संवेगनिज्जरमणे, पवयण वच्छल्लभावियमणे, उट्ठेऊण य पहट्ठतुट्ठे जहारायणियं निमंतइत्ता य, साहवे भावओ य विइण्णे य गुरुजणेणं उपविट्ठे, संपमज्जिऊण ससीसं कायं, तहा करयलं, अमुच्छिते, अगिद्धे, अगढिए, अगरहिते, अणज्झोववण्णे, अणाइले, अलुद्धे, अणत्तट्ठिते, असुर सुरं अचव चवं, अदुतमविलंबियं, अपरिसाडिं, आलोयभायणे जयं पयत्तेणं ववगयसंजोग मणिंगालं च, विगय धूमं, अक्खोवंजणाणुलेवणभूयं संजम जाया माया निमित्तं संजम भार-वहणट्ठयाए भुंजेज्जा, पाण धारणट्ठयाए संजएण समियं, एवं आहार समितिजोगेणं भाविओ भवति अंतरप्पा, असबलमसंकिलिट्ठ-निव्वण चरित्त भावणाए अहिंसए संजए सुसाहू ॥ ४ ॥

छाया—"तस्येमाः पञ्चभावनाः प्रथमस्य व्रतस्य भवन्ति, प्राणातिपात विरमण परिरक्षणार्थाः । प्रथमं स्थानं गमनागमनयोगयोजना-युगान्तरनिपातितया दृष्ट्या ईरयितव्यम् ॥ १ ॥

कीट-पतङ्ग-त्रस स्थावर-दयापरेण नित्यं पुष्पफल-त्वक्-प्रवाल कन्दमूल-उदक मृत्तिका-बीजहरित-परिवर्जनपरः सम्यक् । एवं खलु सर्वे प्राणा न हील-यितव्या, न निन्दितव्या, न गर्हितव्या, न हन्तव्या, [ हिंसितव्या ] न छेत्तव्या, न भेत्तव्या, न व्यथितव्या, न भयं दुःखं च किञ्चित् लभ्या प्रापयितुम्, एवमीर्यासमिति योगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा, अशबलाऽसंक्लिष्ट-निर्व्रणचारित्र भावनया अहिंसकः संयत सुसाधुः ।

द्वितीयञ्च मनसा पापकेन पापकमधार्मिकं, दारुणं, नृशंसं वधबन्ध-परिक्लेश बहुलं भय मरण संक्लेश-[ परिक्लेश ] संक्लिष्टं, न कदापि मनसा पापकेन

१ क. पयट्ठो। १ क भयभयं।

पापकं किञ्चिदपि ध्यातव्यम् । एवं मनः समिति योगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा अशबलाऽसंक्लिष्ट-निर्व्रण-चारित्रभावनया-'अहिंसक' संयत' सुसाधु' ।

तृतीयञ्च वाचा पापकया पापकं न किञ्चिदपि भाषितव्यम्, एव वचन-समिति-योगेन-भावितो भवत्यन्तरात्मा अशबलाऽसंक्लिष्ट-निर्व्रण-चारित्र भावनया अहिंसक संयत' सुसाधु ।

चतुर्थमाहारैषणाया शुद्धमुञ्छं गवेषयितव्यम्, अज्ञातोऽ'गृद्धरुष्ट'अदीनो-अदीनो ऽकरुणोऽविषादी अपरितान्तयोगी यतन-घटन-करण-चरित्र-विनय गुण योग-सम्प्रयोगयुक्तो भिक्षुर्भिक्षैषणाया युक्तः, समुदानयित्वा भिक्षाचर्या उञ्छं गृहीत्वाऽऽगतो गुरुजनस्य पार्श्वं, गमनाऽगमनातिचारान् प्रतिक्रमण प्रतिक्रान्तान् आलोचनाऽऽदानकं च दत्त्वा, गुरुजनस्य गुरुसन्दिष्टस्य वा यथोपदेश निरतिचारं चाऽप्रमत्तः। पुनरप्यनेषणायां प्रयत' प्रतिक्रम्य प्रशान्त आसीन सुखनिषण्णो मुहूर्तमात्रं च ध्यान शुभयोग-ज्ञान गोपितमना, धर्ममना, अविमनाः, सुखमना, अविग्रहमना, समाहित मना, श्रद्धा संवेग-निर्जरमना, प्रवर्तनावत्सलभावितमना उत्थाय च प्रहृष्टतुष्टो, यथारात्निकं निमन्त्र्य च साधून्, भावतश्च वितीर्णे च, गुरुजनेन, उपदिष्ट समार्ज्यं सशीर्षं कायं, तथा करतलममूर्च्छितोऽगृद्धोऽग्रथितोऽगर्हितोऽनध्युपपन्नोऽनाविलोऽलुब्धोऽनात्मार्थितोऽसुरसुरम्-अचवचवम्-'इति ध्वनि रहितम्' अद्रुतमविलम्बितम्, अपरिसाटितम्, आलोकभाजनेजयं प्रयत्नेनव्यपगत संयोगमनिङ्गाल च, 'विगत धूम मक्षोपाञ्जनानुलेपनभूतं, संयम-यात्रा मात्रा-निमित्तं, संयम भार वहनार्थाय भुञ्जीत, प्राणधारणार्थाय संयत समितम्। एवमाहार समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा अशबलाऽसंक्लिष्ट-निर्व्रण-चारित्र भावनयाऽहिंसक. संयतः सुसाधुः ।

अन्व०-"( तस्स ) अहिंसा रूप उस ( पढमस्स वयस्स ) प्रथम व्रत की ( इमा पंच भावणाओ ) ये आगे कही गई पाच भावनायें ( होंति ) होती हैं, ( पाणातिवाय वेरमण परिरक्खणट्ठयाए ) प्राणातिपात विरमण रूप अहिंसा व्रत की रक्षा के लिये ( पढम ) पहली भावना ( ठाण गमणगुण जोग जुंजण जुगतर;;निवातियाए ) ठहरने और चलने में स्वपर की पीड़ा रहित गुण योग को जोड़ने वाली तथा गाड़ी के जूवे प्रमाण भूमि पर गिरने वाली ( दिट्ठीए ) दृष्टि से ( इरियव्वं ) चलना चाहिए ( कीड पतग तस थावर दयावरेण ) कीट पतग आदि त्रस और स्थावर जीवों पर

१ अकथित-अशिष्ट इति पाठान्तरम् ।

तथा भाव दासे ( निष्पर्युक्त पत्रत्य पवाल कंद मूल तृणगुल्म बीज हरित परि वर्जयन् ) तथा पृथ्वी पर गिरी हुई पत्ते प्रवाल कुंपल कन्द, मूल वृक्षादि के मूल और तथा घास, धान आदि की कच्ची रिट्टी बीज तथा वृक्ष आदि हरित इनका त्याग करने वाले को ( सम्म ) अच्छी तरह यत्न से चलना चाहिए ( एवं खलु ) ऐसे ही ( सव्व पाणा ) जीव मात्र ( न हीलियव्वा ) हीलना करने योग्य नहीं ( न निंदियव्वा) निन्दा करने योग्य नहीं (न गरहियव्वा) गर्हा-किसी के सामने बुराई करने योग्य नहीं है (न हिंसियव्वा ) हिंसा करने योग्य नहीं ( न छिंदियव्वा ) छेदन करना-काटने योग्य नहीं ( न भिंदियव्वा ) तथा भाला आदि से भेदन करने योग्य नहीं ( न वहेयव्वा ) पीड़ा पहुंचाने योग्य नहीं ( न भयं दुक्खंकिंचि लब्भा पावेउं ) और कुछ भी भय तथा दुःख पहुंचाने योग्य नहीं है ( एवं ) इस प्रकार ( इरिया समितिजोगेण ) ईर्यासमिति के योग से ( भावितो ) भावित पवित्र ( अंतरप्पा ) अन्तरात्मा ( असबलमसंकिलिट्ठनिव्वण चरित्त भावणाए ) मलिनता रहित विशुद्धिमय विचार और अखण्ड चारित्र की भावना वाला ( भवति ) होता है वह ( अहिंसए ) अहिंसक ( संजए ) संयत-मृषावाद आदि सावद्य कर्मों से अलग रहने वाला, ( सुसाहू ) सुसाधु है।

( बितीयंच ) और दूसरी भावना ( मणेणं पावएणं ) पापकारी अशुभ मन से ( पावगं ) पापयुक्त ( अहम्मियं ) अधार्मिक-धर्मविरुद्ध (दारुणं) दारुण ( निस्संसं ) नृशंस-दया रहित ( वहबंधपरिकिलेसबहुलं ) वध, बन्ध और परितापकी अधिकता वाला ( भय मरणपरिकिलेस संकिलिट्ठं ) भय, मृत्यु और क्लेशों से क्लेशजनक ( न कयावि मणेण पावतेणं पावगं किंचि झायव्वं ) पाप युक्त मन से कैसे पाप कारी विचार से कभी थोड़ा भी नहीं करना चाहिए ( एवं ) इस प्रकार दूसरी (मणसमिति जोगेण ) मन की समिति मन की सम्यक् प्रवृत्ति के योग से (भावितो) भावित ( अंतरप्पा ) जीव ( असबलमसंकिलिट्ठनिव्वण चरित्त भावणाए ) मलिनता और संक्लेश रहित अखण्ड चारित्र की भावना से ( अहिंसए ) हिंसा नहीं करने वाला ( संजए ) और पाप कर्म से पृथक् होने से संयत ( सुसाहू ) सुसाधु ( भवति ) होता है।

अब तीसरी भावना-वाक् समिति रूप-( ततियंच ) और तीसरी भावना ( वतीते पावियाते ) अशुभ भाषा से ( किंचिवि ) कुछ भी ( पावगं ) पापयुक्त

वचन ( न भासियव्वं ) नहीं बोलना चाहिए ( एवं ) इस प्रकार ( वति समिति जोगेण ) वाक्-समिति-भाषा समिति के योग से ( भावितो ) भावित (अन्तरप्पा) जीव ( असबलमसंकिलिट्ठ निव्वण चरित्त भावणाए ) निर्मल, संक्लेश रहित और अखण्डित चारित्र की भावना वाला ( अहिंसओ ) अहिंसक ( संजओ ) मुनि ( सुसाहू ) सुसाधु ( भवति ) होता है।

चौथी एषणासमिति ( चउत्थं ) चौथी भावना ( आहार एषणाए ) आहार आदि की एषणासे ( सुद्धं ) दोष रहित ( उंछं ) सामूहिक अनेक घरों से प्राप्त भिक्षा की ( गवेसियव्व ) गवेषणा करनी चाहिए ( अन्नाए ) अज्ञात सम्बन्ध वाला (अगढिते) मोह रहित ( अदुट्ठे ) दुष्टता रहित ( अदीणे ) क्षोभ से दूर ( अकलुणे ) दीनता रहित ( अविसादी ) खेद रहित ( अपरितंत जोगी ) भ्रमण मे आहारादि नहीं मिलने पर भी अश्रकयोगरूप प्रवृत्तिवाला ( जयण घडण करण चरिय विणय गुण जोग संपओग जुत्ते ) प्राप्त संयम प्रकृति में यत्ना और अप्राप्त सत्कर्म के लिये प्रयत्न करने वाला विनय का सेवन करने वाला तथा क्षमा आदि गुणयोग से जो युक्त है ( भिक्खू ) वैसा भिक्षु ( भिक्खेसणाते ) भिक्षा की एषणा में ( जुत्ते ) युक्त लगा हुआ ( समुदाणेऊण ) अनेक घरों से फिर कर ( भिक्ख चरियं उंछ ) थोड़ी २ भिक्षा ( घेत्तूण ) ग्रहण करके ( आगतो गुरुजणस्स पासं ) गुरुजन के पास आया हुआ, ( गमणागमणातिचारे ) गमनागमन के अतिचारों का ( पडिकमण पडिक्कते ) ईर्यापथिक प्रतिक्रमण से प्रतिक्रमण करके ( गुरुजणस्स गुरुसदिट्ठस्सवा ) गुरु या गुरु से अधिकार पाये हुए उपाध्याय आदि के पास ( आलोयण दाएं च ) ग्रहण किये हुए आहार पानी की यथावत् आलोचना कर उनको दिखादे ( दाऊण ) गुरुजनों को देकर ( जहोपदेस ) उपदेश के अनुसार ( निरइयारं च ) और अतिचार रहित ( अप्पमत्तो ) प्रमाद से दूर रहने वाले साधु ( पुणरवि ) फिर भी ( अणेसणाते ) अज्ञात रूपमें छुटे हुए एषणा के दोषों को ( पयतो ) यत्नवान् ( पडिक्कमित्ता ) कायोत्सर्ग से प्रतिक्रमण करके ( पसंते ) प्रशान्त दशा वाला याने उत्सुकता रहित ( आसीण सुहनिसन्ने ) और आसन पर सुख पूर्वक निराबाधपने बैठा हुआ ( झाणसुहजोगनाणसज्झाय गोवियमणे ) ध्यान गुरुजनों की सेवा आदि शुभ योग, ज्ञान-तत्त्वचिन्तन और स्वाध्याय-शास्त्र पाठ रूपसे मनको गोपन करके ( धम्ममणे ) श्रुत चारित्ररूप धर्म में मन वाला, ( अविमणे सुहमणे ) शून्य चित्त

नहीं बना हुआ शुभ विचार वाला, ( अविग्गहमणे समाहियमणे ) कलह मूल या दुराग्रह से रहित मन वाला और स्वस्थ मन वाला ( सद्धा संवेगनिज्जरमणे ) श्रद्धा-तत्त्वज्ञान तथा संयममें निश्चल विश्वास, संवेग-मोक्षमार्ग में अभिलाषा या संसार से भय, और कर्म निर्जरा में तत्पर मन वाला ( पवयण वच्छल भावियमणे) प्रवचन-शास्त्र तथा शासन के प्रेम से भरपूर विचार वाला ( मुहुत्तमेत्त ) मुहुर्त भर ऐसा बैठा रहे ( उट्ठेऊण य ) फिर उठकर ( पहट्ठतुट्ठे ) अतिशय प्रमोद सहित ( अहारायणियं ) जो दीक्षा आदि से बड़े हों उनके अनुसार ( भावओ ) भाव-आदर बुद्धि से ( साहवे ) साधुओं को ( निमंतइत्ता ) निमन्त्रण करके अर्थात् उसमें से लेने की प्रार्थना करके ( भिइएण य ) और देकर के ( गुरुजणेणं ) गुरुजनों से आहार के वितीर्ण कर लेने व सबको दे चुकने पर बाद आज्ञा देने पर ( उप विट्ठे ) योग्य आसन पर बैठा हुआ । ससीसं कायं तहा करयलं उपमज्जिऊण ) मस्तक सहित शरीर तथा हाथ के तले को रजोहरण से अच्छी तरह प्रमार्जन-पूर्वक करके ( अमुच्छिते ) आहार में मूर्च्छा रहित ( अगिद्धे ) पाई वस्तु में लालसा रहित ( अगढिए ) अप्राप्त वस्तुओं में अभिलाषा रहित ( अगरहिते ) प्रतिकूल पदार्थों में गर्हा नहीं करता हुआ ( अणज्झोववन्ने रसों में तल्लीन नहीं होता हुआ ( अणाइले अलुद्धे अणत्तट्ठिते ) हृदय की मलिनता रहित, पदार्थों का लोभ नहीं करने वाला व परमार्थ बुद्धिवाला साधु ( असुरसुरं अचवचवं ) सुर सुर, चव चव आदि ध्वनि नहीं करता हुआ ( अतुरमविलंबियं ) अधिक जल्दी या अधिक देरी से नहीं अर्थात् भोजनके योग्य काल में ( अपरिसाडिं। नीचे नहीं गिराते हुए ( आलोयभायणे ) प्रकाश में और प्रकाशमान पात्र में ( जयं ) मन व इन्द्रियों के संयम पूर्वक ( पयत्तेण ) प्रयत्न पूर्वक ( ववगय संजोग मणिंगालं च ) दूध व शक्कर के संयोग नहीं मिलाने रूप संयोजना दोष रहित और सरस आहार पर राग करने रूप इंगाल दोष से दूर और ( विगय धूमं ) नीरस आदि प्रतिकूल पदार्थ पर द्वेष करने रूप धूम्रदोष से रहित ( अक्खोवं ) गाड़ी के चाक में तेल लगाने और ( वणाणुलेवण भूयं ) घाव पर लेप करने के समान जैसे परिमित आहार को ( संजम जाया माया निमित्तं ) संयम भार का वाहन करने के लिये ( संजम भार वहणट्ठयाए पाण धारणट्ठाये ) संयम रक्षा के लिये और केवल प्राण धारण मात्र करने लिये ( समियं ) समिति से युक्त संजयए ) साधु ( भुंजेज्जा ) आहार करे।

( एवं ) इस प्रकार ( आहार समिति जोगेणं ) आहार ग्रहण आदि की योग्य प्रवृत्ति के योग से ( अंतरप्पा ) अन्तरात्मा ( भावितो ) भावित ( असवलमसंकिलिट्ठ निव्वण चरित्त भावणाए ) निर्मल व संक्लेश रहित और अखंडित चरित्र की भावना वाला ( अहिंसए ) अहिंसक ( संजए ) संयत ( सुसाहू ) सुसाधु ( भवति ) होता है।

मूल—"पंचमं आदान निक्खेवण समिई—पीढ फलग—सिज्जा—संथारग—वत्थ—पत्त—कंबल—दंडग—रयहरण—चोलपट्टग—मुहपोत्तिग—पायपुंछणादी, एयंपि संजमस्स उववूहणट्ठयाए वाता—तवदंस—मसग—सीय—परिरक्खणट्ठयाए, उवगरणं रागदोसरहितं परिहरितव्वं, संजमेणं णिच्चं पडिलेहण—पप्फोडण—पमज्जणाए अहो य राओ य अप्पमत्तेण होइसययं, निक्खियव्वं च, गिण्हियव्वं च, भायण भंडोवहि उवगरणं, एवं आयाण भंड—निक्खेवणा—समिति जोगेण भाविओ भवति अंतरप्पा, असबलमसंकिलिट्ठ—निव्वण—चरित्त भावणाए अहिंसए संजते सुसाहू ॥ ५ ॥

एवमिणं संवरस्सदारं सम्मं संवरियं होति सुप्पणिहियं, इमेहिं पंचहिं विकारणेहिं, मण—वयण—काय—परिरक्खिएहिं, णिच्चं आमरणंतं च एस जोगो णेयव्वो, धितिमया, मतिमया, अणासवो [1]अकलुसो [2]अच्छिद्दो [3]असंकिलिट्ठो, सुद्धो सव्वजिणमणुन्नातो, एवं पढमं संवरदारं फासियं, पालियं, सोहियं, तीरियं, किट्टियं, आराहियं आणाते अणुपालियं भवति। एवं नायमुणिणा भगवया पन्नवियं, परूवियं, पसिद्धं, सिद्धं, सिद्धवरसासणमिणं आघवितं, सुदेसितं, पसत्थं। पढमं संवरदारं समत्तं त्तिबेमि। सूत्र ३।२३। इति पढमं संवरदारं।

छाया—"पञ्चमी—आदान निक्षेपणसमिति—"पीठ फलक—शय्या—संस्तारक—वस्त्र,—पात्र—कम्बल—दण्डक—रजोहरण—चोलपट्टक—मुखपोतिका—पादपुञ्छनादय,, एतदपि संयमस्योपबृंहणार्थं, वाताऽऽतप दंश मशक शीतपरिरक्षणार्थमुपकरणं, रागद्वेषरहितं परिहर्तव्यम्* संयमे(ति)न नित्यं प्रतिलेखन—प्रस्फोटन—प्रमार्जनाभि अहश्च

---

1 क सचरिय। 2 क अकुलसो। 3 क अच्छिद्दो अपरिस्रावी।

* धारयितव्यमित्यर्थः।

नहीं बना हुआ शुभ विचार वाला, ( अभिगहमणे समाहियमणा ) कलह मुक्त या दुराग्रह से रहित मन वाला और स्वस्थ मन वाला ( सद्धा संवेगनिज्जरमणे ) श्रद्धा-तत्त्वज्ञान तथा संयममें निश्चल विश्वास, संवेग-मोक्षमार्ग में अभिलाषा या संसार से भय, और कर्म निर्जरा में तत्पर मन वाला ( पवयण वच्छल भाविदमणे ) प्रवचन-शास्त्र तथा शासन के प्रेम से भरपूर विचार वाला ( मुहुत्तमेत्तं ) मुहूर्त भर ऐसा बैठा रहे ( उट्ठेऊण य ) फिर उठकर ( पहट्ठतुट्ठे ) अतिशय प्रमोद सहित ( अहाराइणियं ) जो दीक्षा आदि से बड़े हों उनके अनुसार ( भावओ ) भाव-आदर बुद्धि से ( साहवे ) साधुओं को ( निमंतइत्ता ) निमन्त्रण करके अर्थात् उसमें से लेने की प्रार्थना करके ( विइण्णे य ) और देकर के ( गुरुजणेणं ) गुरुजनों से आहार के थितीर्थ कर लेने व सबको दे चुकने पर बाद आज्ञा देने पर ( उप विट्ठे ) योग्य आसन पर बैठा हुआ ( ससीसं कायं तहा करयलं संपमज्जिऊण ) मस्तक सहित शरीर तथा हाथ के तले को रजोहरण से अच्छी तरह प्रमार्जन-पूंज करके ( अमुच्छिए ) आहार में मूर्च्छा रहित ( अगिद्धे ) प्राई वस्तु में लालसा रहित ( अगढिए ) अप्राप्त वस्तुओं में अभिलाषा रहित ( अगरहिते ) प्रतिकूल पदार्थ में गर्हा नहीं करता हुआ ( अणज्झोववन्ने ) रसों में तल्लीन नहीं होता हुआ ( अणाइले अलुद्धे अणत्तट्ठिए ) हृदय की मलिनता रहित, पदार्थों का लोभ नहीं करने वाला व परमार्थ बुद्धिवाला साधु ( असुरसुरं अचवचवं ) सुर सुर, चव चव आदि ध्वनि नहीं करता हुआ ( अदुतमविलंबियं ) अधिक जल्दी या अधिक देरी से नहीं अर्थात् मोक्षमके योग्य काल में ( अपरिसाडि। नीचे नहीं गिराते हुए ( आलोयभायणे ) प्रकाश में और प्रकाशमान पात्र में ( जयं ) मन व इन्द्रियों के संयम पूर्वक ( पयत्तेणं ) प्रयत्न पूर्वक ( ववगय संजोग मणिंगालं च ) दूध व शक्कर के संयोग नहीं मिलाने रूप संयोजना दोष रहित और सरस आहार पर राग करने रूप इंगाल दोष से दूर और ( विगय धूमं ) नीरस आदि प्रतिकूल पदार्थ पर द्वेष करने रूप धूमदोष से रहित ( अक्खोवं ) गाड़ी के धाकमें तेल लगाने और ( वणाणुलेवण भूयं ) घाव पर लेप करने के समान वैसे परिमित आहार को ( संजम जाया माया निमित्तं ) संयम भार का पालन करने के लिये ( संजम भार वहणट्टयाए पाणा धारणट्ठाये ) संयम रक्षा के लिये और केवल प्राण धारण मात्र करने लिये ( समियं ) समिति से युक्त संजमण ) साधु । भुंजेज्जा । आहार करे।

( एवं ) इस प्रकार ( आहार समिति जोगेणं ) आहार ग्रहण आदि की योग्य प्रवृत्ति के योग से ( अंतरप्पा ) अन्तरात्मा ( भावितो ) भावित ( असवलमसंकिलिट्ठ निव्वण चरित्त भावणाए ) निर्मल व संक्लेश रहित और अखंडित चरित्र की भावना वाला ( अहिंसए ) अहिंसक ( संजए ) संयत ( सुसाहू ) सुसाधु ( भवति ) होता है।

मूल—"पंचमं आदान निक्खेवण समिई-पीढ फलग-सिज्जा-संथारग-वत्थ-पत्त-कंबल-दंडग-रयहरण-चोलपट्टग- मुहपोत्तिग- पायपुंछणादी, एयंपि संजमस्स उववूहणट्ठयाए वाता-तवदंस-मसग-सीय-परिरक्खणट्ठयाए, उवगरणं रागदोसरहितं परिहरितव्वं, संजमेणं णिच्चं पडिलेहण-पप्फोडण-पमज्जणाए अहो य राओ य अप्पमत्तेण होइसययं, निक्खियव्वं च, गिण्हियव्वं च, भायण भंडोवहि उवगरणं, एवं आयाण भंड-निक्खेवणा-समिति जोगेण भाविओ भवति अंतरप्पा, असवलमसंकिलिट्ठ-निव्वण-चरित्त भावणाए अहिंसए संजते सुसाहू ॥ ५ ॥

एवमिणं संवरस्सदारं सम्मं [1]संवरियं होति सुप्पणिहियं, इमेहिं पंचहिंविकारणेहिं, मण-वयण-काय-परिरक्खिएहिं, णिच्चं आमरणंतं च एस जोगो णेयव्वो, धितिमया, मतिमया, अणासवो [2]अकलुसो [3]अच्छिद्दो असंकिलिट्ठो, सुद्धो सव्वजिणमणुन्नातो, एवं पढमं संवरदारं फासियं, पालियं, सोहियं, तीरियं, किट्टियं, आराहियं आणाते अणुपालियं भवति। एवं नायमुणिणा भगवया पन्नवियं, परूवियं, पसिद्धं, सिद्धं, सिद्धवरसासणमिणं आघवितं, सुदेसितं, पसत्थं। पढमं संवरदारं समत्तं त्तिबेमि। सूत्र ३। २३। इति पढमं संवरदारं।

छाया—"पञ्चमी-आदान निक्षेपणसमिति—"पीठ फलक-शय्या-सस्तारक-वस्त्र,- पात्र-कम्बल- दण्डक- रजोहरण- चोलपट्टक-मुखपोतिका-पादपुञ्छनादय, एतदपि सयमस्योपबृंहणार्थं, वाताऽऽतप दंश मशक शीतपरिरक्षणार्थमुपकरणं, राग द्वेषरहितं परिहर्तव्यम्* सयमे(ते)न नित्यं प्रतिलेखन-प्रस्फोटन-प्रमार्जनाभि अहश्च

१ क सचरिय। २ क अकुलसो। ३ क अच्छिद्दो अपरिस्सावी।

* वारयितव्यमित्यर्थ.।

रात्रिश्च अप्रमत्तेन भवति सततम् निक्षेप्तव्यश्च ग्रहीतव्यश्च, भाजनभाण्डोपध्युपकरणम् एवमादान-भाण्ड निक्षेपणा-समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा-अशबलाऽसंक्लिष्ट-निर्व्रण-चारित्र भावनयाऽहिंसक संयत सुसाधु ।

एवमिदं संवरस्य द्वार सम्यक् संवृत भवति सुप्रणिहितम्, एतै पञ्चभि कारणै र्मनो वचन कायपरिरक्षितैर्नित्यमामरणान्तं चैषयोगोनेतव्योधृतिमता मतिमता अनास्रवोऽकलुषोऽच्छिद्रोऽसंक्लिष्ट, शुद्ध सर्वजिनानुज्ञात, एव प्रथम संवरद्वारं, स्पृष्ट, पालितं, शोधितं, तीर्णं, कीर्तितमाराधितमाज्ञयाऽनुपालितं भवति । एवं ज्ञातमुनिना भगवता प्रज्ञापित प्ररूपितं, प्रसिद्धं, सिद्धं सिद्धवरशासनमिदमाख्यापित [अर्थापितं] सुदेशितं, प्रशस्तं, प्रथमं संवरद्वारं समाप्तमितिब्रवीमि । सूत्र १।२३।

• इति प्रथमं संवरद्वारम् •

आदान निक्षेपणा समिति रूप भावना—

अन्व०—"( पंचमं ) पांचवी भावना ( आदाण निक्खेवणासमिई ) आदान निक्षेपणा समिति ( पीढ फलग सिज्जासंथारग वत्थ पत्त कंबल दंडग रयहरण चोल पट्टग-मुहपोत्तिग, पाय पु छणादी ) पीठ फलक-पाट शय्या संस्तारक—छोटा बिछौना, वस्त्र, पात्र, कम्बल, दंडक रजोहरण, चोलपट्टक पहनने का कपड़ा, मुहपोतिक-मुख वस्त्रिका, पादप्रोञ्छन, आदि (एयंपि) यह सब भी ( संजमस्स) संयम के ( उववूहण ट्ठयाए ) पोषण के लिए (वातातव-दंस मसगसीय परिरक्खणट्ठयाए ) वायु, आतप-धूप, दंश, मशक, मच्छर और सर्दीकी रक्षाके लिये (उवगरणं) उपरोक्त उपकरण को ( राग दोसरहिय ) राग द्वेष से रहित ( परिहरियव्वं ) धारण करना चाहिए ( संजमेणं ) संयम पूर्वक, ( णिच्चं ) सदा (पडिलेहण पप्फोडण पमज्जणाए) प्रति लेखना-देखना, प्रस्फोटन-झटकना व प्रमार्जन करने से ( अहो य राओ य ) दिन व रात्रि में ( सययं ) सदा ( अप्पमत्तेण ) प्रमाद रहित ( निक्खियव्वं च ) रखने योग्य और ( गिण्हियव्वं ) ग्रहण करने-लेने योग्य ( होइ ) होता है (भायण भंडोवहि उवगरणं) भाजन-पात्र, मिट्टी के भांड और उपधि-वस्त्र आदि उपकरण-उपयोगी सामग्री जो है ( एवं ) इस प्रकार ( आयाण भंड निक्खेवणा समिति जोगेण ) आदान भाण्ड निक्षेपणा समिति के योग से ( भाविओ ) भावित-युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तरात्मा

( असबलमसंकिलिट्ठ निव्वण चरित्त भावणाए ) निर्मल व संक्लेश रहित और अखण्डित चरित्र की भावना से ( अहिंसए संजए सुसाहू ) अहिंसक, संयत सुसाधु ( भवति ) होता है।

( एवमिणं संवरस्सदारं ) इस प्रकार यह प्रथम संवरद्वार ( सम्मं ) अच्छी तरह ( संवरियं ) अङ्गीकृत ( सुप्पणिहियं ) उत्तम रीति से प्रणिधान में लाया हुआ, ( होति ) होता है ( इमेहिं पंचहिवि कारणेहिं ) इन पांचों कारणों से ( मण वयण-काय परिरक्खिएहिं ) मन वचन कायो से परिरक्षित ( णिच्चं ) सदा ( आमरणां-तंच ) मरण पर्यन्त ( एसजोगो ) यह योग ( धितिमया मतिमया ) धैर्यवान् व बुद्धिमान् से ( अणासवो ) आस्रव रहित (अकलुसो) कायरता रहित ( अच्छिद्दो) त्रुटि रहित ( असंकिलिट्ठो ) संक्लेश रहित ( सुद्धो ) शुद्ध अतएव ( सव्वजिण मणुन्नातो ) सर्व जिनों से अनुज्ञात-अनुमत है। ( एवं ) इस प्रकार ( पढमं ) पहला ( संवर दारं ) संवरद्वार ( फासियं ) स्पृष्ट-गृहीत ( पालिय ) पालित ( सोहियं ) शोधित-शुद्ध किया ( तिरियं ) पूरा पाला हुआ ( किट्टियं ) कीर्तित ( आराहियं ) आराधित ( आणाते अणु पालिय ) आज्ञा से अनुपालित (भवति) होता है। ( एवं ) इस प्रकार ( नायमुणिणा भगवया ) भगवान् ज्ञातमुनि महावीर-ने ( पन्नवियं ) प्रज्ञापित ( परूवियं ) प्ररूपित ( पसिद्धं ) प्रसिद्ध ( सिद्धं ) सिद्ध है ( सिद्धवरसासणमिणं ) यह सिद्धवर शासन ( आघवितं ) बहुमूल्य ( सुदेसितं ) उपदेशित ( पसत्थं ) प्रशस्त ( पढमं ) पहला ( संवरदारं ) संवरद्वार ( समत्तं ) समाप्त हुआ ( त्तिबेमि ) ऐसा मैं कहता हूं। सूत्र ३। २३।

भावार्थ-इस सूत्र में अहिंसाव्रत को विशुद्ध रूप से पालने के लिये पांच भावनायें कही गई हैं। ये भावनायें अहिंसाव्रत का रक्षण तथा पोषण करने वाली हैं। इन भावनाओं के बल पर ही अहिंसा-प्राणातिपात विरमणरूप व्रत पालित हो सकता है, अन्यथा नहीं। अतएव उन पाच भावनाओं के स्वरूपों का निरूपण किआ जाता है।

अहिंसा-व्रत की पांच भावनाओं में पहली भावना-ईर्या समिति-गमन आगमन की क्रिया में हिंसा न होने की सावधान प्रवृत्ति है। इसमे पहली बात यह है कि युग प्रमाण-प्राय चार हाथ तक भूमि पर दृष्टि रखते हुए पवित्र भूतल पर चलना चाहिए, जिससे कीट पतङ्ग आदि त्रस स्थावर जीवों की दया पाली जाय।

दूसरी बात-पुष्प, फल, वृक्ष की गीली त्वचा, हरे पत्ते, कन्द, मूल, जल, मिट्टी, बीज और हरी चीजें, इन सब वस्तुओं को नहीं छूना। किसी भी प्राणी की हीलना, निन्दा, गर्हा, हत्या, छेदन, भेदन, वध नहीं करना। किसी भी प्राणी को भय में या दुःखमें नहीं पहुँचाना। इस ईर्या समिति योग से भावित अन्तरात्मा वाला अहिंसक, संयत एवं सुसाधु होता है।

दूसरी भावना यह है कि पापयुक्त मन से किसी भी पापमय कर्म को नहीं करना चाहिए। मनतक में बुरे विचारों को स्थान नहीं देना चाहिए। इस प्रकार मन समिति योग स अन्तरात्मा भावित होता है।

तीसरी भावना है कि-पापमयी वाणीमे पापयुक्त वचनको नहीं बोलना चाहिए। इस प्रकार वचन समिति योग से अन्तरात्मा भावित होता है।

चौथी भावना आहारैषणा है-इसमें भिक्षा शुद्धि के लिये साधु अपना विशेष परिचय नहीं दे। उत्तम भोजन में आसक्त नहीं हो। नहीं मिलने पर दीनता या द्वेष प्रगट नहीं कर। विधि पूर्वक निर्दोष भिक्षा को ग्रहण करने पर भी अहिंसा की आराधना क लिये यह आवश्यक है कि वह भिक्षा गुरुजनों को दिखाई जाय। भिक्षा में लगने वाले दोषों की गुरु क पास आलोचना की जाय। और गुरु की आज्ञा प्राप्त होने पर सावधानता क साथ सर्वथा शान्तभाव से क्षणभर बैठकर ध्यान किया जाय। इसके बाद अपने प्राप्त आहार से वात्सल्यभाव पूर्वक उठकर मुनियों को आमन्त्रण कर। मोह या स्वार्थ बुद्धि से नहीं किन्तु श्रद्धा, संवेग और कर्म निर्जरा के भाव से। इस प्रकार गुरु और स्वधर्मी-मुनियों का आदर करके स्वयं भोजन को बैठे। भोजन क पूर्व मस्तक से लेकर सारी देह और विशेषतः कर तल का प्रमार्जन किया जाय। फिर शान्ति एवं सन्तोष के साथ प्रकाश वाले स्थान तथा पात्र में भोजन किया जाय।

भोजन करते सुरसुर या चवचव आदि ध्वनि नहीं कर। अति जल्दी या अधिक विलम्ब भी नहीं कर।

संयम यात्रा और देह की रक्षा हो आहार का प्रधान हेतु है अतएव नीचे नहीं गिराते हुए पूर्ण यतना क साथ भोजन करें।

अहिंसक साधुओं की कितनी महान दिनचर्या है। भूख के समय भी कैसे धीरज का उपदेश है! साधर्मियों क साथ कैसा आदर भाव है? तभी चर्तों बात कुटुम्ब में

भी क्या भोजन जन्य मनोमालिन्य हो सकता है ? नहीं। अहिंसा की यह चतु
भावना है। इस प्रकार आहार समिति योगसे अन्तरात्मा भावित होता है।
पांचवी आदान निक्षेपणा समिति है-

इसमें सयम के साधन उपकरण जैसे, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, वर
पात्र, कम्बल, दण्ड, रजोहरण, चोलपट्टक, मुखवस्त्रिका, पाद पुंछन आदि।
सब भी केवल संयमवृद्धि के लिये होते हैं जो हवा, धूप, दंश, मशक, ठंढी आ
से आत्म रक्षार्थ राग-द्वेष रहित धारण करने योग्य हैं। प्रतिदिन इन भाण्डोपकरण
की देखभाल और प्रमार्जना रूप क्रियाओं से शुद्धि करनी चाहिए। इसके लि
अहर्निश प्रमाद रहित होना चाहिए। इस प्रकार भण्डोपकरण सम्बन्धी आद
निक्षेपणरूप समिति के योग से अन्तरात्मा भावित होता है। निर्मल असंक्लि
तथा अखण्डित चारित्र की भावना से अहिंसक, संयत, सुसाधु होते हैं। इस प्रक
यह संवरद्वार सम्यग् अङ्गीकृत व सुपालित होता है। मन वचन एवं काय से सु
क्षित इन पाच कारणों से सदा मरणकाल पर्यन्त यह योग धैर्यवान् व मतिम
सयमिओं से पालने योग्य है। इसमें आस्रव नहीं हो, मलिनता न हो-त्रुटि न ह
सक्लेश न हो, अर्थात सर्वथा विशुद्ध होना चाहिए। ऐसा ही सर्व जिनेन्द्रों के द्वा
कहा गया है। ऐसी ही आराधना से यह संवरद्वार स्पृष्ट, पालित, शोधित, तीर
कीर्तित और आराधित होता है। और भगवान् की आज्ञानुसार अनुपालित हो
है। इस प्रकार ज्ञातमुनि-भगवान् महावीर ने फरमाया है जो सिद्ध है और प्रसि
है। यह श्रेष्ठ सिद्ध का अनुशासन है, बहुमूल्य है। उपदिष्ट है। प्रशस्त है। इ
प्रकार यह प्रथम संवरद्वार पूर्ण हुआ। सू० १। २३।

## ❀ समाप्तं प्रथमं संवरद्वारम् ❀

❀ सच्छायं सान्वयार्थं भावार्थम् ❀

* अथ *

## द्वितीय संवर द्वारम्

---

पहले संवरद्वार में प्राणातिपात विरमणव्रत कहा गया अब मृषावाद विरमणव्रत कहते हैं। अहिंसा की सर्वांगसाधना के लिये मृषावाद विरमण-सत्य की आवश्यकता है। सत्य के बिना अहिंसा का पूर्ण पालन नहीं हो सकता। इसलिये अहिंसा के बाद मृषावाद विरमणरूप दूसरा संवरद्वार कहा जाता है। जिसका प्रथम सूत्र निम्नलिखित है-

### सत्य का महिमाशाली स्वरूप-

मूल-" जंबू! बितियं च सच्चवयणं सुद्धं सुचियं सिवं सुजायं सुभासियं सुव्वयं सुकहियं सुदिट्ठं सुपतिट्ठियं सुपतिट्ठियजसं सुसंजमिय वयण बुइयं सुर वर नर वसभ पवर बलवग सुविहिय जण बहुमयं, परमसाहु धम्मचरणं तव नियम परिग्गहियं, सुगतिपहदेसगं च लोगुत्तमं वयमिणं विज्जाहर गगणगमण विज्जाणसाहकं, सग्ग मग्ग सिद्धि पहदेसकं अवितहं तं सच्चं उज्जुयं अकुडिलं भूयत्थं, अत्थओ विसुद्धं उज्जोयकरं पभासकं भवति सव्वभावाण जीवलोगे अविसंवादि जहत्थ मधुरं पच्चक्खं दइवयंव जं तं अच्छेरकारकं अवत्थंतरेसु बहुएसु माणुसाणं सच्चेण महासमुद्द मज्झेवि चिट्ठंति न निमज्जंति मूढाणिया वि पोया सच्चेण य उदग संभमंमि वि न वुज्झइ न य मरंति थाहं ते लभंति। सच्चेण य अगणि संभमंमि वि न डज्झंति उज्जुगा

मणूसा । सच्चेण य तत्ततेल्ल तउ लोहसीसकाइं छिवंति धरेंति नय डज्झंति, मणूसा । पव्वयकडकाहिं मुच्चंते न य मरंति । सच्चेण य परिग्गहिया असि. पंजरगया समराओ विणिइंति, अणहाय सच्चवादी वह-बंधभियोगवेर घोरेहिं पमुच्चंतिय अमित्तमज्झाहिं निंइंति अणहा य सच्चवादी । सादेव्वाणिय देवयाओ करेंति सच्चवयणे रताणं ।

छाया-"जम्बू ? द्वितीयञ्चसत्यवचनं शुद्धं सुचितं शिवं सुजातं सुभाषितं सुव्रतं सुकथितं सुदिष्टं सुप्रतिष्ठितं सुप्रतिष्ठितयशस्कं सुसंयमित, वचनोक्तं सुरवर नर वृषभ प्रवर बलवत्सुविहितजन बहुमत परससाधु धर्मचरणम् तपोनियम परिगृहीतं सुगति-पददेशकं च लोकोत्तमं व्रतमिदं विद्याधर गगन गमन विज्ञान साधकं स्वर्गमार्ग सिद्धि पद देशकम् अवितथं तत्सत्यमृजुकम् अकुटिलं भूयोऽर्थमर्थतो विशुद्धमुद्योतकरं प्रभासक भवति सर्वभावानां जीवलोकेऽविसंवादि यथार्थ मधुरं प्रत्यक्षं दैवतकमिव यत्त दाश्चर्यकारकम् अवस्थान्तरेषु बहुषु मनुष्याणा सत्येन महासमुद्रमध्येऽपि मूढानीका अपि पोता । सत्येन च उदकसम्भ्रमेऽपि न निमज्जन्ति न म्रियन्ते तीरते लभन्ते । सत्येन च वह्नि सम्भ्रमेऽपि न दह्यन्ते ऋजुका मनुष्याः सत्येन च तप्ततैल तप्तलौहसीसकानि क्षिपन्ति, धरन्ति न च दह्यन्ते मनुष्याः । पर्वतकटकाद्विमुच्यन्ते । न च म्रियन्ते सत्येन च परिगृहीता असिपञ्जरगता. समरादपि निर्यान्ति, अनघाश्च सत्यवादिनो बध बन्धाभियोगवैर घोरेभ्य. प्रमुच्यन्ते चामित्रमध्यादपि निर्यान्ति अनघाश्च सत्यवादिन सादेव्यानि ( सान्निध्यानि ) कुर्वन्ति सत्यवचनेरतानाम् ।

अन्व०-"( जंबू ? ) हे शिष्य जम्बू ! ( वितियंच ) अहिंसारूप प्रथम संवर के बाद फिर दूसरा सवर ( सच्चवयण ) सत्यवचन जो सज्जनों के लिये अथवा द्रव्य और गुणो के लिये हितकारी है ( सुद्धं ) दोष रहित ( सुचियं ) पवित्र ( सिव ) उपद्रव रहित ( सुजायं ) शुभ विचार से उत्पन्न ( सुभासियं ) अतएव सुभाषित ( सुव्वय ) सुव्रत-श्रेष्ठ व्रत रूप ( सुकहियं ) ) और सम्यक् विचार पूर्वक कहा गया ( सुदिट्ठं ) कल्याण के साधन रूप से ज्ञानियों के द्वारा अच्छी तरह देखा गया व ( सुपतिट्ठियं ) सुप्रतिष्ठित-सभी प्रमाणों से प्रतिष्ठा प्राप्त है ( सुपतिट्ठियजस ) अच्छी तरह स्थिर कीर्ति वाला ( सुसंजमिय वयण वुइयं ) सम्यक् प्रकार के संयम युक्त वचनों से बोला गया, ( सुरवर ) उत्तम जाति के देव ( नर वसभ ) प्रधान पुरुष ( पवर बलवग सुविहियजणबहुमयं ) अतिशय बलधारी और सुविहित मनुष्य

सज्जन पुरुष का सत्यव्रत बहुत माना हुआ है ( परम साहु धम्म चरणं ) नैष्ठिक मुनियों का धार्मिक अनुष्ठान ( तव नियम परिग्गहियं ) और तप नियम से स्वीकार किया गया है ( सुगतिपहदेसगं ) सुगति मार्ग का उपदेशक ( य ) और ( लोगुत्तमं ) लोक में उत्तम ( वयमिणं ) यह सत्य व्रत है, ( विज्जाहर गगण गमण विज्जाण साहकं ) विद्याधरों की आकाश गामिनी आदि विद्याओं का साधन ( सग्ग मग्ग सिद्धि पह देसक ) स्वर्ग के मार्ग और सिद्धि पथ का प्रवर्तक तथा ( अवितह ) असत्य से रहित है ( त सच्चं ) यह सत्य नाम का दूसरा संवर ( उज्जुयं ) सरल भाव से प्रवर्तित होने से ऋजु तथा ( अकुडिलं ) कुटिलता रहित ( भूयत्थं ) सद्भूत अर्थ वाला ( अत्थतो विसुद्धं ) अर्थ प्रयोजन से विशुद्ध ( उज्जोयकरं ) पदार्थ का प्रकाशक ( सव्व भावाणं ) सब पदार्थों का ( जीव लोगे ) जीव लोक में ( पभासकं ) अच्छी तरह कथन करने वाला ( भवति ) होता है ( अविसंवादि ) वाद विरोध रहित ( जहत्थ मधुरं ) यथार्थ होने से मधुर ( पच्चक्खं ) प्रत्यक्ष ( दयियवयं ) दैवत वत्-की तरह ( जं ) जो ( माणुसाणं ) मनुष्यों की ( बहुएसु अवत्थंतरेसु ) बहुत सी अवस्थाओं में-दशा विशेष में ( तं ) वह सत्य ( अच्छेर कारकं ) आश्चर्य कारक होता है ( सच्चेण ) सत्य के कारण ( महासमुद्दमज्झेवि ) बड़े समुद्र के मध्य में भी ( मूढाणिया वि ) मूढानीक दिग्भ्रम में पड़े हुए नाविकसमूह वाले भी ( पोता ) पोत-नौका जहाज पार लगते हैं ( सच्चेणय ) और सत्य से ( उदगसंभमंमिवि ) जल के तेज प्रवाह में या भँवर में भी ( न वुज्झइ ) नहीं डूबते ( न य मरंति ) और अपमृत्यु से नहीं मरते हैं ( थाहं ते लभंति ) गिरे हुए वे सत्यव्रती स्ताघ-भूमि तल को प्राप्त करते हैं अर्थात् डूबने के प्रसङ्ग में भी वे सत्यव्रती सत्य के प्रभाव से आश्रय पा लेते हैं ( सच्चेणय ) और सत्य से ( अगणि संभमंमिवि ) अग्नि के चक्कर में भी ( न डज्झंति ) नहीं जलते हैं ( उज्जुगा मणूसा ) सरल हृदय वाले मनुष्य ( सच्चेणय ) फिर सत्य के प्रभाव से ( तत्त तउ तव लोहसीस काई ) तपे हुए रांग, ताम्बा, लोह और सीसे को ( छिवंति ) छू लेते ( य ) और ( धरेंति ) हाथ में धर लेते हैं। ( न डज्झंति ) जलते नहीं ( मणूसा, पव्वय कडकादि मुच्चंते ) मनुष्य पर्वतके शिखरसे गिराये जाते हैं, (न य मरंति) फिर भी वे नहीं मरते हैं यह सत्यका प्रताप है ( सच्चेणय परिग्गहिया ) और सत्य से परिगृहीत माने सत्य व्रत वाले पुरुष ( असिपंजरगया ) असिपंजरगत-पिंजरे की तरह चारों ओर खड्ग धारियों से

घेरे हुए ( समराओ वि ) समरभूमि से भी ( अणहा ) अक्षत-बाल बाल बचे हुए ( णिइंति ) निकल जाते हैं ( य ) और ( सच्चवादी ) सत्यवादी ( वहबंध भियोग वेर घोरेहिं ) वध बन्ध, अभियोग-बलात्कार पकड़े जाना और भयङ्कर शत्रुता के प्रसंगों से ( पमुच्चंति ) छूट-जाते हैं ( य ) और ( अमित्तमज्झाहिं ) शत्रुओ के समूह से ( अणहा ) विना बाधा के ( सच्चवादी ) सत्यवादी मनुष्य ( णिइंति ) निकल जाते हैं ( य ) और ( सच्चवयणे रताणं ) सत्य वचन में रत रहने वाले मनुष्यों की ( देवयाओ ) देव लोग ( सादेव्वाणि ) सान्निध्य-साहाय्य ( करेंति ) करते हैं।

मूल—"तं सच्चं भगवं तित्थकर सुभासियं, दसविहं चोदसपुव्वीहिं पाहुडत्थविदितं महरिसीणय समयप्पदिन्नं देविंदनरिंद भासियत्थं वेमाणिय साहियं महत्थं मंतोसहि विज्जासाहणत्थं चारणगण समण सिद्धविज्जं, मणुयगणाणं वंदणिज्जं, अमरगणाणं अच्चणिज्जं असुर-गणाणं य पूयणिज्जं अणेगपासंडि परिग्गहितं । जं तं लोकंमि सारभूयं, गंभीरतरं महासमुद्दाओ । थिरतरगं मेरुपव्वयाओ । सोमतरगं चंदमंडलाओ। दित्ततरं सूरमंडलाओ । विमलतरं सरयनहयलाओ । सुरभितरं गंधमादणा-ओ जेविय लोगम्मि अपरिसेसा मंतजोगा जवा य विज्जा य जंभका य अत्थाणि य सत्थाणि य सिक्खाओ य आगमा य सव्वाणिविताइं सच्चे पइट्ठियाइं । सच्चंपि य संजमस्स उवरोहकारकं किंचि न वत्तव्वं हिंसासा-वज्जसंपउत्तं । भेय विकहकारकं, अणत्थवाय कलहकारकं । अणज्जं अव-वाय विवाय संपउत्तं वेलंबं,ओजधेज्जबहुलं,निल्लज्जं, लोयगरहणिज्जं,दुद्दिट्ठं दुस्सुयं, असुणियं । अप्पणो थवणा परेसु निंदा । न तंसि मेहावी, ण तंसि धन्नो न तंसि पियधम्मो न तं कुलीणो न तंसि दाणव(प)ती न तंसि सूरो न तंसि पडिरूवो न तंसि लट्ठो न पंडिओ न बहुस्सुओ नवि य तं तवस्सी ण यावि परलोगणिच्छिय मतीऽसि सव्वकालं जातिकुल रूव वाहिरोगेण वावि जं होइ वज्जणिज्जं दुहिलं ( दुहओ ) उवयार मतिक्कंतं एवं विहं सच्चंपि न वत्तव्वं । अहकेरिसकं पुणाइ सच्चं तु भासियव्वं ? जं तं दव्वेहिं

पज्जवेहिय गुणेहिं कम्मेहिं बहुविहेहिं सिप्पेहिं आगमेहि य नामक्खाय निवा उवसग्ग तद्धिय समास संधि पदहेउ जोगिय उणादि किरिया विहाण धातु सर विभत्ति वण्णजुत्तं तिकल्लं दसविहंपि सच्चं जह भणियं तह य कम्मुणा होइ दुवालसविहा होइ भासा, वयणंपि य होइ सोलसविहं। एवं अरहंत मणुण्णायं समिक्खियं संजएण कालंमि य वत्तव्वं ॥ सूत्र १।२४।

छाया—तत्सत्यं भगवत्तीर्थंकर सुभाषितं दशविधं, चतुर्दशपूर्विभिः प्राभृतार्थ विदित महर्षीणाञ्च समयप्रदत्तं देवेन्द्र नरेन्द्र भाषितार्थं वैमानिकसाधित महार्थं मन्त्रौषधिविद्यासाधनार्थम्। चारणगणस्य श्रमणा सिद्धाश्च मनुष्यगणानाञ्च वन्दनीयम् अमर गणानाञ्चाऽर्चनीयम्, असुरगणानाञ्च पूजनीयम्, अनेकपाषण्डिपरिगृहीतम्, यत् लोके सारभूतं गम्भीरतरं महासमुद्रात् स्थिरतरकं मेरुपर्वतात्, सौम्यतरं चन्द्रमण्डलात्, दीप्ततरं सूर्यमण्डलात्, विमलतरं शारदनभस्तलात्, सुरभितरं गन्धमादनात्। येऽपि च लोकेऽपरिशेषा मन्त्रयोगा जपाश्च विद्याश्च जृम्भकाश्च अस्त्राणि च शस्त्राणि च शिक्षाश्चाऽऽगमाश्च सर्वाणि चैतानि सत्ये प्रतिष्ठितानि, सत्यमपि च संयमस्योपरोधकारकं किञ्चिदपि नो वक्तव्यम् हिंसासावद्यसम्प्रयुक्तं भेद-विकथाकारकम् अनर्थवादकलहकारकम् अनार्यम् अपवाद विवाद सम्प्रयुक्तं विडम्बम् ओजोधैर्यबहुलं निर्लज्जं लोकगर्हणीयं दुर्दृष्ट दुःश्रुतममनोज्ञम्, आत्मन स्तवना परेषु निन्दा, न तत्रमेधावी, न तत्रधन्यो न तत्र प्रियधर्मो न तत्कुलीनो न तत्र दानपति र्न तत्र शूरो न तत्र प्रतिरूपो न तत्र लष्टो न पण्डितो न बहुश्रुतो नापि च तत् तपस्वी न चापि परलोक निश्चित मतिरस्ति। सर्वकाल जातिकुल-रूप-व्याधिरोगेण यापि वर्जनीयम्, द्रुग्धत उपकारमतिक्रान्तमेवंविधं सत्यमपि न वक्तव्यम्, अथकीदृशं पुनरपि सत्यन्तु भाषितव्यम्? यत्तद्रव्यैः पर्यायैश्च गुणैः कर्मभिर्बहुविधैः शिल्पैरागमैश्च नामाऽऽख्यात निपातोपसर्ग-तद्धित समाससन्धिपदहेतु यौगिकोणादि क्रिया विधान धातु स्वरविभक्तिवर्णयुक्तं त्रिकालं दशविधमपिसत्यं यथा भणितं तथा च कर्मणा भवति द्वादशविधा भवति भाषा वचनमपि च भवति षोडशविधम्। एव मर्हदनुज्ञातं समीक्षितं संयमिना काले च वक्तव्यम्। सूत्र १।२४।

अन्वय०—"( तं सच्चं ) इस प्रकार का वह सत्य महाव्रत ( भगवं ) भगवान्-अतिशय सम्पन्न ( तित्थगर सुभासियं ) तीर्थंकरों से अच्छी तरह कहा गया ( दसविहं ) दश प्रकार का है ( चउदस पुव्वीहिं ) चतुर्दश पूर्व धारियों ने ( पाहुड

त्थविदितं ) जिसे पूर्वका एक अंश होने के कारण अर्थ रूप से जाना है। ( महरिसीणय ) और महर्षि-मुनिओं को ( समयप्पदिन्नं ) सिद्धान्त रूप से दिया गया अर्थात् साधुओं के द्वितीय महाव्रत में सिद्धान्त के द्वारा सत्य स्वीकार किया गया है। देविंद नरिंद भासियत्थं ) देवेन्द्र तथा नरेन्द्र-राजाओं ने लोगों में जिसका अर्थ कहा है,अथवा देवेन्द्र आदि को जिसका प्रयोजन तत्त्वरूप से कहा गया है वैसा ( वेमाणिय साहिय ) वैमानिक देवों से समर्थित एवं आसेवित है ( महत्थ ) बड़े प्रयोजन वाला ( मंतोसहि विज्जासाहणत्थं ) मन्त्र, औषधि और विद्याओं के साधन में अर्थयुक्त याने साधना का कारण है ( चारण गण समण सिद्धविज्जं ) विद्या चारण आदि मुनिवृन्द की विद्याओं को सिद्ध करने वाला ( मणुयगणाण वंदणिज्जं, मनुष्य गणो का वन्दनीय-स्तुति पात्र ( अमर गणाण अच्चणिज्ज ) देवगणों का अर्चनीय-आदर पात्र ( असुरगणाण च पूजनीय ) असुरकुमार आदि भवनपति देवों का पूजनीय-बहुमान पात्र और ( अणेग पासंडि परिग्गहितं ) विविध प्रकार के व्रतधारिओं से धारण किया गया है ( जं ) जो पूर्वोक्त महत्व वाला है (तं) वह सत्य ( लोगंमि सारभूय ) लोकों में सारभूत ( महा समुद्दाओ गभीरतर ) एवं महा समुद्र-लवण आदि विशाल समुद्र से अधिक गम्भीर ( मेरु पव्वयाओ थिरतरग) मेरु पर्वत से भी अधिक स्थिर ( चन्दमंडलाओ सोमतरगं ) चन्द्र मण्डल से विशेष सौम्य तथा ( सूरमंडलाओ दित्ततर ) सूर्य मण्डल से अधिक दीप्ति वाला ( सरयनहयलाओ विमलतर ) शरत् काल के आकाश तल से अधिक निर्मलता वाला और ( गंधमादणाओ सुरभितर ) गन्धमादन नामक गज दन्त से विशेष सुगन्धि वाला है ( जेवि य ) और जो भी ( लोगमि ) ससार में ( अपरिसेसा मंत-जोगा ) हरिणगमेषी आदि के सब मन्त्र तथा वशीकरण आदि योग ( जवा य ) और जप ( विज्जा य ) प्रज्ञप्ति आदि विद्यायें और ( जभका ) जृम्भक देव ( य ) और ( अत्थाणि ) धनुष आदि अस्त्र ( सत्थाणि य ) और शस्त्र अर्थ शास्त्र आदि शास्त्र या खड्गादिशस्त्र ( सिक्खाओ य ) और कलायें ( आगमा य ) सिद्धान्त-ज्ञान के तत्त्व शास्त्र हैं ( सव्वाणिवितांइ ) वे सभी पूर्वोक्त मन्त्रादि ( सच्चे पइट्ठियाइं ) सत्य में प्रतिष्ठित हैं ( सच्चमि य ) और सत्य भी ( संजमस्स उवरोह कारक ) सयम में बाधक हो वैसा ( किंचिवि वत्तव्वं ) किंचिन्मात्र भी नहीं बोलना चाहिए जैसे ( हिंसा सावज्जसपउत्त ) हिंसा व पाप युक्त क्रिया के योग वाला ( भेयविकह

कारगं ) दर्शन तथा चारित्र में भेद करने वाली भी भादि की विकथा युक्त वचन ( अप्पत्थयाय कलह कारगं ) निष्प्रयोजन वचन और कलहकारी ( अणज्जं ) अनार्य के योग्य अथवा न्याय हीन वचन ( अववाय विवाय संपउत्तं ) अपवाद-मिथ्या और विरोध युक्त वचन ( वेलंबं ) दूसरों की विडम्बना कारी वचन ( ओज धेज्जबहुलं ) बल और धृष्टता-धिठाई की अधिकता वाला ( निल्लज्जं ) तथा लज्जा रहित ( लोयगरहणिज्जं ) लोक में निन्दनीय वचन ( दुद्दिट्ठं ) अच्छी तरह नहीं देखा हुआ ( दुस्सुयं ) बुरी तरह से सुना हुआ, ( अमुणियं ) पूर्ण रीति से नहीं जाना हुआ, याने अज्ञात विषय का कथन ( अप्पणो थवणा ) अपनी स्तुति तथा ( परेसुनिंदा ) दूसरों के सम्बन्ध में निन्दा करना जैसे कि-( न तंसि मेहावी ) तू धारण-धारणा शक्ति सम्पन्न मेधावी नहीं है ( ण तंसि धण्णो ) तू धन पाने योग्य नहीं है ( न तंसि पियधम्मो ) तू प्रिय धर्मा-धर्म प्रेमी नहीं है ( न तं कुलीणो ) न तू कुलीन है ( न तंसि दाणपती ) दान देने वाला भी तू नहीं है ( न तंसि सूरो ) तू शूर नहीं है ( न तंसि पडिरूवो ) तू रूप सम्पन्न भी नहीं है ( न तंसि लट्ठो ) न तू सौभाग्यशाली है ( न पंडिओ ) न पण्डित है ( न बहुस्सुओ ) तू बहुत शास्त्र का जानकार नहीं ( न वि य तंसि तवस्सी ) तू तपस्वी भी नहीं है ( ण यावि परलोगणिच्छियमतीऽसि ) और तू पर लोक के विषय में निश्चित बुद्धि वाला भी ( सव्व कालं ) सर्व काल-आजन्म ( नऽसि ) नहीं है, इस प्रकार ( जाति कुल रूव वाहिरोगेणवावि ) जाति-मातृवंश, कुल-पितृ वंश, रूप, व्याधि-कुष्ठ आदि अथवा रोग-ज्वर आदि से जो भी वचन ( वज्जणिज्जं पर पीडाकारी होने से वर्जनीय ( होइ ) है ( दुहओ ) द्रव्य और भाव से ( उवयार मतिक्कंतं ) उपचार-आदर या उपकार रहित हो ( एवं विहं सच्चंपि ) इस प्रकार का सत्य भी ( न वत्तव्वं ) नहीं बोलना चाहिए।

अब जो सत्य वचन बोलने योग्य होता है प्रश्न पूर्वक उसका स्वरूप कहते हैं-(अह केरिसगं पुणाइ सच्चंतु भासियव्वं?)अब फिर कैसा सत्यभी वचन बोलने योग्य है? उत्तर-(जं)जो सत्य (दव्वेहिं पज्जवेहिय) द्रव्य और पर्याय-अवस्थाओं से (गुणेहिं कम्मेहिं) वर्ण आदि गुणों से कृषि आदि कर्मोंसे (बहुविहेहिं सिप्पेहिं) बहुत प्रकारके चित्र आदि शिल्प (आगमेहिय) और सिद्धान्त के अर्थों से (नाम क्खाय ) नामपद देवदत्त आदि, आख्यात- क्रियापद भवति आदि ( निवा उवसग्ग तद्धित समास संधि पद हेउ जोगिय उणादि किरिया विहाण धातु सर विभत्ति वण्णजुत्तं ) निपात-

ष वा आदि, उपसर्ग-धातु के साथ लगने वाले प्र परा आदि, तद्धित-तद्धित प्रत्यय जिनके अन्त में हों जैसे नाभेय आदि पद, समास-अनेक पदों को एक साथ मिला कर एक पद करना जैसे राजपुरुष आदि, सन्धि-समीपतासे पदों का सम्बन्ध विशेष जैसे दृध्यानय आदि, हेतु-अनुमान का अङ्ग विशेष, यौगिक- दो आदि के संयोग वाला पद अथवा जिस पद के अवयवार्थ से समुदायार्थ जाना जाय जैसे पाचक पाठक आदि, उणादि-उण् आदि उणादिगण के प्रत्यय जिनके अन्त में हों जैसे साधु, स्वादु आदि क्रियाविधान-क्रिया का विधान करने वाला पाचक आदि पद, धातु-क्रियाका कथन करने वाले भू आदि,स्वर-आकार आदि या षड्जादि सप्तस्वर विभक्ति-प्रथमा आदि सात विभक्तिपद और वर्ण-ककार आदि व्यञ्जनों से युक्त (तिकल्लं) त्रिकाल विषयक (दसविहंपि) दश प्रकार का भी (जहभणियं) जैसे वचन (तहय) वैसे ही (कम्मुणा) लेखन व चेष्टा आदि क्रिया से दश प्रकार का ( सच्चं ) सत्य ( होइ ) होता है ( दुवालस विहा होइ भासा ) बारह प्रकार की भाषा होती है (वयणपि यहोइ सोलसविहं) और वचन भी सोलह प्रकार का होता है (एवं) इस प्रकार ( अरहंत ) तीर्थङ्करों से ( मणुन्नायं ) अनुज्ञात ( य समिक्खियं ) और अच्छी तरह विचार पूर्वक सोचा हुआ वचन ( संजएण ) संयमी साधु को ( कालंमिय ) बोलने के अवसर पर ( वत्तव्वं ) बोलना चाहिए । २ । २४ ॥

भावार्थ-हे जम्बू ! अहिंसा व्रत के बाद फिर दूसरा सत्य वचन रूप संवर है, जो शुद्ध-सुयोग्य शिव-कल्याण कारक यावत् उत्तम देव और श्रेष्ठ पुरुषों का बहुमत है, साधु धर्म का अनुष्ठान तथा सुगति मार्ग का देशक है। तप और नियमों में इसका प्रधान स्थान है। यह लोकोत्तम व्रत विद्याधरों की विद्याका साधन तथा स्वर्ग व मोक्ष मार्ग का प्रवर्तक है। मृषासे रहित यह सत्य नामका संवर कुटिलता रहित सरल और वस्तु के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करने वाला यावत् संसार मे पदार्थ मात्र का सम्यक् कथन करने वाला है, विरोध रहित,यथार्थ,मधुर और जो वह सत्य मनुष्यों की विविध दशाओं में प्रत्यक्ष देवों की तरह उपकारक होता है, सत्य के प्रताप से महा समुद्र में भी सत्यशील मनुष्य नहीं डूबते हैं,और अपमृत्यु सेभी नही मरते हैं तथा सत्य में निष्ठा रखने वालों की सन्निधि में देव भी आते हैं, इत्यादि विविध विशेषताशाली सत्य भगवान तीर्थङ्करों से अच्छी तरह कहा गया है यह सत्य दश प्रकार का है, चौदह पूर्व के ज्ञानियों ने पूर्व श्रुत में इसको सम्यग् जाना

और साधुओं को महाव्रत रूप से दिया गया है, देवेन्द्र आदि के समक्ष कहा गया तथा वैमानिक देवों से सेवित है मन्त्र आदि की सिद्धि का साधन तथा देव-दानव और मानवों के लिये वन्दनीय, आदरणीय एवं पूज्य है, अनेक प्रकार के व्रतियों से धारण किया गया जो यह सत्य समस्त लोक में सारभूत है, गम्भीरता में समुद्र जैसा अति गम्भीर और स्थिरता में मेरु जैसा अकम्प है ऐसे सौम्य दीप्ति और निर्मलता में चन्द्र सूर्य तथा स्वच्छ आकाश व गन्धमादन की उपमा जिस सत्य को दी गई है, संसार में जो भी मन्त्र यन्त्र आदि हैं वे सभी सत्य में प्रतिष्ठित हैं। सत्य होकर भी जो वचन संयम में बाधक हो वह नहीं बोलना चाहिए—जैसे हिंसा आदि पाप युक्त तथा सच्चरित्र में भेद करने वाली की आदि की विकथा युक्त निरर्थक व कलह वर्धक व न्याय विरुद्ध वचन तथा लोक निन्दनीय तथा दुरित आदि वचन अवाच्य है, अपनी स्तुति एवं पर निन्दा के वचन भी नहीं बोलना चाहिए, जैसे कि तू बुद्धिमान नहीं है आदि आदि इस रूप आदि से जो भी वचन वर्जनीय है इस प्रकार का सत्य भी नहीं बोलना चाहिए सत्य होने पर भी कैसा वचन बोलना चाहिए? यह दिखाते हैं जो वचन द्रव्य पर्याय गुण कर्म और विविध प्रकार के शिल्प तथा सिद्धान्त के अर्थ से युक्त हो, नाम, क्रिया, निपात, उपसर्ग आदि से युक्त त्रिकाल विषयक दश प्रकार का भी सत्य वचन बोलने और कथन आदि क्रिया से सत्य होता है, प्राकृत, संस्कृत आदि, बारह प्रकार की भाषायें तथा तीन लिंग आदि से १६ प्रकार के वचन हैं इस प्रकार तीर्थङ्करों से अनुज्ञात सुनिश्चित वचन ही अवसर पर बोलना चाहिए अन्यथा नहीं बोलना चाहिए।

असत्य परिहार के लिये (जिन शासन और) सत्य वचन की पाँच भावना—

मूल—"इमंच अलिय पिसुण फरुस कडुय चवल वयण परिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं पेच्चाभाविकं आगमेसिभद्दं सुद्धं नेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्खपावाणं विओसमणं, तस्स इमा पंच भावणाओ बितियस्स, वयस्स अलिय वयणस्स वेरमण-परिरक्खणट्ठयाए पढमं सोऊणं संवरट्ठं परमट्ठं सुट्ठु जाणिऊण न वेगियं न तुरियं न चवलं न कडुयं न फरुसं न साहसं मय परस्स पीलाकरं सावज्जं सच्चं च हियं च मियं च गाहगं च सुद्धं संगयम् अकाहलं च समिक्खितं संजतेण कालंमिय

वत्तव्वं, एवं अणुवीति समिति जोगेण भाविओ भवति अंतरप्पा संजय कर चरण नयण वयणो सूरो सच्चज्जव संपुन्नो। बितियं कोहोणसेवियव्वो, कुद्धोचंडिक्किओ मणूसो अलियं भणेज्ज, पिसुणं भणेज्ज फरुसं भणेज्ज अलियं पिसुणं फरुसंभणेज्ज, कलहं करेज्जा वेरं करेज्जा विकहं करेज्जा कलहं वेरं विकहं करेज्जा सच्चं हणेज्ज सीलं हणेज्ज विणयं हणेज्ज सच्चं सीलं विणयं हणेज्ज वेसी हवेज्ज वत्थु भवेज्ज गम्मोभवेज्ज वेसोवत्थु गम्मो भवेज्ज, एयं अन्नं च एवमादियं भणेज्ज कोहग्गि संपलित्तो तम्हा कोहो न सेवियव्वो, एवं खंतीइ भाविओ भवति अंतरप्पा संजय कर चरण नयण वयणो सूरो सच्चज्जव संपन्नो। ततियं लोभो न सेवियव्वो, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं खेत्तस्स व वत्थुस्स व कतेण १ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं कित्तीए लोभस्स व कएण २ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं रिद्धीय (ए) वसोक्खस्स व कएण ३, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं भत्तस्स व पाणस्स व कएण ४, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं पीढस्स व फलगस्स व कएण ५, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं सेजाए व संथारकस्स व कएण ६, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं तरथस्स व पत्तस्स व कएण ७, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं कंवलस्स व पायपुंछणस्सव कएण ८ लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं सीसस्स व सिस्सिणीए व कएण ९, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं अन्नेसुय एवमादिसु बहुसु कारणसतेसु, लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं तम्हा लोभो न सेवियव्वो, एवं मुत्तीय भाविओ भवति अंतरप्पा संजयकर चरण नयण वयणो सूरो सच्चज्जव संपन्नो।

छाया—"इदञ्चाऽलीकं पिशुन परुष कटुक चपल वचन परिरक्षणार्थाय प्रवचन भगवता सुकथितमात्महितं प्रेत्यभाविकम् आगमिष्यद्भद्रं शुद्धं न्यायोपेतम् अकुटिलम् अनुत्तरं सर्वदुःख पापाना व्युपशमनम्। तस्येमा पञ्चभावना द्वितीयस्य व्रतस्य अलीकवचनस्य विरमण परिरक्षणार्थतायै प्रथमं श्रुत्वा संवरार्थं परमार्थं सुष्ठु ज्ञात्वा न वेगितं न त्वरितं न चपल न कटुकं न परुष न साहसं न च परस्य पीडाकरं सावद्यं सत्यञ्च हितञ्च मितञ्च ग्राहकञ्च शुद्धं सङ्गतं काहलमपोपञ्च समीक्षितं संयतेन काले च वक्तव्यम्। एवमनुविचिन्त्य समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा

संयतकर चरणनयनवदनः शूरः सत्यार्जव सम्पूर्ण (सम्पन्न)। द्वितीयं क्रोधो न सेवितव्यः क्रुद्धश्चाण्डिक्यितो मनुष्योऽलीकं भणेत्, पैशुन्यं भणेत्, परुषं भणेत्, अलीकं पैशुन्यं परुषं भणेत्। कलहं कुर्यात्, वैरं कुर्यात्, विकथां कुर्यात्, कलहं वैरं विकथां कुर्यात्। सत्यं हन्यात्, शीलं हन्यात्, विनयं हन्यात्, सत्यं शीलं विनयं हन्यात्, द्वेष्यो भवेत्, वस्तु (कोपस्थानं) भवेत्, गम्यो भवेत्, द्वेष्यो वस्तु गम्यो भवेत्। एतदन्यच्चैवमादिकं भणेत् क्रोधाग्नि सम्प्रदीप्त तस्मात् क्रोधो न सेवितव्यः, एवं क्षान्त्या भावितो भवत्यन्तरात्मा संयतकर चरण नयनवदनः शूरः सत्यार्जव सम्पन्न। तृतीयं लोभो न सेवितव्यो लुब्धो लोलो भणेत अलीकं क्षेत्रस्य वा वस्तुनःकृते १। लुब्धो लोलो भणेत्—अलीकं कीर्तेर्लोभस्य वा कृते २। लुब्धो लोलो भणेदलीकमृद्धेर्वा सौख्यस्य च कृते ३। लुब्धो लोलो भणेदलीकं भक्तस्य वा पानस्य च कृते ४। लुब्धो लोलो भणेदलीकं पीठस्य वा फलकस्य च कृते ५। लुब्धो लोलो भणेदलीकं शय्याया वा संस्तारकस्य वा कृते ६। लुब्धो लोलो भणेदलीकं वस्त्रस्य वा पात्रस्य च कृते ७। लुब्धो लोलो भणेदलीकं कम्बलस्य वा पादप्रोञ्छनस्य च कृते ८। लुब्धो लोलो भणेदलीकं शिष्यस्य वा शिष्यायाःकृते ९। लुब्धो लोलो भणेदलीकमन्येषु चैव मादिषु बहुषु कारणशतेषु, लुब्धो लोलो भणेदलीकम्। तस्माल्लोभो न सेवितव्यः एवं मुक्त्या भावितो भवत्यन्तरात्मा संयत कर चरण नयन वदन शूर सत्यार्जव सम्पन्न।

अन्वय०—"(इणंच) और यह (पावयणं) प्रवचन (अलिय पिसुण फरुस कडुय चवल वयण परिरक्खणट्ठयाए) झूठ, पिशुन-परोक्ष में दूसरे के दूषण कहने रूप, परुष-कठोर कटु और चपलता से बिना विचारे बोले हुए वचन से आत्मा की अच्छी तरह रक्षा करने के हेतु (भगवया) भगवान् महावीर ने (सुकहियं) सम्यक् रीति से कहा है (अत्तहियं) आत्मा के लिये हितकारी (पेच्चाभाविकं) परलोक में शुभ फल देने वाला (आगमेसिभद्दं) भविष्य में कल्याण का कारण तथा (सुद्धं) शुद्ध (नेयाउयं) न्याय युक्त (अकुडिलं) कुटिलता रहित (अणुत्तरं) सर्व श्रेष्ठ और (सव्वदुक्खपावाणं) सब दुःख एवं पापों का (विउसमणं) उपशमन करने वाला है (तस्स) उस (बितियस्स वयस्स) दूसरे व्रत की (इमा) ये नीचे कही जाने वाली (पंच भावणाओ) पांच भावनायें (अलियवयणस्स वेरमण परिरक्खणट्ठयाए) असत्य वचन विरमण वाले असत्य

याग रूप व्रत की रक्षा के लिये होती है जैसे ( पढमं ) पहली भावना, विचार पूर्वक बोलना ( संवरट्ठं ) सद्गुरु के पास मृषावाद विरमण रूप सवर के अर्थ को ( सोऊण ) सुनकर ( परमट्ठं ) योग्य अयोग्य वचन के परमार्थ-सार को ( सुट्ठु ) अच्छी तरह ( जाणिऊण ) जानकर ( नवेगिय ) विकल्प की व्याकुलता से वेगयुक्त नहीं बोलना चाहिए ( न तुरियं ) त्वरायुक्त नहीं ( न चवल ) व चंचल वचन भी नहीं बोले ( न कडुयं ) अर्थ से कटु नहीं ( न फरुसं ) वर्ण से कठोर नहीं ( न साहस ) साहस प्रधान-सहसा वचन नहीं ( न य परस्स पीलाकरं ) दूसरे को पीडाकारी ( सावज्जं ) सदोष वचन नहीं बोलना चाहिए ( सच्चंच ) सत्य और ( हियंच ) हितकारी ( मियंच ) और मित-परिमित (गाहगंच) वस्तुओं का यथावत् ग्राहक-और ( सुद्ध )शुद्ध-पूर्वोक्त दोष से रहित ( संगयम काहलंच ) संगत-योग्य और मन्मन-अव्यक्ताक्षर रहित ( समिक्खितं ) विचार पूर्वक देखा गया ही वचन ( संजतेण ) साधु को ( कालमिय ) अवसर पर ( वत्तव्वं ) बोलना चाहिए ( एवं ) इस प्रकार ( अणुवीतिसमिति जोगेण ) विचार पूर्वक बोलने रूप समिति के योग से ( भाविओ ) भावित ( अंतरप्पा ) अन्त करण वाला ( संजय कर चरण नयण वयणो ) कर, चरण, नेत्र और मुख के संयम वाला ( सूरो ) शूर साधु ( सच्चज्जव सपुन्नो ) सत्य व सरलता से युक्त ( भवति ) होता है। ( वितिय ) दूसरी भावना क्रोधनिग्रह रूप जैसे-(कोहोण सेवियव्वो) क्रोध का सेवन नहीं करना चाहिए (कुद्धो) क्रुद्ध ( चडिकियो ) प्रचण्ड रूप बना हुआ ( मणूसो ) मनुष्य ( अलिय भणेज्ज ) झूठ बोलता है ( पिसुनं भणेज्ज ) परोक्ष में दूसरे के दोषों को कहता है (फरुसं भणेज्ज) कठोर बोलता है ( अलिय पिसुण फरुस भणेज्ज ) झूठ, पैशुन्य और कठोर वचन तीनों बोलता है ( कलह करेज्जा ) कलह करता ( वेरं करेज्जा ) विरोध करता है ( विकहं करेज्जा ) धर्म विरोधी स्त्री आदि की विकथायें करता है (कलह वेरं विकहं करेज्जा ) कलह वैर और विकथा इन तीनों को करता है ( सच्च हणेज्ज ) सत्य को नष्ट करता है ( सीलं हणेज्ज ) शील-पवित्र आचार या समाधि का हनन करता है ( विणयं हणेज्ज ) विनय का हनन करता है ( सच्च सीलं विणयं हणेज्जा ) सत्य शील और विनय इन तीनों का हनन करता है ( वेसो हवेज्ज ) असत्य भाषी लोक में द्वेष्य-अप्रिय होता है ( वत्थुं भवेज्ज ) दोष का घर होता है ( गम्मो भवेज्ज ) अनादर का स्थान होता है ( वेसो वत्थु गम्मो भवेज्ज ) द्वेष के पात्र दोष का घर

और अनादर का स्थान तीनों होता है ( एवं अन्नं च एवमादियं ) यह असत्य और कटु कठोर आदि अन्य इस प्रकार के वचन ( कोहग्गि संपलित्तो ) क्रोधाग्नि से जलते हृदय वाला, ) भणेज्ज ) बोलता है ( तम्हा ) इसलिये ( कोहो ) क्रोध ( न से- वियव्वो ) सेवन नहीं करना चाहिए ( एवं ) इस प्रकार ( खंतीइ ) क्षमा ( भा- विओ ) युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तःकरण वाला ( संजय कर चरण नयण वयणो ) कर, चरण, नयन और मुख से संयमयुक्त साधु ( सूरो ) शूर तथा ( सच्चज्जव संपन्नो ) सत्य और सरलता से सम्पन्न ( भवति ) होता है ( तइयं ) तृतीय भावना लोभ निग्रहरूप ( लोभो ) लोभ ( न सेवियव्वो ) नहीं करना चाहिए क्योंकि ( लुद्धो लोलो ) लुब्ध-लोभी मनमें चपल बना हुआ ( खेत्तस्स व वत्थुस्स व कएण ) क्षेत्र-जमीन या घर के लिए ( भणेज्ज अलियं ) असत्य बोलता है ॥ १ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी तथा चपल मन वाला ( कित्तीए लोभस्स व कएण ) कीर्ति अथवा लोभ-धन प्राप्ति के लिए ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ २ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल मती ( इड्ढीय व सोक्खस्स व कएण ) ऋद्धि या सुख के लिए ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ३ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चपल मन वाला ( भत्तस्स व पाणस्स व कएण ) भोजन व पानी के लिये ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ४ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल ( पीढस्स व फलगस्स व कएण भणेज्ज अलियं ) पीठ व फलक-पाट के लिए झूठ बोलता है ॥ ५ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल ( सेज्जाए व संथारगस्स व कएण ) शय्या अथवा संस्तारक-छोटे बिछौने के लिए ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ६ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल ( वत्थस्स व पत्तस्स व कएण ) वस्त्र अथवा पात्र के लिए ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ७ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल ( कंबलस्स व पायपुंछणस्स व कएण ) कम्बल या पादप्रोंछन रजोहरण के लिए ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ८ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल ( सीसस्स व सिस्सिणीए व कएण ) शिष्य अथवा शिष्यणी के लिए ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ९ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चपल ( अन्नेसु य एवमादिएसु ) फिर अन्य इस प्रकार के ( बहुसु कारणसएसु ) बहुत से सैकड़ों कारणों से ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ( लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं ) लोभी व चपल व्यक्ति बहुत झूठ बोलता है ( तम्हा लोभो न सेवियव्वो ) इसलिए लोभ

का सेवन नहीं करना चाहिए। (एवं) इस प्रकार (मुत्तीय भाविओ) मुक्ति-निर्लोभिता से युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला (संजय कर चरण नयण वयणो) हाथ पैर आख और मुख का संयमी साधु (सूरो) शूर एवं (सच्चज्जवसपन्नो) सत्य वं सरलता से युक्त (भवति) होता है।

मूल–" चउत्थं न भाइयव्वं भीतं खु भया अइंति, लहुयं भीतो अबितिज्जओ मणूसो भीतो भूतेहिं घिप्पइ, भीतो अन्नं पिहु भेसेज्जा, भीतो तव संजमं पिहु मुएज्जा भीतो य भरं न नित्थरेज्जा सप्पुरिसनिसेवियं च मग्गं भीतो न समत्थो अणुचरिउं, तम्हा न भातियव्वं भयस्स वा वाहिस्स वा रोगस्स वा जराए वा मच्चुस्स वा अन्नस्स वा एगस्सवा ( एवमादियस्स ) एवं धेज्जेण भाविओ भवति अंतरप्पा संजयकर चरण नयण वयणो सूरो सच्चज्जव संपन्नो। पंचमकं हासं न सेवियव्वं अलियाइं, असंतकाइं जंपंति हासइत्ता परपरिभव कारणं च हासं परपरिवायप्पियं च हासं पर पीलाकारगं च हासं भेदविमुत्तिकारकं च हासं अन्नोन्नजणियं च होज्जहासं अन्नोन्नगमणं च होजमम्मं अन्नोन्नगमणं च होज्जकम्मं कंदप्पाभियोगगमणं च होज्जहासं आसुरियं किव्विसत्तणं च जणेज्जहासं तम्हा हासं न सेवियव्वं एवं मोणेण भाविओ भवइ अंतरप्पा संजय कर चरण नयण वयणो सूरो सच्चज्जव संपन्नो, एवमिणं संवरस्सदारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं इमेहिं पंचहिवि कारणेहिं मण वयण काय परिरक्खिएहिं निच्चं आमरणं तं च एस जोगो णेयव्वो धितिमया मतिमया अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकलिट्ठो ( सुद्धो ) सव्वजिणमणुन्नाओ, एवं बितियं संवर दारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं अणुपालियं आणाए आराहियं भवति, एवं नायमुणिणा भगवया पन्नवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धवर सासणमिणं आघवितं सुदेसितं पसत्थं बितियं संवरदारं समत्तं तिबेमि ॥ सू० ॥ २५। इति बितियंदारं।

छाया–"चतुर्थं न भेतव्यम्, भीतंखलु भयान्यायान्ति लघुकम्, भीतोऽद्वितीयको मनुष्यः, भीतो भूतै लिप्यते गृह्यते, भीतोऽन्यानपिभेषयेत् भीतस्तपः संयमानपि-मुञ्चेत्, भीतश्चभारं न निस्तारयेत् सत्पुरुष निषेवितं च मार्गं भीतो न समर्थोऽनुचरि-

और अनादर का स्थान तीनों होता है ( एयं अन्नं च एवमाइयं ) यह असत्य और कूट लेखन आदि अन्य इस प्रकार के वचन ( कोहग्गि संपलित्तो ) क्रोधाग्नि से जले हृदय वाला, ) भणेज्ज ) बोलता है ( तम्हा ) इसलिये ( कोहो ) क्रोध ( न सेवियव्वो ) सेवन नहीं करना चाहिए ( एवं ) इस प्रकार ( खंतीइ ) क्षमा से ( भाविओ ) युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तःकरण वाला ( संजय कर चरण नयण वयणो ) कर, चरण, नेत्र और मुख के संयमयुक्त साधु ( सूरो ) शूर तथा ( सच्चज्जव संपन्नो ) सत्य और सरलता से सम्पन्न ( भवति ) होता है ( तइयं ) तृतीय भावना लोभ निग्रहरूप ( लोभो ) लोभ ( न सेवियव्वो ) नहीं करना चाहिए क्योंकि ( लुद्धो लोलो ) लुब्ध-लोभी व्रत में चपल बना हुआ ( खेत्तस्स व वत्थुस्स व कएण ) क्षेत्र-जमीन या घर के लिये ( भणेज्ज अलियं ) असत्य बोलता है ॥ १ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी तथा चपल व्रत वाला ( कित्तीए लोभस्स व कएण ) कीर्ति अथवा लोभ-धन प्राप्ति के लिये ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ २ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चपल व्रती ( रिद्धीय व सोक्खस्स व कएण ) ऋद्धि या सुख के लिये ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ३ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चपल व्रत वाला ( भत्तस्स व पाणस्स व कएण ) भोजन व पानी के लिये ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ४ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल ( पीढस्स फलगस्स व कएण भणेज्ज अलियं ) पीठ व फलक-पाट के लिये झूठ बोलता है ॥ ५ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल ( सेज्जाए व संथारकस्स व कएण ) शय्या अथवा संस्तारक-छोटे बिस्तर के लिये ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ६ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल ( वत्थस्स व पत्तस्स व कएण ) वस्त्र अथवा पात्र के लिये ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ७ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल ( कंबलस्स व पायपुंछणस्स व कएण ) कंबल या पादप्रोञ्छन रजोहरण के लिये ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ८ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल ( सीसस्स व सिस्सणीए व कएण ) शिष्य अथवा शिष्यणी के लिये ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ॥ ९ ॥ ( लुद्धो लोलो ) लोभी व चंचल ( अन्नेसु य एवमाइसु ) फिर अन्य इस प्रकार के ( बहुसु कारणसतेसु ) बहुत से सैकड़ों कारणों में ( भणेज्ज अलियं ) झूठ बोलता है ( लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं ) लोभी व चंचल मनुष्य झूठ बोलता है, ( तम्हा लोभो न सेवियव्वो ) इसलिये लोभ

(भाविओ) युक्त (अंतरप्पा) अन्तः करण वाला–(संजय कर चरण नयण वयणो) हाथ पैर आख और मुख का संयमी साधु (सूरो) शूर (सच्चज्जवसपन्नो) सत्य व सरलता से सम्पन्न (भवति) होता है। (पंचमकं) पाचवीं भावना हास्य त्याग (हास न सेवियव्वं) हास्य का सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि (हासइत्ता,) हास्यरस के वशीभूत नर (अलियाइं) सत्य अर्थ को छिपाने रूप अलीक और (असंतकाइं) मिथ्या बात बनाने रूप असत्य वचन को (जंपति) बोलते हैं (परपरिभवकारणं च हासं) और हास्य दूसरों के अनादर का कारण है (परपरिवायप्पियं च हासं,) और हास्य दूसरे के दूषण कथन को प्रिय समझने वाला है (च) फिर (हासं पर पीला कारगं) हास्य दूसरे को पीड़ा देने वाला है (च) और (हास भेइविमुत्तिकारक) हास्यचारित्रभेद और शरीर को विकृत–विकारयुक्त करने वाला है जो मोक्ष मार्ग का भेद करने वाला है (अन्नोन्नजनियं च हास) और हास्य अन्योन्य–एक दूसरे से किया हुआ (होज्ज) होता है (अन्नोन्नगमनं च होज्ज मम्मं) और फिर हास्य परस्पर में परदार गमन आदि मर्म कुचेष्टा का कारण होता है (अन्नोन्नगमन च होज्जकम्मं) फिर हास्य परस्पर गमन योग्य कर्म रूप होता है (कंदप्पाभियोग गमण च होज्जहास) कन्दर्प हास्यकारी और आभियोगिक–आज्ञाकारी देव जाति विशेष में गमन का हास्य हेतु होता है (आसुरियं) असुर जाति के देवपन को (किब्विसत्तणंच) और किल्विषिक–नीच जाति के देवपन को (जणेज्ज हास) हास्य–हंसी मजाक उत्पन्न करता है (तम्हा) इसलिए (हास न सेवियव्वं हास्य-परिहास नहीं करना चाहिए (एवं मोणेण भाविओ) इस प्रकार मौन से युक्त (अंतरप्पा) अन्त करण वाला (सजय कर चरण नयण वयणो) हाथ पैर आख और मुख का सयमी साधु (सूरो) शूर (सच्चज्जव संपन्नो) सत्य सरलता से युक्त (भवति) होता है (एव मिणं) इस प्रकार यह (सवरस्सदारं) संवर का दूसरा द्वार (सम्म) सम्यक्–अच्छी तरह से (सवरियं) सुरक्षित (होइ) होता है,- (इमेहिं पच हिंवि कारणेहिं-) इन ऊपर कही गई पांच भावना रूप कारणों से (मण वयण काय परिरक्खिएहिं) जो मन वाणी और काय से सुरक्षित हैं उनसे (सुप्पणिहियं) उत्तम निधान की तरह (निच्चं) सदा (आमरणंत) मरण पर्यन्त (एसजोगो) यह योग (धितिमया मतिमया) धीर तथा बुद्धिमान् साधु को (णेयव्वो) पार ले जाने योग्य है (अणासवो) आस्रव रहित (अकलुसो) पाप रूप मल रहित

तुम्, तस्मान्नमेतव्यम्, मयस्य वा व्याधेर्वा रोगस्य वा जराया वा मृत्योर्वाऽन्यस्य वा एवमादे । एवं धैर्येण भावितो भवत्यन्तरात्मा संयतकर चरणनयनवदनः शूरः सत्या र्जवसम्पन्नः । पञ्चमकं हास्यं न सेवितव्यम् अलीकान्यसत्कानि जल्पन्ति हास्यवन्तः परपरिभवकारणञ्च हास्यं परपरिवादप्रियञ्च हास्यं परपीडाकारकं च हास्यं भेदवि मुक्तिकारकं च हास्यमन्योऽन्यजनितं च भवेद्धास्यम् अन्योऽन्यगमनञ्च भवेत्मर्म अन्योऽन्यगमनं च भवेत्कर्म कन्दर्पाभियोगगमनञ्च , भवेद्धास्यम् आसुरं किल्बिषत्वं च जनयेद्धास्यं तस्माद्धास्यं न सेवितव्यम् एवं मौनेन भावितो भवत्यन्तरात्मा संयतकर चरण नयन वदनः शूरः सत्यार्जवसम्पन्नः । एवमिदं संवरस्य द्वारं सम्यक् संवृत भवति सुप्रणिहितमेतैः पञ्चभिः कारणैर्मनोवचन काय परिरक्षितै नित्यमामरणान्तं चैष योगोनेतव्यो] धृतिमता मतिमताऽनास्रवाऽकलुषोऽच्छिद्राऽप रिस्रावी-असंक्लिष्टः सर्वजिनाऽनुज्ञातः । एवं द्वितीयं संवरद्वारं स्पृष्टं पालितं शोधितं तीर्णं कीर्तितमनुपालितमाज्ञयाऽऽराधित भवति । एवं ज्ञातमुनिना भगवता प्रज्ञप्तं प्ररूपित प्रसिद्धं सिद्धवर शासनमिदमाख्यातं सुदेशितं प्रशस्तं द्वितीयं संवरद्वारं समाप्तमितिब्रवीमि । इति द्वितीयं द्वारम् । सूत्र । २५ ।

अन्व०—"(चउत्थं) चौथी भावना भय का त्यागना रूप (न भाइयव्वं भय नहीं करना चाहिए (भीतम्) भयभीत मनुष्य को (भया अइंति लहुयं) शाम्र ही भय प्राप्त कर लेते हैं (भीतो अबितिज्जओमणूसो) डरा हुआ मनुष्य अद्वितीय सहा यता रहित होता है (भीतो भूतेहिं घिप्पइ) भीत मनुष्य भूत प्रेतों से पकड़ लिया जाता है (भीतो अन्नं पिहु भेसेज्जा) डरा हुआ दूसरों को भी डरा देता है (भी तो तव संजम पिहु मुएज्जा) डरा हुआ मनुष्य तप संयम को भी छोड़ देता है (भी तो य भरं न नित्थरेज्जा) और भीत मनुष्य कर्तव्य मार्ग को भी पार नहीं सकता है (सप्पुरिसनिसेवियं च) और सत्पुरुषों से सेवित (मर्गं) मार्ग को (भीतो) डरा हुआ मनुष्य (अलुमचरिउ) आचरण में लाने के लिये (न समत्थो) समर्थ नहीं होता है (तम्हा न भातिवव्वं, इसलिये भय नहीं करना चाहिए। (भयस्सवा) भय हर्ष-दुष्ट मनुष्य आदि से वाहिस्स वा रोगस्स वा) अथवा रोग से या व्याधि से अर्थात् ज्वर आदि से या दीर्घ कालिक कुष्ठ आदि से (जराए वा) अथवा वृद्धावस्था से (मच्चुस्स वा) अथवा मृत्यु से (अन्नस्स वा एवमादियस्स) अथवा अन्य ही दूसरे कारणों से डरना नहीं चाहिए (एवं) इस प्रकार (धेज्जेण) धैर्य से

(भाविओ) युक्त ( अंतरप्पा ) अन्त. करण वाला-( संजय कर चरण नयण वयणो ) हाथ पैर आख और मुख का संयमी साधु ( सूरो ) शूर ( सच्चज्जवसंपन्नो ) सत्य व सरलता से सम्पन्न ( भवति ) होता है। ( पचमकं ) पाचवीं भावना हास्य त्याग ( हास न सेवियव्वं ) हास्य का सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि (-हासइत्ता.) हास्यरस के वशीभूत नर ( अलियाइं ) सत्य अर्थ को छिपाने रूप अलीक और ( असंतकाइ ) मिथ्या बात बनाने रूप असत्य वचन को ( जपति ) बोलते हैं ( परपरिभवकारणं च हासं ) और हास्य दूसरों के अनादर का कारण है ( परपरिवायप्पियं च हासं.) और हास्य दूसरे के दूषण कथन को प्रिय समझने वाला है (च) फिर. ( हासं पर पीला कारगं ) हास्य दूसरे को पीड़ा देने वाला है ( च ) और ( हास भेदविमुत्तिकारक ) हास्यचारित्रभेद और शरीर को विकृत-विकारयुक्त करने वाला है जो मोक्ष मार्ग का भेद करने वाला है ( अन्नोन्नजनियं च हास ) और हास्य अन्योन्य-एक दूसरे से किया हुआ ( होज्ज ) होता है ( अन्नोन्नगमन च होज्ज मम्मं ) और फिर हास्य परस्पर में परदार गमन आदि मर्म कुचेष्टा का कारण होता है (-अन्नोन्नगमन च होज्जकम्मं ) फिर हास्य परस्पर गमन योग्य कर्म रूप होता है (कंदप्पाभियोग गमण च होज्जहास) कन्दर्प हास्यकारी और आभियोगिक-आज्ञाकारी देव जाति विशेष में गमन का हास्य हेतु होता है (आसुरिय) असुर जाति के देवपन को (किव्विसत्तणंच ) और किल्विषिक-नीच जाति के देवपन को ( जणेज्ज हास ) हास्य-हंसी मजाक उत्पन्न करता है (तम्हा) इसलिए (हास न सेवियव्वं हास्य-परिहास नहीं करना चाहिए (एव मोणेण भाविओ) इस प्रकार मौन से युक्त (अंतरप्पा) अन्त करण वाला ( सजय कर चरण नयण वयणो ) हाथ पैर आख और मुख का सयमी साधु ( सूरो ) शूर ( सच्चज्जव सम्पन्नो ) सत्य सरलता से युक्त ( भवति ) होता है ( एव मिण ) इस प्रकार यह ( सवरस्सदारं ) सवर का दूसरा द्वार (सम्म) सम्यक्-अच्छी तरह से ( संवरियं ) सुरक्षित ( होइ ) होता है, ( इमेहिं पच हिवि कारणेहिं ) इन ऊपर कही गई पाच भावना रूप कारणों से ( मण वयण काय परिरक्खिएहिं ) जो मन वाणी और काय से सुरक्षित हैं उनसे ( सुप्पणिहियं ) उत्तम निधान की तरह ( निच्चं ) सदा ( आमरणत ) मरण पर्यन्त ( एसजोगो ) यह योग ( धितिमया मतिमया ) धीर तथा बुद्धिमान् साधु को ( णेयव्वो ) पार ले जाने योग्य है ( अणासवो ) आस्रव रहित ( अकलुसो ) पाप रूप मल रहित

( अच्छिद्दा ) कर्म ग्रहण के योग्य छिद्र रहित ( अपरिस्सावी ) कर्म जल का नहीं बहाने वाला तथा ( असंकिलिट्ठो ) संक्लेश रहित और ( सव्वजिणमणुन्नाओ ) सब तीर्थङ्करों से अनुज्ञात है ( एवं ) इस प्रकार ( बितियं संवरदारं ) दूसरा सत्यव्रत रूप संवरद्वार ( फासियं ) वचन से स्पर्श-स्वीकार किया हुआ ( पालियं ) मन से पाला गया ( सोहियं ) दोष के निवारण करने से शुद्ध किया गया ( तिरियं ) पूर्णता तक पहुँचाया हुआ, ( किट्टियं ) सद् भाव से प्रशंसा योग्य किया गया ( अणुपालियं ) अनुकूलता से पाला गया ( आणाए आराहियं भवति ) आज्ञा की आराधना करने वाला होता है ( एवं ) ऐसा ( नाय मुणिणा भगवया ) ज्ञाति मुनि भगवान महावीर ने ( पन्नवियं ) कहा है ( परूवियं ) उदाहरण पूर्वक समझाया है ( पसिद्धं सिद्धवर सासण मिणं ) यह प्रसिद्ध और उत्तम सिद्ध पुरुषों का शासन है ( आघवियं ) देव आदि का सम्मान पात्र ( सुदेसियं ) पूर्ण ज्ञानियों से सम्यक् कहा गया है तथा ( पसत्थं ) प्रशस्त है ऐसा यह ( बितियं ) दूसरा ( संवरदारं ) संवरद्वार ( समत्तं ) पूर्ण हुआ ( तिबेमि ) ऐसा मैं कहता हूँ ॥ ७ ॥ २५ ॥

भावार्थ-"सत्यव्रत का पूर्व कथित यह प्रवचन भगवान् महावीर ने असत्य कटु आदि अवाच्य वचनों से आत्मा को रक्षित रखने के लिये कहा है। जो कि आत्मा के लिये हितकारी व परलोक और भविष्य के कल्याण का कारण है। शुद्ध न्याय युक्त यावत् सब दुःखों का शमन करने वाला है। असत्य वचन त्यागरूप इस दूसरे व्रत की पांच भावना व्रत की रक्षा के लिये कही गई हैं। इनमें प्रथम भावना-सत्य व्रत के स्वरूप को सुनकर तथा परमार्थ को सम्यक जानकर बोलना चाहिए। वेग युक्त आदि सावद्य वचन नहीं बोलना, किन्तु सत्य और हितकारी आदि परिमित वचन ही साधु को समय पर बोलना चाहिए। इस प्रकार विचार पूर्वक बोलने वाला संयमी सत्य और आर्जव से युक्त होता है।

दूसरी भावना क्रोधवश नहीं बोलना। क्रोधवश मनुष्य असत्य बोलता है, पैशुन्य और कठोर वचन बोलता है। वैर, कलह और धर्मविरुद्ध कथा को क्रोधी करता है। सत्य और शील का हनन करता, विनय को भंग करता, और लोकमें अप्रीति का भाजन बनता है। क्रोध से सन्तप्त हृदय वाला मनुष्य इस प्रकार अन्य भी अवाच्य बोलता है इसलिये क्रोध नहीं करना चाहिए। क्षमायुक्त साधु सत्य का पालन करने वाला होता है।

तीसरी भावना-लोभके वश होकर नहीं बोलना,क्योंकि लोभी चंचल चित्त होकर खेतवाडी व घरके लिये झूठ बोलता है। ऐसे ही कीर्ति और अर्थ प्राप्ति के लिये ऋद्धि तथा सुख सामग्री के लिये और खान पान के साधनों के लिये अथवा पाट आदि आसनों के लिये तथा अनेक प्रकार शय्याओं के कारण या वस्त्र पात्र आदि के लिये अथवा कंबल और रजोहरण तथा शिष्य आदि ऐसे सैकडो कारणों पर असत्य बोलता है। इसलिये लोभ नहीं करना चाहिए। निर्लोभित युक्त साधु सत्यव्रत का आराधक होता है।

चौथी भावना-भय त्यागरूप है-'डरा हुआ मनुष्य अनेक प्रकार के भयो को पाकर असहाय अकेला हो जाता है। भयभीत को ही भूत भी पकड़ते हैं। भयभीत दूसरों को भी डरा देता है। डरा हुआ तप सयमको भी त्याग देता है। भयभीत मनुष्य सत्पुरुषों से सेवित सत्यमार्ग पर नहीं चल सकता है। इसलिये रोग, व्याधि जरा, मृत्यु आदि ऐसे किसी भी भय के हेतु से नहीं डरना चाहिए। धैर्ययुक्त संयमी सत्यव्रत का पालक होता है।

पाचवी भावना परिहास त्यागरूप-क्रोध, लोभ, भय और अविचार की तरह हंसी भी असत्य का कारण है। हसी करने वाले असत्य या मिथ्या बोलते हैं। परिहास का वचन दूसरे के अपमान का कारण, निन्दाप्रिय पीडाकारक और चारित्रभेद आदि का कारण है। एक दूसरे से किया गया हास्य परस्पर की कुचेष्टा और परदार गमन आदि दुष्कर्म का प्रवर्तक होता है। हंसी करने वाला साधु देवगतियोग्य आयु सञ्चय करके भी कान्दर्पिक या आभियोगिक रूप कुदेवपन में जाता है। असुरभाव और किल्विषिकपन को हास्यरस उत्पन्न करता है। इसलिये हास्य का सेवन नहीं करें। इस प्रकार वचन के संयम वाला साधु सत्यव्रती होता है। इस प्रकार यह सत्यव्रतरूप संवर का दूसरा द्वार इन पांच कारणों से सुरक्षित होता है आदि उपसहार पूर्ववत्। यह दूसरा सवरद्वार पूर्ण हुआ।

## ॐ समाप्तं द्वितीयंसंवरद्वारम् ॐ

* सच्छायं सान्वयार्थं भावार्थम् *

## तृतीय संवर द्वार

सम्बन्ध-द्वितीय अध्ययन में मृषावाद-असत्य-निवृत्तिरूप दूसरे संवर का प्रतिपादन किया है, इस सत्यव्रत का पालन चौर्य कर्म के त्यागने पर ही सुकर होता है, इसलिये इस अध्ययन में अदत्तादान विरमणरूप संवर का वर्णन किया जायगा। सूत्र क्रम से सम्बन्धित इस अस्तेयव्रत का स्वरूप दिखाते हुए शास्त्रकार इस प्रकार कहते हैं-

मूल-"जंबू ! दत्तमणुण्णाय संवरो नाम होति ततियं सुव्वता ! महव्वतं । गुणव्वतं परदव्व हरण-पडिविरइ-करणजुत्तं, अपरिमिय अणंत-तण्हा-णुगय-महिच्छ-मण-वयण-कलुस-आयाण सुनिग्गहियं । सुसंजमिय मणो हत्थ-पायनिभियं, निग्गंथं णेट्ठिकं निरुत्तं निरासवं निब्भयं विमुत्तं । उत्तम-नरवसभ-पवरबलवग-सुविहित जणसंमतं, परमसाहुधम्मचरणं, जत्थ य गामागर-नगर- निगम- खेड-कब्बड -मडंब- दोणमुह-संवाह-पट्टणासमगयं च, किंचि दव्वं मणि-मुत्त-सिलप्पवाल-कंस-दूस-रयय-वर कणग-रयणमादिं, पडियं पम्हुट्ठं विप्पणट्ठं, न कप्पति कस्सति कहेउं वा, गेण्हिउं वा । अहिरण्णसुवण्णिकेण समलेट्ठु कंचणेणं अपरिग्गहसंवुडेणं लोगंमि विहरियव्वं । जंपिय होज्जाहि दव्वजातं खलगतं खेत्तगतं रण्णमंतरगतं वा किंचि पुप्फ-फल-तय-प्पवाल-कंद-मूल-तण-कट्ठ-सक्करादि, अप्पं च बहुं च, अणुं च थूलगं वा, नकप्पति उग्गहंमि अदिण्णंमि गिण्हिउं जे । हणि हणि उग्गहं अणुण्णविय गेण्हियव्वं । वज्जेयव्वो य सव्वकालं अचियत्त घरप्पवेसो । अचियत्त भत्त पाणं । अचियत्त-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारग-वत्थ-पत्त-कंबल-दंडग रयहरण-निसेज्ज-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पायपुंछणाइ-भायणभंडोवहि उवकरणं, परपरिवाओ,

१—अणाहरण पा  २—मुत्ति मा० मं०

परस्स दोसो, पर-ववएसेणं जं च गेण्हइ । परस्स नासेइ जं च सुकयं, दाणस्स य अंतरातियं, दाण विप्पणासो, पेसुन्नं चेव मच्छरित्तं च ।

छाया-"जम्बू ! दत्ताऽनुज्ञातसंवरो नाम भवति तृतीयम् सुव्रत ! महाव्रतं। गुणव्रतं परद्रव्यहरण-प्रति विरति-करणयुक्तम् अपरिमिताऽनन्त-तृष्णाऽनुगत-महेच्छ-मनो-वचन-कलुषाऽऽदानसुनिगृहीतं, सुसंयमित मनोहस्त पादनिभृतं, निर्ग्रन्थं नैष्ठिक निरुक्तं निरास्रवं निर्भयं विमुक्तम् । उत्तम नर वृषभ-प्रवर-बलवत्सु विहितजन संमतं, परमसाधु धर्मचरणम् । यत्र च ग्रामाकर नगर-निगम-खेट-कर्बट मडम्ब-द्रोणमुख-सवाह-पट्टणाऽऽश्रमगत च किञ्चिद् द्रव्यं मणि-मुक्ता-शिला प्रवाल-कांस्य-दूष्य-रजत-वर कनक-रत्नादि पतित प्रमुष्ठं विप्रणष्टं, न कल्पते कस्यापि कथयितुं वा ग्रहीतुं वा । अहिरण्य सौवर्णिकेन समलेष्टुकाञ्चनेन अपरिग्रह संवृतेन लोकेविहर्तव्यम् । यदपि च भवेद् द्रव्यजातं खलगतं क्षेत्रगतमरण्याऽन्तर्गतं वा किञ्चित् पुष्प-फल-त्वक्-प्रवाल-कन्द-मूल-तृण-काष्ठ-शर्करादि अल्पं च बहु च, अणुच स्थूलकं वा, न कल्पतेऽवग्रहेऽदत्तं ग्रहीतुम् । अहन्यहनि अवग्रहमनुज्ञाप्य ग्रहीतव्यम् । वर्जयितव्य सर्वकालमप्रीत गृहप्रवेश । अप्रीतिकारक भक्त पानम् । अप्रीतिकारक पीठ फलक-शय्या-संस्तारक-वस्त्र-पात्र-कम्बल-दण्डक-रजोहरण-निषद्या-चोल पट्टक-मुखवस्त्रिका-पादप्रोञ्छनादि-भाजनभण्डोपध्युपकरणं पर परीवाद, परस्य दोष, परव्यपदेशेन यच्चगृह्णाति, परस्य नाशयति यच्च सुकृतं, दानस्य चान्तरायिकं, दानविप्रणाश, पैशुन्यञ्चैव मत्सरित्व च ।

अन्व०-( सुव्वया जबू ) हे सुव्रत जम्बू ! ( तत्तियं ) तीसरा ( दत्तमणुन्नायसवरो नाम होति ) दिये गए अन्न आदि और ग्रहण करो इस प्रकार आज्ञा पाये हुए पीठ आदि जिसमें लिये जाय वह दत्तानुज्ञात नामका सवर होता है ( महव्वय ) यह महाव्रत है ( गुणव्वय ) सद्गुणों का कारण होने से गुणव्रत है ( परदव्वहरण पडि विरइकरणजुत्त ) पर द्रव्य के हरण की निवृत्ति वाला ( अपरिमिय मणंततण्हा णुगय महिच्छ मण वयण कलुस आयाण सुनिगहियं ) अपरिमित असीम द्रव्यों में अनन्त-समाप्ति रहित जो तृष्णा उससे अनुगत-युक्त और अतिशय इच्छा वाले विचार तथा वचन से मलिन जो अदत्त ग्रहण उसका सम्यक्-निग्रह करने वाला ( सुसजमिय मण हत्थ पाय निभिय ) अशुभ भावना में सकोच शील मन के कारण परधन ग्रहण से रुके हुए हैं हाथ पैर जहा पर ऐसा ( निग्गथ ) बाह्य आभ्यन्तर

# तृतीय संवर द्वार

सम्बन्ध-द्वितीय अध्ययन में मृषावाद-असत्य-निवृत्तिरूप दूसरे संवर का प्रतिपादन किया है, उस सत्यव्रत का पालन चौर्य कर्म के त्यागने पर ही सुकर होता है, इसलिये इस अध्ययन में अदत्तादान विरमणरूप संवर का वर्णन किया जायगा। सूत्र क्रम से सम्बन्धित उस अस्तेयव्रत का स्वरूप दिखाते हुए शास्त्रकार इस प्रकार कहते हैं-

मूल-"जंबू! दत्तमणुन्नाय संवरो नाम होति ततियं सुव्वता! महव्वतं। गुणव्वतं परदव्व हरण-पडिविरइ-करणजुत्त, अपरिमिय मणंत-तण्हाणुगय-महिच्छ-मण-वयण-कलुस-आयाण सुनिग्गहियं। सुसंजमिय मणो हत्थ-पायनिभियं, निग्गंथं णेट्ठिकं निरुत्तं निरासवं निब्भयं विमुत्तं। उत्तम-नरवसभ-पवरबलवग-सुविहिय जणसंमतं, परमसाहुधम्मचरणं, जत्थ य गामागर-नगर- निगम- खेड-कब्बड -मडंब- दोणमुह-संवाह-पट्टणासमगयंच, किंचि दव्वं मणि-मुत्त-सिलप्पवाल-कंस-दूस-रयय-वर कणग-रयणमादिं,पडिय पम्हुट्ठं विप्पणट्ठं, न कप्पति कस्सति कहेउं वा, गेण्हिउं वा। अहिरन्न सुवन्निकेण समलेट्ठु कंचणेणं अपरिग्गह संवुडेणं लोगंमि विहरियव्वं। जंपिय होज्जाहि दव्वजातं खलगतं खेत्तगतं रन्नमंतरगत वा किंचि पुप्फ-फल-तय-प्पवाल-कंद-मूल-तण-कट्ठ-सक्करादि, अप्पं च बहुं च, अणुं च थूलगं वा, नकप्पति उग्गहंमि अदिन्नंमि गिण्हिउं जे। हणि हणि उग्गहं अणुन्नविय गेण्हियव्वं। वज्जेयव्वो य सव्वकालं अचियत्त घरप्पवेसो। अचियत्त भत्त पाणं। अचियत्त-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारग-वत्थ-पत्त-कंबल-दंडग रयहरण-निसेज्ज-चोल-पट्टग-मुहपोत्तिय-पायपुंछणाइ-भायणभंडोवहि उवकरणं, परपरिवाओ,

१—मणहत्थ पा २—मुनि आ० मं०

पर ले सकते हैं, ऐसा पूछकर ( गेण्हियव्वं ) ग्रहण करना चाहिए। ( सव्वकालं ) सर्वदा ( अचियत्त घरप्पवेसो ) अप्रीति कारक घर में प्रवेश ( वज्जेयव्वो ) छोड़ना चाहिए, और (अचियत्त भत्तपाणं) अप्रीति कारक के घर का आहार पानी और ( अचियत्त-पीठ- फलग- सेज्जा- संथारग- वत्थ- पत्त- कंबल- दंडग- रय हरण-निसेज्ज-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पाय पुछणाइ ) अप्रीति करने वाले के पीठ, फलक-पाट, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कंबल, दण्ड-सकारण लेने योग्य लाठी, रजोहरण, निषद्या-आसन, चोल पट्टक-पहने का वस्त्र, मुख पोतिका-मुख वस्त्रिका और पादप्रोञ्छन आदि (भायण भंडोवहि उवकरणं) पात्र मिट्टी के भाण्ड और वस्त्र आदि उपकरण 'वर्जन करना चाहिए' ( परपरिवाओ ) दूसरे की निन्दा ( परस्स दोसो ) दूसरे के साथ द्वेष करना ( ज च पर ववएसेण ) और जो अचार्य आदि दूसरे के नाम से ( गेण्हइ ) ग्रहण करता है ( जंच ) और जो ( परस्स ) दूसरे के ( सुकयं ) उपकार या सुकृत को ( नासेइ ) नष्ट करता या छिपाता है ( दाणस्स य अंतराइयं ) और दान में अन्तराय करता (दाण विप्पणासो ) दाता के नाम को छिपाता-अपलाप करता और ( पेसुन्न ) पैशुन्य-चुगली ( चेव ) और (मच्छरित्त) मत्सरता-द्वेष करता है।

मूल-"जेविय पीढ-फलग-सेज्जा- संथारग-वत्थ- पाय[१]-कंबल-दंडग-रयहरण-निसेज्ज-चोल पट्टग- मुहपोत्तिय- पायपुंछणादि- भायण भंडोवहि उवकरणं असंविभागी, असंगहरुती, तवतेणे य, वइतेणे य, आयारे चेव भावतेणे य। सद्दकरे, झंझकरे, कलहकरे, वेरकरे, विकहकरे, असमाहि-करे। सया अप्पमाण भोत्ती, सततं अणुबद्धवेरे, य निच्चरोसी से तारिस-ए नाराहए वयमिणं। अहकेरिसए पुणाइं आराहए वयमिणं ? जे से उवहि भत्तपाण-संगहण-दाणकुसले, अच्चंतबाल-दुब्बल-गिलाण-वुड्ढ-खमके, पवत्ति-आयरिय-उवज्झाए-सेहे-,साहम्मिके, तवस्सी-कुल-गण-संघ-चेइयट्ठे य निज्जरट्ठी वेयावच्चं अणिस्सियं दसविहं बहुविहं करेति। न य अचियत्तस्स गिहं पवसइ। न य अचियत्तस्स गेण्हइ भत्तपाणं। न य अचियत्तस्स सेवइ पीढ-फलग- सेज्जा- संथारग-वत्थ- पाय-कंबल-डंडग-रयहरण-निसेज्ज-चोल पट्टय-मुहपोत्तिय-पायपुंछणाइ-भायण भंडोवहि

१-पत्त इत्यपि पाठ.।

ग्रन्थि रहित ( जेट्ठिं ) सब व्रतों में पर्यन्तवर्ती याने यह सब व्रत की निष्ठा वाला है ( निरुत्तं ) सर्वज्ञों के द्वारा अच्छी तरह कहा गया अतः निरुक्त ( निरासवं ) चोरी के आस्रव से रहित ( निब्भयं ) निर्भय ( निलुत्तं ) लोभ रूप दोषसे मुक्त हुआ हुआ ( उत्तम नर वसभ पवर बल वगसुविहियजण संमतं ) प्रधान बलधारी उत्तम मनुष्य और क्रियापात्र साधु साध्वियों से सम्मत तथा ( परमसाहु धम्मचरणं ) उत्तम साधुओं का धर्माचरण है ( जत्थ य ) और जिस तृतीय संवर में ( गामागर-नगर-निगम-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-संवाह-पट्टणासमगयंच ) ग्राम, आकर-सुवर्ण आदि के उत्पत्ति स्थान, नगर, निगम-वणिग् वसति, खेट, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, संवाह, पत्तन और आश्रम में रहा हुआ ( किंचिदव्वं ) कोई भी द्रव्य ( मणि-मुत्त-सिलप्पवाल-कंस-दूस-रयय-वर कणग-रयणमाई ) मणि-चन्द्र कान्त आदि, मौक्तिक-मोती, शिला प्रवाल-मूंगा, कांस्य कांसी के पात्र आदि, दूस-उत्तम वस्त्र, रजत-चांदी, उत्तम सोना और रत्न आदि ( पडियं ) किसी का गिरा हुआ हो। ( पम्हुट्ठं ) भूला हुआ हो ( विप्पणट्ठं ) खोजने पर भी मालिक को नहीं मिला हो, वैसा द्रव्य ( कप्पति ) किसी गृहस्थ आदि को ( कहेउं वा ) कहना गेण्हिउं वा) अथवा ग्रहण करना (न कप्पति) योग्य नहीं है। (अहिरण्ण सुवण्णिकेण ) हिरण्य सुवर्ण को नहीं रखने वाले साधु को ( लोगंमि ) लोक में ( समलेट्ठु कंचणेणं ) पत्थर और सुवर्ण में समदृष्टि तथा ( अपरिग्गह संवुडेणं ) अपरिग्रह-धन आदि के संग्रह रूप से व मूर्च्छा से रहित व संवरयुक्त होकर (विहरियव्वं ) विचरना चाहिए ( जंपिय ) और जो भी ( होज्जाहि ) होवे हैं ( दव्व जातं ) द्रव्य समूह ( खलगतं ) खले में रहा हुआ, ( खेत्तगतं ) खेत में पड़ा हुआ ( वा ) वा ( रण्णमंतरगतं ) अरण्य जंगल के भीतर पड़ा हुआ ( किंचि ) कोई ( पुप्फ-फल-तय-प्पवाल-कंद-मूल-तण कट्ठ-सक्कराति ) फूल, फल, त्वचा-छाल, प्रवाल, कन्द, मूल तृण, काष्ठ और बालू-धूलि आदि पदार्थ है ( अप्पं च बहुं च ) थोड़ा या बहुत ( अणुं च थूलगं ) छोटा या बड़ा ( उग्गहंमि अदिण्णंमि ) घर दुकान आदि अवग्रह स्थान में स्वामी के नहीं देने पर या आज्ञा नहीं मिलने पर ( गिण्हिउं न कप्पति ) कोई भी वस्तु ग्रहण करना को नहीं कल्पती याने बिना दिये ग्रहण करना योग्य नहीं है। इसलिये ( हणि हणि ) प्रतिदिन ( उग्गहं अणुन्नविय ) अवग्रह की आज्ञा लेकर अर्थात् आपके स्थान पर अमुक वस्तु है सो कि आज्ञा देने

पर ले सकते हैं, ऐसा पूछकर (गेण्हियव्वं) ग्रहण करना चाहिए। (सव्वकालं) सर्वदा (अचियत्त घरप्पवेसो) अप्रीति कारक घर में प्रवेश (वज्जेयव्वो) छोड़ना चाहिए, और (अचियत्त भत्तपाणं) अप्रीति कारक के घर का आहार पानी और (अचियत्त-पीठ- फलग- सेज्जा- संथारग- वत्थ- पत्त- कंबल- दंडग- रय हरण-निसेज्ज-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पाय पुंछणाइ) अप्रीति करने वाले के पीठ, फलक-पाट, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कंबल, दण्ड-सकारण लेने योग्य लाठी, रजोहरण, निषद्या-आसन, चोल पट्टक-पहने का वस्त्र, मुख पोतिका-मुख वस्त्रिका और पादप्रोञ्छन आदि (भायण भंडोवहि उवकरणं) पात्र मिट्टी के भाण्ड और वस्त्र आदि उपकरण 'वर्जन करना चाहिए' (परपरिवायो) दूसरे की निन्दा (परस्स दोसो) दूसरे के साथ द्वेष करना (ज च पर ववएसेण) और जो अचार्य आदि दूसरे के नाम से (गेण्हइ) ग्रहण करता है (जंच) और जो (परस्स) दूसरे के (सुकयं) उपकार या सुकृत को (नासेइ) नष्ट करता या छिपाता है (दाणस्स य अंतराइय) और दान में अन्तराय करता (दाण विप्पणासो) दाता के नाम को छिपाता-अपलाप करता और (पेसुन्न) पैशुन्य-चुगली (चेव) और (मच्छरित्त) मत्सरता-द्वेष करता है।

मूल-"जेविय पीढ-फलग-सेज्जा- संथारग-वत्थ- पाय'-कंबल-दंडग-रयहरण-निसेज्ज-चोल पट्टग- मुहपोत्तिय- पायपुंछणादि- भायण भंडोवहि उवकरणं असंविभागी, असंगहरुती, तवतेणे य, वइतेणे य, आयारे चेव भावतेणे य। सद्दकरे, झञ्झकरे, कलहकरे, वेरकरे, विकहकरे, असमाहि-करे। सया अप्पमाण भोती, सतत अणुबद्धवेरे, य निच्चरोसी से तारिस-ए नाराहए वयमिणं। अहकेरिसए पुणाइं आराहए वयमिणं ?, जे से उवहि भत्तपाण-संगहण-दाणकुसले, अच्चंतबाल-दुब्बल-गिलाण-वुड्ढ-खमके, पवत्ति-आयरिय-उवज्झाए-सेहे-,साहम्मिके, तवस्सी-कुल-गण-संघ-चेइयट्ठे य निज्जरट्ठी वेयावच्चं अणिस्सियं दसविहं बहुविहं करेति। न य अचियत्तस्स गिहं पवसइ। न य अचियत्तस्स गेण्हइ भत्तपाणं। न य अचिय त्तस्स सेवइ पीढ-फलग- सेज्जा- संथारग-वत्थ- पाय-कंबल-डंडग-रयहरण-निसेज्ज-चोल पट्टय-मुहपोत्तिय-पायपुंछणाइ-भायण भंडोवहि

१-पत्त इत्यपि पाठ.।

उवगरणे । न य परिवायं परस्स जंपति, ण यावि दोसे परस्स गेण्हति, परववएसेणवि न किंचि गेण्हति, न य विपरिणामेति किंचिजणं, न यावि णासेति दिन्न सुकयं, दाऊण य काऊण य न होइ पच्छाताविए । संभागसीले संगहोवग्गहकुसले से तारिसते आराहते वयमिणं ।

छाया–"योऽसौ पीठ–फलक–शय्या–संस्तारक–वस्त्र–पात्र–कम्बल–मुखपोतिका पादप्रोञ्छनादि–भाजनभाण्डोपध्युपकरणम् असंविभागी–, असंग्रहरुचिस्तपस्तेनश्च, वाक्स्तेनश्च रूपस्तेनश्च, आचारे चैव भावस्तेनश्च । शब्दकरो झंझाकरः कलहकरो वैरकरो विकथाकरः–असमाधिकरः । सदाऽप्रमाणभोजी, सततमनुबद्धवैरश्च नित्यरोषी, स तादृशो नाऽऽराधयति व्रतमिदम् । अथकीदृशः पुनराराधयति व्रतमिदम् ?, योऽसौ उपधिभक्तपान–संग्रह–दानकुशलोऽत्यन्तबाल–दुर्बल–ग्लान–वृद्धक्षपके, प्रवर्तकाऽऽचार्योपाध्याये, शैक्षे, साधर्मिके, तपस्वि–कुल–गण–संघ–चैत्यार्थी च निर्जरार्थी वैयावृत्यमनिश्रितं दशविधं बहुविधं करोति । न चाऽप्रीतिकरस्य गृहं प्रविशति । नचाऽप्रीतस्य गृह्णाति भक्तपानं । न चाऽप्रीतिकारकस्य सेवते पीठ–फलक–शय्या–संस्तारक–वस्त्रपात्र–कम्बल–दण्डक–रजोहरण–निषद्या–चोलपट्टक मुखपोतिका–पादप्रोञ्छनादि–भाजन–भाण्डोपध्युपकरणं, न च परीवादं परस्य जल्पति । न चापि दोषान् परस्य गृह्णाति । परव्यपदेशेनाऽपि न किञ्चिद् गृह्णाति । न च विपरिणमयति कञ्चिज्जनं, न चापि नाशयति दत्तसुकृतम् । दत्त्वा च कृत्वा च न भवति पश्चात्तापी । सम्भागशीलः संग्रहोपग्रहकुशलः स तादृश आराधयति व्रतमिदम् ।

अन्वयार्थ –( अवि य ) और जो भी ( पीढ–फलग सेज्जा–संथारग–वत्थ–पाय–कंबल दंडग–रयहरण–निसेज्ज–चोलपट्टग–मुहपोत्तिय–पाय पुछणादि ) पीठ, पाट, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, दण्ड, रजोहरण, आसन, चोलपट्टक, मुखवस्त्रिका और पादप्रोञ्छन आदि ( भायण–भंडोवहि उवगरणं ) पात्र–मिट्टी के भाण्ड और वस्त्र आदि उपकरण का ( असंविभागी ) आचार्य आदि के लिये जो संविभाग नहीं करता ( असंगहरुती ) गच्छ के उपयोगी पाठ आदि उपकरणों के संग्रह में रुचि नहीं रखता ( तव तेणय ) और तपस्या का चोर अर्थात् तपस्वी न होकर भी लोक में तपस्वी तरीके अपना परिचय देने वाला ( वइतेणय ) फिर वाक्स्तेन–वचन का चोर वाने वचन लब्धि नहीं होने पर भी समता में झूठे वचन से सिद्ध प्रज्ञान वाला ( रूव तेणय ) तथा शरीर की सुन्दरता या किसी पात्र साधु–का रूप वेष नहीं होते हुए भी लोक में उसरूपसे परिचय देने वाला–रूपस्तेन और

( आयारे चेव ) ऐसे ही आचार-साधु-आचार में बनावटीपन करने वाला, और ( भाव तेणेय ) दूसरे के ज्ञानादि गुणोंसे अपने को ज्ञानी कहने वाला भावस्तेन और ( सद्दकरे ) रात्रि मे जोर से बोलने वाला या गृहस्थ की जैसी सावद्य भाषा बोलने वाला, ( झंझकरे ) गच्छ में भेद पटकने के कार्य करने वाला, ( कलहकरे ) कलहकारी ( वेरकरे ) वैर विरोध करने वाला ( विकहकरे ) स्त्री आदि की धर्म विरुद्ध कथा करने वाला ( असमाहिकरे ) असमाधि-चित्त की अस्वस्थता को करने वाला ( सया अप्पमाणभोती ) सदा विना प्रमाण के भोजन करने वाला ( सतत अणुबद्धवेरे य ) और निरन्तर वैर को बाधने वाला तथा ( निच्चरोसी ) सदा क्रोध में रहने वाला ( से तारिसए ) इस प्रकार की वृत्ति वाला वह मनुष्य ( नाराहए वयमिण ) इस व्रत को आराधन नहीं करता है। ( अह ) अब ( केरिसए पुणाई ) फिर कैसा मनुष्य, ( आराहए वयमिण ) इस व्रत का आराधन करता है ?

उत्तर-( जे ) जो साधु ( उवहि-भत्तपाण-संगहण-दाणकुसले ) उपधि और खान पान के दान और सग्रहण में कुशल है (अच्चंत बाल-दुब्बल-गिलाण-वुड्ढ-खमके ) अतिशय बालक बहुत दुर्बल, ग्लान-रोगी, वृद्ध और तपस्वी के विषय में ( पवत्ति-आयरिय उवज्झाए ) प्रवर्तक-तप सयम आदि में यथायोग्य साधुओं को लगाने वाला, आचार्य और उपाध्याय के विषय में ( सेहे ) नव दीक्षित साधु ( साहम्मिके ) साधर्मिक-समान धर्म वाले के सम्बन्धमें और ( तवस्सी कुल ) तपस्वी, एक गुरु से वाचना लेने वाले साधुओं के समूह रूप कुल ( गण-सघ-चेइयट्ठे य ) गण-अनेक कुलों का समूह, संघ-साधु साध्वी श्रावक और श्राविका रूप इन सबके चित्त की प्रसन्नता के लिये ( निज्जरट्ठी ) निर्जरार्थी-कर्मक्षय की इच्छा वाला साधु ( अणिस्सियं ) कीर्ति आदि की अपेक्षा विना ( दसविहं ) सेव्य की अपेक्षा दश प्रकार की ( वेयावच्चं ) सेवा को ( बहुविहं ) अन्न पानादि दान रूप से अनेक प्रकार की ( करेति ) करता है, ( से ) वह ( अचियत्तस्स ) अप्रीति कारक गृहस्थ के ( गिहं ) घर में ( नय पविसइ ) प्रवेश नहीं करता और ( नय अचियत्तस्स ) न अप्रीतिकारक के यहा का ( भत्त पाण गेण्हइ ) आहार पानी ग्रहण करता है- ( न य अचियत्तस्स सेवइ पीढ-फलग-सेज्जा-सथारग-वत्थ-पाय-कंबल-डंडग-रयहरण-निसेज्ज-चोल पट्टय-मुह पोत्तिय-पाय-पुंछणाइ ) और अप्री-

ति कारक के पीठ, फलग, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, दण्ड, रजोहरण, आसन, परिधान वस्त्र, मुखवस्त्रिका और पादप्रोंछन सेवन नहीं करता है ( भायण मंडोवहि उवगरणं ) पात्र, भाण्ड एवं वस्त्र आदि उपकरण भी नहीं लेता ( नय परि वायं परस्स जंपति ) और दूसरों की निन्दा नहीं करता है ( न यावि दोसे परस्स गेण्हति ) और दूसरे के दोषों को भी ग्रहण नहीं करता है ( पर ववएसेणवि न किंचि गेण्हति ) और जो दूसरे के नाम से भी कुछ नहीं लेता है ( नय विपरिणा मेति किंचिजणं ) और न किसी मनुष्य को दान आदि धर्म से विमुख करता है ( न यावि णासेति दिन्न सुकयं ) और दूसरे के दानरूप सुकृत या धर्माचरण को नहीं मिटाता है (दाऊण य) और देकर (काऊणय) करके ( पच्छाताविए ) पश्चाताप करने वाला ( न होइ ) नहीं होता है ( तारिसए ) वैसा ( से ) वह ( समागसीले ) आचार्य आदि समूह के लिये अन्न आदि का संविभाग करने वाला ( संगहोवग्गह कुसले ) संग्रह और आहार व ज्ञान आदि से उपकार करने में कुशल ( वयमिणं आराहवे ) ऐसा साधु इसव्रत का आराधन करता है ।

भावार्थ–सुधर्म स्वामी महाराज अपने शिष्य जम्बू से कहते हैं कि हे जम्बू ! तीसरा संवर दत्तानुज्ञात नाम का है। यह महाव्रत सद्गुणों का कारण और पर द्रव्य हरण से निवृत्ति करने वाला है। अपरिमित द्रव्य में अनन्त तृष्णा वाला और कलुषित अदत्त ग्रहण का निग्रह करने वाला है। संयम युक्त मन के कारण यह हाथ पांव को अदत्त ग्रहण से रोकने वाला है। निग्रन्थ आदि विशेषण युक्त उत्तम पुरुष और विद्या पात्र जनों से सम्मत तथा उत्तम साधुओं का धर्माचरण है । इसव्रत में ग्राम वगैरह क्षेत्रों में रहे हुए मणि मौक्तिक आदि कोई भी पदार्थपड़े हुए भूले हुए या खोजने परभी नहीं मिले हुए अगर दृष्टि में आजांय तो व्रती को न किसी से कहना चाहिये और न स्वयं ही लेना चाहिये। क्योंकि साधु सुवर्ण आदि का त्यागी है। उसको कंचन और मिट्टी पर समबुद्धि होकर रहना चाहिए। अपरिग्रह भाव उसका मुख्य धर्म है। चाहे कोई द्रव्य खले में हो खेतमें या जंगल में पड़े हों जैसे, फूल फल आदि अल्पमूल्य वाले या बड़ी कीमत के, छोटा अथवा बड़ा कोई भी द्रव्य स्वामीके बिना दिये ग्रहण करना मर्यादाके विरुद्ध है। इसलिये व्रती को प्रतिदिन गृहपति आदि की आज्ञा ग्रहण करनी चाहिये। जिस घरमें जाने से गृहपति को अप्रीति हो उस घर में व्रती को कभी प्रवेश नहीं करना चाहिए, तथा अप्रीति का कारण मालूम

हो तो वैसा आहार पानी पीठ पाट भाण्ड आदि उपकरण भी नहीं लेना चाहिए। दूसरे की निन्दा और परदोष कथन भी त्यागना चाहिए। क्योंकि तीर्थङ्करों से निषिद्ध होने के कारण इनका सेवन अदत्त¹ रूप है। अचौर्य व्रत वाले को दूसरे के नाम से कोई वस्तु ग्रहण करना और दूसरे के सुकृत को मिटाना तथा दान में अन्तराय देना दाता के नाम को छिपाना और दूसरे की चुगली या मत्सरता करना वर्जित है। ऐसा करने से अचौर्य व्रत में दोषापत्ति होती है। फिर कैसा व्यक्ति अचौर्यव्रत को नहीं पाल सकता ? इसे दिखाते हुए कहा गया है कि जो पीठ आदि भण्डोपकरण का सविभाग नहीं करता। गच्छवासी होकर भी स्वधर्मियों के योग्य साधन संग्रह में रुचि नहीं रखता। दूसरे के तपोबल व वाग्बल से अपनी ख्याति कराता है। सुसाधु के वेष आचार और ज्ञान आदि भावों की चोरी करता अर्थात् इन गुणों के अभाव में भी वैसी महिमा चाहता एवं दूसरों के सामने वचन का छल करता है। प्रहर रात्रि के बाद जोर से बोलता और समूह में भेद डालता है। कलह तथा वैर को करने वाला, स्त्री आदि की कथा करने वाला एवं असमाधि करने वाला जो सदा बिना परिमाण के खाता है। निरन्तर वैर बांधता, तथा सदा रुष्ट रहता है वह अचौर्य व्रत का पूर्ण पालन नहीं कर सकता। कौन पालन कर सकता है ? इसको दिखाते हैं,-"उपधि और भक्त पान के योग्य संग्रह व दान में कुशल, और जो बाल, वृद्ध, दुर्बल, ग्लान आदि की प्रसन्नता के लिये निर्जरार्थी होकर विविध प्रकार से सेवा करता है। जहा जाने से अप्रीति हो वैसे घर में नहीं जाता और न वैसे घर के आहार पानी और पीठ आदि भण्डोपकरण ही लेता है। फिर जो दूसरे की बुराई नहीं करता और दूसरे के दोषों को ग्रहण नहीं करता है। दूसरे के नाम से स्वय कुछ नहीं लेता है। न किसी को धर्म से विमुख करता है। दूसरे के दान आदि सत्कर्म को भी नहीं छिपाता और न देकर या करके स्वयं पश्चात्ताप ही करता है। सविभाग करने वाला और जो गच्छ समूह के उपयुक्त सामग्री का संग्रह करा;उसका उपकार करने वाला है। वह अचौर्यव्रत का पूर्ण पालन कर सकता है।

**मूल**—"इमं च परदव्व हरण वेरमण—परिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं, अत्तहियं पेचाभावियं, आगमेसिमद्दं. सुद्धं नेयाउयं, अकुडिलं,

---

१—सामीजीवादत्तं तित्थयरेण तहेव य गुरुहिं,-स्वामि-अदत्त, जीव अदत्त, तीर्थङ्कर और गुरु का अदत्त इस तरह चार प्रकार के अदत्त हैं।

अणुघर, सम्मदुक्ख—पावाण विमोक्खणट्ठयाए। तस्स इमा पंच भावणाओ तति यस्स होंति परदव्वहरणवेरमण परिरक्खणट्ठयाए। पढमं—देवकुल-सभ प्पवा वसह—रुक्खमूल आराम—कंदरागर—गिरिगुहा—कम्म—उज्जाण—जाणसाला कुवियसाला—मंडव—सुन्नघर—सुसाण, लेण—आवण अन्न मियएव मादियंमि, दग—मट्टिय—बीजहरित—तस पाण असंसत्ते अहाकडे फासुए विवित्ते पसत्थे उवस्सए होइ विहरियव्वं। आहाकम्म बहुले य जे से आसित्त संमज्जित—उस्सित्त—सोहिय—छायण—दूमण—लिंपण—अणुलिंपण—जलण—भंड चालणे अंतो बहिं च असंजमो जत्थ वट्टती, संजयाण अट्ठा वज्जेयव्वोहु उवस्सओ से तारिसए सुत्तपडिकुट्ठे। एवं विवित्तवास—वसहि—समिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा निच्चं अहिकरण—करण—कारावण—पाव कम्म—विरतो दत्तमणुन्नाय ओग्गहरुती।

बितीयं—आरामुज्जाण—काणण- वणप्पदेसभागे जं किंचिइक्कडं व कठि णगं च जंतुगं च परामेर—कुच—कुस—डब्भ—पलाल—मूयग—वक्कय—पुप्फ—फल—तय—प्पवाल—कंद—मूल—तण—कट्ठ—सक्करादी गेण्हइ सेज्जोवहिस्स अट्ठान कप्पए उग्गहे अदिन्नंमि गेण्हिउंजे, हणि हणि उग्गहं अणुन्नविय गेण्हियव्वं। एवं उग्गहसमिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा निच्चं अहिकरण—करण—कारावण—पाव—कम्मविरते दत्तमणुन्नाय ओग्गहरुती।

ततीयं—पीठ—फलग—सेज्जा—संथारगट्ठयाए रुक्खा न छिंदियव्वा, न छेदणेण भेयणेण सेज्जा कारयव्वा, जस्सेव उवस्सत वसेज्ज सेज्जं तत्थेव गवेसेज्जा, न य विसमं समं करेज्जा, न निवाय पवाय उस्सुगत्तं, न डंसमस गेसु खुभियव्वं, अग्गी धूमो न कायव्वो। एवं संजम बहुले संवर बहुले संवुड बहुले समाहि बहुले धीरे काएण फासयंतो सययं अज्झप्पज्झाण जुत्ते समिय एगे चरेज्ज धम्मं। एवं सेज्जा समिति जोगेण भावितो भवति

**अंतरप्पा निच्चं अहिकरण–करण–कारावण–पावकम्मविरते दत्तमणुन्नाय उग्गहरुती ।**

छाया–"इदञ्च परद्रव्यहरण–विरमण–परिरक्षणार्थाय प्रवचनं भगवता सुकथितमात्महितं प्रेत्यभावितमागमिष्यद्भद्रं, शुद्धं न्यायोपेतमकुटिलमनुत्तरं सर्वदुःखपापानां व्युपशमनम् । तस्येमाः पञ्चभावनास्तृतीयस्य भवन्ति परद्रव्यहरण–विरमण–परिरक्षणार्थाय ।

प्रथमं–देवकुल–सभा– प्रपाऽवसथ– वृक्षमूलाऽऽराम– कन्दराऽऽकर– गिरिगुहा–कर्मोद्यान–यान शाला–कुपितशाला–मण्डप–शून्यगृह–श्मशान–लयनाऽऽपणे, अन्यस्मिंश्चैवमादिके–उदक–मृत्तिका–बीज–हरित–त्रस प्राण्यसंसृष्टे यथाकृते, प्रासुके, विविक्ते, प्रशस्ते–उपाश्रये भवति विहर्तव्यम् । आधाकर्मबहुलश्च यः स आसिक्त–संमार्जितोत्सिक्त–शोभित–च्छादन–धवलन–लिम्पनाऽनुलिम्पन–ज्वलन–भाण्ड चालनम् अन्तर्बहिश्चाऽसंयमो यत्र वर्द्धते, संयतानामर्थे वर्जयितव्यो हि उपाश्रयः सतादृशः सूत्र प्रतिकुष्ट । एव विविक्तवास वसति–समिति योगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण–करण–कारणा–पापकर्मविरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचि ।

द्वितीयमारामोद्यान–कानन–वनप्रदेश भागे यत्किञ्चिदिक्कडं वा–कठण सदृश तृण-विशेष, कठिनकञ्च, जन्तुकञ्च, परामेरा–( मुञ्जसरिका ) कूर्च–कुश–दर्भ–पलाल–मूयक–वल्वज–पुष्प–फल–त्वक्–प्रवाल–कन्द–मूल– तृण–काष्ठ– शर्करादि गृह्णाति शय्योपधेरर्थाय । न कल्पते अवग्रहेऽदत्ते ग्रहीतुम् । अहन्यहनि अवग्रहमनुज्ञाप्य ग्रहीतव्यम् । एवमवग्रह समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण–करण–कारणा–पापकर्म विरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचि ।

तृतीयं–पीठ–फलक शय्या–संस्तारकार्थाय वृक्षा न छेदनीया । न छेदनेन भेदनेन शय्या कारयितव्या । यस्यैवोपाश्रयेवसेत्, शय्या तत्रैव गवेषणीया न च विषमां समां कुर्यात् । न च निवात–प्रवातोत्सुकत्व, न दंशमशकेषु क्षुभितव्यम्–अग्निर्धूमो न कारयितव्य । एवं संयम बहुल संवर बहुल संवृत बहुल समाधि बहुल. । धीर कायेन स्पृशन् सततमध्यात्मध्यानयुक्त समितया एकश्चरेद्धर्मं । एवं शय्या समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण–करण–कारणा–पापकर्म विरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचि ।

अन्व०–"( इमच ) और यह अचौर्य व्रत सम्बन्धी ( पावयण ) प्रवचन ( परदव्व हरण–वेरमण–परिरक्खणट्ठयाए ) पर द्रव्य हरण–विरति रूप व्रत की रक्षा के

लिये ( भगवया ) भगवान महावीर ने ( सुकहिय ) अच्छी तरह से कहा है। जो ( अत्तहियं ) आत्म हितकारी ( पेच्चाभाविकं, आगमेसिभद्दं ) परलोक में शुभ फल दाता और भविष्य में कल्याण का कारण है। ( सुद्धं नेयाउयं अकुडिलं ) शुद्ध न्याय युक्त एवं कुटिलता रहित है ( अणुत्तर ) सर्व श्रेष्ठ (सव्वदुक्ख पावाण विओवसमणं) सर्व दुःख एवं पापों का उपशमन करने वाला है ( तस्स ) उस अचौर्य व्रत की ( इमा पंच भावणाओ ) ये पांच भावनायें ( तइयस्स परदव्वहरणवेरमण-परिरक्खणट्ठयाए ) तीसरे परद्रव्य हरण विरति रूप व्रत की रक्षा के लिये ( होंति ) होती हैं। (पढमं) पहली भावना–विविक्त वसति सेवन रूप जैसे ( देवकुल-सभ-पवा वसह-रुक्खमूल-आराम-कंदरागर- गिरिगुहा-कम्म-उज्जाण जाण साला-कुविय साला-मण्डव-सुण्णघर-सुसाण-लेण-आवणे ) देवकुल–देव स्थान, सभा–विचार स्थल या व्याख्यान सभा, प्रपा–प्याऊ, आवसथ–परिव्राजकों का स्थान, वृक्ष मूल, आराम–लता मण्डप आदि से युक्त वनविशेष, कन्दरा–गुफा, आकर–खान, गिरि–गुहा, कर्म–सुधा आदि बनाने का स्थान रसशाला आदि, उद्यान-वाटिका, यानशाला–वाहनादि रखने का घर, कुपित शाला–वस्त्र आदि सामान रखने का घर, मण्डप–विवाह आदि प्रसङ्ग में बना हुआ सभा मण्डप, शून्य घर श्मशान, लयन–पहाड़ में बना हुआ घर और दुकान में ( अन्नंमि य एव मादियंमि ) और इस प्रकार के अन्य स्थान में जो (दग–मट्टिय बीज हरित–तस पाण–असंसत्ते) सचित्त जल, मिट्टी, बीज दूब आदि हरी और त्रस प्राणियों से रहित हो ( अहाकडे ) गृहस्थ ने अपने लिए जिसे बनाया हो ऐसे ( फासुए ) प्रासुक–निर्जीव ( विवित्ते ) एकान्त अतएव ( पसत्थे उवस्सए ) प्रशस्त–उत्तम उपाश्रय में ( विहरियव्वं होइ ) विचरना चाहिये ( आहाकम्म बहुले य जे ) साधुओं के निमित्त जिसमें हिंसा की जाय ऐसे आधा कर्म रूप दोष की अधिकता वाला और जो ( आसित्त–संमज्जि–उस्सित्त–सोहिय–छायण–दूमण–लिंपण–अणुलिंपण–जलण भंड चालण–अंतो बहिं च ) आसिक्त पानी से थोड़ा सींचा हुआ संमार्जित–झाडू से संमार्जन किया हुआ, उत्सिक्त–खूब पानी सींचा हो, शोभित–पुष्प माला आदि से शोभित हो, छादन–घास आदि से छान किया हो, दूमन–खड़ी आदि से पोता हो, लिंपन–गोबर आदि से लिपा हो अनु लिंपन–लिपे हुए को पुन: लीपा हो ज्वलन–अग्नि जला कर तपाया हो या प्रकाशित किया हो, साधु के लिए भांडों को हटाया हो और घर के भीतर या बाहर

( जत्थ असंजमो वड्ढती ) जहां असंयम-जीवों की विराधना बढती हो ( संजयाण अट्ठा से वज्जेयव्वो हु उवस्सओ ) साधुओं के लिये वह उपाश्रय निश्चय से वर्जनीय है, क्योंकि ( तारिसए ) वैसा स्थान ( सुत्तपडिकुट्ठे ) सूत्र से निषिद्ध है ( एवं विवित्त वास-वसहि समिति जोगेण ) इस प्रकार निर्दोष वास स्थान में व सतिरूप समिति के योगसे ( भावितो ) पवित्र किये हुए ( अंतरप्पा ) अन्त-करण वाला मुनि ( निच्च अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्म विरतो ) सदा, दुर्गति के कारण पापकर्म-के करने व करवाने से निवृत्त ( दत्तमणुन्नाय-ओग्गहरुती ) दत्त अनुज्ञात अवग्रह से रुचि वाला ( भवति ) होता है।

( बितीय ) दूसरी भावना-अनुज्ञात संस्तारक ग्रहण रूप, जैसे-( आरामुज्जाण काणण-वण-प्पदेस भागे ) आराम, उद्यान-बगीचा, कानन-नगर के समीपवर्ती सामान्य वन, वन-नगर से दूर का वन प्रदेश इन सब स्थानों में ( जं किंचि ) जो कुछ भी ( इक्कड ) इक्कडजाति का घास, तथा ( कठिणगं ) कठिन-तृण जाति ( च ) और ( जंतुगं ) जन्तुक-पानी मे पैदा हुआ तृण ( च ) और ( परामेर-कुच-कुस-डब्भ-पलाल-मूयग वक्कय-पुप्फ-फल-तय-प्पवाल-कंद-मूल-तण-कट्ठ-सक्करादी) परा-एक प्रकार का तृण, मेरा मुंज की तन्तु, कूर्च-जुलाहे के कूंची बनाने का तृण कुश और डाभ, पलाल-धान्य विशेष का डाट, मूयक-एक प्रकार का तृण, वल्कज, पुष्प, फल, त्वचा, प्रवाल, कन्द, मूल, तृण, काष्ठ और शर्करा आदि द्रव्य ( गेण्हइ ) ग्रहण करता है ( सेज्जोवहिस्स अट्ठा ) शय्या और उपधि के लिये ( उग्गहे अदिन्नंमि ) उपाश्रय के भीतर की ग्राह्य वस्तुओं को दाता के बिना दिये ( गेण्हिउ ) लेना ( न कप्पए ) नहीं कल्पता है इसलिये ( हणिहणि ) प्रति दिन ( उग्गह अणुन्नविय ) ग्राह्य वस्तु की आज्ञा लेकर ( गेण्हियव्व ) ग्रहण करना चाहिए। ( एव ) इस प्रकार ( उग्गहसमिति जोगेण ) अवग्रह समिति योग से ( भावितो ) युक्त ( अतरप्पा ) अन्तःकरण वाला साधु ( निच्चं ) सदा ( अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्म विरते ) दुर्गति के कारण स्वरूप पाप कर्म के करने व कराने से विरक्त हुआ ( दत्त मणुन्नाय य ओग्गहरुती ) दत्त और अनुज्ञात अवग्रह-पदार्थ को रुचि वाला ( भवति ) होता है।

( ततियं ) तृतीय भावना-शय्या परिकर्मवर्जन रूप, जैसे-( पीठ-फलग सेज्जा-सथारगट्ठयाए ) पीठ, पाट, शय्या और सस्तारक के हेतु (-रुक्खा ) वृक्ष ( न

छिंदियव्वा) नहीं छेदन करना चाहिए (भेदणाए) वृक्ष आदि के छेदन व (भेयणाए) भेदन से (सेज्जा) शय्या (न कारेयव्वा) नहीं करवानी चाहिए (जस्सेव उवस्सए) जिसी के उपाश्रय में (वसेज्ज) ठहरे (तत्थेव) वहाँ पर ही (सेज्जं) शय्या की (गवेसेज्जा) गवेषणा करे (य) किन्तु (विसमं समं न करेज्जा) विषम को सम नहीं बनावे (न निवाय पवाय उस्सुगत्तं) पवन वाला या वायु रहित स्थान में उत्सुकता नहीं करे (न डंस-मसगेसु खुभियव्वं) डांस और मच्छर आदि के विषय में क्षुब्ध नहीं होना चाहिए (अग्गी धूमो न कायव्वो) डांस आदि हटाने के लिये अग्नि अथवा धूआं नहीं करना चाहिए (एव) इस प्रकार (संजम बहुले) संयम-जीव रक्षा की प्रधानता वाला (संवर बहुले) संवर की अधिकता वाला (संवुडबहुले) कषाय व इन्द्रियों के संवरण की प्रचुरता वाला (समाहिबहुले) अत: समाधि सम्पन्न (धीरे) धीर साधु (काएण फासयंतो) शरीर से इस व्रत का पालन करता हुआ (सययं) निरन्तर (अज्झप्प-ज्झाणजुत्ते) अध्यात्म ध्यान से युक्त (समिए) समिति वाला (एगे धम्मं चरेज्ज) रागादि रहित एकाकी होकर धर्म का आचरण करे (एवं) इस प्रकार (सेज्जा-समिति जोगेण) शय्या समिति के योग से (भावितो) युक्त (अंतरप्पा) अन्त करण वाला (निच्चं) सदा (अहिकरण-करण-कारावण-पाव कम्म विरते) अधिकरण को करने व कराने रूप पाप कर्म से विरत (दत्तमणु-न्नाय-उग्गहरुती) दिये गए और आज्ञा प्राप्त अवग्रह की रुचि वाला (भवति) होता है।

मूल—'' चउत्थ—साहारण पिंडपायलाभे भोत्तव्वं संजएण समियं, न साय सूपाहिकं, न खद्धं, न वेगियं, न तुरियं, न चवलं, न साहसं, न य परस्स पीलाकरं, सावज्जं, तह भोत्तव्वं जहसे ततियवयं न सीदति। साहारण पिंडपात लाभे सुहुमं अदिन्नादाण वय—नियम वेरमणं [ विरमण वय नियमणं] एवं साहारण पिंडपाय लाभे समितिजोगेण भावितो भवति अंतरप्पा, निच्चं अहिकरण—करण—कारावण—पावकम्मविरते दत्तमणुन्नाय उग्गहरुती। पंचमगं—साहम्मिए विणओ पउंजियव्वो, उवगरण पारणासु विणओ पउंजियव्वो, वायण परियट्टणासु विणओ पउंजियव्वो, दाण गहण पुच्छणासु विणओ पउंजियव्वो, निक्खमण पवेसणासु विणओ पउंजियव्वो। अन्नेसु य एवमादिसु बहुसु कारणसएसु विणओ पउंजियव्वो। विणओवितवो

तवोविधम्मो, तम्हा विणओ पउंजियव्वो । गुरुसु साहूसु तवस्सीसु य । एवं विणतेण भाविओ भवति अंतरप्पा णिच्चं अधिकरण-करण-कारावण पावकम्मविरते दत्तमणुन्नाय उग्गहरुई । एवमिणं संवरस्सदारं सम्मं संवरियं होइ सुपणिहियं एवं जाव आघवियं सुदेसितं पसत्थं ॥ तृतीयं संवरदारं समत्तं तिबेमि ॥ सू० २ । २६ ॥

छाया–"चतुर्थं साधारण पिण्डपात्रलाभे भोक्तव्य संयतेन सम्यक्– नशाकसूपादिकं, नाऽधिकं न वेगित, न त्वरित, न चपल, न साहस, न च परस्य पीडाकर सावद्यं, तथा भोक्तव्यं यथा तस्य तृतीय व्रतं न सीदति । साधारण पिण्डपात्र लाभे सूक्ष्ममदत्ताऽऽदानव्रतनियम विरमणम् । एवं साधारण पिण्ड पात्रलाभे समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण करण कारण पाप कर्मविरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचि. । पञ्चमकं साधर्मिके विनय. प्रयोक्तव्य उपकरण पारणासु विनय प्रयोक्तव्यो, वाचनपरिवर्तनासु विनय' प्रयोक्तव्य. । दान ग्रहण पृच्छासु विनय प्रयोक्तव्यो निष्क्रमण प्रवेशेषु विनय प्रयोक्तव्य. । अन्येषु चैवमादिकेषु बहुषु कारणशतेषु विनय प्रयोक्तव्य । विनयोऽपितप , तपोऽपिधर्म. तस्माद्विनय. प्रयोक्तव्यो गुरुषु साधुषु तपस्विषु च । एवं विनयेन भावितो भवत्यन्तरात्मा नित्यमधिकरण–करण–कारण पापकर्म विरतो दत्ताऽनुज्ञाताऽवग्रहरुचि' । एवमिदं सवरस्य द्वारं सम्यक् सवृतं भवति सुप्रणिहितम् एव यावत् आख्यातं सुदेशित प्रशस्तम् । तृतीयं संवरद्वारं समाप्तमिति ब्रवीमि । २ । सू० २६ ।

अन्व०–"(चउत्थ) चतुर्थ भावना–अनुज्ञात भक्तादि भोजन रूप (साहारण पिंडपातलाभे) सब साधुओं के लिये सम्मिलित आहार आदिके मिलने पर ( सजएण ) साधु को ( समिय ) सम्यक् यतना पूर्वक ( भोत्तव्वं ) आहार करना चाहिए, जैसे ( न सायसूयाहिकं ) शाक और सूप की अधिकता वाला नहीं खाना चाहिए ( न खद्ध ) साथ बैठकर स्वयं अधिक या जल्दी २ नहीं खावे ( न वेगितं ) वेग युक्त नहीं खाना ( न तुरिय ) जल्दी २ भी नहीं खाना ( न चवलं ) न चपलता युक्त ( न साहस ) न बिना विचारे खाना चाहिए ( न य परस्स पीलाकर सावज्जं ) और दूसरे को पीड़ाकारक तथा सदोष रीति से नहीं खाना चाहिए ( तह भोत्तव्व जह से ततिय वय न सीदति ) उस प्रकार आहार करना चाहिए जिस प्रकार से उस साधु का तीसरा अचौर्य व्रत नष्ट नहीं हो ( साहारणपिंड-

पावकम्म ) साधारण पिंडपात के लाभ में ( सुहुमं ) यह सूक्ष्म ( अदिन्नादाण-वय नियमवेरमणं ) अदत्तादान को प्रतिनियम से रोकने वाला अथवा अदत्तादान विरमणरूप आत्मा का नियमन करने वाला है ( एवं ) इस प्रकार ( साहारणपिंडपायलाभे ) साधारण पिंड पात्र लाभ में ( समितिजोगेण ) समिति के योग से ( भावितो अंतरप्पा ) युक्त अन्तःकरण वाला साधु ( निच्चं ) सदा ( अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्मविरते ) अधिकरणरूप पापकर्म के करने कराने रूप कर्म से विरत ( दत्तमणुन्नाय उग्गहरुई ) दत्त और अनुज्ञात अवग्रह की रुचि वाला ( भवति ) होता है।

( पंचमगं ) पाँचवीं भावना-साधर्मिक विनय करने रूप, जैसे-' साहम्मिए विणओ पउंजियव्वो ) साधर्मिक के सम्बन्ध में विनय करना चाहिए ( उवकरण पारणासु ) उपकार और तपस्या की पारणा-पूर्ति-में ( विणओ पउंजियव्वो ) विनय-प्रयोग करना चाहिए ( वायण-परियट्टणासु ) सूत्र ग्रहणरूप वाचना में और सूत्र की, आवृत्ति में-पुनः पठन में ( विणओ पउंजियव्वो ) विनय करना चाहिए, ( दाणग्गहणपुच्छणासु विणओ पउंजियव्वो ) मिले हुए अन्न दि साधुओं को देने में और दूसरों से ग्रहण करने एवं विस्मृत सूत्रार्थ को पुनः पूछने में विनय करना चाहिए ( निक्खमणपवेसणासु विणओ पउंजियव्वो ) स्थान से निकलने व प्रवेश करने में आवश्यकी आदि विनय करना चाहिए ( अन्नेसु य एवमादिसु ) और इत्यादि-इस प्रकार के दूसरे ( बहुसु कारणसएसु ) बहुत से सैकड़ों कारणों में ( विणओ पउंजियव्वो ) विनय करना चाहिए। ( विणओ वि-तवो ) विनय भी तप और ( तवो वि धम्मो ) तप भी धर्म है ( तम्हा विणओ पउंजियव्वो ) इसलिये विनय करना चाहिए।

किनके सम्बन्ध में विनय कर्तव्य है?

उत्तर-( गुरुसु साहूसु तवस्सीसु य ) गुरुओं में साधुओं में और तपस्वियों में। ( एवं ) इस प्रकार ( विणएण भाविओ ) विनय से युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तःकरण वाला साधु ( निच्चं ) सदा ( अहिकरण-करण-कारावण पावकम्म विरते ) अधिकरणरूप पाप के करने व कराने से विरत ( दत्तमणुन्नाय उग्गहरुई ) दत्त और अनुज्ञात अवग्रह में रुचिवाला ( भवति ) होता है ( एवमिणं संवरस्स दारं ) इस प्रकार अचौर्यव्रतरूप यह संवरद्वार ( सम्मं ) अच्छी तरह ( संवरियं ) पालन

किया गया ( सुप्पणिहियं ) सुरक्षित ( होइ ) होता है। ( एवं जाव ) इस प्रकार यावत् ( आघवियं सुदेसितं ) देव आदिओं के माननीय ज्ञानियों के द्वारा अच्छी तरह कहा हुआ ( पसत्थं ) प्रशस्त है।

( तइयं संवरदारं समत्तं तिबेमि ) तीसरा संवरद्वार समाप्त हुआ ऐसा मैं कहता हूं। सूत्र २। २६।

भावार्थ-"पर द्रव्य हरण से निवृत्तिरूप इस व्रत की रक्षा के लिये यह प्रवचन भगवान् महावीर ने अच्छी तरह कहा है। जो आत्महितकारी और यावत् सर्वदुःख एव पापों का उपशमन करने वाला है। व्रत की रक्षा के लिये इस तीसरे व्रत की पांच भावनायें हैं, जैसे-

पहली भावना गृहस्थ के द्वारा उनके अपने लिये बनाये गए, सचित्त जल आदि त्रस स्थावर जीव रहित प्रासुक, स्त्री आदि विकारी साधन शून्य एकान्त और प्रशस्त उपाश्रय में रहना चाहिए। देवकुल, सभा आदि १८ प्रकार के और ऐसे अन्य निर्दोष स्थान मे ठहरना चाहिए। जो मकान साधु के लिये आरम्भ करके बनाया हो, या पानी मे सींचा हो, फूल माला आदि से सजाया हो, डाभ आदि से छत बनाना, चूने खडी से पोतना, गोबर मे लीपना अग्नि जलाना, और भाण्ड बर्तन बासन इधर उधर करना ये सब क्रियायें जहां घर के भीतर या बाहर साधु के लिये की गई हों साधुओं को वैसा हिंसायुक्त उपाश्रय वर्जन करना चाहिए, क्योंकि ऐसा स्थान सूत्राज्ञा से निषिद्ध है। इस प्रकार यह विविक्त-पवित्र वास वसतिरूप प्रथम भावना है।

ऐसे बगीचे आदि के वन प्रदेश में जो कुछ इक्कड आदि घास और फूल, फल त्वचा आदि वनस्पति के अङ्ग तथा काष्ट आदि कोई ग्रहण करता है व्रती-साधु को उनमें से कोई भी पदार्थ स्वामी की आज्ञा लिये विना ग्रहण करना योग्य नहीं है। इसलिये प्रति दिन ग्राह्य पदार्थों की आज्ञा लेकर ही ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार अवग्रह समिति रूप दूसरी भावना है।

पाट पाटिया व शय्या के लिए वृक्ष नहीं कटाने चाहिए। छेदन भेदन से पाट आदि शय्या नहीं बनवानी चाहिए, किन्तु जिस उपाश्रय में ठहरें वहां पर ही शय्या की गवेषणा करनी चाहिए। विषम स्थान को सम नहीं बनाना, वायु रहित अथवा अधिक वायु वाले स्थान मे उत्सुकता नहीं करना। डांस मच्छर

आदि से क्षुब्ध नहीं होना और उनके निवारणार्थ अग्नि या धूम का प्रयोग भी नहीं करना, इस प्रकार संयम आदि भाव की प्रधानता से समाभियुक्त धीर मुनि शरीर से सदा अचौर्य व्रत का पालन करे। आत्मध्यानसे युक्त सम्यक् प्रवृत्ति वाला और राग द्वेष रहित होकर धर्मका आचरण करे। यह शय्या समिति रूप तृतीय भावना है।

चौथी भावना—साधु समूह के लिये साधारण पिण्ड के मिलने पर व्रती को यतना पूर्वक सेवन करना चाहिए। शाक आदि से प्रचुर भोजन को अधिक अथवा जल्दी २ नहीं करे चपलता युक्त बिना विचारे और दूसरे के लिए पीड़ा कारक सदोष आहार का वर्जन करे। साधु को उस प्रकार खाना चाहिए जिस प्रकार से अचौर्य व्रत का भङ्ग नहीं हो। यह अदत्तादान विरमण व्रत का सूक्ष्म नियम है। यह साधारण पिण्ड लाभ की समिति रूप चौथी भावना है।

साधर्मिक साधुओं के साथ योग्य विनय करना चाहिए। उपकार और पारणक आदि विभिन्न प्रसङ्गों पर गुरु,सामान्य साधु—व्रती और तपस्वियोंके विषयमें विनय करना चाहिए। क्योंकि विनय भी एक प्रकार का तप है औरतप भी धर्म है। इसलिए विनय साधन करना चाहिए। इस प्रकार विनय समितिरूप पांचवी भावना होती है।

इस प्रकार प्रत्येक भावना से युक्त अन्तःकरण वाला साधु सदा अधिकरण रूप पाप कर्म के करने व कराने से विरत होकर दत्तानुज्ञात अवग्रह अर्थात् अचौर्य व्रत की रुचि वाला होता है। इस प्रकार यह अचौर्य व्रत तृतीय संवर का द्वार है। उपरोक्त भावनाओं के द्वारा अच्छी तरह पाला जाता है। उत्तम है। इस प्रकार सुधर्म स्वामी कहते हैं कि यह तीसरा संवरद्वार पूर्ण हुआ। सू० ॥ २ ॥ २६ ॥

सारांश—इस अध्ययन में द्रव्य और भाव दोनों प्रकार के चौर्यकर्म का निषेध किया गया है। क्योंकि काव्य के पद और साहित्य का अंश लेकर अपनी विद्वत्ता बताना भी एक प्रकार की चोरी है। इस व्रत की रक्षा के लिये पांच बातें परम अपेक्षित हैं। निर्दोष व एकान्त स्थान का सेवन करना बिना दिये तृण तक भी ग्रहण नहीं करना शय्या आदि के लिये वृक्ष आदि नहीं कटवाना, और प्रतिकूल परिस्थिति में भी क्षुब्ध नहीं होना भिक्षा से प्राप्त आहार का विधिवत् सेवन करना, गुरु, और साधुओंमें यथा योग्य विनय करना, साधकको इन्हें ध्यानमें रखना चाहिए।

## ❀ समाप्तं तृतीयंसंवरद्वारम् ❀

**० मूलार्थं शब्दार्थ भावार्थम् ०**

# चतुर्थ संवरद्वारम्

सम्बन्ध–तृतीय संवर में अचौर्यव्रत का विधान किया गया है। वह ब्रह्मव्रत के धारण करने पर ही निर्बाध पाला जा सकता है, इसलिये चतुर्थ अध्ययन में सूत्र क्रम से सम्बन्धित ब्रह्मचर्यव्रत का निरूपण करते हैं–

मूल–"जंबू ! एत्तो य बंभचेरं उत्तम–तव–नियम–णाण–दंसण–चरित्त–सम्मत्त–विणयमूलं, जम–नियम–गुणप्पहाणजुत्तं, हिमवंत महंत–तेयमंतं, पसत्थ–गंभीर–थिमित–मज्झं, अज्जव–साहुजणा चरितं, मोक्ख-मग्गं, विसुद्ध–सिद्धिगति–निलयं, सासयमव्वाबाहमपुणब्भवं, पसत्थं सोमं सुभं सिवमचलमक्खयकरं। जतिवर–सारक्खितं, सुचरियं सुभासियं, नवरिमुणिवरेहिं महापुरिस–धीर–सूर–धम्मिय–धितिमंताण य सया विसुद्धं, भव्वं भव्वजणाणुचिन्नं, निस्संकियं, निब्भयं, नित्तुसं, निरायासं, निरुवलेवं, निव्वुतिघरं, नियम निप्पकंपं तव संजम–मूल–दलियणेम्मं, पंच महव्वय सुरक्खियं, समिति गुत्ति गुत्तं, झाणवर–कवाड–सुकयमज्झप्प दिन्नफलिहं, संनद्धोच्छइयदुग्गइपहं, सुगतिपहदेसगं च, लोगुत्तमंच व-यमिणं, पउमसरतलाग–पालिभूयं, महासगड अरगतुंब भूयं, महा-विडिमरुक्खक्खंधभूयं, महानगर पागार कवाडफलिहभूयं, रज्जु पिणिद्धो व इंदकेतू विसुद्ध णेग गुण संपिणद्धं। जंमिय भग्गमि होइ सहसा सव्वं संभग्ग–मथिय–चुन्निय– कुसल्लिय–पल्लट्ट–पडिय–खंडिय–परिसडिय-विणा-सियं, विणयसील–तव–नियम गुणसमूहं, तं बंभं भगवंतं–गहगण न क्खत्त तारगाणं वा जहा उडुपती १, मणिमुत्त-सिल–प्पवाल–रत्त रयणा-गराणं व जहा समुद्दो२, वेरुलिओ चेव जहा मणीणं३, जहा मउडो चेव भूसणाणं४, वत्थाणं चेव खोम जुयलं५, अरविंदं चेव पुप्फजेट्ठं६, गोसी-सं चेव चंदणाणं७, हिमवंतो चेव ओसहीणं८, सीतोदा चेव निन्नगाणं९,

उदहीसु जहा सयंभुरमणो१०, रुयगवरे चेव मंडलिक पव्वयाण पवरे११, एरावण इव कुंजराणं१२, सीहोव्व जहा मिगाणं पवरे१३, पवकाणं चेव वेणु देवे१४, धरणो जह पण्णगइंदराया१५, कप्पाणं चेव बंभलोए१६, सभासु य जहा भवे सुहम्मा१७, ठिइसु लव सत्तमव्व पवरा१८, दाणाणं चेव अभयदाणं१९, किमिराउ चेव कंबलाणं२०, संघयणे चेव वज्जरिसभे२१, संठाणे चेव समचउरंसे२२, झाणेसु य परम सुक्कज्झाणं२३, णाणेसु य परम केवलं तु सिद्धं२४, लेसासु य परम सुक्कलेस्सा२५ तित्थकरे जहा चेव मुणीणं२६, वासेसु जहा महाविदेहे२७, गिरि राया चेव मंदरवरे२८ वणेसु जहा नंदणवणं पवरं२९, दुमेसु जहा जंबू सुदंसणा, वीसुय जसा जीय नामेण य अयं दीवो३०, तुरगवती गयवती, रहवती नरवती जह वीसुए चेव राया३१, रहिए चेव जहा महा रहगते३२। एवमणेगा गुणा अहीणा भवंति एक्कंमि बंभचेरे जंमि य आराहियंमि आराहियं वयमिणं सव्वं। सीलं तवो य विणओ य संजमो य खंती गुत्ती मुत्ती तहेव इहलोइय पार लोइय जसे य कित्ती य पच्चओ य। तम्हा निहुएण बंभचेरं चरियव्वं, सव्वओ विसुद्धं जावज्जीवाए जाव सेयट्ठि संजउत्ति एवं भणियं वयं भगवया।

छाया-'हे जम्बू ! इदम् ब्रह्मचर्यमुत्तमतपो-नियम-ज्ञान-दर्शन-चारित्र सम्यक्त्व-विनयमूलं, यम नियम गुण प्रधानयुक्तं, हिमवन्महातेजस्कं, प्रशस्त गम्भीर स्तिमित मध्यम, आर्जव-साधुजनाचरितं मोक्षमार्गं। विशुद्ध-सिद्धिगति-निलयं, शाश्वत मव्याबाधमपुनर्भवम् प्रशस्तं सौम्यं शुभं शिवमचलमक्षयकरं, यतिवर-सुरक्षितं सुचरितं सुभाषितं। केवलं (न वरि) मुनिवरैर्महापुरुष-धीर-शूर-धार्मिक-धृतिमतां च सदा विशुद्धं भव्यं भव्यजनानुचीर्णं निःशङ्कितं निर्भयं निस्तुषं निरायासं निरुपलेपं निर्वृति गृहं नियम निष्प्रकम्पं तप-संयम-मूल-दलिकनेमं, पञ्चमहाव्रत सुरक्षितं, समिति गुप्ति गुप्तं, ध्यानवर-कपाट सुकृताध्यात्म-दत्तपरिघं, संनद्धोच्छ्रित-दुर्गति पथं, सुगतिपथप्रदर्शकं च लोकोत्तमं व्रतमिदं, पद्मसरस्तडागपालीभूतं, महाशकटारक तुम्ब (नाभि) भूतं, महा विटपवृक्षस्कन्धभूतं, महानगर-प्राकार-कपाट परिघ भूतं, रज्जु-पिनद्ध इन्द्रकेतुः, विशुद्धानेकगुण संपिनद्धम्। यस्मिन् भग्ने भवति सहसा सर्वं संभग्न-मथित-चूर्णित-कुशल्यित,-पर्यस्त-(पतद्)-पतित-

खण्डित-परिशाटित-विनाशितं । विनयशील-तपो-नियम-गुणसमूहं, तद्‌ब्रह्मचर्यं भगवद्,-ग्रहगण नक्षत्र तारकाणां वा यथोडुपतिः १, मणिमुक्ताशिला-प्रवाल-रक्तरत्नाऽऽकराणां च यथा समुद्रः २, वैडूर्यञ्चैव यथामणीनां ३, यथा मुकुटञ्चैव भूषणानां ४, वस्त्राणाञ्चैव क्षौमयुगलम् ५, अरविन्दञ्चैव पुष्पज्येष्ठ ६, गोशीर्षञ्चैव चन्दनानां ७, हिमवाश्चैव औषधीनां ८, शीतोदाचैव निम्नगानाम् ९, उदधिषु यथा स्वयम्भुरमण १०, रुचकवरश्चैव माण्डलिक पर्वतानां प्रवरः ११, ऐरावत इव कुञ्जराणाम् १२, सिंहोयथा मृगाणां प्रवरः १३, पावकानां चैव वेणुदेवो १४, धरणो यथा पन्नगेन्द्रराजा १५, कल्पानाञ्चैव ब्रह्मलोकः १६, सभासु च यथा भवेत्सुधर्मा १७, स्थितिषु लवसप्तमावा प्रवरा १८, दानानाञ्चैवाऽभयदानम् १९, कृमिराग इव कम्बलानाम् २० संहननेषु चैव वज्रर्षभ २१, संस्थाने चैव समचतुरस्रम् २२, ध्यानेषु च परमशुक्ल ध्यानम् २३ ज्ञानेषु च परमकेवलं तु सिद्धम् २४ लेश्यासु च परमशुक्ल लेश्या २५, तीर्थङ्करो यथा चैव मुनीनाम् २६, वासेषु यथा महाविदेहो २७, गिरिराजश्चैव मन्दरवरः २८, वनेषु यथानन्दनवनं प्रवरः २९, द्रुमेषु यथा जम्बूः सुदर्शना विश्रुतयशा यस्यानाम्नायं द्वीप. ३० तुरगपति गजपतीरथपतिर्नरपतिर्यथा विश्रुतश्चैव राजा ३१, रथिकश्चैव यथा महारथगत. ३२ । एवमनेके गुणा अहीनाभवन्ति एकस्मिन् ब्रह्मचर्ये । यस्मिन् चाराधिते आराधित व्रतमिदं सर्वम् । शील तपश्चविनयश्च संयमश्च, चान्तिर्गुप्तिर्मुक्तिस्तथैव ऐहिलौकिक पारलौकिक यशश्च कीर्तिश्च प्रत्ययश्च तस्मान्निभृतेन ब्रह्मचर्यं चरितव्यम् । सर्वतो विशुद्ध यावज्जीवन यावच्छ्वेतोऽस्थिसंयमिनेति, एवं भणितं व्रतं भगवता ।

अन्व०"( जंबू ! ) हे जंबू ! ( एत्तोय ) फिर इस तृतीय व्रत के आगे ( बंभचेरं ) ब्रह्मचर्य व्रत है, जो ( उत्तमतव-नियम-णाण-दंसण-चरित्त-सम्मत-विणयमूलं ) उत्तम अनशन आदि तप, नियम-उत्तर गुण, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल है ( जम-नियम-गुणप्पहाणजुत्तं ) अहिंसादि पाच यम और गुणों की प्रधानता वाले नियम से युक्त ( हिमवंत महंततेयमंत ) हिमवान् पर्वत के समान बड़ा और तेजस्वी ( पसत्थगभीरथिमितमज्झं ) प्रशस्त गम्भीर और स्थिर मध्य याने मनुष्य के अन्त.करण वाला, ( अज्जव साहु जणा चरितं ) सरल भाव युक्त साधु पुरुषों से आसेवित ( मोक्खमग्ग ) मोक्ष का मार्ग ( विशुद्ध सिद्धिगति निलय ) विशुद्ध रागादि रहित निर्मल सिद्धि गति रूप घर वाला ( सासयमव्वाबाहमपुण

कमर्व ) शाश्वत, बाधारहित और पुनर्जन्म को रोकने वाला ( पसत्थं सोम सुभं ) प्रशस्त-उत्तम गुण वाला तथा सौम्य, शुभ अथवा सुख रूप-(सिवमयलमक्खयकरं) शिव-निरुपद्रव अचल और अक्षय या पूर्ण पद को करने वाला ( जतिवर सार क्खितं ) प्रधान मुनियों से सुरक्षित ( सुचरियं सुभासियं ) अच्छी तरह आचरण किया हुआ, सम्यक प्रकार से उपदिष्ट नवरि ) केवल (मुणिवरेहिं) उत्तम मुनियों से उपदिष्ट है' ( महा पुरिस-धीर-सूर-धम्मिय-धितिमंताण य ) उत्तम महा पुरुष अत्यन्त साहसी और धार्मिक व धृति वाले पुरुषों का व्रत ( सया ) सदा ( विसुद्धं ) दोष रहित अथवा सभी अवस्थाओं में शुद्ध पाला गया है ( भव्वं ) कल्याण का कारण तथा ( भव्वजणाणुचिण्णं ) भव्यजनों से पाला गया है ( निस्संकियं ) यह शंकारहित ( निब्भयं नितुसं ) निर्भय और तुष-निस्सारता से रहित है ( निरायासं निरुवलेवं ) खेद रहित व स्नेह के उप-लेप से रहित ( निव्वुतिघरं ) चित्त शान्ति का घर ( नियम निप्पकंपं ) नियम से अविचल ( तवसंजम-मूल-दलिय-णेम्मं ) तप और संयम के मूल रूप के समान ( पंचमहव्वय सुरक्खियं ) पाँच महाव्रतों में विशेष सुरक्षित ( समिति-गुत्तिगुत्तं ) पाँच समिति और तीन गुप्तियों से गुप्त ( झा णवर-कवाड-सुकय-मज्झप्पदिण्णफलिहं ) रक्षा के लिये उत्तम ध्यानरूप सुनिर्मित कपाटवाला और अध्यात्म-सद्भावनामय चित्त ही जहाँ दी हुई अर्गला है, ऐसा ( संनद्धोच्छइय-दुग्गइपहं ) बंधे हुए और ढके हुए की तरह दुर्गतिमार्ग का प्रति बन्धक ( च ) और ( सुगतिपहदेसगं ) सुगति के मार्ग को दिखाने वाला ( लोगुत्तमं च ) और लोक में उत्तम ( वयमिणं ) यह व्रत ( पउमसर-तलाग-पालिभूयं ) पद्म सरोवर के पालतुल्य ( महासगड-अरग-तुंब-भूयं ) बड़े गाड़े के आरों लगे हुए पहियों के लिये नाभितुल्य ( महाविडिमरुक्ख-क्खंधभूयं ) तथा अतिशय विस्तार वाले बड़े वृक्ष के स्कन्ध के समान ( महानगर-पागार-कवाड-फलिहभूयं ) बड़े नगर के प्राकार में कपाट की अर्गला के समान, [ धर्मरूपनगर-कपाट की मजबूत अर्गला है ] ( रज्जुपिणद्धो व इंदकेतू ) डोरी से बंधे हुए इन्द्र ध्वजकी तरह ( विसुद्धणेग-गुण-संपिणद्धं ) अनेक विशुद्ध गुणों से युक्त है ( जंमिय भग्गंमि ) और जिसके भंग होने पर ( सहसा सव्वं ) सहसा सब विणयसील-तव-नियम-गुणसमूहं ) विनय, शील, तप और नियम आदि गुणसमूह संभग्ग-महिय-चुण्णिय कुसल्लिय पल्लट्ट-पडिय-खंडिय-परिसडिय-विणासियं ) फूटे हुए घड़े की तरह संभग्न,

दही के जैसे मथा हुआ, आंटे के जैसा चूर्ण किया हुआ, कांटा लगे शरीर के समान शल्ययुक्त, पर्वत से शिला की तरह धर्म से लुढका हुआ, गिरा हुआ, लकड़ी के जैसे दो भाग होकर टूटा हुआ, बुरी हालत में पहुंचा हुआ और अग्नि में जल कर उड़े हुए काष्ठ के समान विनष्ट ( छोह ) होता है, ( तं बंभ भगवतं ) इस प्रकार का वह ब्रह्मचर्य भगवान अतिशय सम्पन्न है।

अब ३२ उपमाओं से इस ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हैं—( गहगण-नक्खत्त-तारगाणं वा जहा उडुपती ) ग्रह नक्षत्र अथवा तारकों के बीच जैसे चन्द्र ( मणि-मुत्त-सिलप्पवाल-रत्त-रयणागराणं च जहा समुद्दो ) और मणि, मोती, विद्रुम अथवा पद्मराग आदि रत्न खानों में समुद्र के समान ( वेरुलिओ चेव जहा मणीणं ) और मणिओं के बीच जैसे वैडुर्यमणि प्रधान है ( जहा मउडो चेव भूसणाणं ) आभूषणों के बीच जैसे मुकुट और ( वत्थाण चेव खोमजुयलं ) वस्त्रों के बीच जैसे क्षौमयुगल कपास का वस्त्र ही उत्तम है ( अरविंदं चेव पुप्फजेट्ठं ) फूलों मे जैसे अरविन्द-कमल ही श्रेष्ठ है ( गोसीसं चेव चंदणाणं ) चन्दनों में गोशीर्ष जैसे प्रधान है और ( हिमवंतो चेव ओसहीण ) औषधी-चमत्कारिक औषधिओं का जैसे हिमवान् उत्पत्ति स्थान है ( सीतोदा चेव निन्नगाणं ) और नदियों के बीच जैसे शीतोदानदी प्रधान है ( उदहीसु जहा सयंभुरमणो ) समुद्रों में जैसे स्वयम्भुरमण समुद्र बडा है ( रुयगवरे चेव माडलिक पव्वयाणपवरे ) माण्डलिक गोल पर्वतों में जैसे रुचकवर गिरि प्रधान है ( एरावण इव कुंजराणं ) हाथिओं के बीच जैसे ऐरावण प्रवर-श्रेष्ठ है ( सीहोव्व जहा मिगाणं पवरे ) मृग-जंगल के चतुष्पद प्राणिओं में जैसे सिंह प्रधान है ( पावकाणं चेव वेणुदेवे ) सुवर्ण कुमारों के बीच जैसे वेणुदेव ( धरणो जह पण्णग इंदराया ) नागकुमारो में जैसे धरणेन्द्र नागराजा प्रधान है ( कप्पाण चेव बंभलोए ) कल्प-देवलोक में जैसे ब्रह्मलोक बडा और ( सभासु य जहा भवे सुहम्मा ) सभाओं में जैसे सुधर्मा-देव सभा प्रधान है ( ठितिसु लव सत्त मव्व पवरा ) स्थितिओं में जैसे अनुत्तर विमान वासी देवों की स्थिति प्रधान व बडी है दाणाण चेव अभयदाण ) अनेक प्रकारों के दानों में जैसे अभयदान ( किमिराउ चेव कंबलाणं ) कम्बलों में जैसे कृमिराग-रक्त कम्बल प्रधान है ( संघयणे चेव वज्जरिसभे ) संहननों में जैसे वज्र ऋषभनाराच सहनन और ( संठाणे चेव समचउरंसे ) छः संस्थानों में जैसे समचतुरस्रसंस्थान प्रधान है ( झाणेसु य परम सुक्कज्झाणं )

चार प्रकार के ध्यानों में जैसे परम शुक्ल ध्यान और ( णाणेसु य परम केवलं तु सिद्धं ) पांच ज्ञानों में जैसे केवल ज्ञान पूर्ण रूप से प्रसिद्ध है और ( लेसासु य परम सुक्कलेसा ) छः लेश्याओं में परम शुक्ल लेश्या जैसे उत्तम है ( तित्थंकरे चेव मुणीणं ) मुनियों में जैसे तीर्थङ्कर प्रधान हैं ( वासेसु जहा महा विदेहे ) वर्ष क्षेत्रों में जैसे महाविदेह क्षेत्र, ( गिरिराया चेव मंदर वरे ) पर्वतों में जैसे मन्दर पर्वत गिरिराज है, ( वणेसु जहा नंदणवणं ) वनों में जैसे नन्दन वन ( पवर ) श्रेष्ठ है ( दुमेसु जहा जंबू सुदंसणा वीसुय जसा ) वृक्षों में जैसे जम्बू सुदर्शन वृक्ष विश्रुत-विख्यात कीर्ति वाला है ( जीसे नामेण य अयं दीवो ) जिसके नाम से यह द्वीप-जम्बू द्वीप कहा जाता है ( तुरगवती गयवती रहवती नरवती जह वीसुए चेव राया ) अश्वपति, गजपति, रथपति और नरपति राजा जैसे विख्यात है, वैसे यह ब्रह्मव्रत भी उत्तम और विख्यात है ( रहिए चेव जहा महा रहं गए ) बड़े रथ पर बैठा हुआ जैसे रथिक दूसरों का अभिभव करने वाला होता है ( एवमणेगा गुणा अहीणा भवंति ) इस प्रकार अनेक गुण पूर्ण और स्वाधीन होते हैं ( जंमि ) और जिस ( एक्कंमिबंभचेरे आराहियंमि ) एक ब्रह्मचर्य की आराधना करने पर (आराहियं वयमिणं सव्वं) यह सब नियम व्रत पालित होता है। [ व्रत गिनाते हैं ] ( सील ) शील-समाधान ( तवो य ) और तप ( विणओ य ) विनय और ( संजमो य ) संयम तथा ( खंती गुत्ती मुत्ती ) क्षमा,गुप्ति, मुक्ति-निर्लोभ वृत्ति ( तहेव ) इसी तरह ( इह लोइय पारलोइय जसे य कित्ती य ) इहलोक और परलोक सम्बन्धी यश और कीर्ति-ज्ञान पुरुष के फल भूत अथवा एक दिगन्त व्यापिनी प्रसिद्धि और ( पच्चओ य ) प्रत्यय-विश्वास का कारण है ( तम्हा ) इसलिये ( निहुएण ) स्थिर चित्त से ( सव्वओ विसुद्धं बंभचेरं चरियव्वं ) सर्वथा यानि त्रिकरण त्रियोग से विशुद्ध दोष रहित ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। ( जावज्जीवाए जाव सयट्ठि संजउत्ति ) आजीवन के लिये यावत् श्वेतास्थी या तपस्या से निर्मांस होने के कारण साधु श्वेतास्थि कहाता है। ( एवं भणियं वयं भगवया ) इस प्रकार भगवान् महावीर ने ब्रह्मचर्य व्रत को कहा है।

भाव-हे जंबू ! तीसरे संवर के बाद चतुर्थ संवर ब्रह्मचर्य है। यह प्रधान तप, नियम और ज्ञानादि का मूल तथा यम नियम आदि प्रधान गुण वाला है। हिम वान् के समान बड़ा तेजस्वी प्रशस्तगम्भीर हृदयवाला आदि अनेक विशेषण सह

है। जिस ब्रह्मचर्य के भङ्ग होने पर सहसा विनयशील और तपनियम आदि गुण समूह सब नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। अतिशय सम्पन्न होने से वह ब्रह्मचर्य भगवान् है। बत्तीस उपमाओं से इसका महत्त्व कहा गया है।

जैसे-'नक्षत्र मण्डल में चन्द्रमा के समान १, मणि आदि रत्नों की खानों में समुद्र के समान २, मणिओं में वैडूर्य के समान ३, आभूषणों में मुकुट के समान ४, वस्त्रों में क्षौमयुगल-कपास वस्त्र के समान ५, पुष्पों में कमलके समान ६, चन्दनों में गोशीर्ष के समान ७, औषधि स्थानों में हिमवान् के समान ८, नदियों में शीतोदा नामकी नदी के समान ९, समुद्रों में स्वयम्भू रमण के समान १०, माण्डलिक पर्वतों में रुचकगिरि के समान ११, हाथिओं में ऐरावण हाथी के समान १२, जंगली पशुओं में सिंह के समान १३, सुपर्ण कुमारों में वेणुदेव के समान १४, नागकुमारों में धरणेन्द्र के समान १५, बारह देवलोकों में ब्रह्मदेवलोक के समान १६, सभाओं में सुधर्मा के समान १७, स्थितिओं में अनुत्तर विमानवासी देवों की स्थितिके समान १८, दानों में अभयदान के समान १९, कम्बलों में कृमिराग-रक्त कम्बलों के समान २०, शरीर के संहननों में वज्रऋषभनाराच के समान २१, छः प्रकार के संठाणों में समचतुरस्र संस्थान के समान २२, चार ध्यानो में शुक्ल ध्यान के समान २३, पाच ज्ञानों मे केवल ज्ञान के समान २४, छ लेश्याओं में परमशुक्ल लेश्या २५, मुनिओं में जैसे तीर्थङ्कर २६, क्षेत्रों में जैसे महाविदेह प्रधान है २७, पर्वतों में सुमेरुके समान २८, वनों में नन्दनवन के समान २९ वृक्षों में जंबू वृक्ष के समान ३०, तुरगपति आदिओं में जैसे चक्रवर्ती राजा ३१, रथिकों में जैसे महारथी उत्तम है ऐसे ही व्रतों में ब्रह्मचर्यव्रत बडा और प्रधान है ३२। इस प्रकार एक ब्रह्मचर्यव्रत में अनेक गुण पूर्ण तथा निवास किये रहते हैं। ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने पर वह निर्ग्रन्थ प्रव्रज्यारूपव्रत अखण्ड पालन किया होता है। शील, तप, विनय, संयम, क्षमा, गुप्ति और निर्लोभता तथा सिद्धि एवं इस लोक परलोक की यश कीर्ति का भी आराधन हो जाता है। इसलिये स्थिर भावसे ब्रह्मचर्य का त्रिकरण त्रियोग की शुद्धि पूर्वक पालन करना चाहिए। जीवन पर्यन्त इसमें स्थिर रहना आदि, इस प्रकार श्री महावीर प्रभु ने ब्रह्मचर्यव्रत को कहा है वह इस प्रकार है। जैसे-

मूल—"तंच इमं—पंचमहव्वय-सुव्वय—मूलं, समणमणाइल-साहुसुचिन्नं।
वेर विरमण—पज्जवसाणं, सव्वसमुद्द—महोदधितित्थं ॥ १ ॥

तित्थकरेहिं सुदेसिय-मग्गं, नरय तिरिच्छ-विवज्जियमग्गं।
सव्वपवित्ति—सुनिम्मियसारं, सिद्धिविमाण—अवंगुयदारं ॥ २ ॥

देव-नरिंद-नमंसियपूयं, सव्वजगुत्तम—मंगलमग्गं।
दुद्धरिसं गुणनायगमेक्कं, मोक्खपहस्स वडिंसकभूयं ॥ ३ ॥

जेण सुद्धचरियेण भवइ सुबंभणो, सुसमणो, सुसाहू, सइसी समुणी ससंजए सएवभिक्खू जो सुद्धं चरति बंभचेरं।

इमं च रति-राग-दोस-मोह पवड्ढणकरं किंमज्झ—पमाय—दोसपासत्थ-सीलकरणं अब्भंगणाणिय तेल्लमज्जणाणि य अभिक्खणं कक्खा—सीस—कर चरण—वदण—धोवण—संबाहण—गायकम्म— परिमद्दणाणुलेवण— चुण्ण वास धूवण—सरीर परिमंडण—बाउसिक ( य ) हसिय—भणिय—नट्टगीय—वाइय-नड-नट्टक-जल्ल-मल्ल पेच्छण—वे लंबक जाणिय सिंगारागाराणि य अण्णाणिय एवमादियाणि तव—संजम—बंभचेर-घाओवघाइयाइं अणुचरमाणेण बंभचेरं वज्जेयव्वाइं सव्वकालं।

भावेयव्वो भवइ य अंतरप्पा इमेहिं तव नियम-सील-जोगेहिं निच्चकालं, किंते!—अण्हाणक—अदंतधावण—सेय—मल—जल्ल—धारणं मूणवय-केसलोए य खम—दम—अचेलग—खुप्पिवास लाघव—सीतोसिणकट्ठसेज्जा—भूमिनिसेज्जा परघर पवेस—लद्धावलद्ध-माणावमाण—निंदण—दंस—मसगफास नियम—तव—गुण विणयमादिएहिं जहा से थिरतरगं होइ बंभचेरं। इमं च अबंभचेर विरमण परिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं ( अत्तहियं ) पेच्चाभा विकं आगमेसिभद्दं सुद्धं नेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्ख पावाण विउसमणं।

छाया—"तच्चेदं—" पञ्चमहाव्रत सुव्रतमूलं समनस्काऽनाविल साधुसुचीर्णम्।
वैर विरमण पर्यवसानं, सर्वसमुद्रमहोदधि तीर्थम् ॥ १ ॥

---

१ इ. पक बन्धसा म. पिताम्यमूनि पदानि।

तीर्थङ्करैः सुदेशितमार्गं, नरक तीर्यग् विवर्जितमार्गम् ।
सर्व पवित्र ( प्रवृति ) सुनिर्मितसारम्, सिद्धि विमानाऽपवृद्वारम् ॥ २ ॥
देवनरेन्द्र नमंस्यितपूज्यम, सर्वजगदुत्तम मङ्गलमार्गम् ।
दुर्द्धर्षं गुणनायकमेकम्, मोक्षपथस्याऽवतंसकभूतम् ॥ ३ ॥

येन शुद्धाऽऽचरितेन भवति सुब्राह्मण सुश्रमण, सुसाधुः, सऋषि, समुनि, स संयतः स एवभिक्षु., य शुद्धं चरति ब्रह्मचर्यम् । इदञ्च रति-राग-दोष-मोह प्रवर्द्धन करं किमध्य ( मध्य ) प्रमाद-दोष-पार्श्वस्थ-शीलकरणम्, अभ्यङ्गनानि च तैलमज्ज-नानि ( मर्दनानि ) च, कक्ष-शीर्ष-कर-चरण-वदन-धावन-संवाहन-गात्र कर्म-परिमर्दनाऽनुलेपन-चूर्णवास धूपन-शरीर-परिमण्डन- बाकुशिक- हसित-भणित-नृत्य-गीत-वादित-नट-नर्तक-जल्ल-मल्ल- प्रेक्षण वेलंबका ( विदूषका ) नि, ये शृङ्गारगृहाश्च, अन्यानि चैवमादिकानि तप. संयम-ब्रह्मचर्य-घातोपघातकानि, अनुचरता ब्रह्मचर्यं वर्जनीयानि सर्वकालम् । भावयितव्यो भवत्यन्तरात्मा, एभिस्त-पो-नियमशीलयोगैर्नित्यकालम् । केते ? ( तद्यथा ) अस्नानकम् अदन्तधावनम्, स्वेदमल्ल-जल्लधारणम् मौनव्रतकेश लोचश्च क्षमा-दमाऽचेलक-क्षुत्पिपासा लाघव-शीतोष्ण-काष्ठ शय्या-भूमि निषद्या-परगृहप्रवेश-लाभालाभ-मानाऽपमान-निन्दन-दंश-मशक-स्पर्श-नियम-तपो-गुण,विनयादिकैर्यथा तत् स्थिरतरं भवति ब्रह्मचर्यम् । इदञ्च अब्रह्मचर्य विरमण परिरक्षणार्थाय प्रवचन भगवता सुकथित प्रेत्यभाविकम् आगमिष्यद्भद्रं शुद्ध न्यायोपेतम् अकुटिलम् अनुत्तरं सर्वदुःखपापाना व्युप-शमनम् ।

अन्व०-"( तं च ) और ब्रह्मचर्य विषयक यह वचन इस प्रकार है-( पंच महव्व य सुव्वयमूलं ) पंच महाव्रत रूप सुव्रतों का जो मूल की तरह मूल है अथवा साधुओं के शुभ व्रत और अणुव्रतों का जो मूल है तथा हे सुव्रत ? ऐसा सम्बोधन मानकर भी अर्थ किया गया है ( समणमणाइलसाहुसु चिन्नं ) भाव पूर्वक शुद्ध स्वभाव वाले साधुओं से सम्यक् सेवन किया गया ( वेर विरमणपज्जवसाणं ) वैर की निवृत्ति और अन्त करने वाला ( सव्व समुद्द-महोदधि-तित्थं ) सब समुद्रों में बड़े स्वयम्भुरमण समुद्र के समान दुस्तर तथा तैरने का उपाय होने से तीर्थ है ॥ १ ॥ ( तित्थकरेहिं सुदेसियमग्गं ) तीर्थङ्करों से अच्छी तरह दिखाये गये मार्ग वाला ( नरय-तिरिच्छ-विवज्जियमग्गं ) नरक तथा तिर्यञ्च गति के मार्ग को बंद करने

वाला ( सव्व-पवित्त-सुनिम्मियसारं ) सब पवित्र अनुष्ठानों को सार युक्त करने वाला ( सिद्धि विमाण अवंगुयदारं ) सिद्धि और वैमानिक गति के द्वार को खोलने वाला ॥ ॥ ( देव नरिंद नमंसियपूयं ) देव तथा नरेन्द्रों से नमस्कृत मनुष्य के लिये पूजनीय ( सव्वजगुत्तम-मंगलमग्गं ) जगत् के सब मङ्गलों का मार्ग या उनमें प्रधान है ( दुद्धरिसं ) दुर्धर्ष-किसी से पराभव नहीं पाने वाला, अथवा दुष्कर ( गुण नायगमेक्कं ) अद्वितीय गुणों का नायक ( मोक्ख पहस्स ) सम्यग् दर्शनादि मोक्ष मार्ग का ( वडिंसकभूयं ) शेखर भूत है ॥ २ ॥ ( जेण सुद्ध चरिएण ) जिसके शुद्ध आसेवन करने से ( भवइ सुबंभणो सुसमणो सुसाहू ) सुब्राह्मण-सच्चा ब्राह्मण यथार्थ तपस्वी और निर्ग्रन्थ श्रमण तथा साधु होता है तथा (जो सुद्धं चरति बंभचेरं) जो शुद्ध रीति से ब्रह्मचर्य का पालन करता है। ( स इसी ) वह ऋषि यथावत् वस्तु द्रष्टा है ( स मुणी ) वह यथोक्त मुनि तथा ( स संजए ) वह संयत-संयमवान और ( स एव भिक्खू ) वही भिक्षु है। अब ब्रह्मचर्य में त्यागने योग्य व्यवहारों को कहते हैं ( इमं च ) और इस ( रति-राग-दोस-मोह-पवड्ढणकरं ) रति-विषय राग-राग स्नेह राग द्वेष और मोह को बढ़ाने वाला ( किमज्झ-पमाय-दोस-पासत्थ-सील करणं ) निस्सार प्रमाद दोष और ज्ञानादि आचार से बहिर्भूत नकली साधुओं का सा व्यवहार करना (अब्भंगणाणि य) घृत आदि की मालिश और (तेल्लमज्जणाणि य) तेल लगाकर स्नान करना तथा (अभिक्खणं) बारम्बार ( कक्ख सीस कर-चरण वयण धोवण-संवाहण गायकम्म-परिमद्दणाणुलेवण-चुण्णवास-धूवण-सरीर परिमंडण-बा उसिक-हसिय-भणिय-नट्ट-गीय-वाइय नड-नट्टक-जल्ल-मल्ल-पेच्छण वेलंबक ) कांख-बगल शिर, हाथ पांव और मुख को धोना, संवाहन-मर्दन करना, पैर आदि अङ्गों का चपन आदि करना, सब ओर से देह को मलना, और विलेपन करना, चूर्ण वास-सुगन्धित द्रव्य से शरीर को सुवासित करना, अगर आदि से धूप देना, शरीर का मण्डन करना, चाम का रंग बिरंगे करने वाली नख केश आदि की रचना करना, हसित-हास, व विकार युक्त बोलना, नाट्य गीत और भेरी आदि वाद्य की ध्वनि, नट-नाटक करने वाले नर्तक-नृत्य करने वाले, जल्ल-डोरी पर खेलने वाले तथा मल्ल-कुश्ती लड़ने वाले-इन सबको देखना, और विदूषक सम्बन्धी हास्य चेष्टाएं ( यानि य ) और जो (सिंगारागाराणि य) शृङ्गार रस के घर की तरह ( अन्नाणि य ) और अन्य इस प्रकार की वस्तुएं ( तव-संजम-बंभचेर घातोव

घातियाइं ) तप, संयम और ब्रह्मचर्य के घात व उपघात को करने वाली याने तप आदि का आंशिक या सर्वथा नाश करने वाली हैं ( बंभचेरं अणुचरमाणेणं ) ब्रह्मचर्य के आसेवन करने वाले को उपरोक्त बातें ( सव्वकालं ) सर्वदा ( वज्जेयव्वाइ ) वर्जन करने योग्य हैं। ( इमेहिं तव-नियम-सील-जोगेहिं ) इन आगे कहे जाने वाले तप नियम और शील के व्यापारों से ( निच्चकालं ) सदा ( अंतरप्पा ) अन्तः करण भावियव्वो भवइ ) भावित करने योग्य होता है ( किंते ? ) वे व्यवहार कौनसे हैं ?

उत्तर--(अण्हाणक-अदंतधावण-सेय-मल्ल-जल्लधारणं ) स्नान नहीं करना, दन्त धावन नहीं करना, पसीना और मल को धारण करना (मूणवय-केस लोए य) और मौनव्रत व केश का लुञ्चन करना, ( खम-दम-अचेलग-खुप्पिवास-लाघव-सीतोसिण-कट्ठसेज्जा-भूमिनिसेज्जा-परघर पवेस-लद्धावलद्ध-माणावमाण-निंदण-दंस मसग फास-नियम तव-गुण विणयमादिएहिं ) क्षमा, दम-इन्द्रियनिग्रह, अचेलक-अल्पवस्त्र रखना, या वस्त्र रहित होना, भूख, प्यास, उपधि से हल्कापन, ठण्डी और गर्मी, काष्ठशय्या-पाट-आदि की शय्या, भूमि निषद्या-भूमि का आसन तथा पर घर में जाने पर कुछ मिलना या नहीं मिलना मान अपमान, निन्दा और डांस मच्छर आदि का कष्ट सहना, द्रव्य आदि के अभिग्रह रूप नियम, तप, मूल व्रत आदि गुण और विनय आदि से अन्त करण को भावित करना चाहिए ( जहा से थिर तरंग होइ बंभचेरं ) जैसे उस व्रती का ब्रह्मचर्य अत्यन्त स्थिर हो। (इमंच) और यह (अबंभचेर-विरमण-परिरक्खणट्ठयाए) अब्रह्म-मैथुन के निवृत्तरूप व्रत की रक्षा के लिये ( पावयणं ) प्रवचन ( भगवया ) भगवान महावीर ने ( सुकहियं ) अच्छी तरह कहा है 'जो कि' ( पेच्चाभाविकं ) परलोक में शुभ फलदायक ( आगमेसिभद्दं ) भविष्य में कल्याण का कारण ( सुद्धं ) शुद्ध ( नेयाउयं ) न्याययुक्त ( अकुडिलं ) कुटिलता रहित ( अणुत्तरं ) सर्व श्रेष्ठ और ( सव्वदुक्ख पावाण विउसवणं ) सब दुःख व पापों का उपशमन करने वाला है।

**मूल—"तस्स इमा पंच भावणाओ चउत्थयस्स होंति अबंभचेर वेरमण-परिरक्खणट्ठयाए, पढमं सयणासण-घर-दुवार-अंगण-आगास-गवक्ख-साल-अभिलोयण-पच्छवत्थुक-पसाहणक-ण्हाणिकावकासा अवकासा**

जे य वेसियाणं, अच्छंति य जत्थ इत्थिकामा, अभिक्खणं मोह दोस-रति राग वड्ढणीओ कहिंति य कहाओ बहुविहाओ, तेऽवि हु वज्जणिज्जा, इत्थि संसत्त-संकिलिट्ठा अन्नेवि य एवमादी अवकासा तेहु वज्जणिज्जा, जत्थ मणोविब्भमो वा, भंगो वा भंसणा (भंसणो) वा अट्ट रुद्दं च हुज्जज्झाणं तं तं वज्जेज्ज वज्जभीरू अणायतणं। अंत पंतवासी एवमसंसत्त-वास-वसही समितिजोगेण भावितो भवति अंतरप्पा आरतमण-विरय-गामधम्मे जिते दिए बंभचेर गुत्ते ॥ १ ॥

बितियं नारीजणस्स मज्झे न कहेयव्वा कहा, विचित्ता विब्बोय-विलास-संपउत्ता हास-सिंगार लोइयकहव्व मोहजणणी, न आवाह-विवाह-वरकहाविव इत्थीणं वा सुभग, दुभग कहा, चउसट्ठिं च महिला गुणा, न वण्ण-देस-जाति-कुल-रूव-नाम-नेवत्थ परिजणकहा (व्व) इत्थियाण अण्णाविय एवमादियाओ कहाओ सिंगार कलुणाओ तव-संजम बंभचेर-घातोवघातियाओ, अणुचरमाणेणं बंभचेरं न कहेयव्वा, न सुणेयव्वा, न चिंतेयव्वा। एवं इत्थी कह विरति समिति जोगेणं भावितो भवति अंतरप्पा आरत-मण-विरय गामधम्मे जितिंदिए बंभचेर गुत्ते ॥ २ ॥

ततीयं नारीण हसित भणितं चेट्ठिय विप्पेक्खित-गइ-विलास कीलियं, विब्बोतिय-नट्ट-गीत-वातिय-सरीर संठाण-वण्णकर-चरण-नयण-ला वण्ण रूव-जोव्वण-पयोहराधर-वत्थालंकार-भूसणाणि य गुज्झोवका सियाइं अण्णाणि य एवमादियाइं तव-संजम-बंभचेर-घातोवघातियाइं अणुचरमाणेणं बंभचेरं न चक्खुसा, न मणसा, न वयसा पत्थेयव्वाइं पाव कम्माइं। एवं इत्थीरूव विरति-समिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा आरतमण विरय गामधम्मे जितेंदिए बंभचेरगुत्ते ॥ ३ ॥

चउत्थं पुव्वरय-पुव्वकीलिय-पुव्व संगंथ-गंथ संथुया, जेते आवाह

विवाह-चोल्लकेसु य तिथि सुजन्ने सु उस्सवेसु य सिंगारागार-चारु वेसाहिं हाव- भाव-पललिय-विक्खेव-विलास -सालिणीहिं अणुकूल पेम्मिकाहिं सद्धिं अणुभूया सयण-संपओगा, उदुसुह-वरकुसुम सुरभिचंदण सुगंधि-वर वास-धूव-सुह फरिस-वत्थ-भूसणगुणोववेया, रमणिज्जा उज्जगेय पउर-नड नट्टक(ग)-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिक-वेलवग-कहग-पवग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंब वीणिय-तालायर-पकरणाणि य बहूणि महुर सर-गीत सुस्सराइं, अन्नाणि य एवमादियाणि-तव-संजम-बंभचेर-घातोवघातियाइं अणुचरमाणेणं बंभचेर न तातिं समणेण लब्भा दट्ठुं न कहेउं, नविसुमरिउं जे। एवं पुव्वरय-पुव्वकीलिय-विरति समिति -जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा आरयमण-विरत-गामधम्मे जि इंदिए बंभचेर गुत्ते ॥ ४॥

पंचमगं आहार-पणीय-निद्ध भोयण-विवज्जते, संजते सुसाहू, ववगय-खीर-दहि- सप्पि-नव नीय-तेल्ल-गुल-खंड -मच्छंडिक- महु-मज्ज-मंस-खज्जक-विगति-परिचत्तकयाहारे ण दप्पणं, न, बहुसो, न नितिकं, न सायसूपाहिकं, न खद्धं तहा भोत्तव्वं जह से जाया माता य भवति। नय भवति विब्भमो न भंसणा य धम्मस्स। एवं पणीयाहार विरति समिति जोगेण भावितो भवति अंतरप्पा आरयमण विरत गाम धम्मे जिइंदिए बंभचेर गुत्ते ५। एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सु-पणिहितं इमेहिं पंचहिवि कारणेहिं मण-वयण-कायपरिरक्खिएहिं णिच्चं आमरणंतं च एसो जोगो णेयव्वो, धितिमता (या) मतिमता(या)अणासवो, अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो, सुद्धो सव्व जिणमणुन्नातो, एवं चउत्थं संवरदारं फासियं पालित सोहितं तीरितं किट्टितं आणाए अणुपालियं भवति, एवं नायमुणिणा भगवया पन्नवियं परूवियं पसिद्धं

सिद्ध वर सासणमिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं चउत्थं संवरदारं समत्तं त्तिबेमि । सू०२ । २७ ।

छाया-तस्यैता पञ्चभावनाश्चतुर्थस्य भवन्ति, अब्रह्मचर्य विरमण परिरक्षणार्थाय । प्रथमं-शयनाऽऽसन-गृहद्वाराऽङ्गणाऽऽकाश- गवाक्ष- शालाऽभिलोकन पश्चाद्वास्तुक-प्रसाधक-स्नानिकाऽवकाशाः-अवकाशा, ये च वेश्यानामासते च यत्र स्त्रिय । अभीक्ष्णं मोह दोष रति रागवर्द्धिन्य कथयन्ति च कथा बहुविधा, तेऽपिहि वर्जनीया स्त्री संसक्त संक्लिष्टा अन्येऽपि चैवमादयोऽवकाशास्ते हि वर्जनीया । यत्र मनो-विभ्रमो वा भङ्गो वा भ्रंशो वा आर्त रौद्रञ्च भवद्ध्यानं तत्तद्वर्जयेत् वर्ज्य भीरु अनायतनमन्त प्रान्तवासी । एवमसंसक्त वास वसति समिति योगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा आरतमना विरतमामधर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्त ॥ १ ॥

द्वितीयं-नारी जनस्य मध्ये न कथनीया कथा, विचित्रा विब्बोक विलास-सम्प्रयुक्ता हास्यशृङ्गार लौकिककथेव मोहजननी, न आवाह-विवाह-वरकथेव स्त्रीणां वा सुभगदुर्भगकथा, चतुःषष्टिश्च महिला गुणा, न वर्ण-देश-जाति-कुल-रूप-नाम नेपथ्य परिजनकथा स्त्रीणामन्यापि च एवमादिका कथा शृङ्गार करुणा तप संयम-ब्रह्मचर्य घातोपघातिका अनुचरता ब्रह्मचर्य न कथनीया, न श्रोतव्या न चिन्तयितव्या । एवं स्त्री कथा-विरति-समितियोगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा आरत मनाविरतमामधर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्त ॥ २ ॥

तृतीयं-नारीणां हसितभणितं चेष्टित-विप्रेक्षित-गतिविलासक्रीडितम्, विब्बोकितनृत्यगीत-वादित्र-शरीर संस्थान-वर्ण-कर-चरण-नयन-लावण्य-रूप-यौवन पयोधराऽधर बस्त्रालङ्कार भूषणानि च गुह्यावकाशिकानि च यानि च एवमादिकानि तप संयमब्रह्मचर्य घातोपघातिकानि अनुचरता ब्रह्मचर्य न चक्षुषा न मनसा न वचसा प्रार्थयितव्यानि पापकर्माणि । एवं स्त्रीरूप विरति समितियोगेन भावितो भवति अन्तरात्मा आरतमनाविरत ग्रामधर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्त ॥ ३ ॥

चतुर्थं-पूर्वरत-पूर्वक्रीडित-पूर्वसम्बन्ध-ग्रन्थसंस्तुताः, ये ते-आवाह-विवाह-चौलकेषु च तिथिषु यज्ञेषु उत्सवेषु च शृङ्गाराऽऽगार चारुवेषाभिर्हावभाव प्रललित वि क्षेप विलास शालिनीभि अनुकूलप्रेमिकाभि सार्द्धमनुभूता शयनसम्प्रयोगा ऋतुसुख वर (कर) कुसुम-सुरभिचन्दन-सुगन्धिवर वास धूप सुखस्पर्श-वस्त्र-भूषण गुणोपपेता रमणीया आतोद्यगेयप्रचुर ( प्रयोग प्रचुर ) नट-नर्तक-जल्ल-मल्ल-मौष्टिक-विडम्बक

कथक-प्लवक-ला ( रा ) सकाऽऽख्यापक-लख-मल्ल-तूणइल्ल-तुम्बवीणिक-तालाचर-प्रकरणानि च बहूनि मधुरस्वर गीत सुस्वराणि-अन्यानिचैवमादिकानि तपःसंयम ब्रह्मचर्य-घातोपघातिकानि-अनुचरता ब्रह्मचर्ये न तानि श्रमणेन लभ्यानि द्रष्टुं, न कथयितुं, नापिस्मर्तुम् । एवं पूर्वरत-पूर्वक्रीडित-विरति समितियोगेन भावितो भवत्यन्तराऽऽत्मा आरतमना विरतग्रामधर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्त ॥ ४ ॥

पञ्चमकम्—आहार पानीय-स्निग्ध भोजनविवर्जक. संयत सुसाधुर्व्यपगत क्षीर-दधि-सर्पि-नवनीत-तैल-गुड़-खण्ड-मत्स्यण्डिक- मधु-मद्य -मांस- खाद्यक-विकृति परित्यक्त कृताऽऽहारो न दर्पणं , न बहुशो, न नैत्यिक, न शाक सूपाधिकं, न प्रभूत । तथा भोक्तव्यम् , यथा तस्य यात्रामात्रायभवति । न च भवति विभ्रमो न भ्रंशना च धर्मस्य । एवं प्रणीताऽऽहार-विरति समिति-योगेन भावितो भवत्यन्तरात्मा आरतमना विरतग्रामधर्मो जितेन्द्रियो ब्रह्मचर्यगुप्त ॥ ५ ॥

एवमिदं संवरस्य द्वारं सम्यग् संवृतं भवति सुप्रणिहितम् । एतै.पञ्चभिः कारणै मनोवचन कायपरिरक्षितैर्नित्यमामरणान्तं चैष योगो नेतव्यो धृतिमता मतिमताऽना स्रवोऽकलुषोऽच्छिद्रोऽपरिस्रावी असक्लिष्ट शुद्ध सर्वजिनाऽनुज्ञातः । एवं चतुर्थ संवरद्वारं स्पृष्टं पालितं शोधित तीर्णं कीर्तितम् आज्ञयाऽनुपालितं भवति । एवं ज्ञातमुनिना भगवता प्रज्ञप्त प्ररूपितं प्रसिद्ध सिद्धवर शासनमिदमाज्ञापितं सुदेशितं प्रशस्तम् । चतुर्थ संवरद्वारं समाप्तमिति ब्रवीमि ॥

अन्व०–"( तस्स ) उस ( चउत्थयस्स ) चतुर्थ ब्रह्मचर्य व्रत की ( इमा ) ये निम्नोक्त ( पंचभावणाओ ) पांच भावनायें ( अबंभचेर-वेरमण-परिरक्खणट्ठयाए ) अब्रह्मचर्य के निवृत्तिरूप व्रत की रक्षा के लिये ( होंति ) होती हैं।

( पढम ) प्रथम भावना-स्त्री युक्त आश्रय वर्जन रूप जैसे—( सयणासण-घर-दुवार- अंगण- आगास-गवक्ख-साल-अभिलोयण- पच्छवत्थुक-पसाहणकण्हाणिकावकासा-अवकासा ) शय्या, आसन-विस्तर, गृह द्वार, आंगन-घर का चौक आकाश ऊपर से खुला स्थान, गवाक्ष-जाली झरोखा, भांड आदि रखने की शाला, अभिलोकन-बैठकर देखने का ऊंचा स्थान, पश्चाद् गृह-पीछे का घर, प्रसाधन-शरीर के मंडन और स्नान करने के स्थान, स्त्री संसक्त त्यागने योग्य है ( जे य ) और जो ( वेसियाण अवकासा ) वेश्याओं के आश्रय स्थान हैं ( अच्छंति य जत्थ इत्थिकाओ ) और जहां स्त्रियां बैठती हैं ( अभिक्खणं ) और बार बार ( मोह दोस.

रति राग और वड्ढणीओ ) मोह-अज्ञान द्वेष रति-कामराग और स्नेह राग को बढ़ाने वाली ( बहुविहाओ कहाओ कहिंति ) बहुत प्रकार की कथाओं को कहती हैं ( ते विहुवज्जणिज्जा ) वे भी पूर्वोक्त शयनादि त्यागने योग्य हैं ( इत्थि संसत्त-संकिलिट्ठा ) स्त्री सम्बन्ध से व्याप्त-संक्लिष्ट ( अन्नवि य ) और दूसरे भी जो ( अवकासा ) स्थान ( एवमाई ) इस तरह के हैं (तेहुवज्जणिज्जा) वे इस प्रकार के स्थान वर्जनीय है ( जत्थ ) जहां ( मणो विब्भमो वा ) मन की भ्रान्ति अस्थिरता हो या ( भंगोवा ) ब्रह्मचर्य का भंग, अथवा ( भंसणोवा ) कुछ अंश में व्रत का भग हो तथा (अट्टरुद्द च) आर्त और रौद्र (दुष्प्रणिधान) ध्यान हो (तं त वज्जे ज्जवज्ज भीरु अणायतणं) उस उस अनायतन-अयोग्य स्थान का पाप भीरु त्याग करे ( अतपंत वासी ) साधु इन्द्रियों के प्रतिकूल स्थान में रहने वाला है। ( एवमसंसत्त वास वसही समिति जोगेण ) इस प्रकार स्त्रियों के सम्बन्ध रहित निवास वाली वसति के समिति-योग से ( भाविओ ) युक्त ( अतरप्पा ) अन्तःकरण वाला आरत मण-विरय गाम धम्मे ) ब्रह्मचर्य में मर्यादा से आसक्त मन वाला तथा विषय ग्रहण रूप इन्द्रिय स्वभाव से निवृत्ति वाला ( जितेंदिए ) जितेन्द्रिय ( बंभचेर गुत्ते ) ब्रह्मचर्य से गुप्त ( भवति होता है ॥ १ ॥

( बितियं ) दूसरी भावना-स्त्री कथा विवर्जन रूप जैसे—"( नारी जणस्स ) स्त्री जनों के (मज्झे) बीच में ( विचित्ता कहा न कहे यव्वा ) विचित्र प्रकार की कथा नहीं कहनी चाहिए, कैसी कथा ? ( बिब्बोय विलास-संपउत्ता ) बिब्बोक-स्त्रियों की कामुक चेष्टा, विलास-स्मित कटाक्ष आदिके वर्णनोंसे भरी हुई (हाससिंगार-लोइय-कहव्व) हास्य व शृंगार रस प्रधान लौकिक कथा की तरह ( मोहजणणी ) मोह को उत्पन्न करने वाली ( न आवाह विवाह वर कहा वि य ) द्विरागमन गौना व विवाह की कथा भी नहीं कहनी चाहिए ( इत्थीणं वा सुभग दुभग कहा ) अथवा स्त्रियों के सौभाग्य दुर्भाग्य की कथा भी तथा ( चउसट्ठिं च महिला गुणा ) स्त्रियों की चौंसठ कलायें और ( न वण्ण-देस-जाति-कुल-रूव-नाम-नेवत्थ-परिजण कहा ) स्त्रियों के वर्ण-रंगरूप, देश, जाति, कुल, रूप-सौंदर्य-पद्मिनी चित्रणी आदि भेद, वेष और परिजनों की कथा तथा ( अन्नाविय ) अन्य भी इस प्रकार की जो ( कहाओ सिंगार कलुणाओ ) कथायें शृङ्गार मार्दव से युक्त हो तथा ( तव संजम-बंभचेर-घातोव घातियाओ ) तप, संयम और ब्रह्मचर्य की घात उपघात करने वाली हैं ( बंभचेर

अणुचरमाणेण ) ब्रह्मचर्य के पालन करने वाले साधुओं को वैसी कथायें ( न कहे-यव्वा ) नहीं कहनी चाहिए ( न सुणेयव्वा ) न सुननी चाहिए ( न चिंतेयव्वा ) न चिन्तन करनी चाहिए ( एवं ) इस प्रकार ( इत्थी कह विरति-समिति जोगेण ) स्त्री कथा से विरतिरूप समिति के योग से ( भावितो अंतरप्पा ) युक्त अन्तःकरण वाला ( आरतमण विरतगामधम्मे ) ब्रह्मचर्य में लीन मन वाला, और स्त्री सम्भोग रूप इन्द्रिय विकार से दूर रहने वाला ( जितिंदिए ) जितेन्द्रिय ( बंभचेरगुत्ते ) ब्रह्म चर्य से गुप्त ( भवइ ) होता है ॥ २ ॥

( ततीयं ) तीसरी भावना-स्त्रीरूप दर्शन के निषेधरूप है, जैसे-( नारीण ) स्त्रियों के ( हसितभणियं ) हास्य और विकारयुक्त भाषण को तथा ( चेट्ठिय-विप्पे क्खिन-गइ-विलास-कीलियं ) हाथ आदि की चेष्टा, विप्रेक्षण- कटाक्षयुक्त देखना, गति-गज हंस के समान चलना तथा विलास और क्रीडा को ( विव्वोतिय-नट्ट-गीत-वातिय-शरीर सठाण-वन्न-कर-चरण नयण लावण्ण-रूव-जोव्वण-पयोहरा धर-वत्थालंकार-भूसणाणि य ) अनुकूल वस्तु मिलने पर अभिमान वश किया गया तिरस्कार भाव, नाट्य, नृत्य, गीत-गाना, वीणा आदि बजाना, शरीर का आकार और गौर श्याम आदि वर्ण हाथ पैर व आंखों का लावण्य-मनोहरपन, रूप, यौवन स्तन, अधर-नीचे के ओष्ठ, वस्त्र अलङ्कार और सौभाग्य चिन्ह भूत तिलक आदि भूषण इन सबको ( य ) और ( गुज्झोवकासियाइ ) गुह्य प्रदेशों को ( अन्नाणि य और अन्य प्रकार के स्त्री सम्बन्धी चेष्टा व अङ्गोपाङ्ग आदि जो ( तव-संजम-बंभ-चेर-घातोवघातियाइ ) तप, संयम और ब्रह्मचर्य के घातोपघात करने वाले हैं 'ऐसे विकारी भावों को' ( बंभचेरं अणुचरमाणेण ) ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने वालों को चाहिए कि ( न चक्खुसा न मनसा न वयसा) आखो से न देखें, मन से न सोचें, औरवचनों से न बोलें और (न पत्थेयव्वाइं पावकम्माइं) पाप युक्त कर्मों की प्रार्थना-इच्छा भी नहीं करें ( एवं ) इस प्रकार ( इत्थीरूव विरति समिति जोगेण ) स्त्रियों के रूप दर्शन की विरति-विरमण रूप समिति के योग से ( भावितो ) युक्त ( अंत-रप्पा ) अन्तःकरण वाला साधु ( आरत मण विरत गाम धम्मे ) ब्रह्मचर्य में लीन मन वाला और स्त्री संभोग से निवृति वाला ( जितिंदिए ) जितेन्द्रिय (बंभचेर गुत्ते) ब्रह्मचर्य से गुप्त ( भवति ) होता है ॥ ३ ॥

( चउत्थं ) चौथी भावना-कामोत्तेजक वस्तुओं के स्मरण दर्शन आदि का त्याग

रति राग और वड्ढणीओ ) मोह-अज्ञान द्वेष रति-कामराग और स्नेह राग को बढ़ाने वाली ( बहुविहाओ कहाओ कहिंति ) बहुत प्रकार की कथायें का कहती हैं ( ते विवज्जणिज्जा ) वे भी पूर्वोक्त शयनादि त्यागने योग्य हैं ( इत्थि संसत्त-संकिलिट्ठा ) स्त्री सम्बन्ध से व्याप्त-संक्लिष्ट ( अन्वित ) और दूसरे भी जो ( मयकासा ) स्थान ( एवमादी ) इस तरह के हैं (तेवुवज्जणिज्जा) वे इस प्रकार के स्थान वर्जनीय है (जत्थ) जहां (मणो विब्भमो वा) मन की भ्रान्ति अस्थिरता हो या ( भंगोवा ) ब्रह्मचर्य का भंग, अथवा ( भंसणोवा ) कुछ अंश में व्रत का भंग हो तथा (अट्टं रुद्दं च) आर्त और रौद्र (दुज्झाणं) ध्यान हो (तं तं वज्जे वज्जवज्ज भीरू अणायतनं) उस उस अनायतन-अयोग्य स्थान का पाप भीरु त्याग करे ( अंतपंत वासी ) साधु इन्द्रियों के प्रतिकूल स्थान में रहने वाला है। ( एवमसंसत्त वास वसही समिति जोगेण ) इस प्रकार स्त्रियों के सम्बन्ध रहित निवास वाली वसति के समिति-योग से ( भावितो ) युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तःकरण वाला आरत मण-विरय गाम धम्मे ) ब्रह्मचर्य में मर्यादा से आसक्त मन वाला तथा विषय ग्रहण रूप इन्द्रिय स्वभाव से निवृत्ति वाला ( जिंतेंदिए ) जितेन्द्रिय ( बम्भचेर गुत्तो ) ब्रह्मचर्य से गुप्त ( भवति होता है ॥ १ ॥

( बितियं ) दूसरी भावना-स्त्री कथा विवर्जन रूप जैसे—"( नारी जणस्स ) स्त्री जनों के (मज्झे) बीच म ( विचित्ता कहा न कहे यव्वा ) विचित्र प्रकार की कथा नहीं कहनी चाहिए, कैसी कथा ? ( बिब्बोय विलास-संपउत्ता ) बिब्बोक-स्त्रियों की कामुक चेष्टा, विलास-स्मित कटाक्ष आदिके वर्णनोंसे भरी हुई (हासर्सिगार-लोइय-कहव्व) हास्य व शृ गार रस प्रधान लौकिक कथा की तरह ( मोहजणणी ) मोह को उत्पन्न करने वाली ( न आवाह विवाह वर कहा वि व ) द्विरागमन-गौना व विवाह की कथा भी नहीं कहनी चाहिए ( इत्थीणं वा सुभग दुभग कहा ) अथवा स्त्रियों के सामान्य दुर्भाग्य की कथा भी तथा ( चउसट्ठिं च महिला गुणा ) स्त्रियों की चौंसठ कलायें और ( न वन्न-देस-जाति-कुल-रूव-नाम-नेवत्थ-परिजण कहा ) स्त्रियों के वर्ण-रंगरूप, देश जाति, कुल, रूप-सौन्दर्य-पद्मिनी चित्रणी आदि भेद, वस्त्र और परिजनों की कथा तथा ( अन्नाविय ) अन्य भी इस प्रकार की जो ( कहाओ सिंगार कलुणाओ ) कथायें शृङ्गार आदि से युक्त हो तथा ( तव संजम-बम्भचेर-घातोव घातियाओ ) तप, संयम और ब्रह्मचर्य की घात उपघात करने वाली हैं ( बंभचेरं

( न वहेउ ) कहने के योग्य भी नहीं हैं ( न वि सुमरिउं ) स्मरण करने के योग्य भी नहीं हैं ( एवं ) इस प्रकार ( पुव्वरय-पुव्वकीलिय-विरति-समिति जोगेण ) पूर्वरत, पूर्वक्रीडित-स्मरण विरतिरूप समिति के योग से ( भावितो ) युक्त ( अंतरप्पा ) अन्त करण वाला ( आरयमण-विरतगामधम्मे ) ब्रह्मचर्याराधन में लीन मन वाला और मैथुन से निवृत्त ( जिइंदिए ) जितेन्द्रिय,( बंभचेर गुत्ते ) ब्रह्मचर्य से गुप्त ( भवइ ) होता है ॥ ४ ॥

( पचमगं ) पांचवीं भावना-प्रणीत भोजन त्याग रूप, जैसे—( आहारपणीय-णिद्ध-भोयण विवज्जते ) प्रणीत भोजन-सरस आहार और स्निग्ध-चिकने भोजन का परिहार करने वाला ( सजते ) संयमी ( सुसाहू ) सुसाधु ( ववगय-खीर-दहि-सप्पि-नवनीय-तेल- गुल-खंड-मच्छंडिक- महुमज्ज-मस- खज्जक-विगतिपरिचत्त कयाहारे ) दूध दही, घी, मक्खन, तेल, गुड़, खांड, मच्छंडी-मीसरी, मधु, मद्य, मांस, खाद्यक-पक्वान्न और विगई के भोजन रहित आहार करने वाला ( ण दप्पणं ) दर्प कारक आहार नहीं 'खावे' ( न बहुसो न नितिकं ) दिन में बहुत वार नहीं 'खावे', लगातार नित्य नहीं 'खावे', ( न साय सूपाहिकं ) न दाल और सालनक-व्यञ्जन की अधिकता वाला ( न खद्ध ) और ज्यादा भी नहीं (तहा भोत्तव्वं) वैसे खाना चाहिए ( जहा ) जैसे ( से ) उस ब्रह्मचारी के ( जाया माता य ) व्रत निर्वाह मात्र के लिये ( भवति ) होवे । ऐसा आहार सेवन करने से ( न य भवति विब्भमो ) विभ्रम-मन की चंचलता नहीं होती ( नय भंसणा धम्मस्स ) ब्रह्मचर्य धर्म का नाश भी नहीं होता ( एवं ) इस प्रकार ( पणीयाहार-विरति-समिति जोगेण भावितो ) प्रणीताहार विरति रूप समिति के योग से युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तःकरण वाला ( आरयमण-विरत-गाम धम्मे ) ब्रह्मचर्याराधन में लीन मन वाला और मैथुन से निवृत्त अतएव ( जिइंदिए ) जितेन्द्रिय व ( बंभचेरगुत्ते ) ब्रह्मचर्य से गुप्त ( भवति ) होता है ॥ ५ ॥

( एवमिणं संवरस्स दारं ) इस प्रकार यह ब्रह्मव्रत रूप संवरद्वार ( सम्मं संवरियं ) अच्छी तरह संवरण किया गया ( सुप्परिरक्खियं ) सुरक्षित ( होइ ) होता है ( इमेहिं पंचहिं वि कारणेहिं मण वयण-काय परिरक्खिएहिं ) मन, वचन काय इन तीनों से सुरक्षित इन पूर्वोक्त पाच भावना रूप पाच कारणों से ( णिच्चं आमरणं तं ) सदा मरण पर्यन्त ( एसो जोगो ) यह योग-व्यवहार ( धितिमता मतिमता )

रूप, जैसे—( पुव्वरय-पुव्वकीलिय पुव्वसंगंथ-गंथसंथुया ) पहले के विषय भोग पूर्व क्रीडित-बचपन दशा के जूआ आदि खेल तथा पूर्व सम्बन्ध-गृहस्थ दशा के श्वसुर कुल सम्बन्धी शाले आदि और उनसे सम्बन्धित शाले की स्त्री आदि तथा पूर्व के परिचित ( जे ते ) जो ये लोग ( आवाह-विवाह-चोल्लकेसु ) द्विरागमन-गौना, विवाह, चूडा कर्म-प्रथम मुण्डन अर्थात् बालकों के शिखा धारण प्रसङ्ग में ( य ) और ( तिहिसु जन्नेसु उस्सवेसु य ) पर्वतिथियों में, यज्ञों-नागादि पूजाओं में व उत्सवों में ( सिंगारागार-चारु वेसाहिं ) शृङ्गार के घर की तरह सुन्दर वेश वाली ( हाव भाव-पललिय-विक्खेव-विलास सालिणीहिं ) हाव-मुख की चेष्टा, भाव-चित्त के अभिप्राय, प्रललित-लालित्य युक्त कटाक्ष विक्षेप और विलास स्थान आसन व नेत्र आदि की क्रिया का प्रयोग विशेष इन सब से शोभित होने वाली ( अणुकूल पेम्मिकाहिं ) अनुकूल प्रेम वाली ऐसी स्त्रियों के ( सद्धिं ) साथ ( अणु भूया सयण संपओगा ) अनुभव किये हुए जो शयन आदि विविध काम शास्त्रोक्त प्रयोग ( उउसुहवर कुसुम सुरभिचंदण सुगंधिवर वास-धूव-सुह फरिस-वत्थ-भूसण गुणोववेया ) ऋतु के अनुसार सुख वाले उत्तम फूलों की सुवास तथा श्रेष्ठ चन्दन की सुगन्धि, चूर्ण किये हुए अच्छे वासद्रव्य, धूप, सुखद स्पर्श वाले वस्त्र और भूषण इनके गुणों से युक्त ( रमणिज्ज ) रमणीय ( आउज्ज-गेय-पउर-नड-नट्टक जल्ल-मल्ल-मुट्ठिक-वेलंबग-कहग-पवग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंब वीणिय-तालायर-पकरणाणि य ) आतोद्य-वाद्य ध्वनि, गान, बहुत से नट तथा नर्तक-नाचने वाले, जल्ल-डोरी पर खेलने वाले, मल्ल-कुश्ती करने वाले व मौष्टिक मल्ल आदि, विडम्बक-विदूषक-विविध-परिहास कथा करने वाले, प्लवक-उछलने वाले, रासगान वाले, शुभाशुभ कहने वाले लम्बे-बड़े बांसपर खेलने वाले, मंख-चित्रमय पाटिया लेकर फिरने वाले, तूणइल्ल-तूण नामक वाद्य बजाने वाले, वीणा-वा तम्बूरा बजाने वाले और तालाचर इन सबकी क्रियाएं ( य ) और ( बहूणि महुर-सर-गीत-सुस्सराइं ) बहुत से मधुर ध्वनि वाले गायकों के गीत और सुन्दर स्वर ( अन्नाणि य ) और अन्य इस प्रकार के ( एवमादियाणि ) इत्यादि ( तव संजम-बंभचेर-घाओवघाइयाइं ) तप संयम तथा ब्रह्मचर्य का घात करने वाले कार्य ( अणुचरमाणेणं बंभचेरं ) ब्रह्मचर्य के पालन करने वाले ( समणेणं ) साधु को ( न लब्भा दट्ठुं ) कामोद्दीपन करने वाले ये सब पदार्थ देखने योग्य नहीं हैं

(न वदेउ) कहने के योग्य भी नहीं हैं (न वि सुमरिउं) स्मरण करने के योग्य भी नहीं हैं (एवं) इस प्रकार (पुव्वरय-पुव्वकीलिय-विरति-समिति जोगेण) पूर्वरत, पूर्वक्रीडित-स्मरण विरतिरूप समिति के योग से (भावितो) युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला (आरयमण-विरतगामधम्मे) ब्रह्मचर्याराधन में लीन मन वाला और मैथुन से निवृत्त (जिइंदिए) जितेन्द्रिय, (बंभचेर गुत्ते) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवइ) होता है ॥ ४ ॥

(पचमगं) पांचवीं भावना-प्रणीत भोजन त्याग रूप, जैसे—(आहारपणीय-णिद्ध-भोयण विवज्जते) प्रणीत भोजन-सरस आहार और स्निग्ध-चिकने भोजन का परिहार करने वाला (संजते) संयमी (सुसाहू) सुसाधु (ववगय-खीर-दहि-सप्पि-नवनीय-तेल- गुल-खंड-मच्छंडिक- महुमज्ज-मंस- खज्जक-विगतिपरिचत्त कयाहारे) दूध दही, घी, मक्खन, तेल, गुड, खांड, मच्छंडी-मीसरी, मधु, मद्य, मांस, खाद्यक-पक्वान्न और विगई के भोजन रहित आहार करने वाला (ण दप्पणं) दर्प कारक आहार नहीं 'खावे' (न बहुसो न नितिकं) दिन में बहुत बार नहीं 'खावे', लगातार नित्य नहीं 'खावे', (न साय सूपाहिकं) न दाल और सालनक-व्यञ्जन की अधिकता वाला (न खद्धं) और ज्यादा भी नहीं (तहा भोत्तव्वं) वैसे खाना चाहिए (जहा) जैसे (से) उस ब्रह्मचारी के (जाया माता य) प्रत निर्वाह मात्र के लिये (भवति) होवे। ऐसा आहार सेवन करने से (न य भवति विब्भमो) विभ्रम-मन की चंचलता नहीं होती (नय भंसणा धम्मस्स) ब्रह्मचर्य धर्म का नाश भी नहीं होता (एवं) इस प्रकार (पणीयाहार-विरति-समिति जोगेण भावितो) प्रणीताहार विरति रूप समिति के योग से युक्त (अंतरप्पा) अन्तःकरण वाला (आरयमण-विरत-गाम धम्मे) ब्रह्मचर्याराधन में लीन मन वाला और मैथुन से निवृत्त अतएव (जिइंदिए) जितेन्द्रिय व (बंभचेरगुत्ते) ब्रह्मचर्य से गुप्त (भवति) होता है ॥ ५ ॥

(एवमिणं संवरस्स दारं) इस प्रकार यह ब्रह्मव्रत रूप संवरद्वार (सम्मं संवरियं) अच्छी तरह संवरण किया गया (सुप्पणिहियं) सुरक्षित (होइ) होता है (इमेहि पंचहि वि कारणेहिं मण वयण-काय परिरक्खिएहिं) मन, वचन काय इन तीनों से सुरक्षित इन पूर्वोक्त पांच भावना रूप पाच कारणों से (णिच्चं आमरणं तं) सदा मरण पर्यन्त (एसो जोगो) यह योग-व्यवहार (धितिमता मतिमता)

धैर्यवान् व बुद्धिमान् साधुको ( णायव्वो ) समझना चाहिये। जो ( अणासवो ) आस्रव रहित ( अकलुसो ) मलिनता रहित ( अच्छिद्दो ) भावछिद्र रहित ( अप-रिस्सावी ) कर्म का आस्रवण नहीं करने वाला ( असंकिलिट्ठो ) सक्लेश रहित ( सुद्धो ) शुद्ध और ( सव्वजिणमणुन्नातो ) सब तीर्थङ्करों से अनुज्ञात है ( एव च उत्थं संवरदारं ) इस प्रकार चौथा संवरद्वार ( फासिय पालियं ) देह से स्पर्श किया गया पालन किया गया ( सोहित तीरिउ ) अतिचार-दोष-से शुद्ध किया हुआ और पूर्ण किया गया ( किट्टिय ) वचन से कीर्तित, ( आणाए अणुपालियं ) तीर्थङ्करों की आज्ञा के अनुसार अनुपालित ( भवति ) होता है ( एवं नायमुणिणा भग वया ) इस प्रकार ज्ञातमुनि भगवान् महावीर ने ( पन्नवियं कहा है ( परूवियं पसिद्धं ) युक्ति पूर्वक समझाया है प्रसिद्ध है ( सिद्धवर सासणमिणं ) प्रतिष्ठित सिद्ध आर्हन्तों का यह उत्तम शासन है ( आघवियं ) देव आदि के मानपात्र ( सुदेसितं पसत्थं ) अच्छी तरह तीर्थङ्करों से कहा गया और प्रशस्त है ( चउत्थं संवरदारं समत्तं ति बेमि ) चतुर्थ संवरद्वार पूर्ण हुआ ऐसा मैं कहता हूं ( सुधर्मा ) । २ । २७ ॥

भाव-ब्रह्मचर्य का महत्त्व इस प्रकार है-"यह पञ्चमहाव्रतों का मूल है। निर्मल चित्त वाले साधुओं से भावपूर्वक सेवन किया हुआ है। वैर विरोध का अन्त करने वाला और बड़े समुद्र की तरह दुस्तर है। तीर्थङ्करों ने इसका मार्ग अच्छी तरह दिखाया है। नरक तिर्यञ्च आदि दुर्गति से बचाने वाला, सब पवित्र अनुष्ठानों का सार और सिद्धिगति व वैमानिक गति के द्वार खोलने वाला है। देवेन्द्र और नरेन्द्रों से नमस्कार पाने योग्य जगत् के सब मङ्गलों में प्रधान और दुर्धर्ष है। शम दम आदि गुणों का अद्वितीय नायक एवं मोक्षमार्ग का भूषण है। १। इसके शुद्ध आचरण करने से प्रती यथार्थ ब्राह्मण श्रमण और सुसाधु होता है। ऋषि, मुनि, संयमी और भिक्षु वही है जो शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करता है। ब्रह्मचर्य की साधना में निम्न कार्य वर्जनीय है। रसे-काम राग आदि बढ़ाने वाला निस्सार प्रमाद, तथा संयम को शिथिल करने वाले सदोष व्यवहार निषिद्ध है। पीठी, तेलमर्दन, और हाथ पैर मुंह व शिर आदि को बार बार धोना, मर्दन करना, अङ्गों को दबाना, विलेपन करना, सुगन्धिचूर्ण से शरीर को सुवासित करना, और धूप देना वर्ज्य है। शरीर की सजावट, हास्य, विकारयुक्त वचन, और नृत्य गीत वाद्य आदि

जो इन्द्रियपोषक प्रसङ्ग हैं और अन्य भी ऐसे शृङ्गार रसके घरके समान तप संयम और ब्रह्मचर्य का घात करने वाले हैं ब्रह्मचारियों को उन सबों का त्याग करना चाहिए। नीचे के इन तप नियमादि योगों से सदा आत्मा को युक्त रखना चाहिए। जैसे-१ स्नान व दन्त मंजन नहीं करना, स्वेद आदि को धारण करना, २ मौनव्रत और ३ केश का लुञ्चन करना, ४ वस्त्र के अभाव में या उनकी अल्पता में तथा भूख, प्यास, ठंडी गर्मी में सहिष्णुता व जितेन्द्रिय होना ५ काष्ठशय्या, भूमिशय्या। ६ भिक्षा आदि के हेतु घरों में जाने पर लाभ अलाभ या मान अपमान आदि कुछ भी हो तथा डांश मच्छर आदि का प्रतिकूल स्पर्श सहन करना चाहिये। और तप नियम विनय आदि गुणों से आत्मा को पवित्र करना चाहिए। इस प्रकार-उसका ब्रह्मचर्य स्थिर हो जाता है। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये प्रभु महावीर ने यह अच्छा प्रवचन कहा है, जो परलोक में सुखदायी यावत् सब दुःख और पापों का शमनकर ने वाला है। इस चतुर्थ व्रत की रक्षा के लिये पांच भावनायें होती हैं-जैसे-१ स्त्री सम्बन्ध रहित वसति का सेवन करे। स्त्री सम्बन्ध से सक्लेश युक्त शय्या, आसन, और घर द्वार आदि सब स्थान और जो वेश्याओं के स्थान हैं तथा जहां स्त्रियां रहती और मोह राग आदि दुर्भाव बढाने वाली अनेक प्रकार की कथायें वारंवार कहती हैं, ऐसे ही स्त्रियों के विशेष सम्बन्ध वाले अन्य स्थान भी वर्जनीय हैं। जहां मनकी स्थिरता या व्रत का भङ्ग हो, अथवा इष्ट वस्तु मिलाने और अनिष्ट निवारण की चिन्तारूप आर्त ध्यान व रौद्रध्यान हो। साधारण या इन्द्रियों के प्रतिकूल स्थान में रहने वाला पाप भीरु साधु पूर्वोक्त स्थानों का त्याग करे।

२-स्त्री कथा त्यागरूप दूसरी भावना-व्रतों को स्त्रियों के बीच विचित्र प्रकार की कथा नहीं करनी चाहिए। जो कथा हास्य और शृङ्गाररस प्रधान लौकिक कथा की तरह बिब्बोक विलासयुक्त हो। आवाह और विवाह कथा की तरह मोह उत्पन्न करने वाली, तथा स्त्रियों के अच्छे बुरे भाग्य का वर्णन करने वाली हो और स्त्रियों की चौंसठ कलाओं के परिचयरूप या उनके रङ्ग रूप देश जाति और वेश आदि के वर्णन करने वाली हों। ऐसी अन्य भी जो शृङ्गाररस से भरी हुई और संयम की घातक हैं ब्रह्मचारी को वैसी कथायें न कहनी चाहिए, और न श्रवण व चिन्तन ही करना चाहिए।

**३-रूप दर्शन विरति रूप तीसरी भावना-स्त्रियों का हंसना, विकार युक्त बोलना**

चेष्टा, कटाक्ष आदि क्रियायें और शरीर के अङ्गोपाङ्ग व आकार तथा वस्त्रालंकार आदि वेष भूषा और गोप्य अङ्ग ऐसे अन्य भी ब्रह्मचारी को नहीं देखना चाहिए, न मन में इनका विचार करना चाहिए और न इन निन्दित कार्यों की प्रार्थना ही करनी चाहिए। क्योंकि इनके दर्शन स्मरण तप संयम के घातक हैं।

४-पूर्व क्रीडित भोग आदि के स्मरण का त्यागरूप चौथी भावना पूर्वजीवन की रति क्रीडा और द्यूत के जो विविध सम्बन्धी हैं तथा विवाह आदि विविध प्रसङ्गों पर सुन्दरी और प्रेमवती स्त्रियों के साथ जो संभोग आदि अनुभव किये हैं। ऋतु के अनुकूल सुख वसन फूल आदि सुगन्धि और स्पर्श आदि अन्य गुण युक्त, वाद्य आदि के कई रमणीय साधन और गवैयों के मधुर गीत तथा ऐसे अन्य प्रसङ्ग जो तप संयम के घातक हैं, ब्रह्मचारी को उनका वर्णन करना, देखना और स्मरण करना योग्य नहीं है।

५-प्रणीत भोजन त्याग रूप पाँचवीं भावना-संयमी सुसाधु सरस एवं स्निग्ध भोजन का त्यागी होता है। जो दूध दही घी आदि विकृति कारक पदार्थों का आहार नहीं करने वाला है। भोजन के विशेष नियम-काम वर्द्धक आहार नहीं करना १ एक दिन में बहुतवार नहीं खाना २ प्रतिदिन लगातार नहीं खाना ३, शाक व दाल की अधिकता वाला भोजन भी नहीं करना, ४ मर्यादा से ज्यादा भी भोजन नहीं करना ५

सारांश-इस प्रकार खाना चाहिए जिससे व्रतीकी संयम यात्रा निर्बाध चलती रहे। ऐसा करने से मनकी अस्थिरता और व्रतका भङ्ग नहीं होता। इस प्रकार प्रणीताहार विरति से युक्त अन्तःकरण वाला साधु ब्रह्मचर्य में लीन तथा मैथुन से निवृत्त होता है। अतएव जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य गुप्त रहता है। ५। इस प्रकार संवर का यह चतुर्थद्वार सम्यक् संवरण किया हुआ सुरक्षित रहता है। मन, वाणी और कायस सुरक्षित इन पाँच कारणों से सदा मरण पर्यन्त यह योग धीर बुद्धिमान् को निभाना चाहिए। यह आस्रव रहित यावत् सब तीर्थङ्करों से अनुज्ञात है। इस प्रकार चौथा संवर द्वार स्पर्शन किया गया यावत् तीर्थङ्करों की आज्ञा से पालित होता है। इस प्रकार ज्ञात मुनि भगवान महावीर ने इसे कहा है। यह अर्हन्तों का शासन यावत् उत्तम है॥ चौथा संवर द्वार-पूर्ण हुआ।

## ॐ समाप्तं चतुर्थ संवरद्वारम् ॐ

● पञ्चमं सान्वयार्थं भावार्थम् ●

# पञ्चम संवरद्वारम्

सम्बन्ध-पूर्व अध्ययनमें मैथुन विरमण रूप चतुर्थव्रतका वर्णन किया। वह परिग्रह से निवृत्त होने पर ही शुभ होता है। इसलिये अब सूत्र क्रमसे सम्बन्धित अपरिग्रह व्रतका इस अध्ययनमें वर्णन करते हैं। उसका पहला सूत्र निम्न लिखित है-,,

मूल-"जंबू! अपरिग्गह संवुडे य समणे आरंभ परिग्गहातो विरते, विरते कोहमाण माया लोभा। एगे असंजमे, दो चेव राग दोसा, तिन्नि य दंडगारवाय गुत्तीओ, तिन्नि, तिन्नि य विराहणाओ, चत्तारि कसाया, भाण-सन्ना-विकहा-तहा य हुंति चउरो, । पंच य किरियाओ, समिति -इंदिय-महव्वयाइंच। छज्जीव निकाया। छच लेसाओ, सत्त भया, अट्ठ य मया, नव चेव य बंभचेर य गुत्ती। दसप्पकारे य समण धम्मे। एकारस य उवासकाणं, । बारस य भिक्खु पडिमा। किरियठाणा १३, य भूयगामा, १४, परमा धम्मिया १५, गाहासोलस या असंजम १७, अबंभ-१८, णाय-१९, असमाहिठाणा, २०, सवला, २१, परिसहा, २२, सूयगड २३, उज्झयण-देव-२४, भावण २५, उद्देस-२६, गुण-२७, पकप्प-२८, पावसुत -२९, मोहणिज्जे, ३०, सिद्धातिगुणा ३१, य, जोगसंगहे, ३२, तित्तीसा ३३, आसातणा, । सुरिंदा आदिं एकातियं करेत्ता एक्कुत्तरियाए वड्ढिए (वुड्ढी) तीसातो जाव उ भवे, तिकाहिका विरती पणिहीसु, अविरती सु य एवमादिसु बहुसु ठाणेसु जिणपसत्थेसु अवितहेसु सासयभावेसु अवट्ठि एसु संकं कंख निराकरेत्ता सद्दहते, सासणं भगवतो अणियाणे अगार वे अलुद्धे अमूढ मण वयण काय गुत्ते॥ सूत्र १। २८॥

छाया-"हे जम्बू ! अपरिग्रहसंवृतश्च श्रमण आरम्भपरिग्रहाद्विरतो, विरतः क्रोध मान माया लोभात् । एकोऽसंयमः, द्वौ च रागद्वेषौ, त्रीणि च दण्ड गौरवाणि । तिस्रो गुप्तयः, तिस्रश्च विराधनाः । चत्वारः कषायाः, ध्यान-संज्ञा-विकथास्तथा भवन्ति चत्वारः । पञ्च च क्रियाः समितीन्द्रिय-महाव्रतानि च । षड् जीवनिकायाः षड् लेश्याः । सप्तभयानि, अष्टौ च मदाः नव चैव ब्रह्मगुप्तयः । दशप्रकारश्च श्रमण धर्मः । एकादश चोपासकानाम् । द्वादश च भिक्षुप्रतिमाः । क्रियास्थानानि च । भूतग्रामाः, परमाधार्मिकाः, गाथा षोडशकानि । असंयमाऽब्रह्म-ज्ञाताऽसमाधि स्थानानि । शबलाः परीषहाः सूत्रकृताऽध्ययनानि । देव-भावना-देश-गुण-प्रकल्प-पापश्रुत-मोहनीयानि । सिद्धातिगुणाश्च योग संग्रहाः । त्रयस्त्रिंशदाशातनाः । सुरेन्द्रादिका एकादिकां कृत्वा एकोत्तरिकया वृद्ध्या त्रिंशत्पर्यन्तं भवेत् त्रिकाधिका । विरति प्रणिधिषु च अविरतिषु चैवमादिषु, बहुषु स्थानेषु जिनप्रशस्तेषु अवितथेषु शाश्वतभावेषु अवस्थितेषु शङ्कांकांक्षां निराकृत्य श्रद्धत्ते, शासनं भगवतोऽनिदानोऽगौरवोऽलुब्धोऽमूढो मनोवचन कायगुप्तः । सू० १ । २८॥

अन्व०-"( जंबू ) हे जम्बू ( अपरिग्गह संवुडे ) मूर्च्छा रहित और इन्द्रिय व कषाय के संवरण वाला, फिर प्रथम ? आदि गुण युक्त तथा ( आरम-परिग्गहाओ ) आरम्भ-हिंसा व बाह्य आभ्यन्तर परिग्रह से ( विरते ) अलग है ( समणे विरते कोह माण माया लोभा ) और जो साधु क्रोध मान माया एवं लोभ से निवृत्त है । ( एगे असंजमे ) अविरति रूप असंयम एक है ( दो चेव राग दोसा ) और राग द्वेष रूप दो ही बन्धन हैं ( तिन्नि य दंड गारवा ) और तीन दण्ड और तीन गारव हैं ( य ) और ( गुत्तीओ तिन्नि ) तीन गुप्तियाँ ( तिन्नि य विराहणाओ ) और तीन विराधनायें हैं ( चत्तारि कसाया ) चार कषाय-क्रोध आदि ( झाण-सण्णा ) ध्यान, संज्ञा ( विकहा तहा य हुंति चउरो ) और वैसी ही विकथायें चार चार हैं ( पंच य किरियाओ ) कायिकी आदि पांच क्रियाएं ( समिति-इंदिय-महव्वयाइं ) और समितियाँ इन्द्रिय व महाव्रत भी पांच ही हैं ( य ) और ( छज्जीवनिकाया ) पृथ्वी काय आदि जीव निकाय छः हैं ( छच्च लेस्साओ ) लेश्यायें भी छः हैं ( सत्त भया ) सात भय ( अट्ठ य मया ) और आठ मद स्थान ( नव चेव य बंभचेर गुत्ती ) फिर नव ही ब्रह्मचर्यव्रत की गुप्तियाँ हैं ( दसप्पकारे य समणधम्मे ) और दश प्रकार का श्रमणधर्म ( एक्कारस य उवासकाणं ) फिर ग्यारह श्रावकों की प्रतिमा

और ( बारस य भिक्खुपडिमा ) बारह साधुकी पडिमा–अभिग्रह विशेष हैं ( किरिय ठाणा ) क्रिया स्थान तेरह हैं, फिर ( भूयगामा ) जीवों के १४ भेद ( परमाधम्मिया) परमाधार्मिक ( गाहासोलसया ) सूत्र कृताङ्ग प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ अध्ययन ( असंजम–अबंभ–णाय–असमाहिठाणा, सबला ) १७ प्रकार के असंयम, अब्रह्म–१८ प्रकार का मैथुन, ज्ञात–ज्ञाताप्रथमश्रुतस्कन्ध के १९ अध्ययन, असमाधि–२० असमाधि स्थान, शबल दोष–२१ प्रकार के शबल दोष है ( परीसहा ) परीषह–क्षुधा आदि २२ परीषह ( सूयगडज्झयणा–देव–भावणा–उद्देस–गुण–पकप्प–पावसुत–मोहणिज्जे ) सूत्र कृताध्ययन सूत्रकृताङ्ग के २३ अध्ययन, देव–२४ प्रकार के देव, भावना–पाच महाव्रतों की पच्चीस भावनायें, उद्देश–२६ उद्देशन काल, गुण–मुनिवर के २७ गुण, प्रकल्प–२८ आचारप्रकल्प, पापश्रुत–२९ पापश्रुत और मोहनीय–३० मोहनीय स्थान ( सिद्धातिगुणा ) सिद्धाति गुण–सिद्धों के ३१ अतिशय गुण ( य ) और ( जोग संगहे ) योग सग्रह–बत्तीस योगसंग्रह ( तित्तीसा आसातणा ) और तेंतीस अशातनायें, ( सुरिंदा आदिं, एक्कातियं करेत्ता एक्कुत्तरियाए वड्डिए ) सुरेन्द्र आदि को एक आदि सख्या युक्त करके फिर उत्तरोत्तर एक एक की वृद्धि से ( तीसा तो जाव उ भवेतिकाहिका ) यावत् तीन अधिक तीस याने तेंतीस–होते हैं, इन सब में तथा ( विरती पणिहीसु अविरती सु ) विरति–प्राणातिपातादि से विरति तथा चित्त की विशिष्ट–एकाग्रता में व अविरति और ( एव मादिसु बहूसु ठाणेसु ) इस प्रकार के बहुत से स्थानो में जो ( जिण–पसत्थेसु अवितहेसु सासय–भावेसु अवट्ठिए सु ) तीर्थङ्करों के शासित, सत्य और शाश्वत–नित्यभाव अवस्थित–सदा समान रहने वाले हैं, उनमें ( सक कख निरा करेत्ता ) शङ्का–संशय और अन्यमत ग्रहण रूप काचा को हटाकर ( भगवतो सासण सद्दहते ) वह साधु भगवान के शासन की श्रद्धा करता है ( अणियाणे ) ऋद्धि प्रार्थनादि निदान रहित ( अगारवे ) ऋद्धि आदि तीन गारव रहित ( अलुद्धे ) लोभ रहित ( अमूढ–मण–वयण–काय–गुत्ते ) मूर्खता शून्य और मन वचन व शरीर से गुप्त है ॥ १ । २८ ॥

भावा०–अपरिग्रह के कारण और संवर युक्त साधु आरम्भ परिग्रह से निवृत्त तथा क्रोध, मान, माया, व लोभ से अलग रहता है, एक प्रकार का असंयम राग द्वेष रूप दो वन्धन और मनोदण्ड आदि तीन दण्ड, ऋद्धि,रस, एवं सातारूप तीन गारव और मनोगुप्ति वगैरह तीन गुप्ति तथा ज्ञान विराधना आदि तीन विराधना, क्रोध

आदि चार कषाय, चार ध्यान, चार संज्ञा तथा चार ही विकथा होती है, कायिकी आदि पांच क्रियायें, ईर्यादि पांच समिति और श्रोत्रेन्द्रिय आदि पांच इन्द्रियां व अहिंसा आदि पांच महाव्रत हैं और पृथ्वी आदि छः जीव समूह और कृष्णनील आदि छः लेश्यायें यावत् तेंतीस अशातनायें बत्तीस या चौंसठ देवेन्द्र हैं (विशेष परिचय टिप्पण में देखें) एक आदि संख्या को प्रथम करके एक एक की आगे वृद्धि से यावत् तेंतीस होते हैं ऐसे अन्य भी चौतीस आदि के बहुत से स्थान हैं, जिन प्रदर्शित सत्य शाश्वत और नित्य एक रूप रहने वाले इन भावों में तथा विरति आदि में गुरु सेवा आदि से शंका कथा को दूर कर वह प्रभु के शासन पर पूर्ण श्रद्धा करता है, निदान, गारव और लोभादि रहित मुनि मन वचन शरीर से गुप्त होता है॥ १। २८॥

अपरिग्रह व्रती साधु का स्वरूप कहा अब प्रस्तुत अध्ययन के विषय मूल अपरिग्रह को कहते हैं—

मूल—" जो सो वीर वर—वयण—विरति—पवित्थर—बहु विहप्पकारो सम्मत्त—विसुद्ध मूलो धितिकंदो विणयवेतितो निग्गत—तिलोकर—विपुल जस निविड—पीण—पवर—सुजातखंधो, पंचमहव्वय-विसालसालो, भावणतयंत ज्झाण—सुभजोग—नाण पल्लव—वरंकुरधरो, बहुगुणकुसुमसमिद्धो, सील—सुगंधो अणण्हव—फलो, पुणोय मोक्खवर बीजसारो, । मंदरगिरि सिहर चूलिका इव इमस्स मोक्खवर—मुक्तिमग्गस्स सिहरभूओ संवर वर पादवो चरिमं संवरदारं । जत्थ न कप्पइ गामागर—नगर—खेड—कब्बड—मडंब—दोण—मुह—पट्टणासमगयं च किंचि अप्पं व बहुं व अणुं व थूलंव तस थावर काय—दव्वजायं मणसावि परिघेत्तु । ण हिरण्ण—सुवण्ण—खेत वत्थु, न दासी—दास—भयक—पेस—हय—गय—गवेलगं वा (च,) न जाण—जुग्ग सयणासणाइ, ण छत्तक—न कुंडिया, न उवाणहा, न पेहुण—वीयण—तालियंटका, ण यावि अय—तउय—तंब—सीसक—कंस—रयत—जातरूव—मणि—मुत्ता धार पुडक—संख—दंत—मणि—सिंग—सेल—कायवर—चेल चम्म पत्ताई महरिहाई परस्स अज्झोववाय—लोभजणणाई परियड्ढेउं, गुणवओ न

यावि पुप्फ–फल–कंद–मूलादियाइं सणसत्तरसाइं सव्वधन्नाइं तिहिवि जोगेहिं परिघेत्तुं । ओसह–भेसज्जभोयणट्ठयाए संजए णं । किं कारणं ! अपरिमितणाणदंसणधरेहिं सील–गुण–विणय–तव–संजम नायकेहिं तित्थयरेहिं सव्वजगजीव–वच्छलेहि तिलोयमहिएहिं जिणवरिंदेहिं एसजोणी जंगमाणं दिट्ठान कप्पइ जोणिसमुच्छेदोत्ति, तेण वज्जंति समणसीहा । जंपिय ओदण–कुम्मासगंज–तप्पण–मंथु–भुजिय–पलल–सूप–सक्कुलि–वेढिम–वर सरक–चुन्न–कोसगपिंड–सिहरिणि–वट्ट–मोयग–खीर–दहि–सप्पि–नवनीत तेल्ल–गुल–खंड–मच्छंडिय–मधु–मज्ज–मंस– खज्जक– वंजण विधिमादिकं, पणीयं उवस्सए, परघरे व रन्ने न कप्पति तंपि सन्निहिं काउं सुविहियाणं जंपि य उद्दिट्ठ–ठविय रचियग–पज्जवजातं, पकिएण–पाउकरण–पामिच्चं, मीसकजायं, कीयकडपाहुडं च दाणट्ठ–पुन्नपगडं, समण–वणीमगट्ठयाए व कयं, पच्छाकम्मं पुरेकम्मं, निच्च कम्मं, मक्खियं, अतिरित्तं, मोहरं चेव सयग्गहमाहडं, मट्टिउवलित्तं, अच्छेज्जं चेव अणीसट्ठं जंतं तिहीसु जन्नेसु ऊसवेसु य अंतो व बहिं व होज्ज-समणट्ठयाए ठवियं, हिंसा सा वज्ज–संपउत्तं न कप्पति तंपि य परिघेत्तुं ।

छाया–"योऽसौ वीरवर–वचन–विरति–प्रविस्तर–बहुविधप्रकारः सम्यक्त्व–विशुद्धमूलो धृतिकन्दो विनय-वेदिक स्त्रैलोक्य-निर्गत-विपुलयशो निबिड–पीन–प्रवर सुजातस्कन्धः पञ्चमहाव्रत–विशालशालो भावना– त्वगन्तर्ध्यान–शुभयोग– ज्ञान पल्लव–वराङ्कुरधरो बहुगुण–कुसुमसमृद्ध. शीलसुगन्धि –अनास्रव फलः पुनश्च मोक्षवर बीजसारो, मन्दरगिरि–शिखर चूलिक इवास्य मोक्षवर–मुक्तिमार्गस्य शिखरभूतः संवर वरपादपः चरमं संवरद्वारम् । यत्र न कल्पते ग्रामाकर–नगर–खेड–कर्वट–मडम्ब द्रोणमुख–पट्टनाऽऽश्रमगतञ्च किञ्चिदल्पंवा बहुवा, अणुवा स्थूलंवा, त्रस स्थावर काय द्रव्यजातं मनसापि परिग्रहीतुम् । न हिरण्य सुवर्ण क्षेत्रवस्तु, न दासी–दास भृतक–प्रेष्य–हय–गज–गवेलकञ्च, न यान–युग्य–शयनादि, न छत्रकं, न कुण्डिका, नोपानही, न मयूरपिच्छ–व्यजन–तालवृन्तकं न त्राप्ययस्त्रपुक–ताम्र–सीसक–कांस्य

रजत-जातरूप-मणि-मुक्ताऽऽधार पुटक-शङ्ख-दन्त-मणि-शृङ्ग-शैल-काचवर-चेल चर्म पात्राणि महार्हाणि परस्याध्युपपात-लोभजननानि परिकर्षयितुं गुणवतः। न चापि पुष्प-फल-कन्द-मूलादिकानि सन-सप्त-दशकानि सर्वधान्यानि, त्रिभिरपि योगैः परिग्रहीतुम्। औषध-भैषज्य-भोजनार्थं संयतेन ( यतस्य )। किं कारणम्? अपरिमित-ज्ञानदर्शन धरैः शील-गुण-विनय-तप संयमनायकैः तीर्थकरैः सर्वजगज्जीववत्सलैः त्रिलोकमहितैः जिनवरेन्द्रैः। एषा योनिर्जङ्गमानां दृष्टा, न कल्पते योनिसमुच्छेद इति तेन वर्जयन्ति श्रमणसिंहाः। यदपि च ओदन कुल्माष-गंज-( भोज्य विशेष )-तर्पण-( सक्तु )-मन्थु-( बदरादिचूर्ण )-भर्जित-तिल पुष्पपिष्ट सूप-शष्कुली-वेष्टिम-वर सरक-चूर्ण-कोशकपिण्ड शिखरिणी-वट्टक-( घनतीमन ) मोदक-क्षीर-दधि-सर्पिर्नवनीत-तैल-गुड-खण्ड- मत्स्यण्डिका- मधु- मद्य-मांस-खाद्यक-व्यञ्जन-विध्यादिकं प्रणीतमुपाश्रये परगृहेऽरण्ये वा न कल्पते तदपि सन्निधीकर्तुं सुविहितानाम्। यदपि चोद्दिष्ट-स्थापित-रचितक-पर्यवजातं प्रकीर्णप्रादुष्करणाऽपमित्यं, मिश्रकजातं, क्रीतकृत-प्राभृतकं, दानार्थ-पुण्यप्रकृतं, श्रमण-वनीपकार्थं वा कृतं, पश्चात्कर्म,पुरः कर्म, नित्यकर्म, म्रक्षितम्, अतिरिक्तं, मौखरं चैव, स्वयंग्राहम् आहृतम्, मृत्तिकोपलिप्तम्, आच्छेद्यं चैव, अनिसृष्टं यत्तत् तिथिषु यज्ञेषु उत्सवेषु अन्तर्वा बहिर्वा भवेच्छ्रमणार्थं स्थापितं-हिंसा सावद्य-सम्प्रयुक्तं न कल्पते तदपि परिग्रहीतुम्।

अन्व० ( जो ) अपरिग्रह ( वीरवर-वयण-विरति-पविस्तर-बहुविहप्पकारो ) श्रीमहावीर के वचन से की हुई परिग्रह-निवृत्ति के विस्तार से जो वृक्ष अनेक प्रकार का है ( सम्मत्त-विसुद्धमूलो ) सम्यक्त्व रूप निर्दोष मूल वाला ( धिति-कन्दो ) चित्त की स्वस्थता ही जिसका कन्द ( विणयवेइओ ) विनय रूप चारों ओर वेदिका वाला ( तिलोक्क-विपुल-जस-निचिय-पीण-पवर-सुजात खंधो ) तीनों लोक में फैला हुआ विस्तीर्ण यश रूप सघन मोटा और लम्बाई युक्त बड़े स्कन्ध वाला ( पंच महव्वय-विसालसालो ) पांच महाव्रत रूपी विशाल शाखा-डाल वाला (भावणा-तयंत-ज्झाण-सुभजोग-नाणपल्लव-वरंकुर धरो) अनित्यता आदि भावना रूप त्वचा और धर्म ध्यान व शुभ योग तथा ज्ञान रूप प्रधान पल्लव के अंकुरों को धारण करने वाला (बहुगुण-कुसुमसमिद्धो) बहुत से उत्तर गुण रूप फूलों से समृद्ध-भर पूर (सील-सुगंधो) शील की सुगंध वाला [इस लोकके फलोंकी अपेक्षा रहित सत्य

[ले ही जहां सुगन्ध है। ] (अणण्हवफलो) अनास्रव रूप फल वाला (पुणो य) और
[प]र 'मोक्खवर-बीजसारो) मोक्ष रूप उत्तम बीज के सार वाला (मंदर गिरि-सिहर
[चू]लिका इव ) मेरु पर्वत के शिखर पर चूलिका की तरह जो (इमस्स मोक्खवर
[मु]त्तिमग्गस्स ) इस कर्म क्षय रूप प्रधान मोक्ष के निर्लोभता रूप मार्ग का (सिहर
[भू]ओ ) शिखर रूप है ( संवर वर पादपो ) अपरिग्रह रूप उत्तम संवर वृक्ष ( सो )
[य]ह ( चरिम संवरदारं ) अन्तिम संवरद्वार है ( जत्थ ) जहां ( गामा गर-नगर-खेड
[क]व्वड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासमगयं ) ग्राम, आकर, नगर, खेड, कर्बट, मडंब,
[द्र]ोणमुख, पत्तन और आश्रम में पड़ा हुआ, (किंचि ) कोई पदार्थ ( अप्प व बहु व )
मूल्य से अल्प हो या बहुत ( अणुं व थूलव ) प्रमाण से छोटा हो या बडा ( तस
थावर-काय-दव्व जायं ) त्रस-शंख आदि, स्थावर-रत्न आदि काय के द्रव्य समूह
को ( न कप्पइ मणसावि परिवेत्तु ) मन से भी ग्रहण करना नहीं कल्पता ( न हिरण्ण
सुवण्ण-खेत्त-वत्थु ) चांदी सोना क्षेत्र और वास्तु-गृह भी ग्रहण करना नहीं
कल्पता ( न दासी-दास-भयक-पेस-हय-गय-गवेलगच ) दासी, दास, भृत्य-नियत
वृत्ति पाने वाला सेवक, प्रेष्य सदेश ले जाने वाला दास, घोडा, हाथी और बैल आदि
ग्रहण करना भी नहीं कल्पता है ( न जाण-जुग्ग-सयणाइ ण छत्तक ) यान-रथ
आदि, युग्ग-डोली, शयन आदि और छत्र का ग्रहण करना भी नहीं कल्पता है
( न कुडिया न उवाणहा ) न कमण्डलु, न जूता ( न पेहुण-वीयण-तालियंटका )
पेहुण-मोरपिच्छी, बास आदि का बीजना और तालवृन्त-तालपत्र के पंखे इनका
ग्रहण करना भी नहीं कल्पता है ( न यावि अय-तउय-तंब-सीसक कंस-रयत-जात
रूव-मणि-मुत्ताऽऽधारपुडक-संख-दंत-मणि-सिंग-सेल-कायवर चेल चम्म पत्ताइं
महरिहाइ ) और लोह, त्रपु-वंग, ताम्र, सीसा, कांस्य, चांदी, सोना, मणि और
मोती का आधार-शुक्ति पुट, शंख, दन्तमणि-प्रधान दांत, शृङ्ग-सींग, पाषाण,
उत्तम कांच, वस्त्र और चर्मपात्र इन सबको भी नहीं ग्रहण करना ( परस्स अज्झोव
वाय-लोभजणणाइ परियड्ढेउं ) ग्रहण करने में चित्त की एकाग्रता और लोभ को
उत्पन्न करने वाले दूसरे के अधिक मूल्यवाले पदार्थों को बढाना या उनका बचाव
करना ( गुणवओ न ) अपरिग्रहरूप गुण वाले को 'योग्य नहीं' ( यावि पुप्फ-फल
कंद-मूलादियाइ ) और पुष्प, फल, कन्द, मूल आदि तथा ( सण-सत्तरसाइ ) सन
जिनमें सत्तरवां है ऐसे ( सव्वधन्नाइ ) सब धान्यों को भी ( सजए ) साधु ( ओसह

भेसज्ज-भोयणट्ठयाए ) औषध, भैषज्य, और भोजन के लिये ( तिविहजोगेहिं परि घेत्तु ) मन वचन और कायरूप तीनों योगोंसे ग्रहण नहीं करे।

( किं कारणं ) नहीं लेने में क्या कारण है ?

उत्तर-( अपरिमित-णाण-दसण धरहिं ) अपरिमित ज्ञान तथा दर्शन को धारण करने वाले ( सीलगुण-विणय-तव-संजम-नायकेहिं ) शील-चित्त शान्ति, गुण अहिंसा आदि, विनय, और तप संयम की उन्नति करने वाले ( सव्वजगज्जीव वच्छलेहिं ) जगत् भरके जीवों के वत्सल-( तिलोय-महियहिं ) त्रिलोकी से पूजित ( तित्थयरेहिं ) श्री तीर्थङ्कर ( जिणवरिंदेहिं ) जिनेन्द्र देवने ( जंगमाणं ) त्रस जीवों की ( एसजोणी ) यह पुष्प फलरूप-योनि-उत्पत्ति-स्थान ( दिट्ठा ) केवल ज्ञान से देखा है ( न कप्पइ जोणि-समुच्छेदोत्ति ) योनियों का समुच्छेद विनाश करना योग्य नहीं है। ( तेण वज्जंति समणसीहा ) इसलिये श्रेष्ठ मुनि पुष्प आदि का वर्जन करते हैं ( जंपिय ओ दण-कुम्मास-गंज-तप्पण-मंथु-भुज्जिय-पलल-सूप-सक्कुलि वेढिम-वर सरक-चुन्न-कोसग-पिंड-सिहरिणि-वट्ट-मोयग-खीर-दहि-स प्पि-नवनीत-तेल्ल-गुल-खंड-मच्छंडिय-मधु- मज्ज-मंस- खज्जग-वंजण विधिमादिकं पणीयं ) और जो भी ओदन-कूर कुम्माष-उड़द या आधे पकाये हुए हुए मूंग आदि गज-एक प्रकार का धान्य, तप्पण-सक्तु-सत्तू मंथु-बोर आदि का चूर्ण, भुज्जि,-भूने हुए धानी आदि पलल-तिलके फूलों का पिंड, सूप-दाल, शष्कुलि पापड़ी वेढिम-जलेबी आदि, वरसरक और चूर्ण कोश-खाद्यपदार्थ विशेष पिंड-गुड़ आदि के पिंड, सिहरिणि दही में शक्कर आदि देकर बना हुआ शिखरण वट्ट-बड़ा, मोदक-लड्डू दूध, दही, घी, मक्खन, तेल, गुड़, खांड, मच्छण्डी-मिसरी मधु, मद्य मांस और अशोकवर्ती आदि खाद्य तथा अनेक प्रकार के शाक आदि प्रणीत-खाया हुआ ( उवस्सए ) उपाश्रय में ( परघरे व ) अथवा अन्य घरमें या ( रन्ने ) अटवी में हो ( तं ) उसका भी ( सुविहियाणं ) क्रियापात्र साधुओं को ( सन्निहिं काउ ) संचय करना ( न कप्पती ) नहीं कल्पता ( जंपि य ) और जो भी ( उद्दिट्ठ-ठविय- रचियग-पज्जवजात ) उद्दिष्ट-साधुमात्र के लिये बनाया हुआ स्थापित-साधु के लिये रक्खा हुआ, और रचित-साधु के लिये तपाकर बनाये हुए मोदक या दि पर्यवजात अवस्थान्तर को पाये हुए जैसे चावल और दही मिलाकर बना हुआ करंबा आदि ( पकिण्ण-पाउकरण-पामिच्चं ) प्रकीर्ण-गिराता

हुए दिया गया या बिखरा हुआ, प्रादुष्करण-प्रकाश करके दिया गया और अप मित्य-साधु के लिये उधार लिया हुआ, ( मीसकजायं ) मिश्रजात-साधु व श्रावक दोनों के लिये सम्मिलित बनाया हुआ ( कीयकड-पाहुडं ) क्रीतकृत-साधु के लिये खरीदा हुआ और प्राभृत-अग्नि में प्रज्वलितरीके डाला हुआ या अग्नि से निकाला हुआ ( च ) और ( दाणट्ठ-पुन्नपगड ) दान के लिये तथा पुण्य के लिये बनाया गया ( समण-वणीमगट्ठयाएवकयं ) पांच प्रकारके श्रमण तथा वनीपक-भिखारी के प्रयोजन से किया गया ( पच्छाकम्मं ) दानके बाद जहां हाथ आदि धोये जाय या अन्य आरम्भ हो वह पश्चात्कर्म ( पुरे कम्म ) हाथ धोने आदि आरम्भ करके जो दिया जाय वह पुर: कर्म ( नितिकम्मं ) सदाव्रत की तरह जहां सदा साधुओं को आहार आदि दिया जाय अथवा नियमितरूपसे सदा एक घर से आहार लिया जाय वैसा ( मक्खियं ) सचित्तपानी आदि से भरे हुए हाथ या पात्र से दिया गया ( अतिरित्तं ) प्रमाण से अधिक ( मोहरं चेव ) और वाचालता से-अधिक बोलकर मिलाया हुआ ( सयग्गहमाहडं ) स्वयं अपने आप ग्रहण किया हुआ, और अपने गांव या घर आदि से सामने लाया हुआ ( मट्टि उवलित्त ) मिट्टी आदि से लिप्त हुआ ( अच्छेज्जं चेव ) और ऐसे ही आच्छेद्य-निर्बल से छीनकर दिया गया ( अणीसट्टं ) अनिसृष्ट-अनेकों के हिस्से की वस्तु सबकी अनुमति के बिना दी गई हो ( जं तं तिहिसु ) जो आहार मदन त्रयोदशी आदि तिथि विशेष में ( जन्ने सु ऊसवेसु य ) यज्ञ और महोत्सवों में ( अंतो व बहिं व होज्ज समणट्ठयाए ठवियं ) उपाश्रय के भीतर या बाहर साधुओं को देने के लिये रक्खा हो ( हिंसा-सावज्ज-सपउत्त ) हिंसारूप दोष से युक्त ( तं पिय परिघेत्तुं न कप्पती ) उस आहार को भी लेना नहीं कल्पता है।

मूल-" अहकेरिसयं पुणाइ कप्पति ? जंतं एक्कारस-पिंडवायसुद्धं, किणण-हणण-पयण-कय-कारियाणुमोयण-नव कोडीहिं सुपरिसुद्धं, दसहिय दोसेहिं विप्पमुक्कं, उग्गम-उप्पायणेसणाए सुद्धं, ववगय-चुय-चविय-चत्तदेहंच फासुयं ववगय-संजोग मणिंगालं, विगय धूमं, छट्ठाण निमित्तं, छक्काय परिरक्खणट्ठा हणि हणि फासुकेण भिक्खेण वट्टियव्वं। जंपि य समणस्स सुविहियस्स उरोगायंके बहुप्पकारंसि समुप्पन्ने वाताहिक-

पित्त-सिंभ-अतिरित्त कुविय तह सण्णिवातजाते य उदयपत्ते उज्जल-बल-विउल-तिउल-कक्खड-पगाढ-दुक्खे असुम-कडुय फरुसे चंडफल विवागे महब्भय जीवियंत करणे सव्वसरीर-परितावण करे न कप्पति तारिसे वि तह अप्पणो परस्स वा ओसह भेसज्जं, भत्त-पाणं च तंपि संनिहिकयं। जंपि य समणस्स सुविहियस्स तु पडिग्गह धारिस्स भवति भायण-भंडोवहि उवगरणं, पडिग्गहो, पादबंधणं, पादकेसरिया, पादठवणं च, पडलाइं तिन्नेव, रयत्ताणं च, गोच्छओ, तिन्नेव, य पच्छाका, रयोहरण-चोल पट्टक-मुहणंतकमादीयं एयं पि य संजमस्स उववूहणट्ठयाए वाया-यव-दंस मसग-सीय-परिरक्खणट्ठयाए उवगरणं रागदोसरहियं परिहरियव्वं संजएण णिच्चं पडिलेहण-पप्फोडण-पमज्जणाए अहाय राओ य अप्पमत्ते ण होइ सततं निक्खिवियव्वं च गिण्हियव्वं च भायण, भंडोवहि उवगरण एवं स भवत विमुत्त निस्संगे निप्परिग्गहरुई निम्मम निन्नेह-बंधणे सव्व-पाव-विरत वासी चंदण-समाणकप्पे सम-तिण-मणि-मुत्ता-लेट्ठु-कंचण समे य माणावमाण-णाए, समिय रत, समित रागदोस, समिए समितीसु, सम्मदिट्ठी समेय जे सव्वपाण-भूतसु सह समण गुण धारत उज्जुत्त संतत । समाइ सरणं सव्व भूयाणं सव्व जगवच्छल सयसासक य समारसहिते य संसार-मह च्छिन्न स स मरणाणुपारत, पारग य सव्वसि समयाग पवयम मायाहि अट्ठाहि अट्ठकम्म गंठी विमोयके, अट्ठमय महण, ससमय कुसल य भवति सुग दुक्ख निव्विसेस अब्भितर बाहिरंमि सया, सयावदाणंमि य सुट्ठुज्जुत्त, सासे दंते य हियनिरए, इरियासमित भासासमित एसणासमित आयाण भंड-मत्त-निक्खवणा समित उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण जल्ल-परिट्ठा वणिया समित मणगुप्त वयगुप्त कायगुप्त, गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी,

चाई, लज्जू, धन्ने, तवस्सी खंतिखमे, जिर्तिदिए, सोधिए, अणियाणे, अब-हिल्लेस्से, असमे, अकिंचणे, छिन्नगंथे, निरुवलेवे। सुविमल-वरकंस भायणं १, व मुक्कतोए, संखेविव २, निरंजणे, विगय,-राग-दोसमोहे, कुम्मो ३, इव इंदिएसु गुत्ते, जच्च-४, कंचणगंव जायरूवे, पोक्खरपत्तं ५, व निरुवलेवे, चंदो ६, इव सोमताए(भावयाए,) सूरोव्व ७, दित्ततेए, अचले जह मंदरे ८, गिरिवरे, अक्खोभे सागरो व्व, थिमिए, पुढवीव सव्व १०, फास सहे, तवसा ११, च्चिय भासरासि छन्निव्व जाततेए, जलियहु १२ यासणो वि व तेयसा जलंते, गोसीस चंदणं पिव सीयले सुगंधे य, हरयो १३ विव समिय भावे, उग्गोसिय सुनिम्मलं व आयंस १४ मंडलतलं व पागड भावेण सुद्धभावे, सोंडीरे कुंजरोव्व १५, व सभेव्व १६ जाय थामे, सीहे १७ वाजहा मिगाहिवे होति दुप्पधरिसे, सारय १८ सलिलं व सुद्ध हियए, भारंडे १९ चेव अप्पमत्ते, खग्गि दिसाणं २० व एगजाते, खाणुं चेव २१ उड्ढकाए, सुन्ना २२ गारेव्व अप्पडिकम्मे, सुन्नागारावण-स्सतो २३ निवाय-सरण-प्पदीप-ज्झाणमिव निप्पकंपे, जहा २४ खुरो चेव एग धारे, जहा अही चेव २५ एगदिट्ठी, आगासं २६ चेव निरालंबे, विहगे २७ विव सव्वओ विप्पमुक्के, कय पर निलये जहा चेव २८ उरए, अप्पडिबद्धे अनिलोव्व २९, जीवोव्व ३० अप्पडिहयगती। गामे गामे एगरायं, नगरे नगरे य पंचरायं दूइज्जं ते य, जिर्तिदिए, जित परीसहे, निब्भओ, विऊ सचित्ताचित्त-मीसकेहिं दव्वेहिं विरायंगते, संचयातो विरए, मुत्ते, लहुके, निरव कंखे, जीविय-मरणासविप्पमुक्के, निस्संधि, निव्वणं चरित्तं धीरे काएण फासयंते सततं अज्झप्पज्झाणजुत्ते निहुए एगे चरेज्ज धम्मं। २।२८

छाया०-"अथ कीदृश पुनः कल्पते? एकादेकादशपिण्डपातशुद्ध क्रयण-हनन-पचन-कृत-कारिताऽनुमोदन-नवकोटिभि सुपरिशुद्ध, दशभिर्दोषैर्विप्रमुक्तम्, उद्गमोत्पादनैषणया शुद्धम्, व्यपगत-च्युत-च्यावित-त्यक्त देह च प्राशुकम्, व्यपगत

संयोगमनर्हत्वम्, त्रिगुप्त श्रुतम्, षड्स्थानक निमित्तम् षट्काय परिरक्षणार्थम्, भव ग्रहणं प्राशुकं भैक्ष्येण वर्तितव्यम्। यदपि च श्रमणस्य सुविहितस्य तु रोगातङ्के बहुप्रकारे समुत्पन्ने वाताधिकपित्तश्लेष्मातिरिक्तकुपिते तथा सन्निपातजात-उदयप्राप्ते उज्ज्वल-बल-विपुल-कर्कश-प्रगाढदुःखे, अशुभकटुक परुषे, चण्ड फल विपाके महाभये जीवितान्तकरणे, सर्वशरीर-परितापनकरे, न कल्पते तादृशोऽपि तथाऽऽत्मनः परस्य वा औषधभैषज्यं भक्त पानञ्च तदपि सन्निधीकर्तुम्। यदपि च श्रमणस्य सुविहितस्य तु पतद्ग्रह-धारिणो भवति भाजन भाण्डोपध्युपकरणं, पतद्ग्रहः पात्रबन्धनञ्च, पात्रकेसरिका, पात्रस्थापनं, पटलानि-त्रीण्येव, रजस्त्राणञ्च, गोच्छकः, त्रय एव च प्रच्छादाः, रजोहरण-चोलपट्टक-मुखानन्तकादिकम्। एतदपि च संयमस्योपबृंहणार्थाय वाताऽऽतपदंश-मशक-शीत-परिरक्षणार्थम् उपकरणं राग द्वेषरहितं परिहर्तव्यम्। संयतेन नित्यं प्रत्युपेक्षण-प्रस्फोटन-प्रमार्जनायामहनि च रात्रौ चाऽप्रमत्तेन भवति सततं निक्षेपणम् ग्रहीतव्यञ्च, भाजनभाण्डोपध्युपकरणम्।

एवं स संयतो विमुक्तो निस्सङ्गो निष्परिग्रहरुचिर्निर्ममो निःस्नेह बन्धनः सर्वपाप विरतो वासी-चन्दन-समानकल्पः समतृण-मणि-मुक्ता-लेष्टु काञ्चनः समश्च मानाऽपमानतया शमितरजस्कः शमितरागद्वेषः, समितः समितिषु सम्यग्दृष्टिः, समश्च यः सर्वप्राणिभूतेषु स खलु श्रमणः, श्रुतधारक ऋजुकः संयतः सुसाधुः शरणं सर्वभूतानां, सर्वजगद्वत्सलः, सत्यभाषकश्च संसारान्तस्थितश्च, समुच्छिन्नसंसारः सततं मरणानुगः, पारगश्च सर्वेषां संशयानां, प्रवचनमातृभिरष्टाभिरष्टकर्मग्रन्थिविमोचकोऽष्टमानमथनः स्वसमयकुशलश्च भवति, सुख दुःखनिर्विशेष आभ्यन्तर बाह्ये सदा तप उपधाने च सुष्ठुयुक्तः, क्षान्तः दान्तश्च हितनिरतः, ईर्यासमितः भाषासमितः, एषणा समितः, आदान भाण्डाऽमत्र-निक्षेपणासमितः, उच्चार-प्रस्रवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-परिष्ठापनिका समितः मनोगुप्तः वचनगुप्तः कायगुप्तः, गुप्तेन्द्रियो गुप्तब्रह्मचारी, त्यागी लज्जुः धन्यस्तपस्वी, क्षान्तिक्षमो, जितेन्द्रियः, शोधितोऽनिदानोऽबहिर्लेश्योऽममोऽकिञ्चनश्छिन्नग्रन्थः, निरुपलेपः। सुविमल-वर कांस्य भाजनमिव मुक्ततोयः १, शङ्ख इव निरञ्जनो विगतराग द्वेष मोहः २, कूर्म इवेन्द्रियेषु गुप्तो ३ जात्यकाञ्चन मिव जातरूपः ४, पुष्करपत्रमिव निरुपलेपः ५, चन्द्र इव सौम्यभावतया, ६, सूर्य इव दीप्ततेजाः ७, अचलो यथा मन्दरो गिरिवरः ८, अक्षोभ्यः सागर ९, इव स्तिमितः, पृथ्वी व सर्व स्पर्शसहः १०, तपसापि च भस्मराशिच्छन्न इव जात तेजा ११, ज्वलित

ताशनइव तेजसाज्वलन् १२, गोशीर्षचन्दन इव शीतलः सुगन्धश्च, ह्रदइव समितभाव उद्घृष्टसुनिर्मलमिव आदर्शमण्डल तलमिव प्रकटभावेन शुद्धभाव , शौण्डीरः कुञ्जर इव, वृषभइव जातस्थामा, सिंहोवा यथा मृगाधिपो भवति दुष्प्रधर्षः, शारद सलिल मिव शुद्धहृदयः, भारण्ड इवाऽप्रमत्तः, खड्गिविषाणमिवैकजातः, स्थाणुरिवोर्द्धकायः, शून्याऽऽगारमिवाऽप्रतिकर्मा, शून्यागाराऽऽसन्निवात-शरण-प्रदीपध्यानमिव निष्प्रकम्प',यथाक्षुरश्चैकधारः, यथाऽहिश्चैवैकदृष्टिः, आकाशमिव निरवलम्बः, विहगइव सर्वतो विप्रमुक्तः, कृतपर निलयो यथाचैवोरगः, अप्रतिबद्धोऽनिल इव, जीव इवाऽप्रतिहतगति । ग्रामे ग्रामे-एकरात्रम् , नगरे नगरे च पञ्चरात्रम दूयमानः-विहरंश्च, जितेन्द्रियो जितपरीषहो निर्भयः विद्वान् सचित्ताऽचित्तमिश्रकैर्द्रव्यैर्विरागं गत', सञ्चयाद्विरतो, मुक्तो लघुको निरवकांक्षः, जीवितमरणाऽऽशाविप्रमुक्तः, निस्सन्धिर्निव्रणं चरित्र धीर. कायेन स्पृशन् सततमध्यात्मध्यानयुक्तो निभृत एकश्चरेद्धर्मम् ।

अन्व०"( अहकेरिसयं पुणाइ कप्पति ? ) तब फिर कैसा ओदन आदि पदार्थ लेना कल्पता है ?

उत्तर-' जं तं ) जो वह ओदन आदि पदार्थ ( एक्कारसपिंडवायसुद्धं ) ग्यारह पिंडपात से शुद्ध आचाराङ्ग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में प्रथम अध्ययनके एकादश उद्देशों में कहे हुए दोषों से रहित ( किणण-हणण-पयण-कय-कारियाणुमोयण-नवकोडी हिं सुपरिसुद्ध ) खरीदना, हिंसा करना, और पकाने रूप क्रिया से कृत, कारित और अनुमोदन के द्वारा बनी हुई नवकोटिओं से पूर्ण शुद्ध हो ( दसहिय दोसेहिं विप्पमुक्क ) और एषणा के दश दोषों से रहित ( उग्गम उप्पायणेसणाए सुद्ध ) उद्गम और उत्पादनारूप एषणा-गवेषणा व ग्रहणषणा रूप एषणा से शुद्ध ( ववगय-चुय-चविय-चत्तदेह ) सामान्यरूप से अचेतन बने हुए, जीवन क्रिया से भ्रष्ट, आयुक्षय के कारण जीवन क्रियाओं से गिराया गया और शरीर की वृद्धि रहित ( फासुयं । अतएव प्रासुक-निर्जीव बना हुआ ( ववगय-संजोगमणिगालं ) सयोग और अगार रूप माण्डलिक दोष से दूर तथा ( विगयधूमं ) उत्तम आहार के प्रशंसारूप धूम्र दोष से रहित ( छट्ठाणनिमित्तं ) छ कारणों के निमित्त वाला । छक्काय परिरक्खणट्ठा ) छ काय के जीवों की रक्षा के लिये ( हणि हणि फासुएण भिक्खेण वट्टियव्व ) प्रति दिन निर्दोष भिक्षा से निर्वाह करना चाहिए ( जपिय ) और जो भी ( समणस्स-

सुविहियस्स ) सुविहित साधु के ( रोगायंके बहुप्पकारंमि ) अनेक प्रकार के रोग या आतङ्क ( समुप्पन्ने ) उत्पन्न होने पर ( वाताहिक-पित्त-सिंभ-अतिरित्त-कुविय) वात की अधिकता व पित्त कफ का अतिशय प्रकोप ( तह ) तथा ( सन्निवाय जाये व उदयपत्ते)सन्निपात त्रिदोष उत्पन्न हुआ हो (उज्जलबल विउल कक्खड पगाढ-दुक्खे) अथवा सुख रहित बलवान् कष्ट से भोगने योग्य विस्तीर्ण या मन वचन आदि तीनों योगों को रोकने वाले अत्यन्त कठोर दुःख के ( उदयपत्ते ) उदय प्राप्त होने पर ( असुभ कडुय-फरुसे ) अशुभ या कटु द्रव्य की तरह असुख अनिष्ट कठोर स्पर्श रूप तथा ( चंडफलविवागे ) दुःखरूप दारुण फल वाला ( महब्भये ) अत्यन्त भयङ्कर ( जीवियंत करणे ) जीवन के अन्त करने वाले और ( सव्वसरीर-परिताव णकरे ) सब शरीर को परिताप करने वाले ( तारिसंमि ) वैसे रोगादि के प्रसङ्ग में भी ( अप्पणो परस्सवा ) अपने या पर के लिये ( तह ) तथा ( ओसह-भेसज्जं ) औषध भैषज्य ( भत्त पाणं च ) और आहार पानी ( तं पि संनिहिकयं ) यह सब भी सचय करके रखना ( न कप्पति ) नहीं कल्पता-योग्य नहीं है। ( जंपिय ) और जो भी ( पडिग्गह धारिस्स सुविहियस्स समणस्स ) पात्रधारी सुविहित-क्रियापात्र साधु के पास ( भायणभंडोवहिउवगरणं ) पात्र, भिक्षा के भांड और सामान्य उपधि तथा सकारण रखने के उपकरण ( भवति ) होते हैं, जैसे-( पडिग्गहो ) पात्र ( पात्र बंधणं ) पात्र बन्धन, ( पायकेसरिया ) पात्र केसरिका-पोंछने का वस्त्र ( पायठवणं च ) और पात्र स्थापन-जिस पर पात्र रक्खे जांय ( पडलाइं ) पल्ल-पात्र ढकने के तीन वस्त्र ( रयत्ताणं ) और रजस्त्राण-पात्र लपेटने का वस्त्र (गोच्छओ गा छक पात्र वस्त्र आदि प्रमार्जन करने के लिये पूंजनी ( तिन्नयय पच्छागा ) और तीन ही प्रच्छाद-ओढने के वस्त्र ( रयोहरण-चोलपट्टक-मुहणंतक मादीयं ) रजोहरण-ओघा, चोलपट्टक-पहनने का वस्त्र और मुखानन्तक-मुखवस्त्रिका आदि ( एयं पिय ) यह सब भी ( संजमस्स उववूहणट्ठयाए ) संयम के उपवृहण-वृद्धि के लिये हैं ( वातायव-दंस-मसग-सीय-परिरक्खणट्ठयाए ) वात-प्रतिकूल वायु सूर्य की ताप, डांस-मच्छर और शीत से संरक्षण करने के लिये ( उवगरणं ) रजो हरण आदि उप करण को ( राग-दोस रहियं ) राग द्वेष रहित होकर ( संजएणं ) साधु को ( निच्चं ) सदा ( परिहरियव्वं ) धारण करना चाहिए ( पडिलेहण-पप्फोडण-पमज्जणाए ) प्रतिलेखना-आंखों से देखना, प्रस्फोटन-झाड़ना और

प्रमार्जन रूप क्रिया में ( अहोयराओय ) दिन और रात ( अप्पमत्तेण सततं ) निरन्तर प्रमाद रहित ( भायण-भंडोवहि-उवगरणं ) भाजन भाण्ड और उपधिरूप उपकरण ( निक्खिवियव्वं ) नीचे रखना ( च ) और ( गिण्हियव्वं ) ग्रहण करना योग्य ( होइ ) होता है ( एवं ) इस प्रकार ( सेसजते ) वह संयमी ( विमुत्ते निस्संगे ) अनादि रहित, निस्सङ्ग-मोह रहित ( निप्परिग्गहरुई ) परिग्रहरुचि से दूर (निम्ममे) ममता रहित ( निन्नेहवधणे ) स्नेह और बंधन से रहित ( सव्व पाव विरते ) सब पापों से निवृत्त ( वासी-चदण-समाण कप्पे ) वासी-कुल्हाडी मारने वाले और चन्दन का लेप करने वाले-दोनों पर समभाव रखने वाला ( सम-तिण-मणि मुत्ता-लेट्ठु-कंचणे ) तृण और मणि, मोती तथा पत्थर व सुवर्ण में समबुद्धि रखने वाला ( समे य माण वमाणणाए ) और मान अपमान की क्रिया मे भी सम हर्ष विषाद रहित ( समियरते ) उपशान्त पापरजवाला अथवा विषय रति के उपशम वाला या शान्त वेग वाला ( समित राग दोसे समिए समितिसु ) उपशान्त राग द्वेष वाला व पाच समितियों मे सम्यक् प्रवृत्ति वाला ( सम्मदिट्ठी ) सम्यग् दृष्टि ( समे य जे सव्व-पाण-भूतेसु ) और जो समस्त त्रस स्थावर जीवों में समान भाव रखता है ( से हु समणे ) वही श्रमण ( सुयधारते ) श्रुत धारक ( उज्जुत्ते ) ऋजु-निष्कपट या आलस्य रहित ( सजते ) व सयमी है ( ससाहू सरण सव्व भूयाणं ) वह सुसाधु सर्वभूत-छकाय जीवोंका शरण-रक्षक है (सव्व जग-वच्छले) सब जगत् का वत्सल-हितैपी है ( सच्च भासके ) सत्यवक्ता है ( ससारतट्ठिते ) ससार के अन्त में स्थित ( य ) और ( ससारसमुच्छिन्ने ) भव परम्परा रूप ससार का जिसने उच्छेद कर दिया है, ऐसा (सतत मरणाणुपारते, सदा मरण के पार पाने वाला ( पारगे य सव्वेसि ससयाण ) और सब सशयों का पारगामी ( पवयण-मायाहिं अट्ठहिं ) आठ प्रवचनमाता-पाच समिति तीन गुप्ति रूप से ( अट्ठ कम्म-गठी-विमोयके ) आठ कर्मों की ग्रन्थि-गाठ को छुडाने वाला ( अट्ठमय-महणे) आठ मदों को नाश करने वाला ( ससमय कुसले ) अपने सिद्धान्त में निपुण ( भवति ) होता है ( सुख-दुक्ख-निव्विसेसे ) सुख दुःख मे विशेषता रहित अर्थात् हर्ष शोक रहित ( अब्भितर-बाहिरमिसया तवोवहाणं मिय सुट्ठ उज्जुत्ते ) आभ्यन्तर और बाह्य तप रूप गुण की रक्षा करने वाले-उपधान मे सदा अच्छी तरह से उद्यम

करने वाला ( धिति वृति य ) समाधावान् और जितेन्द्रिय ( हियनिःते ) स्वपर का हि
कारी ( ईरिया-समित ) ईर्या समिति युक्त ( भासा समित ) भाषा समिति-निर्
वचन-बोलने वाला, ( एसणासमिते ) एषणा समिति युक्त ( आयाण-भण्ड
निक्खेवणा समिते ) आदान भांड मात्र निक्षेपणा समिति वाला ( उच्चार पासव
खेल-सिंघाण-जल्ल-परिट्ठावणिया समित ) मलमूत्र, श्लेष्म, सिंघान-नाक का म
जल्ल-देह का मल आदि परठने की समिति वाला ( मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्
मनो गुप्त, वचन गुप्त और काय गुप्त-शरीर के संयम वाला ( गुत्तिंदिए ) इ
इन्द्रिय-विषयों से इन्द्रिय का रक्षण करने वाला ( गुत्त-बंभयारी ) ब्रह्मचर्य
गुप्ति से युक्त ( चाईलज्जू ) त्यागी-सर्वसंग का त्याग करने वाला या दानी रज्जु
समान सरल ( धन्ने तवस्सी ) धन्य, तपस्वी-प्रशास्त तपोयुक्त ( खंतिखमे ) क
द्वारा सहन वाला ( जिइंदिए ) जितेन्द्रिय ( सोधिए ) गुणों से शोभित या इ
हुआ ( अणियाणे ) निदान रहित ( अबहिल्लेस्से ) जिसकी चित्तवृत्ति संयम
बहिर्भूत नहीं है ( असमे अकिंचणे ) ममता से दूर व धन से रहित ( छिन्नगंथे
स्नेह बंधन को काटने वाला ( निरुवलेवे ) कर्म के उपलेप रहित याने कर्म का
नहीं करने वाला। ( सुविमल-वर कंसभायणं व मुक्कतोये ) खूब निर्मल उत्त
कांस्य भाजन की तरह स्नेहरूप जलसे दूर ( संखेविय निरंजणे ) शंख की त
निर्मल-रागादि मल रहित ( विगय-राग-दोस मोह ) राग द्वेष और मोह से
( कुम्मो इव इंदियगुत्ते ) कूर्म-कच्छप की तरह इन्द्रियों के विषय में गुप्त-संय
वाला ( जच-कंचणगं व जायरूवे ) जाति सम्पन्न सुवर्ण की तरह जातरूप-रागा
दुर्भाव रहित अपने स्वरूप को पाया हुआ ( पोक्खर पत्तं व निरुवलेवे ) पद्म
की तरह भोग के लेप रहित ( चंदो इव सोमभावयाए ) सौम्य भाव से चन्द्र के समा
( सूरोव्व दित्ततेए ) सूर्य के जैसे तपस्या के तेज वाला ( अचल जह मंदरे गिरिवरे
मन्दर-मेरु पर्वत के समान अचल ( अक्खोभे सागरोव्व थिमिए ) क्षोभ रहि
सागर के जैसे स्तिमितभावों की तरङ्ग से दूर ( पुढवी व सव्व फासविसहे ) पृथ्वी
तरह अनुकूल प्रतिकूल सब स्पर्शों को सहने वाला ( तवसा विय भासरासिछन्
जायतेए ) और तपस्या से भस्म की ढेर से ढकी हुई अग्नि के जैसा याने जै
भस्म से ढकी हुई अग्नि भीतर जलती और बाहर से बुझीसी दिखती है, वैसे तपस
का शरीर बाहर से फीका किन्तु अन्तस्तेज से दीप्त रहता है ( जलिय-हुयासर

विव तेजसा जलंते ) जलती हुई अग्नि के जैसे ज्ञानरूप तेजसे जलता हुआ ( गोसीस चंदणं विव सियले सुगंधे ) गोशीर्ष चन्दन की तरह शीतल-मानसिक तापरहित और शीलरूप सुगन्ध वाला ( हरयोविव समियभावे ) ह्रद की तरह समभाव वाला वायु के अभाव में जैसे तालाब का पानी समरूप में रहता है, वैसे निन्दा सत्कार में समभावयुक्त ( उग्घोसिय-सुनिम्मलं व आयंस-मडल तलं व ) अच्छा घिसा हुआ होने से अत्यन्त निर्मल दर्पण के तल की तरह ( पागड भावेण सुद्धभावे ) प्रकट भाव-निष्कपट भावसे शुद्ध हृदयवाला ( सोंडीरे कुंजरोव्व ) कुञ्जर-हाथी की तरह परीषह सैन्य के लिये शूर ( वसभेव्व जायथामे ) वृषभ के समान जात स्थाम-स्वीकार किये हुए व्रतभार के निर्वाह में समर्थ ( सीहे वा जहा मिगाहिवे ) मृगपति सिंह के जैसे ( दुप्पधरिसे होति ) परीषहरूप मृगों के लिये जो दुर्द्धर्ष होता है ( सारय सलिलं व सुद्धहियए ) शरत्काल के पानी की तरह शुद्ध हृदय वाला ( भारंडे चेव अप्पमत्ते ) और भारंड पक्षी के समान प्रमाद रहित ( खग्गि-विसाणं व एगजाते ) खड्ग-गेंडा के सींग की तरह एकभूत-रागादि के सहाय रहित ( खाणुं चेव उड्ढ काए ) स्थाणु-खूटे की तरह कायोत्सर्ग में शरीर को स्थिर खड़ा रखने वाला ( सुन्नागारेव्व अप्पडिकम्मे ) शून्य घरकी तरह देह की सम्भाल नहीं करने वाला ( सुन्नागारावणस्सतो ) शून्य घर या सूनी दुकान में वर्तमान-रहा हुआ ( निवाय-सरण-प्पदीपज्झाणमिव निप्पकंपे ) वायु रहित घरमें दीप की बत्ती की तरह दिव्य आदि उपसर्ग में भी शुभ ध्यानरूप कोष्ठकमें अकम्प-निश्चल चित्त वृत्ति वाला ( जहा खुरो चेव एगधारे ) क्षुर-छूरे के जैसे विधिमार्गरूप एक धार वाला ( जहा अही चेव एगदिट्ठी ) फिर सर्प के जैसे मोक्ष साधन रूप एक दृष्टि वाला ( आगासं चेव निरवलंबे ) आकाश की तरह बाह्य आलंबन रहित ( विहगे विव सव्वओ विप्पमुक्के ) विहग-पक्षी की तरह सबसे विप्रमुक्त ( कय-पर-निलये जहा चेव उरए ) जैसे सर्प दूसरे के बनाये घरमें रहता है वैसे साधु परगृह में रहने वाला ( अप्पडिबद्धे अनिलोव्व, जीवोव्व अप्पडिहयगति ) वायु की तरह प्रतिबन्ध रहित और जीव की तरह अप्रतिहतगति-रुकावट रहित गति-वाला ( गामे गामे एगरायं ) गांव गांव में एकरात ( य ) और ( नगरे नगरे पचरायं ) नगर नगर में पाचरात[1] ( दूइ-

---

१—गांव में एक रात्रि और नगर में पंच रात्रि का परिमाण पडिमधारी साधु की अपेक्षा है।—टीका०

चरेज्ज य ) विचरता-भ्रमण करता-हुआ और ( जितिंदिए ) जितेन्द्रिय ( जिस परी सहे ) परीषहों को जीतने वाला ( निब्भओ ) निर्भय ( विऊ ) विद्वान ( सचित्ता चित्त मीसकेहिं दव्वेहिं ) सचित्त अचित्त व मिश्र-द्रव्यों में ( विरायंगत ) विराग प्राप्त ( संचयाओ विरए ) अतएव संग्रह से दूर ( मुत्ते ) मुक्त की तरह बन्धन रहित ( लहुके ) गौरव रहित होने से लघु-हल्का ( निरवकंखे ) आकांक्षा रहित ( जीविय मरणास-विप्पमुक्के ) जीवन मरण की आशा से दूर, तथा ( धीरे ) धीर ( निस्संधि निव्वण चरित्तं ) सन्धि चारित्र परिणाम के विच्छेद रहित, निर्दोष चरित्र को ( काएण फासयंते ) शरीर से पालन करता हुआ ( अज्झप्प ज्झाणजुत्ते ) अध्या त्म ध्यान-शुभ विचार से युक्त तथा ( निहुए ) उपशान्त कषाय वाला साधु ( एगे ) एकाकी रागादि रहित होकर ( सतत ) सदा ( धम्म चरेज्ज ) धर्म का आचरण करे।

भाव- 'सूत्र में अपरिग्रह को वृक्ष की उपमा दी गई है जो तीर्थङ्कर की आज्ञा नुसार की गई निर्युक्ति के विस्तार से बहुत प्रकार का है। वृक्ष के साथ अपरिग्रह की समता करते हुए उसके अङ्गों का परिचय दिया है। जैसे—अपरिग्रह-वृक्ष का सम्यक्त्व ही निर्दोष मूल है और धैर्य रूप कन्द, विनय ही अङ्कुरस वेदिका और त्रिलोकी में फैला हुआ विमल यश ही बड़ा स्कन्ध है, महाव्रत ही पांच शाखायें और भावना रूप छाल है। धर्म ध्यान शुभ योग तथा ज्ञान रूप पत्राङ्कुर और विविध गुण ही अपरिग्रह वृक्ष के फूल हैं। शील उसकी सुगन्धि और अनास्रव ही फल है। कर्म बन्ध से मुक्ति इसके बीजों का सार है। इस प्रकार मेरु की चूलिका के समान यह मोक्ष मार्ग का शिखर भूत अपरिग्रह अन्तिम संवरद्वार है। अपरिग्रहव्रत की यह मर्यादा है कि ग्राम आदि में रहा हुआ कोई भी पदार्थ थोड़ा या बहुत, छोटा या बड़ा द्रव्य मात्र मन से भी ग्रहण करना योग्य नहीं है। ऐसे चांदी सोना व दासी दास आदि निर्जीव या सजीव द्रव्यों को तथा लोह आदि धातु एवं विविध प्रकार के पात्र जो अधिक मूल्य वाले और दूसरे के चित्त की आसक्ति एवं क्षोभ को उत्पन्न करने वाले हैं। उनका संग्रह करना योग्य नहीं है और पुष्प फल आदि वनस्पति तथा १७ प्रकार के धान्यों का भी औषध भैषज्य और भोजन के लिये साधु को संग्रह करना योग्य नहीं है। क्योंकि अनन्त ज्ञानी तीर्थङ्कर देव ने ज्ञान चक्षु से इस पुष्प आदिक समूहको त्रस जीवोंकी उत्पत्तिका स्थान कहा है और किसी योनिका विनाश

करना ठीक नहीं है। इसलिये प्रधान साधु इसका वर्जन करते हैं। फिर जो भी ओदन आदि निर्जीव द्रव्य उपाश्रय में लाये गये या गृहस्थ के घर या जंगल में रक्खे हैं, क्रिया पात्र साधु को उन द्रव्यों का भी संञ्चय नहीं करना चाहिए। फिर जो आहार आदि उद्दिष्ट, स्थापित तथा मोदकादि रूप से साधु के लिये बनाया गया है, नीचे गिरता हुआ या साधु के लिये अन्धेरे से बाहर लाया हुआ एवं श्रमण या भिखारी के लिये बनाया गया है। उधार लाया हुआ, मिश्र, क्रीतकृत, प्राभृत, और दान पुण्य के लिये निकाला हुआ, तथा जो पश्चात्कर्म आदि अन्य दोषों से युक्त है। वह आहार तिथि, यज्ञ तथा उत्सव के प्रसङ्गों में उपाश्रय के भीतर या बाहर साधु के लिए रक्खा हो तो हिंसा रूप दोष वाले उस आहारादि को व्रती साधु ग्रहण नहीं करे। तब फिर कैसे आहार आदि को ग्रहण करना योग्य है, इसको दिखाते हैं-'जो पिण्डैषणा के ११ उद्देशों से शुद्ध और खरीदना १, खरीदवाना २, एवं खरीदने वाले को अनुमोदन करना ३, ऐसे हिंसा करना ४, कराना ५, व करने वाले का अनुमोदन करना ६, पकाना ७, दूसरे से पकवाना ८, और पकाते को अच्छा जानना ९, इन नव कोटिओं से शुद्ध हो। एषणा के दश दोषों से रहित तथा जो उद्गम आदि एषणा से शुद्ध है। चेतनता से रहित और प्रासुक तथा सयोग आदि मडल दोष से जो रहित है, प्रतिदिन वैसी प्रासुक भिक्षा का ग्रहण करना चाहिए। वह भी केवल वेदना आदि छः कारणों से जीव रक्षा के लिए ग्रहण करे। फिर क्रिया पात्र साधु को अनेक प्रकार के वात आदि से होने वाले रोगातङ्क उत्पन्न हो जाय तो भी अपने व परके लिये औषध भेषज तथा भक्त पान रात्रि में पास रखना नहीं कल्पता।

फिर पात्र धारी साधु को भाजन आदि उपकरण होते, वे भी सहेतुक होते हैं। उपकरण और उनके धारण करने की विधि बताते हैं। जैसे--पात्र १, पात्र बन्ध २, पात्र पोंछने का वस्त्र ३, पात्र स्थापन-मण्डल ४, पटल तीन ५, रजस्त्राण ६ और गोच्छक-पूजनी ७, प्रच्छादन के वस्त्र ८, रजो हरण ९, चोल पट्टक १०, और मुख-वस्त्रिका आदि उपकरण भी संयम की रक्षा के लिये तथा वातादि कष्ट से देह के संरक्षण के लिये राग द्वेष रहित धारण करना चाहिए, और रात दिन सदा प्रतिलेखन आदि क्रिया में अप्रमत्त होकर निरन्तर भाजनादि को रखना एवं ग्रहण करना योग्य है। इस प्रकार जो संयमी विमुक्त, आदि १४ विशेषण युक्त है वही साधु श्रुत

धारक ऋजु व संयमी है। सुसाधु आदि अनेक विशेषण युक्त यावत् यह धर्म पाप से रहित होता है। साधु की ३१ उपमायें जैसे-१ निर्मल कांसी के भाजन की तरह स्नेह जल से अलिप्त, २ शङ्ख के जैसे उज्ज्वल याने राग द्वेष आदि रंग रहित, ३ कूर्म-कच्छप की तरह गुप्तेन्द्रिय, ४ उत्तम सोना जैसे शुद्ध स्वरूप वाला, ५ पद्म पत्र की तरह काम रूप मल के लेप रहित, ६ चन्द्र जैसे सौम्य, ७ सूर्य जैसे तेजस्वी, ८ मेरु पर्वत जैसे अचल, ९ अक्षोभ्य सागर के समान विचारों की चंचलता रहित, १० पृथ्वी के समान सबके स्पर्श को सहने वाला, ११ भस्म से ढकी हुई आग के समान बाहरी शरीर से फीका व भीतर से तेजस्वी, १२ जाज्वल्यमान वह्नि जैसे तेजस्वी १३ गोशीर्ष चन्दन के जैसे शीतल व शील की सुवास वाला, १४ वातिमान् गज के समान परीषह सहने में शूर, १५ ह्रद जैसे सम स्वभाव वाला, १६ स्वच्छ दर्पण जैसे प्रकट शुद्ध स्वभाव वाला, १७ धोरी बैल के जैसे उठाये हुए कार्य भार का निर्वाह करने वाला, १८ सिंह के जैसे दूसरे से पराभव नहीं पाने वाला, १९ शरत्काल के पानी के समान निर्मल, २० भारण्ड पक्षी जैसे सदा चकित रहता है वैसे प्रमाद रहित, २१ गैंडे के सींग की तरह एक-राग द्वेष रहित, २२ स्थाणु-खूटे के जैसे ऊंचे-सीधे ध्यान में खड़े, २३ शून्य घर के जैसे शोभा संस्कार रहित, २४ निर्वात घर के दीपक के जैसे ध्यान में अकम्प, २५ छुरे के जैसे विधि रूप एक धार वाला २६ सर्प के जैसे मात्र मार्ग रूप एकाग्रदृष्टवाला, २७ आकाश के जैसे बाहरी आलम्बन रहित, २८ पक्षी के जैसे संग्रह रहित या सर्वत्र गति वाला, २९ सर्प के जैसे पर घर में रहने वाला, ३० वायु के जैसे प्रतिबन्ध रहित, ३१ जीव के जैसे निर्बाध सर्वत्र गति वाला, इन इकतीस उपमाओं से युक्त साधु प्रति ग्राम में एक रात और नगर में पांच रात के प्रमाण से वास करते हुए भ्रमण करता है। जितेन्द्रिय, जित परीषह, निर्भय यावत जीवन की आशा व मरण भय से दूर मुनि निर्दोष चारित्र को शरीर से पालन करता हुआ निरन्तर आत्म ध्यान से युक्त स्थिरमति होकर राग द्वेष रहित धर्म का आचरण करे।

मूल-"इमं च परिग्गह-वेरमण-परिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं, पेच्चाभाविकं, आगमेसिभद्दं, सुद्धं, नेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्खपावाण विओसमणं, तस्सइमा पंचभावणाओ चरिमस्स

वयस्स होंति परिग्गह वेरमण–रक्खणट्ठयाए । पढमं–सोइंदिएण सोच्चा सद्दाइं मणुन्नभद्दगाइं, किंते !, वरमुरय–मुइंग–पणव–दद्दुर–कच्छभि–वीणा–विपंची–वल्लयि–वद्धीसक–सुघोसनंदि–सूसर–परिवादिणि–वंसतूणक पव्वक–तंती–तल–ताल–तुडिय–निग्घोसगीयवाइयाइं, नड–नट्टक–जल्ल–मल्ल मुट्ठिक–वेलंबक–कहक–पवक–लासग–आइक्खक–लंख–मंख–तूणइल्ल–तुंब वीणिय–तालायर–पकरणाणि य बहूणि, महुरसर–गीत–सुस्सरातिं, कंची मेहला–कलावपत्तरक–पहेरक–पायजालग–घंटिय– खिंखिणि–रयणोरुजालिय–छुद्दिय–नेउर–चलण–मालिय–कणग–नियल–जाल–भूसणसद्दाणि, लीलाचंकम्ममाणाणुदीरियाइं, तरुणीजणहसिय–भणिय–कलरिभित–मंजुलाइं, गुणवयणाणि व बहूणि महुरजणभासियाइं, अन्नेसु य एवमादिएसु सद्देसु मणुन्नभद्दएसु ण तेसु समणेण सज्जियव्वं, न रज्जियव्वं, न गिज्झियव्वं, न मुज्झियव्वं, न विनिग्घायं आवज्जियव्वं, न लुभियव्वं, न तुसियव्वं, न हसियव्वं, न सइं च मइं च तत्थकुज्जा । पुणरवि सोइंदिएण सोचासद्दाइं अमणुन्न–पावकाइं, किंते ? अक्कोस–फरुस–खिंसण–अवमाणण–तज्जण–निब्भंछण–दित्तवयण–तासण–उक्कूजिय–रुन्न–रडिय–कंदिय निग्घुट्ठरसिय–कलुणविलवियाइं, अन्नेसु य एवमादिएसु सद्देसु अमणुन्न पावएसु न तेसु समणेण रूसियव्वं, न हीलियव्वं, न निंदियव्वं, न खिंसियव्वं, न छिंदियव्वं, न भिंदियव्वं, न वहेयव्वं न दुगुंछावत्तियाएलब्भा उप्पाएउं । एवं सोतिंदिय–भावणा भावितो भवति अंतरप्पा मणुन्नाऽमणुन्न–सुब्भि–दुब्भिरागदोस–पणिहियप्पा साहू, मण–वयण–कायगुत्ते संवुडे पणिहितिंदिए चरेज्ज धम्मं ॥ १ ॥

छाया–"इदञ्च परिग्रह विरमण–परिरक्षणार्थं प्रवचनं भगवता सुकथितमात्महितं प्रेत्यभाविकम्, आगमिष्यद्भद्रं, शुद्धं, न्यायोपेतमकुटिलमनुत्तरं सर्वदु:खपापानां व्युपशमनं, तस्येमा: पञ्चभावनाश्चरमस्य व्रतस्य भवन्ति परिग्रह-विरमण रक्षणार्थम् ।

प्रथमं-श्रोत्रेन्द्रियेण श्रुत्वा शब्दान् मनोज्ञभद्रकान् । कांस्तान् ?-वर मुरज-मृदङ्ग-पणव-दर्दुर-कच्छभी-वीणा-विपञ्ची-वल्लकी-वद्धीसक-सुघोष-नन्दी-सुस्वर परिवादिनी-वंश तूणक-पर्वक-तन्त्री-तल-ताल-तूर्य निर्घोष-गीतवाद्यम्, नट-नर्तक-जल्ल-मल्ल-मौष्टिक- विडम्बक-कथक- प्लवक- लासकाऽऽख्यायक-( आख्यायक )-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुम्बवीणिक-तालाऽऽचर-प्रकरणानि च बहूनि, मधुरस्वरगीत सुस्वराणि काञ्ची-मेखला-कलापक-प्रतरक-प्रहेरक- पादजालक-घण्टिका-किङ्किणी-रत्नोरुजालिका क्षुद्रिका-नूपुर-चरणमालिका-कनक-निगड जालक-भूषणशब्दान्, लीलाचङ्क्रम्यमाणोदीरितान् तरुणीजन-हसित-भणित-कलरिभित-मञ्जुलान्, गुण वचनानि च बहूनि मधुरजन भाषितानि, अन्येषु चैवमादिषु शब्देषु मनोज्ञकेषु न तेषु श्रमणेन सक्तव्यम्, न रक्तव्यम्, न गृद्धव्यम्, न मूर्च्छितव्यम्, न विनिर्घातमापत्तव्यम्, न लोभितव्यम्, न तोष्टव्यम्, न हसितव्यम्, न स्मृतिश्च मतिश्च तत्र कुर्यात्। पुनरपि श्रोत्रेन्द्रियेण श्रुत्वा शब्दान् अमनोज्ञपापकान्, कांस्तान् ?-आक्रोश-परुष-खिंसनाऽवमानन-तर्जन-निर्भर्त्सन-दीप्तवचन त्रासनोत्कूजित-रुदिताऽऽरटित-क्रन्दित-निर्घुष्ट-रसित-करुण-विलपितान्, अन्येषु चैवमादिकेषु शब्देष्वमनोज्ञपापकेषु न तेषु श्रमणेन रोषितव्यं, न हीलितव्यं, न निन्दितव्यं, न खिंसितव्यं, न छेत्तव्यं न भेत्तव्यं, न हन्तव्यं, न जुगुप्सा-वृत्तिका लभ्योत्पादयितुम्। एवं श्रोत्रेन्द्रियभावना-भावितो भवत्यन्तरात्मा मनोज्ञाऽमनोज्ञ-सुरभि-दुरभि-रागद्वेष प्रणिहितात्मा साधुर्मनो-वचन-कायगुप्तः संवृत्तः प्रणिहितेन्द्रियश्चरेद्धर्मम् ॥ १ ॥

अन्वय०—"( च ) और ( परिग्गहवेरमण-परिरक्खणट्ठयाए ) परिग्रह विरमण व्रत की रक्षा के लिये ( भगवया ) प्रभु महावीर ने ( इमं पावयणं ) यह प्रवचन ( सुकहियं ) अच्छी तरह कहा है ( अत्तहियं, पेच्चा भाविकं ) जो आत्महितकारी व परलोक में शुभ का कारण है ( आगमेसि भद्दं ) भविष्य में कल्याण कारक ( सुद्धं ) शुद्ध ( नेयाउयं ) न्याययुक्त ( अकुडिलं ) कुटिलता रहित ( अणुत्तरं ) सर्व श्रेष्ठ और ( सव्वदुक्ख-पावाण ) सब दुःख एवं पापों का ( विओसमणं ) उपशमन करने वाला है ( तस्स चरिमस्स वयस्स ) उस अन्तिम अपरिग्रह व्रत की ( इमा पंच भावना ) ये पांच भावनायें ( परिग्गहवेरमण-रक्खणट्ठयाए ) परिग्रह विरमण व्रत की रक्षा के लिये ( होंति ) हैं।

जैसे-( पढमं ) प्रथम भावना-( सोइंदिएण ) श्रोत्रेन्द्रिय से ( मणुण्णभद्दगाइं )

"मनोज्ञता के कारण सुन्दर (सद्दाइं) शब्दों को (सोचा) सुनकर, (किते ?) कौन से वे शब्द हैं ?

उत्तर-( वर मुरय- मुइंग- पणव- दद्दुर- कच्छभि- वीणा- विपंची-वल्लकि-वद्धीसक- सुघोसनंदि- सूसर- परिवादिणि-वंस-तूणक पव्वक-तंती-ताल-तुडिय-निग्घोस गीयवाइयाइं ) प्रधान मुरज-मर्दल मृदङ्ग, पणव-छोटा पडह, दर्दुर-चर्म से बंधे हुए मुख वाले कलश जैसा वाद्य विशेष, कच्छभि-वाद्य विशेष, वीणा, विपंची और वल्लकी-एक प्रकार की वीणा, वद्धीसक-एक प्रकार का वाद्य, सुघोषा-घण्टा, नन्दी-बारह प्रकार के तुर्य[1] का निर्घोष, सुसर परिवादिनी-वीणा वंश-बांसरी, तूणक और पर्वक-वाद्य का एक प्रकार, तन्त्री-वीणा विशेष, तल-हस्त तल, ताल-कास्य ताल इन सब वाद्यों के निर्घोष तथा सामान्य गीत और वाद्य को (य) और (नड-नट्टक-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिक-वेलंबक-कहक पवक-लासग-आइक्खक-लख-मख-तूण इल्ल-तुंब वीणिय-तालायर पकरणानि ) नट, नर्तक, जल्ल-बांस या डोरी पर खेलने वाले, मल्ल, मौष्टिक मल्ल, विडम्बक-विदूषक, कथा करने वाला, प्लवक-उछलने वाला, रास गाने वाले तथा पूर्वोक्त अर्थ वाले, लख, मख, तूण इल्ल, तुंबवीणिक और तालचर इनसे किये नाटक आदि प्रकरणों को तथा ( बहुणि महुर-सर-गीत सुस्सराणि ) बहुत से मधुर ध्वनि वाले गायकों के सुस्वर गीतों को 'सुनकर' फिर ( कंची-मेहला-कला वपत्तरक-पहेरक पाय जालक-घंटिय- खिंखिणि-रयणोरुजालिय-छुद्दिय-नेउर-चलण म लिय-कणग नियल-जाल भूसण-सद्दाणि ) कांची-कमर का भूषण कंदोरा, मेखला-उसी का एक भेद, कलापक-गरदन का आभरण, प्रतरक और प्रहेरक-आभरण विशेष, पाद जालक-पांव के नूपुर आदि आभरण, घण्टिका-घुंघरू, खिंखिनी छोटी घुंघुरी वाला भूषण, रत्नोरुजालक-रत्न सम्बन्धी जंघा के आभरण, क्षुद्रिका-एक प्रकार का आभरण नेउर-नेउर, चरण मालिका तथा कनक निगड-पैर-के आभरण विशेष, और जाल भूषण इन सबके शब्दों को जो ( लील चकम्म माणाणु दीरियाइं ) लीला से चलती हुई स्त्रियों के गमन से उत्पन्न हुए हैं, (तरुणी

१ तूर्य के बारह प्रकार—(१) भंभा, (२) मृदंग, (३) मार्दल (४) हुडुक्क, (५) तिलिमा, (६) करड, (७) कंसाल (८) काहल, (९) वीणा, (१०) वंश, (११) शंख, (१२) पणवक।

वयण- हसिय- भणिय- कलरिभित- मंजुलाइं ) रूपवती स्त्रियों के हास्य वचन, तथा स्वर के घोलना युक्त मधुर व सुन्दर शब्दों को ( गुणवयणाणि व बहूणि महुरजण-भासियाइं ) अथवा मधुर जन-प्रेमी जनों से बोले हुए बहुत से स्तुति वचनों को ( अन्नेसु य एवमादिएसु सद्देसु मणुण्ण-भद्दएसु ) और अन्य इस प्रकार के मनोहरता से शुभ रूप जो विशिष्ट शब्द हैं ( न तेसु समणेण सज्जियव्वं ) उन शब्दों में साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए ( न रज्जियव्वं ) राग नहीं करना चाहिए ( न गिज्झियव्वं ) गृद्धि-नहीं मिलने वाले शुभ शब्दों की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए ( न मुज्झियव्वं ) न बेभान होकर मोह करना चाहिए, ( न विनिग्घायं आवज्जियव्वं ) न उसके लिये अपना व परका नाश करना चाहिए ( न लुभियव्वं ) न लोभ करना चाहिए ( न तुसियव्वं ) प्राप्ति होने पर प्रसन्न भी नहीं होना चाहिए ( न हसियव्वं ) न विस्मय से हास्य करना चाहिए ( न सइं च मइं च तत्थकुज्जा ) और न वहां-उन शब्दों में-स्मृति या मति अर्थात् स्मरण या उनका विचार भी नहीं करना चाहिए ( पुणरवि ) फिर भी शब्द गत विचार को कहते हैं ( सोइंदिएण अमणुण्ण पावकाइं सद्दाइं सोच्चा ) श्रोत्र इन्द्रिय से अमनोज्ञ और बुरे शब्दों को सुनकर [ रोष आदि नहीं करना ] ( किं ते ? ) कौन से वे अमनोज्ञ शब्द हैं ?,

उत्तर-( अक्कोस-फरुस-खिसण-अवमाणण- तज्जण- निब्भंसण- दित्तवयण- तासण-उक्कूजिय-रुण्ण-रडिय-कंदिय-निग्घुट्ठ रसिय-कलुण-विलवियाइं ) आक्रोश मरजा आदि प्रकार की गाली, परुष वचन-मूर्ख आदि कहना, खिसन-निन्दा, अपमान और तर्जना-भय सूचक शब्द, निर्भर्त्सना-सामने से हट जा इत्यादि तिरस्कार वचन दीप्त-क्रोध युक्त, त्रासकारी, उत्कूजित-अव्यक्त शोर की ध्वनि, रोने के शब्द रडित-रडने के शब्द, क्रन्दन-वियोग वगैरह का आक्रन्दन निघुष्ट-निर्घोष रूप, रसित-जानवर के समान चीत्कार, करुणा उत्पन्न करने वाले और विलाप रूप, ( अन्नेसु य एवमाइएसु सद्देसु अमणुण्ण पावएसु ) और इस प्रकार के अन्य अमनोज्ञ जो शब्द हैं ( न तेसु समणेण रूसियव्वं ) उन शब्दों में साधु को रोष नहीं करना चाहिए (न हीलियव्वं) हीलना नहीं करनी चाहिए ( न निंदियव्वं ) निन्दा नहीं करनी चाहिए ( न खिंसियव्वं ) लोक समक्ष उनको बुरा नहीं कहना चाहिए ( न छिंदियव्वं ) अमनोज्ञ शब्द के कारण द्रव्य का छेदन नहीं करना चाहिए

(नभिंदियव्वं) न उसका भेदन-दो भाग करना चाहिए (न वहेयव्वं) न वध-हनन-करना चाहिए (न दुगुंछा वत्तियाए लब्भा उप्पाएउं) अपने या दूसरे के हृदय में जुगुप्सा उत्पन्न करनी भी योग्य नहीं है (एवं) इस प्रकार (सोइंदिय भावणा भावितो) श्रोत्र इन्द्रिय की भावना से युक्त (अंतरप्पा) अन्त:करण वाला (मणुन्नाऽमणुन्नऽ सुब्भि-दुब्भि-राग-दोस-पणिहियप्पा) मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूप वाले शुभाऽशुभ शब्दों में राग द्वेष के प्रणिधान-संवर-वाला-साधु (मण-वयण-कायगुत्ते) मन वाणी और काय से गुप्त (संवुडे) संवरवान् (पणिहिंतिंदिए) गुप्त इन्द्रिय वाला होकर (चरेज्ज धम्मं) धर्म का आचरण करे ॥ १ ॥

मूल-"बितियं-चक्खिंदिएणं पासिय रूवाणि मणुन्नाइं भद्दकाइं, सचित्ताऽचित्त-मीसकाइं, कट्ठे पोत्थे य, चित्तकम्मे, लेप्पकम्मे, सेले य, दंतकम्मे य, पंचहिं वण्णेहिं अणेग संठाण संठियाइं, गंथिम वेढिम-पूरिम-संघातिमाणि य मल्लाइं बहुविहाणि य अहियं नयण-मणसुहकराइं, वण संडे पव्वते य गामागरनगराणि य खुद्दि यपुक्खरिणि-वावी-दीहियगुंजा लिय- सरसर पंतिय-साग-बिल पंतिय-खादिय-नदी-सर-तलाग-वप्पिणी-फुल्लुप्पल-पउम-परिमंडियाभिरामे, अणेग- सउणगण- मिहुणविच-रिए, वर मंडव-विविह-भवण-तोरण-चेतिय-देवकुल-सभ-प्पवा वसह-सुकय सयणासण-सीय-रह-सयड-जाण-जुग्ग-संदण-नर नारिगणे य, सोम पडिरूवदरिसणिज्जे, अलंकितविभूसिते, पुव्वकयतवप्पभाव-सोहग्ग संपउत्ते, नड-नट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंबग-कहक-पवग-लासग-आइ क्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंबवीणिय-तालायर पकरणाणि य बहूणि सुकरणाणि, अन्नेसु य एवमादिएसु रूवेसु मणुन्नभद्दएसु न तेसु समणेण सज्जियव्वं, न रज्जियव्वं, जाव न सइंच मइं च तत्थकुज्जा। पुणरवि चक्खि दिएण पासियरूवाइं अमणुन्नपावकाइं, किंते ?-गंडि-कोढिक-कुणि-उदरि कच्छुल्ल-पइल्ल-कुज्ज-पंगुल-वामण-अधिल्लग-एगचक्खु-विणिहय-सप्पि-

सप्पग-मारिरोग-पीलियं, विगयाणि य मयक कलेवराणि, सकिमिण कुहियं च दव्वरासिं, अन्नेसु य एवमादिएसु अमणुन्न पावतेसु न तेसु समणेण रू-सियव्वं, जाव न दुगु छावत्तियावि लब्भा उप्पातेउ । एवं चक्खिंदिय भावणा-भावितो भवति अंतरप्पा जाव चरेज्ज धम्मं ॥ २ ॥

ततियं घाणिंदिएण अग्घाइय-गंधाणि मणुन्न भद्दगाइं, किंते ?–जलय थलय-सरस-पुप्फ–फल–पाण–भोयण–कुट्ठ-तगर-पत्त चोय-दमणक –मरुय-एलारस–पिक्कमसि–गोसीस–सरसचंदण–कप्पूर– लवंग– अगर–कुंकुम–कक्कोल उसीर–सेय चंदण–सुगंध–सारंग–जुत्ति–वर धूववासे, उउय पिंडिम णिहारिम–गंधिएसु अन्नेसु य एवमादिएसु गंधेसु मणुन्न–भद्दएसु न तेसु समणेण सज्जियव्वं, जाव न सतिं च मई च तत्थ कुज्जा । पुणरवि घाणिंदि-एण अग्घातिय गंधाणि अमणुन्न पावकाइं । किंते ! अहिमड अस्समड हत्थिमड–गोमड–विग सुणग–सियाल–मणुय–मज्जार–सीह दीविय–मय-कुहिय-विणट्ठ-किविण बहुदुरभि-गंधसु अन्नेसु य एवमादिएसु गंधेसु अम-णुन्न-पावएसु न तेसु समणेण रूसियव्वं, जाव पणि हिय-पंचिंदिए चरेज्ज धम्मं ॥ ३ ॥

चउत्थं जिब्भिंदिएण साइय रसाणि उ मणुन्नभद्दकाइं, किंते !–उग्गा-हिम विविह-पाण भोयण-गुलकय-खंड कय तेल्ल घयकय-भक्खेसु बहुविहेसु लवणरस-संजुत्तेसु महु-मंस-बहुप्पगार मज्जिय- निट्ठाणग दालियंब सेहंब दुद्ध-दहि-सरय मज्ज-वर वारुणी-सीहु-काविसायण-सायट्ठारस- बहुप्पगारेसु भायणेसु य मणुन्न-वण्ण-गंध-रस फास-बहु दव्व-संभितेसु अन्नेसु य एवमा-दिएसु रसेसु, मणुन्न-भद्दएसु न तेसु समणेण सज्जियव्वं, जाव न सइं च मइं च तत्थ कुज्जा । पुणरवि जिब्भिंदिएण साधिय रसाति अमणुन्नपावगाइं, किं ते !–अरस विरस-सीय–लुक्ख णिज्जप्प-पाण-भोयणाइं, दोसीण वावन्न

कुहिय-पूइय-अमणुन्न-विणट्ठ-पसूय-बहुदुब्भिगंधियाइं, तित्त-कडुय-कसाय-अंबिल रस-लिंडनीरसाइं, अन्नेसु य एवमाइएसु रसेसु अमणुन्न-पावएसु न तेसु समणेण रूसियव्वं, जावचरेज्जधम्मं ॥ ४ ॥

छाया-"द्वितीयं चक्षुरिन्द्रियेण दृष्ट्वा रूपाणि मनोज्ञानि भद्रकाणि सचित्ताऽचित्त-मिश्रकाणि काष्ठे पुस्ते च चित्रकर्मणि, लेप्यकर्मणि, शैले च दन्तकर्मणि पञ्चभिर्वर्णैरनेक संस्थान-संस्थितानि, ग्रन्थिम-वेष्टिमपूरिम-संघातिमानि च माल्यानि बहुविधानि, चाधिकं नयनमन सुखकराणि वनखण्डान् पर्वतांश्च ग्रामाऽऽकर-नगराणि च, क्षुद्रिका-पुष्करणी-वापी-दीर्घिका-गुञ्जालिका-सरः-सर पङ्क्तिका-सागर बिल पङ्क्तिका-खातिका-नदी-सरस्तटाक-वप्रिणी-फुल्लोत्पल- पद्मपरिमण्डिताऽभिरमाणि, अनेक-शकुनगण-मिथुन विरचितान्, वरमण्डप-विविध-भवन-तोरण चैत्य-देवकुल- सभा-प्रपाऽवसथ-शयनाऽऽसन शिबिका-रथ-शकट-यान-युग्य-स्यन्दन-नरनारीगणांश्च दर्शनीयान्, अलङ्कृत-विभूषितान्, पूर्वकृत-तप-प्रभाव-सौभाग्य-सम्प्राप्तान्, नट-नर्तक-जल्ल-मल्ल-मौष्टिक-विडम्बक-कथक-प्लवक-लासकाऽऽख्यायक-लङ्ख-मंख-तूणइल्ल-तुम्बवीणिक-तालाचर-प्रकरणानि च बहूनि सुकरणानि, अन्येषु चैवमादिकेषु रूपेषु मनोज्ञभद्रकेषु न तेषु श्रमणेन सञ्जितव्यं, न रक्तव्यं, यावन्न स्मृतिञ्च मतिञ्च तत्र कुर्यात्। पुनरपि चक्षुरिन्द्रियेण दृष्ट्वा रूपाणि-अमनोज्ञपापकानि, कानि तानि ?-गण्डि-कुष्ठि-कुणिउदरि-कच्छुल्ल-कण्डूतिमच्छल्ली पद-कुब्ज-पंगु वामनान्धकैकचक्षु-र्विनिहताक्ष-सर्पिशल्यक- व्याधिरोगपीडितानि, विकृतानि च मृतक कलेवराणि, सकृमि-कुथित-द्रव्यराशिम् अन्येषु चैवमादिकेषु अमनोज्ञपापकेषु न तेषु श्रमणेन रोषितव्यं, यावन्नजुगुप्सावृत्तिरपि लभ्योत्पादयितुम्। एवं चक्षुरिन्द्रिय भावना-भावितो भवत्यन्तरात्मा यावच्चरेद्धर्मम्।

तृतीयं-घ्राणेन्द्रियेणाघ्रायगन्धान् मनोज्ञभद्रकान्, कांस्तान् ?-जलज-स्थलज-सरस पुष्प-फल-पान-भोजन-कुष्ठ-तगर-पत्र- त्वक्-दमनक- मरुकैलारस-पक्वमासी-गोशीर्ष-सरस चन्दन-कर्पूर-लवङ्गागरु-कुङ्कुम-कक्कोलोशीर-श्वेत चन्दन-सुगन्ध-सारङ्ग-युक्ति-वर धूपवासान् ऋतुज- पिण्डिम-निर्हारिम-गान्धिकेषु अन्येषु चैवमादिकेषु गन्धेषु मनोज्ञभद्रकेषु न तेषु श्रमणेन सञ्जितव्यं, यावन्न स्मृतिं च मतिं च तत्र कुर्यात्। पुनरपि घ्राणेन्द्रियेण आघ्राय गन्धान् अमनोज्ञ पापकान्, कांस्तान् ?

१ अहिमृताऽश्वमृत-हस्तिमृत-गोमृत-वृक-शुनक-श्रृगाल-मनुज-मार्जार-सिंह-द्वीपिक

मृत-कुथित-विनष्ट-कृमि-बहुदुरभिगन्धेषु अन्येषु चैवमादिकेषु गन्धेषु अमनोज्ञपापकेषु न तेषु श्रमणेन रोषितव्यं, यावत् प्रणिहित-पञ्चेन्द्रियश्चरेद्धर्मम् ।। ३ ।।

चतुर्थं-जिह्वेन्द्रियेण स्वादयित्वा रसांस्तु मनोज्ञभद्रकान्, कांस्तान् ?-अवगाहिम-विविध-पान भोजन-गुडकृत-खण्डकृत-तैलघृत-कृतभक्ष्येषु बहुविधेषु, लवण रससंयुक्तेषु मधु-मांस-बहुप्रकार-मज्जिका-निष्ठानक-दालिकाम्ल, सैन्धाम्ल, दुग्ध दधि-सरक-मद्य-वर वारुणी-सीधु-कापिशायन-शाकाष्टादश-बहुप्रकारेषु-भोजनेषु च, मनोज्ञ वर्ण-गंध रस-स्पर्श बहुद्रव्य सम्भृतेषु, अन्येषु चैवमादिकेषु रसेषु मनोज्ञभद्रकेषु न तेषु श्रमणेन सक्तितव्यं, यावत् न स्मृतिं च मतिं च तत्र कुर्यात् । पुनरपि जिह्वेन्द्रियेण स्वादयित्वा रसान् मनोज्ञपापकान् , कांस्तान् ? अरस विरस-शीत-रूक्ष-निर्याप्यपान-भोजनानि, दोषान्न-व्यापन्न-कुथित-पूतिकाऽमनोज्ञ विनष्टप्रसूत-बहुदुरभिगन्धान् , तिक्त-कटुक-कषायाम्ल-रस-लिन्द्रनीरसान्, अन्येषु चैवमादिकेषु रसेषु अमनोज्ञपापेषु न तेषु श्रमणेन रोषितव्यं यावच्चरेद्धर्मम् ।। ४ ।।

अन्य० ( बितियं ) दूसरी भावना-चक्षुरिन्द्रिय संवर रूप जैसे-( चक्खिदिएण ) चक्षु इन्द्रिय से ( मणुन्नाई ) मनोज्ञ ( भद्दकाई ) सुन्दर-शुभ ( सचित्ताऽचित्त-मीसकाई ) सचित्त, अचित्त तथा मिश्र द्रव्य-सम्बन्धी ( रूवाणि ) रूपों को ( पासिय ) देखकर, जो रूप-( कट्ठे, पोत्थे ) काष्ठ के पटिया पर, वस्त्र पर ( य ) और ( चित्तकम्मे ) चित्रकर्म में ( लेप्पकम्मे ) गोबर मिट्टी आदि के लेप से बनाये हुए लेप्यकर्म में ( सेले य ) पत्थर पर और ( दंतकम्मे ) दांत की कोरणी में ( पंचहिं वण्णेहिं अणेग संठाण संठियाइं ) पांचवर्ण में युक्त व अनेक प्रकार के आकार वाले ( गंथिम ) गूंथकर माला की तरह बनाए हुए ( वेढिम-पूरिम-संघातिमाणि ) वेष्टिम-वेष्टन से बनाये हुए, पूरिम-चिपड़ी आदि भरकर बनाये गये, तथा संघातिम-फूल आदि को एक दूसरे से मिलाकर उनके समूह से बनाये हुए ( य ) और ( मल्लाणि बहुविहाणि य ) बहुत प्रकार के माल्य-माला सम्बन्धी रूप, और ( अहियं नयण-मण-सुहकराइं ) नेत्र व मनको अधिक सुखदायी ( वणसंडे ) वनखंड ( पव्वए ) पर्वत और ( गामागर-नगराणि ) ग्राम, आकर तथा नगरों को ( य ) फिर ( खुद्दिय-पुक्खरिणि-वावी-दीहिय-गुंजालिय-सर-सरपंतिय-सागर-बिलपंतिय-खातिय-नदी-सर-तलाग-वप्पिणी-फुल्लुप्पल-पउम-परिमंडियाभिरामे ) क्षुद्रिका-तलाई, पुष्करणी-कमलयुक्त वापी, वापी-चौकोन बावड़ी, दीर्घिका-लम्बी,

गुंजालिका-चक्रसारणी, सर. सर: पंक्ति-परस्पर पानी के सम्बन्ध वाले अनेक सरोवरों की पंक्ति, सागर-समुद्र, बिलपंक्ति-कूपश्रेणि या लोह आदि की खान में खोदे हुए खड्डों की श्रेणि, खातिका-खाई, नदी, सर-बिना खोदे सहज बना हुआ जलाशय, तडाग-तालाब, और वप्पिणी-केदार-पानी की क्यारी विकसित नीलोत्पल तथा सामान्य कमलों से मण्डित एवं जो रमणीय हैं ( अणेग-सउण गण-मिहुण-विचरिए ) अनेक प्रकार के पक्षि समूह के मिथुन-जोडे की गमना-गमन क्रिया से युक्त ( वरमंडव-विविह भवण-तोरण-चेतिय-देवकुल-सभ-प्पवा-वसह-सुकय-सयणासण-सीय-रह- सयड- जाण- जुग्ग- संदण- नर- नारिगणे ) उत्तम मण्डप, अनेक प्रकार के भव्य भवन, तोरण, चैत्य-चितास्थान पर बने हुए स्मारक, देवकुल-देवालय, सभा-लोकों के बैठने का स्थान, प्रपा-प्याऊ, आवसथ-परिव्राजकों का आश्रम, सजाए हुए शयन-पलंग आदि, आसन-सिंहासन आदि, शिविका-ऊपर से ढकी हुई पालखी, रथ, गाडी, यान और युग्य-कुछ विशेषता वाले वाहन, स्यन्दन-घुघरूदार रथ या सांग्रामिकरथ, और स्त्री पुरुषों का समूह ( सोम-पडिरूव दरिसणिज्जे ) जो सौम्य-प्रत्येक दर्शक के अनुकूल रूपवाले और दर्शनीय हैं ( अलकित-विभूसिते ) भूषणों से अलकृत और वस्त्र आदि से विभूषित हैं ( पुव्वकय-तवप्पभाव-सोहग्ग-सपउत्ते ) पूर्व जन्म में की हुई तपस्या के प्रभाव से प्राप्त सौभाग्य वाले ( नड-नट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंवग-कहक-पवग-लासग-आइक्खग-लख-मंख-तूण इल्ल-तुव वीणिय-तालायर-पकरणाणि य ) और नट, नर्तक, जल्ल, मल्ल, मौष्टिक, विदूषक, कथा वाचक, प्लवक, रास कथक, वार्ता कहने वाला, चित्र पट लेकर घूमने वाला, बांस पर नाचने वाला, तथा तूण इल्ल, तुंबवी-णिक और तालचर इनके विविध प्रयोग ( बहूणि सुकरणाणि ) बहुत से सुन्दर कार्यों को, देखकर आसक्त नहीं होना चाहिए। अन्नेसु य एवमादिएसु रूवेसु मणुन्न भद्दएसु ) और इस प्रकार के अन्य ऐसे मनोज्ञ व भद्ररूपों में ( न तेसु समणेणसज्जि यव्व ) साधु को उन पूर्वोक्त शब्दों में तल्लीन नहीं होना चाहिए ( नरज्जियव्व न राग करना चाहिए ( जाव न सइंच, मइच तत्थ कुज्जा ) यावत् स्मृति और मति-विचार भी उनमें नहीं करना चाहिए ( पुणरवि ) फिर भी चक्षुरिन्द्रिय विषय को कहते हैं- ( चक्खिदिएण ) चक्षु इन्द्रिय से ( अमणुन्न-पावकाइ ) अमनोज्ञ व पापकारी ( पा मिय रूवाइ ) रूपों को देखकर रोष आदि नहीं करना, ( किंते ? कौन से वे अम-

नोज्ञ रूप हैं ? ( गंडि-कोढिक-कुणि-उदरि-कच्छुल्ल- पइल्ल-कुज्ज-पंगुल-वामण अंधिल्लग-एगचक्खु-विणिहय-सप्पि-सल्लग-वाहिरोग-पीडियं ) वात पित्त कफ और सन्निपात से होने वाले गंडरोग वाला-गंडमालायुक्त, कुष्ठ-अठारह प्रकार के कुष्ठ रोग वाला, कुणि-गर्भ दोष से जिसका एक हाथ और एक पैर छोटा है, उदरी जलोदर युक्त कच्छुल्ल-खुजली के रोग वाला, पइल्ल-श्लीपद रोग वाला, कुब्ज-कुबड़ पंगुल-पंगु-चलने में असमर्थ, वामन अत्यन्त छोटे शरीर वाला, अन्धक-जन्मान्ध, एक चक्षु-काणा, विनिहत चक्षु जन्म के बाद किसी प्रकार के आघात से अन्धा या काणा बना हो, सर्पि शल्यक पीठ के बलपर सरक के या लकड़ी के सहारे चलने वाला, अथवा पिशाच की तरह दुष्ट मद से भरा हुआ तथा शूलादि शल्यवाला और व्याधि एवं रोग से पीड़ित, इनमें से किसी को ( विगयाणि य मयककलेवराणि ) और विकृत-बिगड़े हुए मृतक के कलेवरों को ( सकिमिणकुहियं च दव्वरासिं )- कीड़ों से युक्त और सड़े हुए द्रव्य राशि को देखकर ( अन्नेसु य एवमाइएसु अमणुन्न पावकएसु ) और इस प्रकार के अन्य अमनोज्ञ पापकारी रूपों में ( न तेसु समणेण रूसियव्वं ) उन सब अमनोज्ञ रूपों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए ( जाव न दुगुंछावत्तिया वि लब्भा उप्पाएउं ) यावत् स्वपर की जुगुप्सावृत्ति-घृणा भी उत्पन्न करना योग्य नहीं है ( एवं चक्खिदिय भावणा भावितो ) इस प्रकार चक्षु इन्द्रिय की भावना से युक्त ( अंतरप्पा ) अन्तःकरण वाला मुनि ( भवति ) होता है ( जाव चरेज्ज धम्मं ) यावत शुभ होकर धर्म का आचरण करे ॥ २ ॥

( ततियं ) तीसरी भावना—घ्राणेन्द्रिय संवर रूप, जैसे- घाणिदिएण अग्घा इय गंधाति मणुन्न-भद्दगाई घ्राण इन्द्रिय से मनोज्ञ व शुभ गंधों को सूंघकर ( किं ? ) वे सुगन्ध कौनसे हैं ?

उत्तर-( जलय-थलय-सरस पुप्फ फल-पाण भोयण कुट्ठ- तगर- पत्त-चोय दमणग-क मरुय-एलारस-पिक्क मंसि गोसीस-सरस चंदण-कप्पूर-लवंग-अगर कुंकुम-कक्कोल-उसीर-सेय चंदण सुगंध-सारंग-जुत्तिवर-धूववासे ) जल एवं स्थल में उत्पन्न होने वाले सरस फूल, फल पान तथा भोजन कुष्ठ-उत्पलकुष्ठ, तगर, पत्र-तमालपत्र चोय-सुगन्धी त्वचा दमनक-पुष्प विशेष, मरुक-मरुआ, एलारस इलायची का रस पिक्कमंसी-पका हुआ मांसी नामक गन्ध द्रव्य, गोशीर्ष नामक सरस चन्दन कपूर, लवंग-लौंग अगर कुंकुम कक्कोल-शीतलाकार सुगन्धि फल

उशीर-नीरणी वनस्पति के मूल, श्वेत चन्दन, श्री खण्ड, अथवा श्वेद-सुगन्धि रस और मलयागिरी, तथा सुगन्धि युक्त प्रधान अङ्गो के योग वाला उत्तम धूप वाम्म (उउय- पिडिम- णिहारिमि- गंधिएसु ) जो ऋतु के अनुकूल-पिण्डमय और वायु से उडने वाले गन्ध से सुगन्धि युक्त है ( अन्नेसु य एवमादिसु गंधेसु मणुन्नभद्दएसु ) और इस प्रकार के अन्य मनोज्ञ तथा भद्र गधों में ( न तेसु समणेण सज्जियव्वं ) इनमे साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए ( जाव सतिंच मइंच तत्थ कुज्जा ) यावत् वहां-उन सुगन्धियों मे स्मृति वा विचार भी नही करना चाहिये ( पुणरवि ) फिर भी घ्राणेन्द्रिय के विषय को कहते हैं-( घाणिंदिएण अग्घातिय गधाणि अमणुन्न-पावकाई ) घ्राणेन्द्रिय से अमनोज्ञ और बुरे गन्धद्रव्यों को सू घकर ( किंते ? ) कौन से वे दुर्गन्धिद्रव्य ?

उत्तर-( अहिमड- अस्समड- हत्थिमड- गोमड- विग-सुणग-सियाल-मणुय-मज्जार-सीह-दीविय-मय-कुहिय-विणट्ठ-किविण-बहुदुरभिगधेसु) सर्प का कलेवर घोड़े का कलेवर, हाथी का मृतक, गौ का कलेवर, वृक, व्याघ्र, कुत्ता, शृगाल, मनुष्य, मार्जार-बिल्ली, सिंह और चित्ता, इन सवके कलेवर जो सडे हुए, पूर्व आकार से नष्ट तथा कीड़े युक्त हैं और अत्यन्त दुर्गन्धि वाले हैं ( अन्नेसुय एवमादिएसु गधेसु अमणुन्न पावएसु ) और इस प्रकार के अन्य ऐसे अमनोज्ञ गंधों मे ( न तेसु समणेण रूसियव्व उन अशुभ गन्धों मे साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए । ( जाव पणिहिय-पचिंदिए चरेज्ज धम्म ) यावत् पाचो इन्द्रियों से संयम युक्त मुनि धर्म का आचरण करे ॥ ३ ॥

( चउत्थं ) चौथी भावना-रसनेन्द्रिय सवर रूप, जैसे-जिब्भिदिएण साइय रसाणि उ मणुन्न-भद्दकाइं ) जिह्वा इन्द्रिय से मनोज्ञ व सुन्दर रसो का आस्वाद करके 'आसक्त नहीं होना' ( किंते ? ) वे मनोज्ञ रस कौन से हैं ?

उत्तर-( उग्गाहिम- विविह- पाण- भोयण- गुलकय- खडकय- तेल्ल-घय-कय भक्खेसु ) घी व तेल आदि मे डुबा कर पकाये गये पकान्न-खाजे आदि, अनेक प्रकार के पानक-द्राक्षापान आदि और भोजन, गुड़ या सक्कर के बनाये हुए, तेल अथवा घी के बने हुए मालपूआ आदि पदार्थों में ( बहुविहेसु लवण रस-सजुत्तेसु ) जो अनेक प्रकार के लवण रस से सयुक्त हैं। ( महु-मस-बहुप्पागार-मज्जिय-निट्ठाणग-दालियंब-सेहंब-दुद्ध-दहि-सरय-मज्ज-वर वारुणी-सीहुका-विसायण--

सापट्ठारस बहुप्पगारेसु ) मधु, मांस अनेक प्रकार की मज्जिका, निष्ठानक-अधिक मूल्य स बना हुआ, शालिकाम्ल-खट्टी वस्तु, सैन्धाम्ल-पदार्थ सम्मिश्र स खट्टे किये गये रायता आदि, दूध, दही, सरक, गुड़ और धातकी से बना हुआ मद्य, उत्तम वारुणी और सीधु का तथा पीशायन-एक प्रकार की मदिरा, तथा अठारह प्रकार क शाक वाले ऐसे अनेक प्रकार के ( मणुण्ण-वण्ण-गंध-रस-फास-बहुदब्ब-संभिवेसु भोयणेसु ) मनोज्ञ वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श युक्त अनेक द्रव्यों से बने हुए भोजनों में (अन्नेसु य एवमादिएसु रसेसु मणुण्ण भद्दएसु) और इस प्रकार के अन्य ऐसे मनोज्ञ सुन्दर रसों में ( नतसु समणेण सज्जियव्वं ) उन शुभ रसों में साधु को आसक्ति नहीं करनी चाहिए ( जाव न सइंच मइंच तत्थ कुज्जा ) यावत् स्मृति व बुद्धि भी वैसे भाजन में नहीं करना ( पुणरवि ) फिर भी जिह्वा इन्द्रिय के विषय को कहते हैं-( जिब्भिंदिएण सादिय रसाणि अमणुण्ण-पावगाई ) जिह्वेन्द्रिय से अम नोज्ञ व बुरे रसों का आस्वाद करके ( किसे ? ) वे अशुभ कौन से ?,

उत्तर-( अरस-विरस-सिय-लुक्ख-णिज्जप्प-पाण भोयणाई ) रस से रहित- हिंग आदि स असत्कृत-विरस पुराना होने से विरस, शीत ठंडे, रूखे और निर्वाह करने में असमर्थ पान भोजन को ( दासीण-वाव न कुहिय-पूइय अमणुण्ण विणट्ठ पसूय बहु दुब्भिगंधियाई ) रात के वासी, व्यापन-रंग बदले हुए, सड़े हुए तथा अपवित्र होने से जो अमनोज्ञ व अत्यन्त विकृत दशा को प्राप्त हैं, अतएव उनसे उत्पन्न बहुत दुर्गन्ध वाले हैं (तित्त-कडुय-कसाय-अंबिल रस, लिंडनीरसाई) तीखा, कटु-कडुआ, कषायला खट्टा, लिण्ड-शैवाल रहित पुराने जल की तरह और नीरस पदार्थों को (अन्नेसु य एवमादिएसु रसेसु अमणुण्ण-पावएसु ) और इस प्रकार के अन्य ऐसे अशुभ रसों में ( न तेसु समणेण रूसियव्वं ) उन अशुभ रसों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए ( जाव चरेज्ज धम्म ) यावत् इन्द्रियों से गुप्त होकर धर्म का आचरण करना चाहिये ॥ ४ ॥

मूल-" पंचमगं-फासिंदिएण फासिय फासाइं मणुण्णभद्दकाइं, किंते?- दग-मंडय-हार-सेय चंदण-सीयल-विमलजल-विविह कुसुम-सत्थर- ओसीर-मुत्तिय-मुणाल-दोसिणा-पेहुण-उक्खेवग-तालियंट- वीयणग- जणियसुह-सीदले य पवणे, गिम्हकाले सुहफासाणि य बहूणि सयणाणि

आसणाणि य पाउरणगुणेय सिसिर काले अंगार-पतावणा य आयव-निद्ध-मउय-सीय-उसिण-लहुया यजे उदु सुहफासा, अंगसुह निव्वुइकरा ते, अन्नेसु य एवमादिसेसु फासेसु मणुन्न भद्दएसु न-तेसु समणेण सज्जियव्वं, न रज्जियव्वं, न गिज्झियव्वं, न मुज्झियव्वं, न विणिग्घायं आवज्जियव्वं, न लुभियव्वं, न, अज्झोव वज्जियव्वं, न तूसियव्वं, न हसियव्वं, न सतिंच मतिंच तत्थकुज्जा। पुणरवि-फासिंदिएण फासिय फासाति अमणुन्न पाव काइं, किंते?-अणेगवध-बंध-तालणंकण-अतिभारारोवणए, अंग भंजण-सूईनख-प्पवेस-गायपच्छणण- लक्खारस-खार-तेल्ल- कलकलंत-तउअ-सीसक-काललोह-सिंचण-हडिबंधण-रज्जुनिगल-संकल- हत्थंडुय- कुंभि पाक-दहण-सीहपुच्छण-उव्वंधण-सूलभेय-गयचलण-मलण- करचरण-कन्न-नासोट्ठ-सीसछेयण-जिब्भंच्छण-वसण-नयण-हियय- दंत- भंजण-जोत्त-लय-कसप्पहार-पाद-पण्हि-जाणु-पत्थरनिवाय- पीलण- कवि-कच्छु-अगणि-विच्छुयडक-वायातव-दंस-मसक निवाते, दुट्ठणिसेज्जदुनि सीहिय-दुब्भि-कक्खड-गुरु-सीय-उसिण-लुक्खेसु, बहुविहेसु अन्नेसु य एव-माइएसु फासेसु अमणुन्न पावकेसु न तेसु समणेण रूसियव्वं, न हीलियव्वं, न निंदियव्वं, न गरहियव्वं, न खिंसियव्वं, न छिंदियव्वं, न भिंदियव्वं, न वहेयव्वं, न दुगुंछावत्तियं च लब्भा. उप्पाएउं। एवं फासिंदिय भावणा भावितो भवति अंतरप्पा मणुन्नामणुन्न-सुब्भि-दुब्भि-राग-दोस-पणिहियप्पा साहू, मण-वयण-कायगुत्ते संवुडे पणिहितिंदिए चरिज्ज धम्मं॥ ५॥

एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं इमेहिं पंचहि वि. कारणेहिं मण-वय-काय-परिरक्खिए एहिं निच्चं आमरणंतं च एस. जोगो नेयव्वो, धितिमया मतिमया अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो सुद्धो सव्व-जिणमणुन्नातो। एवं पंचमं संवरदारं फासियं

पालियं साहियं तीरियं किट्टियं अणुपालियं आणाए आराहियं भवति। एवं नायमुणिणा भगवया पन्नवियं, परूवियं, पसिद्धं, सिद्धं, सिद्धवरसासण मिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं पंचमं संवरदारं सम्मत्तं त्तिबेमि। एयाति वयाइं पंचवि सुव्वय-महव्वयाइं, हेउसय-विचित्त पुक्कलाइं, कहियाइं, अरिहंत सासणे पंच समासेण संवरा, वित्थरेणउ पणवीसति समिय-सहिय-संवुडे, सया जयण-घडण-सुविसुद्ध-दंसणे एए अणुचरिय संजते चरम सरीरधरे भविस्सती ति। ९। २९।

छाया—"पञ्चमकं-स्पर्शेन्द्रियेण स्पृष्ट्वा स्पर्शान् मनोज्ञभद्रकान्, कान्? उदक मण्डप-हार-श्वेतचन्दन-शीतल विमलजल विविधकुसुम-संस्तरोशीर-मौक्तिक मृणाल-ज्योत्स्ना-प्रदोषे-, मयूर पुच्छ )-तालवृन्त-व्यजनक-जनित-सुख शीतलांश्च पवमान, ग्रीष्मकाले सुखस्पर्शान् च, बहूनि शयनान्यासनानि च, प्रावरण गुणान् च, शिशिरकालेऽङ्गार-प्रतापना च, आतपस्निग्धमृदुक-शीतोष्ण-लघुकाश्च ये ऋतुसुख-स्पर्शा अङ्गसुख-निर्वृतिकरास्तान्, अन्येषु चैवमादिकेषु स्पर्शेषु, मनोज्ञभद्रकेषु न तेषु श्रमणेन सक्तव्यं, न रक्तव्यं, न गर्धितव्यं, न मूर्च्छितव्यं न विनिर्घातमापत्तव्यं, न लुभितव्यं, नाध्युपपत्तव्यं, न तोषितव्यं न हसितव्यं, न स्मृतिं च मतिं च तत्र कुर्यात्। पुनरपि स्पर्शेन्द्रियेण स्पृष्ट्वा स्पर्शान् अमनोज्ञ-पापकान्, कान्?-अनेक-वध-बन्ध-ताडनाङ्कनातिभारारोपणान्, अङ्गभञ्जन-सूचीनख प्रवेश-गात्रप्रतक्षण-क्षारतैल-कलकल-त्रपु-सीसक-काल लोह सिञ्चन हडिबन्धन रज्जुनिगड शृङ्खला-हस्तान्दुक-कुम्भीपाक-दहन सिंह पुच्छ उद्बन्धन शूलभेद गजचरण मलन कर चरण-कर्ण-नासिकौष्ठ शीर्ष-दशन-जिह्वा च्छेदन-वृषण-नयन-हृदय दन्त-भञ्जन-योक्त्र लता-कश-प्रहार पाद-पार्ष्णि जानु प्रस्तर निपात पीडन-कपिकच्छु अग्नि वृश्चिकदंश-वातातप-दंशमशक निपातान् ( स्पृष्ट्वा ) दुर्निषद्यान् दुर्निषीधिका ( स्पृष्ट्वा ) दुरभि कर्कश-गुरु शीतोष्ण रूक्षेषु, बहु विधेषु अन्येषु चैवमादिकेषु स्पर्शेष्वमनोज्ञ पापकेषु न तेषु श्रमणेन रोषितव्यं, न हीलितव्यं न निन्दितव्यं न गर्हितव्यं न खिंसितव्यं, न छेत्तव्यं न भेत्तव्यं न हन्त व्यं न जुगुप्सावृत्तिका लभ्योत्पादयितुम्। एवं स्पर्शेन्द्रिय-भावना भावितो-भवत्यन्तरा-

( मूल मागधी च्छाया च

—

स्मामनोज्ञाऽमनोज्ञ-सुरभि-दुरभि रागद्वेष-प्रणिहितात्मा साधुर्मनोवचन-कायगुप्तः संवृत. प्रणिहितश्चरेद्धर्मम। एवमिदं संवरस्य द्वारं सम्यग् संवृतं भवति सुप्रणिहित-म्। एभिः पञ्चभिरपिकारणैर्मनो-वचन-काय परिरक्षितै र्नित्यमामरणान्तं चैष योगो नेतव्यो, धृतिमता मतिमताऽनास्रवोऽकलुषोऽच्छिद्रोऽपरिस्रावी असंक्लिष्टः शुद्धः सर्वजिनैरनुज्ञातः। एवं पञ्चमं संवरद्वारं स्पृष्टं, पालितं, शोधितं, तीर्णं कीर्तित मनुपालितमाज्ञयाऽऽराधितं भवति। एवं ज्ञात मुनिना भगवता प्रज्ञप्तं प्ररूपितं प्रसिद्धं सिद्धं सिद्धवर शासनमिदमाख्यातं, सुदेशितं, प्रशस्तं, पञ्चमं द्वारं समाप्तमित्यहं ब्रवीमि। एतानि व्रतानि पञ्चापि सुव्रत-महाव्रतानि हेतुशत-विचित्र-पुष्कलानि कथितानि अर्हच्छासने पञ्चसमासेन संवराः, विस्तरेणतु पञ्चविंशति समित-सहित-संवृतः, सदा यतना-घटना-सुविशुद्ध-दर्शनः, एतेनाऽनुचर्यः संयतश्चरमशरीरधरो भविष्यतीति। सू० १। २६

अन्व०-"( पंचमगं ) पांचवीं भावना-स्पर्श-इन्द्रिय-संवररूप-( फासिंदिएण फासिय फासाइं मणुन्नभद्दकाइं ) स्पर्श इन्द्रिय से मनोज्ञ व सुन्दर स्पर्शों को छूकर, ( किंते ? ) वे मनोज्ञ स्पर्श कौनसे हैं ?

उत्तर-( दगमंडव-हार-सेयचंदण-सीयल-विमलजल-विविह कुसुम-सत्थर-ओसीर-मुत्तिय-मुणाल-दोसिणा-पेहुण-उक्खेवग-तालियंट-विदयाग-जणियसुहसीयलेय पवणे ) उदक मडप--जलमंडप, झरने वाले मण्डप, उदकहार, श्वेतचन्दन-श्रीखण्ड, शीतल और निर्मल पानी, अनेक प्रकार के फूलों के विस्तर, ओशीर-वीरण का मूल, मोती, पद्मनाल, चन्द्र की चांदनी, मोर पिच्छी का उत्क्षेप, तालवृन्त-पंखा और बीजना, इनसे की गई सुखकारी और शीतल हवा को ( गिम्ह काले ) ग्रीष्म कालमें ( सुहफासाणि य बहूणि सयणाणि आसणाणिय ) तथा सुख दायक स्पर्श वाले बहुत से शयन-शय्या और आसनों को फिर ( पाउरण-गुणे य सिसिरकाले ) प्रावरण गुण वाले वस्त्रादि को शीतकाल में ( अगार-पतावणा य ) और अग्नि से देह को तपाना ( आयव-निद्ध-मउय-सीय-उसिण-लहुया य ) धूप, स्निग्ध-तैल आदि पदार्थ, कोमल और ठंढे, गर्म तथा हल्के ( जे उदुसुहफासा ) जो ऋतु के अनुकूल सुखस्पर्श ( अगसुह-निव्वुइकरा ) शरीर सुख और मनको स्वस्थ करने वाले हैं ( ते ) वे स्पर्श ( अन्नेसु य एवमादिएसु फासेसु मणुन्न भद्दएसु ) और इस प्रकार के अन्य ऐसे मनोज्ञ व शुभ स्पर्शों में ( न तेसु समणेण सज्जियव्वं ) उन शुभ

स्पर्शों में साधु को आसक्ति नहीं करनी चाहिए, ( न रज्जियव्वं ) राग नहीं करना चाहिए ( न गिज्झियव्वं ) गृद्धि–अप्राप्त की इच्छा भी नहीं करनी चाहिए, ( न मुच्छियव्वं ) न वे मान होकर मोह करना चाहिए, ( न विणिग्घायं आवज्जियव्वं ) न स्व पर का नाश ही करना चाहिए ( न लुभियव्वं ) न लोभ करना चाहिए ( न अज्झोव वज्जियव्वं ) तल्लीन चित्त वाला नहीं होना चाहिए ( न तूसियव्वं ) न उसमें सन्तुष्ट होना चाहिए ( न हसियव्वं ) न हसना चाहिए ( न सतिं च मतिं च तत्थकुज्जा ) स्मृति और वहाँ–उस विषयमें–विचार भी नहीं करना चाहिए ( पुणरवि ) फिर भी स्पर्शेन्द्रिय के विषय को कहते हैं–( फासिंदिएण फासिय फासाइं अमणुन्न पावकाइं ) स्पर्श इन्द्रिय से अमनोज्ञ व अशुभ स्पर्शों को छूकर ( किंते ? ) वे अशुभ स्पर्श कौनसे ?

उत्तर–( अणेग–वध–बंध–तालणं कण–अतिभारारोवणए ) अनेक प्रकार का वध–नाश, डोरी आदि का बन्धन ताडन–चपेटा आदि का प्रहार देना, अङ्कन–तपी हुई शलाका आदि से निशान करना, और अधिक भार लादना ( अंगभंजन–सूती–नख–प्पवेस गाय पच्छणण–लक्खारस–खार–तेल–कलकलंत–तउय–सीसक–काल लोह–सिंचण–हडिबंधण–रज्जु निगल–संकल–हत्थंडुय–कुंभिपाक–दहण–सीह पुच्छण–उब्बंधण–सूलभेय–गय चलण–मलण–कर–चरण कन्न–नासोट्ठ–सीस छेयण जिब्भंछण–वसण–नयण हियय–दंत भंजण–जोत्त–लय–कसप्पहार–पाद पण्हि–जाणु–पत्थर–निवाय–पीलण–कवि कच्छु–अगणि–विच्छुय डक्क–वायातव–दंस मसग–निवाते ) अंग तोडना शरीर में सूई या नख भोंकना गात्र का अवयव यानें हीन होना, लाख का रस क्षार तैल तथा अत्यन्त तपने के कारण कल कल करते हुए सीसा या काले लोह से देह को सींचना पान तपे हुए लाक्षारस आदि शरीर पर डालना, काष्ठ के खोडे में बांधना डोरी के निगड बन्धनों से समटना और हस्तान्दुक से बांधना, कुम्भि में पकाना अग्नि से जलाना, पूछ तोडना, बांधकर ऊपर से लटकाना शूल से पिरोना हाथी के पैर नीचे दबाना, अथवा मसलना, हाथ, पैर, कान, नाक, ओष्ठ और शिर में छेद करना, जिह्वा को खींच कर निकालना, अण्ड कोश, नेत्र हृदय और दांत या आंत को मोडना, या तोडना गाडीमें जूएसे जोडना, बेंत या चाबुक का प्रहार करना, पादपार्ष्णि–पैर की एडी, घुटना तथा पत्थर को अङ्ग पर गिराना, पीडन–यन्त्र में पीडना, कपिकच्छू–बन्दर जैसे अत्यन्त खुजली होना,

या खुजली करने वाले फल का छूना, और अग्नि आदि का स्पर्श, बिच्छू का डंक और वायु, धूप तथा डांस मच्छरों का अङ्ग पर गिरना ( दुट्ठ-णिसज्ज-दुण्णिसीहिय-दुब्भि-कक्खड-गुरु-सीय उसिण-लुक्खेसु ) दुष्ट निषद्या-बुरे आसन और अयोग्य स्वाध्यायभूमिमें तथा अशुभ गन्ध युक्त,कर्कश गुरु भारी और,ठंडे,उष्ण व रुक्ष ( बहु विहेसु ) बहुत प्रकार के स्पर्शों में ( अन्नेसुय एव माइएसु फासेसु अमणुन्न-पावकेसु ) और इस प्रकार के अन्य ऐसे अमनोज्ञ स्पर्शों में ( न तेसु समणेण रूसियव्व ) उन अशुभ स्पर्शों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए न हीलियव्वं न निंदियव्व न गरहियव्वं ) न हीलना करनी चाहिए, न निन्दा करनी चाहिए, तथा न लोक समक्ष गर्हा करनी चाहिए, ( न खिसियव्वं, न छिंदियव्वं, न भिंदियव्वं, न वहेयव्व ) खिसना नहीं करना चाहिए, अशुभ स्पर्श वाले द्रव्य का छेदन नहीं करना चाहिए, न उसका भेदन-दो भाग ही करना चाहिए, स्व पर का हनन नहीं करना चाहिए ( न दुगुंछावत्तियं च लब्भा उप्पाएउं ) और स्व पर की घृणा वृत्ति भी उत्पन्न करना योग्य नहीं है ( एव फासिंदिय भावणा भावितो ) इस प्रकार स्पर्शेन्द्रिय संवर की भावना से युक्त ( अंतरप्पा ) अन्त करण वाला ( मणुन्नामणुन्न-सुब्भि-दुब्भि-राग दोस पणिहियप्पा ) मनोज्ञ व अमनोज्ञ-गन्धयुक्त, अच्छे या बुरे स्पर्शों से राग द्वेष का संवरण करने वाला ( साहू साधु मण-वयण-कायगुत्तो) मन वचन एव काय से गुप्त ( भवति ) होता है। ( संवुडे पणिहितिंदिए ) संवर युक्त संयतेन्द्रिय मुनि ( चरिज्जधम्मं ) धर्म का आचरण करे ॥ ५ ॥

( एवमिण संवरस्स दारं सम्म संवरियं सुप्पणिहिय होइ ) इस प्रकार यह संवर का पंचमद्वार सम्यक् संवरण किया गया सुरक्षित होता है ( इमेहिं पंचहि विकारणेहिं मण-वय-काय-परिरक्खिएहिं ) मन वचन और काय के द्वारा सुरक्षित इन पांचों कारणों से ( निच्च आमरणंतं ) सदा और मरण पर्यन्त ( एसजोगो ) यह प्रवृत्ति ( धितिमया मतिमया) धृतिमान् और बुद्धिमान् को (नेयव्वो) ले चलना योग्य है याने पालने योग्य है ( अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो सुद्धो सव्वजिण मणुन्नातो ) आस्रव रहित,निर्मल, मिथ्यात्व आदि छिद्र रहित,अतएव अपरिस्रावी, सक्लेश रहित,शुद्ध तथा सर्व तीर्थङ्करोंसे अनुज्ञात है ( एवं पचम ) इस प्रकार पांचवा ( संवरदारं ) संवरद्वार ( फासियं,पालियं,सोहिय,तीरियं,किट्टियं, अणुपालिय, आणाए आराहियं भवति ) शरीर से स्पर्श किया हुआ, पालन किया

हुआ, अतिचार हटाकर शुद्ध किया हुआ, पूर्ण किया हुआ, वचन से कीर्तन किया हुआ, अनुपालित और तीर्थङ्करों की आज्ञा के अनुसार आराधित होता है ( एवं नाय-मुणिना भगवया पन्नवियं ) इस प्रकार-पूर्वोक्त रीति से ज्ञात मुनि भगवान महावीर ने कहा है ( पन्नवियं ) प्ररूपणा-युक्ति से समझाया है ( पसिद्धं, सिद्धं, सिद्धवर सासणमिणं ) प्रसिद्ध, सिद्ध और अर्हत रूप महत्त्व सिद्धों का उत्तम शासन यह ( आघवियं ) कहा गया है ( सुदेसियं ) तीर्थङ्करों से अच्छी तरह उपदिष्ट और ( पसत्थं पंचमं संवरद्दारं समत्तं, त्तिबेमि ) प्रशस्त है सुधर्माचार्य-पंचम संवरद्वार पूर्ण हुआ ऐसा मैं कहता हूँ ॥

उपसंहार—( एयाति वयाइं पंचवि ) ये पांचों संवर रूप व्रत ( सुव्वय ! महव्वयाई ) हे सुव्रत ! महा व्रत हैं ( हेउ सय-विचित्त-पुक्कलाई ) निर्दोष या विचित्र सैकड़ों हेतुओं से विस्तीर्ण ( अरिहंत सासणे ) अर्हन्तों के शासन में ( कहियाई ) कहे गये हैं (पंच समासेण संवरा) संक्षेप से पांच संवर हैं । ( वित्थरेणउ ) विस्तार से तो ( पणवीसति ) प्रत्येक व्रत की भावनाओं को मिलाकर पचीस होते हैं, ( समिय-सहिय-संवुडे ) समितियों से समित, पूर्वोक्त पचीस भावनाओं से सहित या ज्ञान दर्शन से युक्त और सुविहित कषाय आदि के संवर वाला, जो ( सया जयण-घडण-सुविसुद्धदंसण ) सदा प्राप्त संयम योग में यत्न और अप्राप्त में प्रयत्न रूप घटना से अच्छी तरह निर्मल श्रद्धा वाला है ( एए अणुचरिय-संजत चरम सरीर धरे भविस्सतीति इन पांच संवरों का आचरण करके वह साधु चरम शरीरी होगा अर्थात् संसार में फिर से शरीर धारण नहीं करेगा ॥ १ २१ ॥

भाव- परिग्रह विरमण व्रत की रक्षा के लिये भगवान् महावीर ने यह उत्तम प्रवचन कहा है, जो आत्महितकारी पापत्सव दुःख और पापों का उपशमन करने वाला है । इस अपरिग्रहरूप अन्तिम व्रत की रक्षा के लिये ये पांच भावनायें होती हैं, जैसे-

प्रथम भावना श्रोत्रेन्द्रिय संवररूप जिसमें कहा गया है कि प्रधान मुरज आदि वाद्य और मधुर गीत को तथा नट आदि के खेल प्रयोगों को एवं स्त्रियों के मञ्जीर मेखला आदि के मधुर ध्वनि को श्रवण से सुनकर इनमें व इस प्रकार के अन्य शुभ शब्दों में साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए । राग, गृद्धि, मूर्च्छा और इसके लिये स्वपर का नाश नहीं करना चाहिए । इनमें आम, मानसिक खुशी तथा हास्य भी

नहीं करना, और न मनसे उसका स्मरण और विचार ही करना चाहिये। ऐसे अप्रिय शब्दों को सुनकर द्वेष नहीं करे, जैसे गाली व रोने आदि के शब्द जो द्वेष व करुणाजनक हैं, ऐसे अन्य भी अमनोज्ञ-बुरे शब्दों मे साधु को रोष नहीं करना चाहिए, और न उन शब्दों की हीलना, निन्दा व खिसना करनी चाहिए। छेदन, भेदन व वधभी नहीं करे और उन शब्दों के ऊपर स्व पर की घृणा भी उत्पन्न नहीं करे। इस प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय सवरयुक्त अन्तःकरण वाला अच्छे बुरे शब्दों में राग द्वेष रहित तीनो गुप्तियों से गुप्त होता है। संवरवान्, जितेन्द्रिय मुनि इस प्रकार अपरिग्रह धर्मका आचरण करे।

दूसरी भावनामे-चक्षु-इन्द्रियसे सुन्दर सचित्त अचित्त और मिश्र इन तीनो रूपो को देखकर राग नहीं करना चाहिए। जो रूप काष्ठपर, वस्त्रपर तथा लेप्यकर्म या पत्थर व दांत की कोरणी से बनाये गए है, तथा पाच रंग से अनेक प्रकार के आकारमें बने हुए और गांठ देकर तथा चिपडी आदि भरकर बनाएगए, अनेक प्रकार के माल्य और नेत्र व मनको प्रसन्न करने वाले हैं। वनखण्ड, पर्वत और ग्राम आदि अनेक स्थानों को जो जल एव वनस्पति के लता मण्डप आदि से सुशोभित तथा पक्षी समूह से सुसेवित हैं। ऐसे उत्तम प्रासाद आदि भव्य भवन और शयन, आसन और वाहन आदि को, तथा प्राक्तन संचित तपस्या से सौभाग्यशाली स्त्री पुरुषों को तथा नट आदि के विविध खेल व प्रयोगों को और इस प्रकार के अन्य सुन्दर रूपो को देखकर मुनि को उनमे आसक्त नहीं होना चाहिए। यावत् मनमें भी उस विषय का विचार नहीं रखना चाहिए। शुभ रूपों की तरह अशुभ रूपों को देखकर द्वेष भी नहीं करना चाहिए। जैसे गलगण्ड आदि अनेक रोगग्रस्त को व मरे हुए कलेवरोंको जो सड गया हो, जिसमें कीड़े पड़े हों ऐसे पदार्थों को देखकर मुनि को रोष नहीं करना चाहिए। यावत् दूसरी भावनासे युक्त होकर धर्मका आचरण करना चाहिए।

तीसरी भावनामें-नाकसे सुगन्धित पदार्थों को सूंघकर हर्ष नहीं करना चाहिए। जैसे-जल-एव थलके अनेक प्रकार के फूल, जिनके परिमल हवासे दूर दूर तक फैल रहे हैं, ऐसे अन्य सुरभि वाले पदार्थों में भी मुनिको आसक्त नहीं होना चाहिए। यावत् उस विषय में विचार भी नहीं करना चाहिए। ऐसे सर्प आदि इग्यारह कलेवर जो सड़े हुए व अत्यन्त दुर्गन्ध वाले है। वैसी दुर्गन्ध को सूंघकर उनमें मुनि को द्वेष भी नहीं करना चाहिए, यावत् धर्मका आचरण करना चाहिए।

चौथी भावनामें-रसनेन्द्रिय से अनेक रसों को चखकर राग द्वेष नहीं करना चाहिए। जैसे घी आदि में डुबाकर बनाये गए विविध पान भोजन तथा मधुर अनेक भक्ष्य पदार्थ जो लवण आदि रसों से संयुक्त हैं इस प्रकार अच्छे वर्ण रस गन्ध व स्पर्श वाले द्रव्यों से बने हुए भोजन में एवं अन्य सुन्दर रसों में साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए, और मनमें विचार भी नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार नीरस, रूक्ष तथा विकृत दशा को प्राप्त ऐसे अन्य अशुभ पान भोजनों में साधु को रोष भी नहीं करना चाहिये, यावत् धर्म का आचरण करना चाहिये।

पांचवी भावना में-स्पर्श इन्द्रियों से विविध स्पर्शों को छूकर मुनि हर्ष नहीं करे। जैसे-ग्रीष्म काल में फुहारे के मण्डप आदि से शीतल व सुखदायी वायु को तथा सुखद स्पर्श वाले शयन आसन आदि को पाकर तथा शीत काल में दुशाले आदि प्रावरण अंगीठी का सेक, तथा सूर्य किरणों के ताप आदि। ऐसे चिकने व कोमल ऋतु के अनुकूल सुख स्पर्श जो शरीर व मन को प्रसन्न करने वाले हैं, उन शुभ स्पर्शों में साधु आसक्ति नहीं करे, यावत् उनका विचार भी नहीं करे। फिर विरोधी स्पर्शों को छूकर मुनि रोष भी नहीं करे, वे विरोधी स्पर्श इस प्रकार हैं-अनेक प्रकार के वध, बन्धन ताड़न व अतिभार और अङ्गों का भङ्ग, सुई भोकना आदि, तथा अयोग्य आसन वगैरह के स्पर्श होने वाले परीषहों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए, यावत् किसी के मन में उनके लिये घृणा भी उत्पन्न नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार स्पर्शेन्द्रिय संवर की भावना से युक्त अन्तःकरण वाला अच्छे बुरे स्पर्शों में राग द्वेष रहित व गुप्त होता है। इस प्रकार संवृतेन्द्रिय मुनि को अनुकूल प्रतिकूल स्पर्श मात्र में समभाव रखते हुए धर्म का आचरण करना चाहिए ॥ ५ ॥

इस तरह संवर का यह पञ्चमद्वार सम्यक् संवरण किया हुआ सुरक्षित होता। इन पांच भावनाओं के साथ तीनों योग से धीर मेधावी साधु को यह प्रवृत्ति सदा जीवन पर्यन्त रखनी चाहिए। क्योंकि यह संवर कर्म बन्ध के कारणों का रोकने वाला एवं सब तीर्थङ्करों से अनुज्ञात है। विधि पूर्वक यह पञ्चम संवरद्वार देह से स्पर्श किया गया आगम अनुकूल रूप से पालन किया गया तीर्थङ्करों की आज्ञा से आराधित होता है। ऐसा ज्ञात मुनि महावीर ने कहा व देव पूजक नमस्कार है। यह प्रसिद्ध सिद्ध [illegible]

निगमन–हे सुव्रत ! ये पांचों महाव्रत निर्दोष या विचित्र सैकड़ों हेतुओं से विस्तार वाले अर्हत्–शासन में कहे गये हैं। संक्षेप से संवर पांच और विस्तार से भावनाओं को मिलाकर पचीस होते हैं। भावना रूप समिति वाला और ज्ञान दर्शन सहित जो सवरवान् मुनि सदा प्राप्त संयम योग में यतना और अप्राप्त में घटना करने से विशुद्ध श्रद्धा वाला है, वह इन पाच संवरों का पालन करके इस देह से संसार बन्धन का छेदन कर मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥ २६ ॥

**मूल–"पण्हावागरणे णं एगो सुयक्खंधो, दस अज्झयणा, एक्कसरगा, दससु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति, एगंतरेसु आयंबिलेसु निरुद्धेसु, आउत्तभत्त पाणएणं । अंगं जहा आयारस्स । सू० १ । ३० ॥**

**पण्हावागरणं दसमं अंगं सुत्तओ समत्तम् । ग्रन्थमानं १२००**

छाया–प्रश्नव्याकरणे एक. श्रुतस्कन्धो, दशाऽध्ययनानि,–एकसरकाणि, दशसुचैव दिवसेषु–उद्दिश्यन्ते,–एकान्तरेषु–आयंबिलेषु निरुद्धेषु आयुक्तपानभोजनेनाऽङ्गं यथाऽऽचारस्य । सू० १ । ३०।

॥ इति प्रश्नव्याकरणाऽऽख्यं दशमाङ्गं छायातः समाप्तम् ॥

## सूत्र परिचय और वाचना विधि–

अन्व०–(पण्हावागरणे) प्रश्न व्याकरण नामक सूत्रमें एगे सुयक्खंधो) एक श्रुत स्कन्ध ( दस अज्झयणा ) दश अध्ययन ( एक सरगा ) समान शैली वाले हैं ( दस सु चेव दिवसेसु ) और दश ही दिनों में ( एगतरेसु आयंबिलेसु निरुद्धेसु ) एकान्तर आयंबिलयुक्त दिनों में ( आउत्त–भत्त–पाणएण ) उपयुक्त आहार पानी वाले साधु से ( उद्दिसिज्जंति ) इसके उद्देश किये जाते हैं। ( अगं जहा आयारस्स ) अङ्ग जैसे आचाराङ्ग का वर्णन है, विशेष वैसा समझना चाहिये ॥ सू० १ । ३० ॥

इति प्रश्न व्याकरणाख्य दशमाङ्गं समाप्तम् । ग्रन्थाग्र १२०० ।

भाव-अन्त में सूत्र का परिचय और वाचन की विधि कही गई है। प्रश्न व्याकरण सूत्रके एक ही श्रुतस्कन्ध तथा एकसरके दश अध्ययन हैं। इसकी वाचना सन वाले साधु को एकान्तर आयम्बिल युक्त तपस्या से दश दिनों में वाचना को पूर्ण करना चाहिए। आचाराङ्ग जैसे शेष अङ्ग का वर्णन समझना चाहिए ॥ १ ॥ ३८ ॥

इति श्री प्रश्न व्याकरण सूत्रस्य भाषा व्याख्या समाप्ता ।

## ग्रन्थान्त मङ्गलरूपा टीकाकारोक्ति :

प्रश्न व्याकरणाभिधानमनघं धर्मं गभीरार्थकं
यद्वेयाऽर्हत्-त्रिवपुरत्नगवी ईयर्जीनोपमम् ।
मत्कृपार्द्र मति शक्ति युक्ति निवहाद्रिक्तोऽप्यथार्पमर्म
सन्त्वस्मात्परमेष्ठिनो मयि सदा पञ्चानुकम्पाश्रिता ।

### ❀ समाप्तं पंचमं संवरद्वारम् ❀

❀ ग्रन्थाग्रं मान्यार्थं मध्यार्थंम ❀

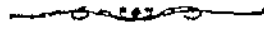


श्री प्रश्नव्याकरणसूत्रस्य

# परिशिष्टम्

## विशिष्टपद टिप्पणानि

# प्रश्न व्याकरण सूत्रगत पारिभाषिक शब्दानां विशेषनाम्नां च सूची



## अ

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| अकारको | – | – | अकर्ता |
| अकिरिया | – | – | अक्रिया |
| अकिच्च | – | – | हिंसा का १४वां नाम |
| अगर | – | – | सुगन्धित द्रव्य विशेष |
| अगम्म गामी | – | – | लड़की बहन आदि मे गमन करने वाला |
| अगार | – | – | घर |
| अगुत्ती | – | – | अगुप्ति–परिगृह का २३वा भेद |
| अचक्खुसे | – | – | आंख से नहीं दिखने वाले |
| अच्छभल्ल | – | – | रिच्छ–भालू |
| अज्झप्पज्झाण | – | – | अध्यात्मध्यान |
| अंजणक सेल | – | – | अञ्जनक पर्वत |
| अट्टालग | – | – | अट्टालिका |
| अट्ट | – | – | आर्त |
| अट्ठ विह | – | – | आठ प्रकार |
| अट्टालग | – | – | अटारी |
| अट्ठि | – | – | हड्डी |
| अंडज | – | – | अण्डे से पैदा होने वाले |
| अणबल | – | – | कर्जदार |
| अणत्थको | – | – | अनर्थ करने वाला परिग्रह का २५वा भेद |
| अणत्थो | – | – | ” ” ” ” |
| अणज्जा | – | – | अनार्य |

| शब्द | अर्थ |
|---|---|
| आयतणं – – | आयतन–अहिंसा के ४७वां नाम |
| आयासो – – | खेद का कारण, परिग्रह का २४वा नाम |
| आयाण भंड निक्खेवणा समिते– | आदान भाड मात्र निक्षेपना समिति वाला |
| आउय कम्मस्सुवद्दवो | हिंसा का १२वा नाम |
| आरब – – | अरब देश |
| आराम – – | बगीचा |
| आवण – – | दुकान |
| आवत्त – – | एक खुर वाला जीव |
| आवसह – – | परिव्राजको का आश्रम |
| आसम – – | आश्रम |
| आसत्ती – – | आसक्ति |
| आसालिया – | जीव विशेष |

### इ

| | |
|---|---|
| इक्कड – – | इक्कड जाति का घास |
| इक्खुगार – – | इषुकार पर्वत |
| इट्टकाउ – – | ईंटे |
| इड्ढि – – | ऋद्धि |
| इंद केतु – – | इन्द्र केतु |
| इंदिय – – | इन्द्रियां |

### ई

| | |
|---|---|
| ईरियासमिते – – | ईर्या समिति से युक्त |

### उ

| | |
|---|---|
| उखल – – | ऊखल |
| उच्छू – – | इक्षु–सांठा |
| उट्ट – – | ऊंट |
| उडुपती – – | चन्द्रमा |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| अण्हकरी | – | – | हिंसा का २४वां नाम |
| अण्हक | – | – | अणक देश |
| अण्हय | – | – | आस्रव |
| अणारिओ | – | – | अनार्य |
| अणासवो | – | – | अनास्रव, अहिंसा का ३४वां नाम |
| अणाहे | – | – | अनाथ |
| अणिट्ठकम्म | – | – | अनिष्टकर्म |
| अणिहुय | – | – | अस्थिर |
| अणुलवण | – | – | अनुलपन |
| अत्थालियं | – | – | धन सम्बन्धी झूठ |
| अत | – | – | आंत |
| अस्समड | – | – | घोड़े का कलेवर |
| असायणा | – | – | आसातना |
| असि | – | – | तलवार |
| असंजम | – | – | असंयम |
| असंजमो | – | – | संयम रहित हिंसा का १४वां नाम |
| असंतोसो | – | – | असन्तोष परिग्रह का २०वां नाम |
| अहिमड | – | – | सांप का कलेवर |

आ

| | | | |
|---|---|---|---|
| आगर | – | – | खान |
| आडा | – | – | आडपक्षी |
| आतोज्ज | – | – | बाजे |
| आधार | – | – | शक्तिपुट |
| आमासिया | – | – | आमासिक देश – |
| आभिओग | – | – | वशीकरण आदि प्रयोग – |
| आया | – | – | आत्मा – |
| आयरो | – | | वस्तुओं में आदर बुद्धि रखना, परिग्रहों का २१वां |

## क

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| कक्कोल | – | – | फल विशेष, |
| क्खुर | – | – | उस्तरा–केश काटने का अस्त्र |
| क्रकच | – | – | करवत–लकडी चीरने का अस्त्र |
| कच्छभ | – | – | कछुआ |
| कच्छभि | – | – | वाद्य–बाजा विशेष |
| कच्छुल्ल | – | – | खुजली के रोग वाला |
| कढिणगं | – | – | कठिण तृण विशेष |
| कडुय | – | – | कडुआ |
| कडग मद्दणं | – | – | कटक मर्दन–हिंसा का १४वां नाम |
| कणग | – | – | सोना |
| कणग नियल | – | – | सोने का बना गहना विशेष |
| कणक | – | – | एक प्रकार का बाण |
| कण्ण | – | – | कान |
| कन्दु | – | – | लोही भुंजने का एक पात्र |
| कन्नालियं | – | – | कन्या के सम्बन्धी झूठ |
| कप्पणि | – | – | कैंची |
| कपिजलक | – | – | कपिंजल पक्षी |
| कप्पूर | – | – | कपूर |
| कमल | – | – | कमल |
| कमडलु | – | – | कुण्डी, कमण्डलु |
| कम्म | – | – | रसायन शाला |
| करक | – | – | करक पक्षी |
| करणाणि | – | – | इन्द्रिया |
| करभ | – | – | ऊंट |
| करयल | – | – | करतल |
| करयय | – | – | करपत्र |

| शब्द | | | अर्थ |
| --- | --- | --- | --- |
| उप्पाय | – | – | उत्पात पर्वत |
| उद्द | – | – | उद्दंश |
| उद्दरि | – | – | जलोदर |
| उद्दवणा | – | – | हिंसा का ६वां नाम |
| उद्देस | – | – | उद्देश |
| उब्भिय | – | – | भूमि को फोड़कर उत्पन्न होने वाला जीव |
| उम्माणा | – | – | उन्मान–मापने का एक प्रकार |
| उम्मूलणा | – | – | उन्मूलना–हिंसा का २रा नाम |
| उरग | – | – | पेट के बल से चलने वाला सर्प विशेष |
| उवहिया | – | – | ठगाई करने वाला ठग |
| उवणयणं | – | – | उपनयनसंस्कार |
| उवचयो | – | – | उपचय, परिग्रह का चतुर्थ नाम |
| उववाइय | – | – | एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने वाले जीव |
| उवासक | – | – | उपासक |
| उवाणहा | – | – | जूता |
| उस्सओ | – | – | उच्छ्रम–भाव की उन्नति अहिंसा का ४१वां नाम |
| उसीर | – | – | उशीर–सुगन्धित द्रव्य |
| उन्दर | – | – | चूहा |

ए

| | | | |
| --- | --- | --- | --- |
| एगक्खक्खु | – | – | काणा |
| एगेंदिय | – | – | एक इन्द्रिय वाला जीव |
| एणीमारा | – | – | मृग पकड़ने के लिये हिरणी लेकर फिरने वाला |
| एलारस | – | – | इलायची का रस |
| एसणा समिते | – | – | एषणा समिति युक्त |

ओ

| | | | |
| --- | --- | --- | --- |
| ओयण | – | – | चावल–भात, |
| ओसह | – | – | औषध, |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| कीव | – | – | कीव पक्षी |
| कुक्कुड | – | – | मुर्गा |
| कुकूलाऽनल | – | – | कोयले की आग |
| कुब्ज | – | – | कूबड |
| कुडिल | – | – | कुटिल–टेढा |
| कुणी | – | – | कर से हीन |
| कुद्धा | – | – | क्रोधी |
| कुम्मास | – | – | उड़द |
| कुरर | – | – | कुरर पक्षी |
| कुरंग | – | – | हिरण |
| कुलल | – | – | कुलल पक्षी |
| कुलक्ख | – | – | कुलल पक्षी की एक जाति |
| कुलिंगी | – | – | कुतीर्थी |
| कुलिय | – | – | खुला |
| कुली कोस | – | – | कुटी क्रोश पक्षी |
| कुविय साला | – | – | तृण आदि रखने का घर |
| कुस | – | – | कुश–तृण विशेष |
| कुसघयण | – | – | कमजोर, अस्थिर |
| कुसंठिया | – | – | खराब आकार वाले |
| कुहण | – | – | कुहण देश |
| कुर्च | – | – | कूंची बनाने का तृण |
| कूडमाणी | – | – | झूठा माप करने वाले |
| कूरकम्मा | – | – | क्रूर कर्म करने वाले |
| कूव | – | – | कूआ |
| केकय | – | – | केकय देश |
| केवल नाणी | – | – | केवल ज्ञानी |
| केवलीण ठाण | – | – | केवलियों का स्थान अहिंसा का ३६ वां नाम |
| केसरिमुहविप्फाडगा | | – | सिंह का मुह फाडने वाले |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| कलाय | – | – | सुनार |
| कलिकरंड | – | – | कलह की पटी, परिग्रह का १६वां नाम |
| कल्लाण | – | – | कल्याणकारी–अहिंसा का ६१वां नाम |
| कलाव | – | – | गरदन का आभरण |
| कवड | – | – | कपट |
| कब्बड | – | – | खराब नगर |
| कवाड | – | – | कपाट केवाड |
| कविल | – | – | कपिल पक्षी |
| कवोय | – | – | कबूतर |
| कस | – | – | चमड़े का चाबुक |
| कसाय | – | – | कषायला |
| कहक | – | – | कथा करने वाला |
| काउअर | – | – | काकोदर–एक प्रकार का साँप |
| काक | – | – | कौआ |
| काणा | – | – | काना |
| कादम्बक | – | – | हंस विशेष |
| कायवर | – | – | उत्तम काच |
| कायगुत्ते | – | – | कायगुप्त |
| कारंडग | – | – | कारंडक पक्षी |
| कारुइज्जा | – | – | कार्य-शिल्पी |
| कालोदधि | – | – | कालोदधि समुद्र |
| कित्ती | – | – | कीर्ति अहिंसा का ४ था नाम |
| किंनर | – | – | किंनर देव जाति विशेष |
| किंनरी | – | – | किंनर देव की देवियां |
| किमिय | – | – | कृमि–कीड़े |
| किरिया | – | – | प्रशस्त कार्य |
| किरियाठाण | – | – | क्रिया स्थान |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| | **ख** | | |
| खग | – | – | पक्षी |
| खग्ग | – | – | खड्ग-गेंडा |
| खग्ग | – | – | खड्ग-तलवार |
| खचर | – | – | आकाश में चलने वाले जीव |
| खर | – | – | गधा |
| खस | – | – | खस देश |
| खाडहिल | – | – | गिलहरी-टिलोडी |
| खातिय | – | – | खाई |
| खासिय | – | – | खासिक देश |
| खिल भूमि | – | – | बिना जोती हुई भूमि |
| खील | – | – | खीलें |
| खुज्जा | – | – | कूबडा |
| खुद्दिय | – | – | तलाई |
| खुद्दो | – | – | क्षुद्र |
| खुरो | – | – | छुरा |
| खुल्लए | – | – | क्षुल्लक कौडी का जीव |
| खेड | – | – | खेडा-छोटा गाव |
| खडरक्ख | – | – | चूंगी लेने वाला अथवा कोतवाल |
| खंड | – | – | खाड-शक्कर |
| खंती | – | – | क्षान्ति अहिंसा का १३ वा नाम |
| खिंखिणी | – | – | पायल आभूषण विशेष |
| | **ग** | | |
| गंडि | – | – | गड माला |
| गय | – | – | हाथी |
| गयकुल | – | – | गज कुल |
| गय | – | – | गदा अस्त्र विशेष |

| शब्द | | | कोश |
|---|---|---|---|
| कोइल | – | – | कोकिल |
| कोकंतिय | – | – | लोमड़ी |
| कोट्ठागारे | – | – | कोठार |
| कोढिक | – | – | कुष्ठ रोगी |
| कोणालग | – | – | कोणालक पक्षी |
| कोद्दाल | – | – | कुदाली |
| कोरंग | – | – | कोरंग पक्षी |
| कोल | – | – | कोल चूहे के समान जीव |
| कोल सुणक | – | – | बड़ा सूअर |
| कोसिकार कीडा | – | – | रेशम के कीड़े, |
| कंक | – | – | कंक पक्षी |
| कंचणक | – | – | कांचनक पर्वत |
| कंचणा | – | – | कंचना, एक नारी |
| कंची | – | – | कांची-कन्दोरा |
| कुंडिया | – | – | कुण्डी कमण्डलु, |
| कंती | – | – | कान्ति-चमक, अहिंसा का ६ ठा नाम |
| कंद मूलाइ | – | – | कन्द मूल |
| कंस | – | – | कांस्य कांसी के पात्र |
| किंकरा | – | – | नोकर |
| कुंकुम | – | – | कुंकुम |
| कुंच | – | – | क्रौंच पक्षी |
| कुंटा | – | – | खराब हाथ वाला |
| कुंडल | – | – | कुण्डलाकार पर्वत |
| कुंत | – | – | भाला अस्त्र विशेष |
| कोंकणग | – | – | कोंकण देश, |
| कोंत | – | – | भाले |
| कोंच | – | – | क्रौंच देश |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| गंध | – | – | कपूर |
| गंध हारग | – | – | गन्धहारक देश |

घ

| | | | |
|---|---|---|---|
| घय | – | – | घी, |
| घायणा | – | – | हिंसा का छट्ठा भेद, |
| घीगोली | – | – | घरमें रहने वाली गोह, |
| घंटिय | – | – | घंटिका-घुंघुरू। |

च

| | | | |
|---|---|---|---|
| चउरंग | – | – | चकोरपक्षी |
| चउरिंदिए | – | – | चार इन्द्रिय वाला जीव |
| चकवाग | – | – | चक्रवाक |
| चक्क | – | – | चक्र चक्रव्यूह |
| चक्कवट्टी | – | – | चक्रवर्ती |
| चक्खुसे | – | – | चाक्षुष-आंख से देखने योग्य |
| चडुल | – | – | चचल |
| चद सालिय | – | – | चन्द्रशाला, महल के ऊपर की शाला |
| चमर | – | – | चमरी गाय |
| चम्म | – | – | चमडा |
| चम्मट्ठिल | – | – | चमगादर |
| चम्म पात्र | – | – | चर्म पात्र |
| चम्मेट्ठ | – | – | चमडे से मढा पत्थर |
| चय | – | – | वस्तुओं की ढेढी परिग्रहो का रेरा भेद |
| चरिया | – | – | नगर और कोट के मध्य का मार्ग |
| चलण मालिय | | – | भूषण विशेष |
| चवल | – | – | चपल |
| चाडुयार | – | – | खुशामदी |
| चाणुर | – | – | चाणूर मल्ल |

| शब्द | | | कोश |
|---|---|---|---|
| गरुलवूह | – | – | गरुड़-व्यूह |
| गरुड | – | – | गरुड़ पक्षी |
| गवय | – | – | रोझ नील गौ |
| गवालिय | – | – | गाय सम्बन्धी झूठ |
| गवेलग | – | – | बकरी |
| गागर | – | – | घड़ा |
| गाय | – | – | गौ |
| गायरण | – | – | हिंसा का एक नाम |
| गाहा | – | – | ग्राह-जल जन्तु |
| गुत्ती | – | – | गुप्ति |
| गुणाण विराहणात्ति | | – | गुणों की विराधना हिंसा का १० वां नाम |
| गुरुतप्पओ | – | – | गुरु पत्नीगामी |
| गुल | – | – | गुड़ |
| गोउर | – | – | गोपुर-नगर का मुख्य द्वार |
| गोकण्ण | – | – | गोखुर वाला चौपाया जानवर |
| गोच्छओ | – | – | पूजनी |
| गोंड | – | – | गौड देश |
| गोण | – | – | गाय बैल |
| गोणस | – | – | बिना फण का साँप |
| गोध | – | – | गाथा |
| गामड | – | – | गाय का कलेवर |
| गोमिया | – | – | गाय रखने वाला गवालिया |
| गोहा | – | – | गाथा |
| गोसीस सरस चंदन | | – | गोशीर्ष नामका शीतल चन्दन |
| गंज | – | – | एक प्रकार का धान्य |
| गंडूलय | – | – | गिडोला जन्तु |
| गंठि भेदग | – | – | गांठ काटने वाला |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| छविच्छेओ | – | – | हिंसा का २१वां नाम |
| छीरल | – | – | बाहुओं से चलने वाला जीव |
| छुद्दिय | – | – | आभरण विशेष |

ज

| | | | |
|---|---|---|---|
| जग | – | – | यकृत-पेट के दाहिनी तरफ रहने वाली मांस ग्रन्थि |
| जणवय | – | – | देश |
| जतनं | – | – | यजन अभयदान अहिंसा का ४८ वां नाम |
| जन्नो | – | – | यज्ञ, अहिंसा का ४६ वा नाम |
| जम पुरिस | – | – | यम पुरुष |
| जमकवर | – | – | यमकवर पर्वत |
| जराउय | – | – | जरायुज जड के साथ उत्पन्न होने वाला |
| जरासिंध माण महणा | – | | जरासन्ध राजा के मान को मथने वाला |
| जलयर | – | – | जलचर |
| जलगए | – | – | जल में रहने वाले कीडे आदि |
| जलमए | – | – | जल के जीव |
| जल्ल | – | – | जल्लदेश या डोडी पर खेलने वाला |
| जलूयं | – | – | जलूका |
| जवण | – | – | यवन लोग |
| जवा | – | – | जौ-जव |
| जाण | – | – | यान |
| जाण साला | – | – | यान शाला, वाहन आदि रखने का घर |
| जातरूव | – | – | सोना |
| जाल | – | – | ज्वाला |
| जालक | – | – | जालियां |
| जाहक | – | – | काटे से ढका हुआ शरीर वाला जन्तु |
| जिणेहिं | – | – | जिनेन्द्र देव |
| जीव निकाया | – | – | जीव निकाय |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| चारक | – | – | बन्दी खाना |
| चार | – | – | गुप्त दूत |
| चारित्तमोह | – | – | चारित्र को रोकने वाली मोह कर्म की प्रकृति |
| चाव | – | – | धनुष |
| चास | – | – | चाश पक्षी |
| चिडिग | – | – | चिड़ी |
| चित्त | – | – | चित्रकूट पर्वत |
| चित्तसभा | – | – | चित्र सभा |
| चिति | – | – | भित्ति आदि का बनाना |
| चिल्लग | – | – | लीन |
| चिल्लल | – | – | चीता या दो खुर वाला पशु विशेष |
| चीण | – | – | चीन देश |
| चिलाय | – | – | चिलात देशवासी |
| चुण्णकोसग | | – | चूर्ण कोश- धान्य विशेष |
| चूलिया | – | – | चूलिका |
| चेतिय | – | – | चैत्य |
| चेल | – | – | वस्त्र |
| चोक्ख | – | – | चोख अहिंसा का ५५वां भेद |
| चोरिक्करणं | – | – | चोरी करना |
| चोलग | – | – | बच्चे का प्रथम मुण्डन |
| चोल पट्टग | – | – | चोल पट्टा-साधु के पहनने का वस्त्र |
| चंगेरी | – | – | फूल की डाली या पात्र विशेष |
| चंडा | – | – | उद्धत |
| चउक्क | – | – | चौकी |
| चंचुया | – | – | चुंचुक |

छ

| | | | |
|---|---|---|---|
| छगल | – | – | बकरे की एक जाति |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| गहाणं | – | – | सौभाग्य स्नान |
| गहारुणि | – | – | स्नायु |
| णिग्घिणो | – | – | घृणा रहित |
| णिस्सेणि | – | – | निस्सरणी |
| णिस्ससो | – | – | नृशंस क्रूर |
| णेउर | – | – | नूपुर |
| णंबर | – | – | अम्बर कपडे |

त

| | | | |
|---|---|---|---|
| तउय | – | – | त्रपु |
| तक्करा | – | – | चोर |
| तण्हा | – | – | तृष्णा परिग्रह का २७वां भेद |
| तत | – | – | वीणा |
| तप्पण | – | – | सत्तू |
| तय | – | – | त्वचा |
| तय ताल | – | – | वाद्य विशेष |
| तरच्छ | – | – | जंगली पशु |
| तलाग | – | – | तालाब |
| तव | – | – | तप |
| तस | – | – | त्रस जीव |
| तारा | – | – | तारा |
| तालयंट | – | – | ताल पत्र के पंखे |
| तित्त | – | – | तीतारस |
| तित्ती | – | – | तृप्ति अहिंसा का १०वां नाम |
| तित्तिय | – | – | तित्तिक देश |
| तित्तिर | – | – | तीतर पक्षी |
| तिमि | – | – | बडे मत्स्य |
| तिमिंगिल | – | – | बहुत बडे मत्स्य |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| जुग | – | – | युग |
| जीवियंत करणो | – | – | हिंसा का २२ वां नाम |
| जीवंजीवक | – | – | चकोर पक्षी |
| जूईकरा | – | – | जुआरी |
| जोग संगहे | – | – | योग संग्रह |
| जोणी | – | – | योनि-जन्म स्थान |
| जंत | – | – | यन्त्र |
| जंबुगं | – | – | पानी में पैदा होने वाला तृण विशेष |

झ

| | | | |
|---|---|---|---|
| झस | – | – | जल जन्तु |
| झाण | – | – | ध्यान |

ठ

| | | | |
|---|---|---|---|
| ठिति | – | – | स्थिति, अहिंसा का २९वां नाम |

ड

| | | | |
|---|---|---|---|
| डब्भ | – | – | डाभ तृण विशेष |
| डोंब | – | – | डोंब जाति |
| डोबिलग | – | – | डोबिलक देश |

ढ

| | | | |
|---|---|---|---|
| ढेणियालग | – | – | ढेणिकालग पक्षी |
| ढिंक | – | – | ढंक पक्षी |

ण

| | | | |
|---|---|---|---|
| णउल | – | – | नकुल |
| णक्क | – | – | नक्र ( मकार ) |
| णग | – | – | पर्वत |
| णगर | – | – | नगर |
| णह | – | – | नख |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| दहिमुह | – | – | दधिमुख पर्वत |
| दसविहं | – | – | दश प्रकार का |
| दाढि | – | – | दाढ |
| दाण | – | – | दान |
| दामिणी | – | – | डोडी |
| दार | – | – | दरवाजा, |
| दालियंब | – | – | खट्टीदाल, |
| दीविया | – | – | चीता, |
| दीविय | – | – | दीमक पक्षी |
| दीहिया | – | – | बावडी, |
| दुकयं | – | – | दुष्कृत. |
| दुद्ध | – | – | दुग्ध |
| दुरप्पा | – | – | दुष्ट आत्मा |
| दुरित नाग दप्प महणा | – | | पाप रूप गज के दर्प को मथने वाले |
| दुवालस विहा | – | – | बारह प्रकार के |
| दुस्सील | – | – | दुश्शील |
| दुहण | – | – | द्रुघन-वृक्षों को गिराने वाला मुद्गर द्रुहना |
| देवकुल | – | – | देव मन्दिर |
| देवई | – | – | देवकी रानी |
| दोण मुह | – | – | जल मार्ग और स्थल मार्ग दोनों से जाने योग्य नगर |
| दोणि | – | – | छोटी नौका |
| दंतट्ठा | – | – | दांत के लिए |
| दंतमणि | – | – | प्रधान दांत |
| दंसण | – | – | सामान्य बोध श्रद्धागुण |

**ध**

| | | | |
|---|---|---|---|
| धणित | – | – | अत्यर्थ |
| धत्तरिट्ठग | – | – | धार्तराष्ट्र-हंस विशेष |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| तिरिय | — | — | तिर्यञ्च |
| तिल | — | — | तिल धान्य |
| तिवायणा | — | — | हिंसा का १०वां नाम |
| तिहि | — | — | तिथि |
| तूणक | — | — | वाद्य विशेष |
| तेन्दिय | — | — | तीन इन्द्रिय वाले जीव |
| तेल्ल | — | — | तेल |
| तोमर | — | — | बाण |
| तोरण | — | — | तोरण |
| तती | — | — | तन्त्री वीणा |
| तंब | — | — | ताम्र |

**थ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| थलयर | — | — | स्थलचर |
| थावरकाए | — | — | स्थावर काय |
| थूभ | — | — | स्तूप |

**द**

| | | | |
|---|---|---|---|
| दईवतप्पभावओ | — | — | भाग्य के प्रभाव से |
| दगतुंड | — | — | दग तुंड पक्षी |
| ददर | — | — | वाद्य विशेष |
| दब्भ पुप्फ | — | — | एक प्रकार का सर्प |
| दया | — | — | दया अहिंसा का ११वां भेद |
| दरदड्ड | — | — | कुछ जला हुआ |
| दव्वसारो | — | — | द्रव्यसार वाला परिग्रह का १ वां भेद |
| दविड | — | — | द्रविड |
| दह | — | — | द्रह |
| दहपति | — | — | द्रहपति पद्म द्रह आदि |
| दहि | — | — | दही |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| नेरइय | – | – | नरक के जीव |
| नेहुर | – | – | नेहुर देश |
| नेह | – | – | स्नेह |
| नंगल | – | – | हल |
| नंदमाणग | – | – | नन्दमानक पक्षी |
| नंदा | – | – | समृद्धि दायक अहिंसा का २४वां नाम |
| नंदि | – | – | वाद्य विशेष |
| नंदिमुइं | – | – | नन्दि-मुख पक्षी |

प

| | | | |
|---|---|---|---|
| पइल्ल | – | – | श्लीपद-फीलपांव |
| पउमावई | – | – | पद्मावती रानी |
| पएणीमारा | – | – | विशेष रूपसे हिरनियोंको मारनेके लिये फिरने वाले |
| पकप्प | – | – | प्रकल्प-अध्ययन विशेष |
| पकान्न | – | – | सरस भोजन |
| पक्कणिय | – | – | पक्कणिक देश |
| पच्चक्खाणं | – | – | प्रत्याख्यान |
| पच्छाया | – | – | ढकने का वस्त्र |
| पज्जत्त | – | – | पर्याप्त |
| पट्टिस | – | – | प्रहरण विशेष |
| पडगार | – | – | जुलाहा |
| पउम | – | – | पद्म व्यूह |
| पेहुण | – | – | मोर पिच्छी |
| पोक्कण | – | – | पोक्कण देश |
| पोक्करणी | – | – | पुष्करिणी चौकोनी बावड़ी |
| पोत घाया | – | – | पक्षियों के बच्चे को मारने वाला |
| पोतज | – | – | पोतज-हाथी वगैरह |
| पोय सत्था | – | – | नौका के व्यापारी |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| धमणि | – | – | नाड़ी |
| धमण | – | – | भैंस आदि के पेट में हवा भरना |
| धिती | – | – | धृति अहिंसा का २८वां नाम |

न

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| णक्क | – | – | नाक |
| णक्खत्त | – | – | नक्षत्र |
| नगर गोत्तिय | – | – | नगर रक्षक |
| णट्टग | – | – | नर्तक |
| णड | – | – | नट |
| णयण | – | – | नेत्र |
| णवनीत | – | – | मक्खन |
| णह | – | – | नख |
| णाराय | – | – | लोहे का बाण |
| निक्कम्मो | – | – | निष्कर्म |
| णिगम | – | – | वणिकों का निवास स्थान |
| णिगड | – | – | लोहे की बेड़ी |
| निग्गुणो | – | – | निर्गुण |
| निंबो | – | – | निम्ब |
| निव्वयणा | – | – | हिंसा का २८वां नाम |
| नत्थिकवादियो | – | – | नास्तिक वादी |
| निम्मलतर | – | – | खूब स्वच्छ, अहिंसा का ६ वां नाम |
| निल्लंछण | – | – | खस्सी करना, नपुंसक बनाना |
| निव्वाण | – | – | निर्वाण-मोक्ष, अहिंसा का १ला नाम |
| निव्वुइ | – | – | निर्वृति अहिंसा का २रा नाम |
| निहाणं | – | – | निधान, परिग्रह का २८वां भेद |
| नूमं | – | – | नूम-छादन |
| णेउर | – | – | नूपुर |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| परिप्पव | – | – | पारिप्लव |
| परीसहा | – | – | परिषह-कष्ट |
| परियार | – | – | तलवार की म्यान |
| पल्लल | – | – | पल्वल-छोटा तालाब |
| पलाल | – | – | पलाल-पोआल |
| पलित्त | – | – | प्रदीप्त |
| पयक | – | – | उछलने कूदने वाला |
| पवयण माया | – | – | प्रवचन माता |
| पणवक | – | – | वाद्य विशेष |
| पवा | – | – | प्याऊ |
| पवित्ता | – | – | पवित्रा अहिंसा का ४४वां नाम |
| पवित्थरो | – | – | धन का विस्तार परिग्रह का २०वां भेद |
| पणवीसग | – | – | वाद्य विशेष |
| पसय | – | – | दो खुर वाला जानवर |
| पहेरक | – | – | भूषण विशेष |
| पाइक्क | – | – | पैदल |
| पागार | – | – | कोट |
| पाठीण | – | – | एक जाति का मत्स्य |
| पाणवहो | – | – | प्राणवध हिंसा का १ला नाम |
| पादकेसरिया | – | – | पोंछने का वस्त्र |
| पादजालक | – | – | पांव नू पुर |
| पाद बंधणं | – | – | पात्र बन्धन |
| पायट्ठवण | – | – | पात्र ठवणी जिस पर पात्र रक्खा जाय |
| पारस | – | – | फारस देश |
| पारिप्पव | – | – | पारिप्लव जन्तु |
| पारेवय | – | – | कबूतर |
| पाव कोवो | – | – | हिंसा का १६वां नाम |

| शब्द | | | कोश |
|---|---|---|---|
| पोसहाणं | – | – | पौषधों का |
| पंगुला | – | – | पंगु |
| पिंगलक्खगा | – | – | पिंगलाक्ष पक्षी |
| पिगुल | – | – | पिंगुल पक्षी |
| पिंडो | – | – | पिंड परिग्रह का ६वां भेद |
| पोंडरीक | – | – | पुंडरीक पक्षी |
| पडिग्गाहो | – | – | पात्र |
| पडिलेहण | – | – | प्रति लेखना |
| पडिबन्धो | –प्रतिबन्ध बाह्य पदार्थों में स्नेहमन्य होना परिग्रह का १२वां भेद | | |
| पणव | – | – | वाद्य विशेष |
| पण्हव | – | – | पह्लव देश |
| पत्तरक | – | – | भूषण विशेष |
| पत्तेय सरीर | – | – | प्रत्येक शरीर |
| पभासा | – | प्रभासा अतिशय दीप्ति वाली अहिंसा का ४७वां नाम | |
| पमोक्खो | – | – | प्रमाद अहिंसा का ५९वां नाम |
| परदार सेवणं | – | – | पर स्त्री गमन |
| पयावइ | – | – | प्रजापति |
| परभव संकामकारओ | – | – | हिंसा का १८ वां नाम |
| परम किण्हलेस सहिए | – | – | परम कृष्ण लेश्या वाला |
| परमा धम्मिया | – | – | परमा धार्मिक देव |
| परसु | – | – | परशु कुल्हाड़ा |
| परा | – | – | तृण विशेष |
| परिग्गहो | – | – | परिग्रह का १ला भेद |
| परिचारणा | – | – | अभिचार में सहायक |
| परितावण अण्हओ | – | – | हिंसा का २६वां नाम |
| परियण | – | – | परिजन |
| परिट्ठावणिया समिति | – | – मल मूत्र आदि परठने की समिति | |

| शब्द | | अर्थ |
|---|---|---|
| बलदेवा | — — | बलदेव |
| बहलीय | — — | बाहलीक देशवासी |
| बहिरा | — — | बहरे |
| बादर | — — | बादर नामक-कर्म |
| बिल्लल | — — | बिल्वल देश |
| बुद्धी | — — | बुद्धि अहिंसा का १६वां नाम |
| बेंदिए | — — | दो इन्द्रिय वाला |
| बेलंबक | — — | विडम्बक |
| बोही | — — | बोधि अहिंसा का १६वां नाम |
| बंजुल | — — | वंजुल पक्षी |
| बंभचेर | — — | ब्रह्मचर्य |

भ

| | | |
|---|---|---|
| भट्ठ भज्जणाणि | — — | भाड़ में चना के जैसे भूंजना |
| भडग | — — | भडक जाति |
| भडा | — — | सैनिक |
| भत्तपाणं | — — | आहार पानी |
| भद्दा | — — | भद्रा कल्याणकारी, अहिंसा का २४वां नाम |
| भमर | — — | भंवरा |
| भयक | — — | नौकर |
| भयंकरो | — — | हिंसा का २३वा नाम |
| भरहं | — — | भरत क्षेत्र |
| भल्ल | — — | भाला |
| भवण | — — | भवन |
| भाइल्लका | — — | सेवक |
| भायण | — — | पात्र |
| भारो | — — | भार आत्मा विशेष भारी करने वाला, परिग्रह का १४वां भेद |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| पावमुत | – | – | पाप मुक्त |
| पावलोभो | – | – | हिंसा का २०वां नाम |
| पासाव | – | – | प्रासाद |
| पिक्कमंसी | – | – | पका हुआ मंसी नाम का वृक्ष |
| पिच्छ | – | – | मूछ |
| पित्त | – | – | शरीर का एक दोष |
| पिट्टण | – | – | पीटना |
| पियरो | – | – | पिता आदि |
| पिसुणं | – | – | चुगल खोर |
| पिपीलिय | – | – | पपीहा पी पी करने वाला पक्षी |
| पीसण | – | – | पीसना |
| पोक्खरिणी | – | – | कमल वाली बावडी |
| पुरवर | – | – | प्रधान नगर |
| पुट्ठी | – | – | पुष्टि अहिंसा का २१वां नाम |
| पुरिसकारो | – | – | पुरुषार्थ |
| पुलुय | – | – | पुलक एक प्रकार का भाड़ |
| पुलिंद | – | – | पुलिंद देश |
| पूया | – | – | अहिंसा का २२वां नाम |

फ

| | | | |
|---|---|---|---|
| फलक | – | – | विस्तर-कुर्सी आदि |
| फलिहा | – | – | परिघा भारक |
| फासुयं | – | – | प्रासुक निर्जीव |
| फिप्फिस | – | – | फुप्फुस पेट का भीतरी भाग |

ब

| | | | |
|---|---|---|---|
| बक | – | – | बगुला |
| बलाका | – | – | बगुली |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| मज्जार | – | – | बिल्ली |
| मज्जिय | – | – | मज्जिका |
| मणगुत्ते | – | – | मनो गुप्त |
| मणपज्जवनाणी | – | – | मन.पर्यव ज्ञानी |
| मणि | – | – | चन्द्र कान्त आदि |
| मणुय | – | – | मनुष्य |
| मत्थुलिंग | – | – | मस्तुलिंग |
| मधुकरी | – | – | भ्रमरी |
| मयणसाल | – | – | मैना |
| मधु | – | – | शहद |
| मया | – | – | मद |
| मयूर | – | – | मोर |
| मरहट्ठ | – | – | महाराष्ट्र देश |
| मरुय | – | – | मरुआ |
| मरूगा | – | – | मरुक देश |
| मलय | – | – | मलय देश |
| मल्ल | – | – | पहलवान |
| मसग | – | – | मशक |
| महव्वया | – | – | महाव्रत |
| महाकुंभि | – | – | बड़ी कुंभी |
| महा सउणि पूतना रिपु | | – | महा शुकनि और पूतना के शत्रु |
| महार्दि | – | – | अपरिमित याचना वाला, परिग्रह का १४वां भेद |
| महिच्छा | – | – | तीव्र इच्छा वाला |
| महिस | – | – | भैंसा |
| महुकोसए | – | – | मधु के छत्ते |
| महुघाय | – | – | मधु लेने वाल |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| भावणा | – | – | भावना |
| भाविओ | – | – | भावित सुसंस्कार वाला |
| भास | – | – | भास पक्षी |
| भासा समिते | – | – | भाषा समिति वाला |
| भिक्खु पडिमा | – | – | साधु की पडिमा |
| भिंगारग | – | – | भिंगारक पक्षी |
| भिंगार | – | – | झारी |
| भुज्जि | – | – | भूने हुए धानो |
| भूमि घर | – | – | तल घर |
| भूय गामा | – | – | जीवों के समूह |
| भेयविहुणग | – | – | हिंसा का एक नाम |
| भेसज्ज | – | – | भेषज |
| भोमालिय | – | – | भूमि सम्बन्धी झूठ |
| मंडोवगरण | – | – | मिट्टी के भांड |
| भिंडिपाल | – | – | भिंडिपाल |
| | म | | |
| मइय | – | – | मतिक खेत जोतने के बाद ढेला फोड़ने का मोटा काष्ठ |
| मउलि | – | – | फण वाले सर्प |
| मगर | – | – | मगर मच्छ |
| मच्छबंधा | – | – | मछली पकड़ने वाला |
| मच्छरि | – | – | मत्सरी लोग |
| मच्छिय | – | – | मच्छर हिंसा का १४वां नाम |
| मच्छंडी | – | – | मिश्री |
| मज्ज | – | – | मद्य |
| मंडप | – | – | मंडप |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| मूका | – | – | गूंगा |
| मूढा | – | – | मूर्ख |
| मूयक | – | – | एक प्रकार का तृण |
| मूलकम्मं | – | – | गर्भ पात आदि मूल कर्म |
| मेय | – | – | मेद-वातु |
| मेत | – | – | मेद देश |
| मेर | – | – | मंज के तन्तु |
| मेहला | – | – | मेखला |
| मोक्खो | – | – | मोक्ष |
| मेहुण | – | – | मैथुन |
| मोग्गर | – | – | मुद्‌गर |
| मोयग | – | – | मोदक |
| मोस | – | – | मिथ्या |
| मोहणिज्जो | – | – | मोहनीय |
| मौलि | – | – | मुकली सर्प |
| मौस्टिक | – | – | मुष्टि प्रमाण पत्थर |
| मगल | – | – | मङ्गलकारी, अहिंसा का ३०वां नाम |
| मडवाण | – | – | मण्डपों के |
| मडव | – | – | मडप |
| मथु | – | – | बोर आदि का चूर्ण |
| मदर | – | – | मेरु पर्वत |
| मदुक | – | – | मेढक |
| मदुय | – | – | मन्दुक-जल |
| मंमणा | – | – | तूतली बोलने वाला |
| मस | – | – | मांस |
| मिंजा | – | – | मज्जा |
| मुगुस | – | – | मंगुस |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| महुर | – | – | महुर देश |
| महारग | – | – | बड़ा सर्प |
| माइ | – | – | मक्खि |
| माणा | – | – | मान |
| माणुसोत्तर | – | – | मनुषोत्तर पर्वत |
| मायर | – | – | माया कपट |
| माया मासो | – | – | माया मृषा |
| मारणा | – | – | हिंसा का ७वाँ नाम |
| मारुय | – | – | मारुत वायु |
| मालव | – | – | मालव देश |
| मास | – | – | माष देश |
| मिच्छदिट्ठी | – | – | मिथ्या दृष्टि वाला |
| मिय | – | – | मृग |
| मुइंग | – | – | मृदङ्ग |
| मुगुंस | – | – | मगूस-भुज परिसर्प जन्तु |
| मुट्ठिय | – | – | मौष्टिक देश |
| मुट्ठिय | – | – | मौष्टिक मल्ल |
| मुत्त | – | – | मोती |
| मुच्छा | – | – | मोह |
| मुम्मुर | – | – | अग्नि के कण |
| मुरय | – | – | मर्दल |
| मुरुंड | – | – | मुरुंड देश |
| मुसल | – | – | मूसल |
| मुसावादी | – | – | झूठ बोलने वाला |
| मुसुंढि | – | – | प्रहरण विशेष भुशुंडी |
| मुहमंगलिक | – | – | मुख पक्षिका |
| महत्ती | – | – | मार्ग्गी महिला-सम्पन्न, अहिंसा का १६वाँ भेद |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| रोहिणी | – | – | रोहिणी |
| **ल** | | | |
| लउड | – | – | लकुट-छोटा डंडा |
| लद्धी | – | – | लब्धि अहिंसा का २७वां नाम |
| लवण | – | – | लवण समुद्र |
| लवंग | – | – | लौंग |
| लावक | – | – | लवे |
| लासग | – | – | रास गाने वाले |
| ल्हासिय | – | – | ल्हासिक देश |
| लुद्धा | – | – | लोभ |
| लेट्ठु | – | – | पत्थर |
| लेण | – | – | पहाड में बना घर |
| लेस्साओ | – | – | लेश्या |
| लोह सकल | – | – | लोह की बेडी |
| लोह पजर | – | – | लोह के पंजे |
| लोहप्पा | – | – | लोभात्मा, परिग्रह का १३वां भेद |
| लछण | – | – | लाछन चिह्न बनाना |
| लुपणा | – | – | हिंसा का २६वां नाम |
| **व** | | | |
| वइ जोगस्स | – | – | वचन का व्यापार, |
| वइर | – | – | वज्र |
| वउस | – | – | वकुशदेश, |
| वक्कय | – | – | वल्कल |
| वग्गुली | – | – | वागुल |
| वज्ज रिसह नाराय संघयणा | | – | वज्र ऋषभनाराच संहनन, |
| वज्जो | – | – | हिंसाका २५ वां नाम. |
| वट्टक | – | – | वसक |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| | र | | |
| रक्खा | – | – | रक्षा, अहिंसा का ११वां नाम |
| रत्त सुभद्दा | – | – | रक्त सुभद्रा |
| रतिकर | – | – | रतिकर पर्वत |
| रती | – | – | रति प्रेम |
| रतीय | – | – | सन्तोष, अहिंसा का ७वां नाम |
| रयण | – | – | रत्न |
| रयय | – | – | चांदी |
| रयणागर | – | – | रत्नों से युक्त |
| रयणोरुजालिय | – | – | अंगों का भूषण |
| रयोहरण | – | – | रजोहरण |
| रवि | – | – | सूर्य |
| रह | – | – | रथ |
| रायहंस | – | – | राजहंस |
| राया | – | – | राजा |
| रिट्ठवसभ | – | – | अरिष्ट नामक बैल |
| रिद्धि | – | – | ऋद्धि अहिंसा का २०वां नाम |
| रिसओ | – | – | ऋषि |
| रुक्खमूल | – | – | वृक्ष मूल |
| रुयगवर | – | – | मण्डलाकार रुचक गिरि |
| रुप्पिणी | – | – | रुक्मिणी |
| रुद्दा | – | – | रौद्र |
| रुहिर महिमा | – | – | रुधिरेप्सु |
| रूव | – | – | रूप |
| रूरु | – | – | रूरु देश |
| रोम | – | – | रोम देश, बाल |
| रोहिय | – | – | रोहित पशुविशेष |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| वामण | – | – | छोटेशरीर वाला |
| वायर | – | – | वादर-स्थूल |
| वायस | – | – | कौवा |
| वालरज्जुय | – | – | वालकी रस्सी |
| वावि | – | – | कमल रहित या गोल वावडी |
| वासहर | – | – | वर्षधर हिमवान आदि |
| वासि | – | – | वसूला |
| वासुदेवा | – | – | वासुदेव |
| वाहण | – | – | गाडी आदि |
| वाहा | – | – | व्याध |
| विकप्प | – | – | एक तरह का महल |
| विकहा | – | – | विकथा |
| विग | – | – | भेडिया व्याघ्र |
| विग्घि | – | – | व्याघ्र |
| विचित्त | – | – | विचित्र कूट पर्वत |
| विच्छुय | – | – | विच्छू |
| विडंग | – | – | कबूतरों का घर |
| विणासु | – | – | हिंसा का २७वा नाम |
| विण्हुमयं | – | – | विष्णुमय |
| वितत | – | – | ढोल |
| विततपक्खि | – | – | वितत पची |
| विद्धि | – | – | वृद्धि, अहिंसा का २१वा नाम |
| विपची | – | – | वीणा |
| विभूती | – | – | विभूति, अहिंसा का ३२वा नाम |
| विमुत्ती | – | – | विमुक्ति, अहिंसा का १२वां नाम |
| विमल | – | – | विमल, अहिंसा का ४८वां नाम |
| वियल | – | – | वींजना |

| शब्द | अर्थ |
| --- | --- |
| वट्ट पव्वय | गोलाकार पर्वत |
| वण चरगा | जंगल में घूमने वाले |
| वच्छ | बछड़ा |
| वणस्सइ | वनस्पति |
| वद्धीसक | वाद्यविशेष |
| वप्पिणि | पानी की नाली |
| वप्पिणि | बावड़ी |
| वय | व्रत |
| वयगुत्ते | वचनगुप्त |
| वयण | बीजना |
| वरत्त | चमड़े की डोरी |
| वर पोत | जहाज |
| वरहिण | मयूर |
| वराहि | दृष्टिविष–सर्प |
| वल्लकी | वीणा |
| वल्लर | खेत विशेष |
| ववसाओ | व्यवसाय, अहिंसाका ४४ वां नाम |
| वव्वर | बर्बर देश |
| वसा | चरबी |
| वहण | नौका |
| वहणा | हिंसाका ८ वां नाम |
| वाहुल्लिय | भुजपरिसर्प |
| वाउरिय | जाल लेकर-घूमने वाले |
| वाणियगा | वणिक लोग |
| वानर कुल | बन्दर जाति |
| वानर | बन्दर |
| वामलो कवाती | विपरीत बोलने वाला |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| सगड | – | – | शकट-गाडी |
| सण | – | – | आसन |
| सणप्फ | – | – | नखयुक्त पैर वाले |
| सतग्घि | – | – | तोप |
| सत्ति | – | – | शक्ति त्रिशूल |
| सत्ती | – | – | शक्ति, अस्त्र भेद अहिंसा का ४र्थ नाम |
| सद्दूल | – | – | शार्दूल सिंह |
| सब्बल | – | – | भाला |
| सन्नी | – | – | सन्नी |
| सपरिग्गह | – | – | परिग्रह के साथ |
| सप्पि | – | – | घी |
| सवर | – | – | शवर भिल्ल जाति |
| सभा | – | – | सभा |
| समणधम्मे | – | – | श्रमण धर्म |
| सम चउरंससठाण | | – | सम चतुरस्र चारो कोण बराबर |
| समय | – | – | सिद्धान्त |
| सम्मत्त विसुद्ध मूलो | | – | सम्यक्त्व रूप विशुद्ध मूल वाला |
| सम्मदिट्ठी | – | – | सम्यग्दृष्टि |
| सम्मत्ताराहणा | – | – | सम्यक्त्व की आराधना, अहिंसा का १४वां नाम |
| समाहि | – | – | समाधि-समता, अहिंसा का ३रा नाम |
| समिई | – | – | समिति, अहिंसा का ३८वा नाम |
| समिद्धि | – | – | समृद्धि, अहिंसा का १६वा नाम |
| सागपत्त | – | – | शाकपत्र |
| साण | – | – | श्वान-कुत्ता |
| सामलिपोंड | – | – | शाल्मली वृक्ष के फल |
| सामली | – | – | नरक का शाल्मली वृक्ष |
| सारस | – | – | सारस पक्षी |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| वियग्ग | – | – | व्याघ्र के बच्चे |
| विरतीय | – | – | हिंसा रूप पाप से विरत |
| विरल्ल | – | – | विरल्ल-मकड़ी |
| विराहणाओ | – | – | विराधना |
| विलउलि कारकार्य | – | | दूसरे को व्यामोह में डालने के लिये विस्वर बोलने वाला |
| विस्संभ घाइओ | – | – | विश्वासघाती |
| विसिट्ठ दिट्ठी | – | – | विशिष्ट दृष्टि अहिंसा का २८वां नाम |
| विसुद्धी | – | – | विशुद्धि, अहिंसा का २६वां नाम |
| विसाण | – | – | हाथी का दांत |
| विहार | – | – | मठ |
| विहंग | – | – | पक्षी |
| विहंगम पास हत्था | – | – | संडास और जाल हाथ में रखने वाला |
| वीसासो | – | – | विश्वास, अहिंसा का ५१वां भेद |
| वीही | – | – | व्रीही चावल |
| वडिम | – | – | वडिम-असवी |
| वेतिय | – | – | वेदिका चबूतरा |
| वेरको | – | – | मोका |
| वेसर | – | – | पक्षी विशेष |
| वोरमण | – | – | हिंसा का १६वां नाम |
| वंजुल | – | – | एक प्रकार का पक्षी |
| वंस | – | – | बांसुरी |

स

| | | | |
|---|---|---|---|
| सउण | – | – | शकुन पक्षी |
| सक | – | – | शकदेश या जाति |
| सक्करा | – | – | भूमि |
| सक्कुलि | – | – | तिल पापड़ी |
| सढे | – | – | मायावी |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| सुयश | – | – | श्रुतज्ञान, अहिंसा का ६वा नाम |
| सुरूव विज्जुमतीए | – | – | सुरूपविद्युन्मती |
| सुवण्ण गुलिया | – | – | सुवर्ण गुलिका |
| सुसाण | – | – | श्मशान |
| सुहुम | – | – | सूक्ष्म |
| सुई | – | – | सूची-सूई |
| सूकरे | – | – | सूअर |
| सूती | – | – | शुचि-अहिंसा का ५६वा नाम |
| सूप | – | – | दाल |
| सूप्प | – | – | सूपडा |
| सूलक | – | – | चुगलखोर |
| सूयगड | – | – | सूत्र कृताङ्ग |
| सूलिय | – | – | शूली |
| सूसर परिवादिणी | – | – | वीणा |
| सेण | – | – | श्येन-बाजपक्षी |
| सेणावसी | – | – | सेनापति |
| सेतु | – | – | पुल |
| सेल | – | – | पाषाण |
| सेल्लक | – | – | शल्यक जन्तु |
| सेह | – | – | शरीर पर काटे वाला जन्तु |
| सेहब | – | – | रायता आदि |
| सोणिय | – | – | रक्त |
| सोय | – | – | शोक |
| सोयरिया | – | – | सूअरों के द्वारा शिकार करने वाला |
| सोलहविह | – | – | सोलह प्रकार का |
| सकम | – | – | उतरने का मार्ग |
| सकरो | – | – | वस्तुओं का परस्पर मिलाना, परिग्रह का ७वा भेद |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| साली | – | – | शाली धान्य विशेष |
| साहारण सरीर | – | – | साधारण शरीर |
| सिद्धातिगुणा | – | – | सिद्धों के गुण |
| सिद्धावासो | – | – | सिद्धावास अहिंसा का १८वां नाम |
| सिप्पकला | – | – | शिल्पकला |
| सियाल | – | – | शृगाल |
| सिरिवंच्छग | – | – | श्रीवत्सक |
| सिलप्प | – | – | श्याल |
| सिव | – | – | शिव–उपद्रव रहित अहिंसा का २७वां नाम |
| सिस्सा | – | – | शिष्य |
| सिहर | – | – | शिखर |
| सिहरिणि | – | – | दही और शक्कर से बना |
| सीमागार | – | – | एक प्रकार का झाड़ |
| सीया | – | – | बड़ी पालकी सीता |
| सील | – | – | शील अहिंसा का ३६वां नाम |
| सील परिघरो | – | – | शील परिग्रह अहिंसा का ४१वां नाम |
| सीसक | – | – | सीसा |
| सीह | – | – | सिंह |
| सीहल | – | – | सिंहल देश |
| सुइमुह | – | – | सूचीमुख–तीखी चोंच वाला पक्षी |
| सुघाम | – | – | पंख |
| सुक | – | – | तोता |
| सुकयं | – | – | सुकृत |
| सुणग | – | – | कुत्ता |
| सूय | – | – | साला |
| सुंमागणी | – | – | भु आमी |
| रम् | | | |

| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| हत्थदुय | – | – | हस्तान्दुक एक प्रकार का बन्धन |
| हय | – | – | घोड़ा |
| हय पुंडरिय | – | – | हद पुण्डरीक पक्षी |
| हरिएसा | – | – | चाण्डाल |
| हल | – | – | हल |
| हस्स | – | – | हास्य |
| हिंतयंत | – | – | हृदय और आंत |
| हिरण्ण | – | – | चांदी |
| हुरब्भ | – | – | भेड़ आदि ऊन वाले जीव |
| हुलियं | – | – | शीघ्र |
| हूण | – | – | हूण जाति |
| हस | – | – | हंस |
| हिंसविहिंसा | – | – | हिंसा का ८था नाम |
| हुंड | – | – | बेडौल शरीर-कुरूप |



| शब्द | | | अर्थ |
|---|---|---|---|
| संख | – | – | शङ्ख |
| संचयो | – | – | वस्तुओं की अधिकता परिग्रह का २१वां भेद |
| संजमो | – | – | संयम, अहिंसा का ४ थो नाम |
| संखास रोम | – | – | संखास की आकृति की तरह मुंह वाला जीव |
| संथवा | – | – | बाह्य पदार्थों का अधिक परिचय, परिग्रह का २२वां भेद |
| संधि छेयक | – | – | सात खोदने वाला |
| संपाउप्पायको | – | – | झूठ आदि पाप को करने वाला, परिग्रह का १८ वां भेद |
| संपुड | – | – | सम्पुट |
| संदण | – | – | युद्ध तथा देव रथ |
| संबर | – | – | सांभर |
| संभारो | – | – | संभार या अच्छी तरह से धारण किया जाय परिग्रह का ६ठा भेद |
| संमुच्छिम | – | – | सम्मूर्च्छिम बिना गर्भ के उत्पन्न होने वाला जीव |
| संवरो | – | – | संवर, अहिंसा का ४२ नाम |
| संवट्टगसंवेवो | – | – | हिंसा का एक नाम |
| संसेइम | – | – | पसीने से पैदा होने वाला |
| संरक्खणा | – | – | संरक्षणा-मोहवश शरीर आदि की रक्षा करना परिग्रह का १६वां भेद |
| सिंग | – | – | सींग |
| सुंसुमार | – | – | जलचर जन्तु विशेष |

ह

| | | | |
|---|---|---|---|
| हवि | – | – | काष्ठ का घोड़ा |
| हत्थि | – | – | हाथी |
| हत्थिमड | – | – | हाथी का कलेवर |

को कर्मबन्ध का हेतु बनाते हैं। ज्ञानी के लिये वे ही पदार्थ कर्म निर्जरा के हेतु हैं। अतएव पदार्थों को आस्रव नहीं कहा गया।

सब आस्रवों का आधार योग है। इस योग प्रवृत्ति से होने वाला आस्रव शुभ अशुभ भेद से दो प्रकार का है। पुण्य बन्ध के कारण पुण्यास्रव और पाप बन्ध के हेतु पापास्रव कहाते हैं। अशुभयोग के निरोध की अपेक्षा शुभयोग को संवर भी कहा है, किन्तु परमार्थ दृष्टिसे योगमात्र ही आस्रव है। अत शुभ प्रवृत्ति भी शुभास्रव कहाती है। कर्मबन्ध का हेतु होने से आस्रव त्याज्य है। फिर भी शुभास्रव एकान्तरूप से हेय नहीं है। तीर्थङ्कर नाम कर्म के बन्ध हेतु २० बोल अपेक्षासे शुभास्रव होकर भी उपादेय है, क्योंकि तीर्थङ्कर पद संवर निर्जरा का प्रचार करने वाला पद है। अत. जिस पुण्य प्रकृति से उसका लाभ हो वह भी उपादेय है। यदि ऐसा नहीं माना जाय तो मुनिओं की देशना, उपासकों की उपासना और सेवाव्रत आदि सारी प्रवृत्तियां त्यागने योग्य हो जायगीं किन्तु ऐसा नहीं है।

समुद्र पार जाने वाले यात्री को जैसे .गाडी छोडकर समुद्र में जहाज ग्राह्य होती है और पार पहुँच जाने पर जहाज भी छोड दी जाती है। वैसे संसार सागर पार होने वाले साधक के लिये साधनावस्था में पाप छोडकर पुण्य उपादेय हो जाता है, क्योंकि शुभानुबन्धी पुण्य उनको साधना के अभिमुख करता और उसमें सहायक होता है। हा, जब साधना पूर्ण हो जाती है तब सिद्धावस्था के लिये पाप की तरह पुण्यास्रव भी त्यागने योग्य हो जाता है, किन्तु प्रथम से ही उसको त्याज्य समझ लेना उचित नहीं कहा जा सकता।

प्रस्तुत शास्त्र मे केवल सापरायिक आस्रव का ही वर्णन किया है। ऐर्यापथिक या शुभास्रव का नहीं, क्योंकि शुभास्रव न वैसा आत्मा के लिये अहितकर है और न इसका छूटना ही कठिन है, जैसाकि साम्परायिक आस्रव का। अतएव हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह रूपसे पाच आस्रवों का यहा वर्णन किया गया है। ये आस्रव दुर्गति के कारण होने से सर्वथा हेय हैं।

## २. संवर—

जीव रूप तालाब में कर्म प्रवाह को जिन कारणों से रोका जाय वह संवर है। आस्रव की तरह इसके भी द्रव्य भाव रूप से दो भेद है। नौका या तालाब के जल मार्ग को रोकना द्रव्य सवर और समिति गुप्तियों के द्वारा कर्मास्रव को रोकना भाव संवर है।

# प्रश्नव्याकरण सूत्रस्य विशिष्ट टिप्पणानि

## १ आस्रव, संवर—

आस्रव और संवर प्रश्नव्याकरण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। प्रथम सूत्र में आस्रव तथा संवर पर कहने की प्रतिज्ञा की गई है। अतएव टिप्पण में भी प्रथम स्थान इन्हीं दो को दिया जाता है। आस्रव का अर्थ है कि जिसके द्वारा आत्मा में कर्म प्रवेश करे, अथवा जिसके द्वारा कर्म का उपार्जन हो वह आस्रव है। जैसे सरोवर में प्रवाह रूप से पानी का आगमन होता है और जल के आने से सरोवर लबालब भर जाता है वैसे ही आत्मरूप सरोवर में जिस मार्ग से कर्म प्रवाह आता है, वह मार्ग एवं कर्मों का आना आस्रव है। इसके मुख्य भेद दो हैं। द्रव्यास्रव और और भावास्रव। नौका में छिद्र के द्वारा जल का प्रविष्ट होना द्रव्यास्रव और इन्द्रिय आदि से जीव में कर्म का आना भावास्रव है। यहां केवल कर्मास्रव से अभिप्राय है। कर्मागमन के हेतु मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ऐसे पांच हैं। इनमें योग सबका आधार है, जो तीन प्रकार का है। मनोयोग, वाग्योग, और काय योग। मानसिक प्रवृत्ति को मनोयोग, वाचिक को वचन योग तथा कायिक प्रवृत्ति को काय योग कहते हैं। योग के साथ जब कषाय क्रोध आदि भाव का सम्बन्ध होता है तब उसे साम्परायिक आस्रव कहते हैं और कषाय रहित केवल योग प्रवृत्ति को ईर्यापथिक आस्रव कहते हैं। इन दोनों में साम्परायिक आस्रव के ५ इन्द्रिय ४ कषाय ५ अव्रत, २५ क्रिया और ३ योग मिलकर ४२ भेद होते हैं। प्रकारान्तर से आस्रव के २० भेद भी होते हैं। इन्द्रिय और मन में विकार पैदा करने वाले बाह्य पदार्थ संसार में अगणित हैं परन्तु वे सब कर्म बन्ध में नियत हेतु नहीं हैं। क्योंकि बन्ध या निर्जरा में हेतु बनाना आत्मा के अधीन है। अज्ञानी जिन स्रक्-चन्दनादि पदार्थों

को कर्मबन्ध का हेतु बनाते हैं। ज्ञानी के लिये वे ही पदार्थ कर्म निर्जरा के हेतु है। अतएव पदार्थों को आस्रव नही कहा गया।

सब आस्रवो का आधार योग है। इस योग प्रवृत्ति से होने वाला आस्रव शुभ अशुभ भेद से दो प्रकार का है। पुण्य बन्ध के कारण पुण्यास्रव और पाप बन्ध के हेतु पापास्रव कहाते हैं। अशुभयोग के निरोध की अपेक्षा शुभयोग को संवर भी कहा है, किन्तु परमार्थ दृष्टिसे योगमात्र ही आस्रव है। अत. शुभ प्रवृत्ति भी शुभास्रव कहाती है। कर्मबन्ध का हेतु होने से आस्रव त्याज्य है। फिर भी शुभास्रव एकान्तरूप से हेय नहीं है। तीर्थङ्कर नाम कर्म के बन्ध हेतु २० बोल अपेक्षासे शुभास्रव होकर भी उपादेय है, क्योंकि तीर्थङ्कर पद संवर निर्जरा का प्रचार करने वाला पद है। अतः जिस पुण्य प्रकृति से उसका लाभ हो वह भी उपादेय है। यदि ऐसा नहीं माना जाय तो मुनिओं की देशना, उपासकों की उपासना और सेवाव्रत आदि सारी प्रवृत्तिया त्यागने योग्य हो जायगीं किन्तु ऐसा नहीं है।

समुद्र पार जाने वाले यात्री को जैसे .गाडी छोडकर समुद्र में जहाज ग्राह्य होती है और पार पहुँच जाने पर जहाज भी छोड दी जाती है। वैसे संसार सागर पार होने वाले साधक के लिये साधनावस्था में पाप छोडकर पुण्य उपादेय हो जाता है, क्योकि शुभानुबन्धी पुण्य उनको साधना के अभिमुख करता और उसमें सहायक होता है। हा, जब साधना पूर्ण हो जाती है तब सिद्धावस्था के लिये पाप की तरह पुण्यास्रव भी त्यागने योग्य हो जाता है, किन्तु प्रथम से ही उसको त्याज्य समझ लेना उचित नहीं कहा जा सकता।

प्रस्तुत शास्त्र मे केवल सापरायिक आस्रव का ही वर्णन किया है। ऐर्यापथिक या शुभास्रव का नहीं, क्योंकि शुभास्रव न वैसा आत्मा के लिये अहितकर है और न इसका छूटना ही कठिन है, जैसाकि साम्परायिक आस्रव का। अतएव हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह रूपसे पाच आस्रवो का यहा वर्णन किया गया है। ये आस्रव दुर्गति के कारण होने से सर्वथा हेय हैं।

## २. संवर—

जीव रूप तालाब में कर्म प्रवाह को जिन कारणों से रोका जाय वह संवर है। आस्रव की तरह इसके भी द्रव्य भाव रूप से दो भेद है। नौका या तालाब के जल मार्ग को रोकना द्रव्य सवर और समिति गुप्तियों के द्वारा कर्मास्रव को रोकना भाव सवर है।

# प्रश्नव्याकरण सूत्रस्य विशिष्ट टिप्पणानि

## १ आस्रव, संवर—

आस्रव और संवर प्रश्नव्याकरण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। प्रथम सूत्र में आस्रव तथा संवर पर कहने की प्रतिज्ञा की गई है। अतएव टिप्पण में भी प्रथम स्थान इन्हीं दो को दिया जाता है। आस्रव का अर्थ है कि जिसके द्वारा आत्मा में कर्म प्रवेश करे, अथवा जिसके द्वारा कर्म का उपार्जन हो वह आस्रव है। जैसे सरोवर में प्रवाह रूप से पानी का आगमन होता है और जल के आने से सरोवर लबालब भर जाता है वैसे ही आत्मरूप सरोवरमें जिस मार्गसे कर्म प्रवाह आता है, वह मार्ग एवं कर्मों का आना आस्रव है। इसके मुख्य भेद दो हैं। द्रव्यास्रव और और भावास्रव। नौका में छिद्र के द्वारा जल का प्रविष्ट होना द्रव्यास्रव और इन्द्रिय आदि से जीव में कर्म का आना भावास्रव है। यहां केवल कर्मास्रव से अभिप्राय है। कर्मागमन के हेतु मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ऐसे पांच हैं। इनमें योग सबका आधार है,जो तीन प्रकारका है। मनोयोग, वाग्योग, और काय योग। मानसिक प्रवृत्ति को मनोयोग, वाचिक को वचन योग तथा कायिक प्रवृत्ति को काय योग कहते हैं। योग के साथ जब कषाय क्रोध आदि भाव का सम्बन्ध होता है तब उसे साम्परायिक आस्रव कहते हैं और कषाय रहित केवल योग प्रवृत्ति को ईर्यापथिक आस्रव कहते हैं। इन दोनों में साम्परायिक आस्रव के ५ इन्द्रिय ४ कषाय, ५ अव्रत, २५ क्रिया और ३ योग मिलकर ४२ भेद होते हैं। प्रकारान्तर से आस्रवके २० भेद भी होते हैं। इन्द्रिय और मनमें विकार पैदा करने वाले बाह्य पदार्थ संसार में अवस्थित हैं परन्तु वे सब कर्म बन्धमें नियत हेतु नहीं हैं। क्योंकि बन्ध या निर्जरा में हेतु बनाना आत्मा के अधीन है। अज्ञानी जिन स्रक्-चन्दनादि पदार्थों

उसके शरीर को कुछ भी क्षति नहीं पहुँचाई, फिर भी जब तक उसका जीवन है वह अन्यत्र रहकर भी आपसे बदला लेना चाहेगा। उसका हृदय वैर को नहीं भूल सकेगा, क्योंकि आपने उसका आश्रय छुडाया है। असमर्थ होकर भी जैसे जर्मन ब्रिटिश के साथ वैर नहीं भूला वैसे ही जिस प्राणी के प्राणों का अपहरण किया गया है वह जन्मान्तर में जाने पर भी अपने प्राण घातक के साथ वैरानुबन्ध नहीं भूलता। दूर बसे हुए भी शरणार्थिओ की तरह उसका हृदय वैर से कलुषित रहता है। प्राण छूटने पर भी उसके आश्रित जीने वाले प्राणी अमर रहते हैं। इस लिये कहा है कि--"पञ्चेन्द्रियाणित्रिविधं बलञ्च, उच्छ्वास निश्वासमथान्यदायु. प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्ता--स्तेषा वियोगी करणं तु हिसा ॥ पाच इन्द्रियां, ३ बल श्वास और आयु रूप दश प्राणो का जीव से वियोग करना ही हिंसा है। इसलिये हिंसा को प्राणवध कहा गया।

किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि दूसरो को कष्ट पहुंचाना हिंसा नहीं है। प्राण नाश का कारण होने से दुःख या क्लेश पहुँचाना भी वध कहा गया है। जैसे कि--'तप्पज्जाय विणासो, दुक्खुप्पातो य सकिलेसो य। पस वहो जिण भणिओ वज्जेयव्वो पयत्तेण ॥ शरीर पर्याय का नाश और दुःख एव संक्लेश उत्पन्न करना इसको तीर्थङ्करो ने वध कहा है जो प्रयत्न पूर्वक त्यागना चाहिए।

प्राणिवध भी व्यवहार दृष्ट्या प्राणवध को कहते हैं।

## ४. हिंसाके कारण—

अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग रूपसे हिंसा के प्रमुख दो कारण हैं। उनमे अन्तरङ्ग कारण क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, वैदिक अनुष्ठान अर्थ, धर्म, काम और जीत-रूढि पालन के लिये हिंसा की जाती है।

बहिरङ्ग कारण–

चमडा १ चरबी २ मास ३ मेद ४ रक्त ५ यकृत् ६ फिप्फस-फेफडा ७ मस्तुलुंग-कपाल का भेजा ८, हृदय ६, आत १० पित्त ११ फोफस १२ दात १३, अस्थि १४ मज्जा १५, नख १६ नेत्र १७, कान १८ स्नायु-नसें १९, नाक २० धमनी-नाडी २१ सींग २२, दाढ २३, पिच्छ या पूछ २४, विष २५, विषाण-हाथी दात २६ और बाल २७ इनके लिये गो महिष आदि पञ्चेन्द्रिय जीवों की हिंसा होती है। मधु-आदि के लिये चतुरिन्द्रिय भ्रमर आदि की, शरीर और उपकरण शुद्धि के लिये

कर्म निरोध के उपाय तरीके 'संवर' के ५७ भेद होते हैं—"जैसे-५ समिति ३ गुप्ति, १० यतिधर्म, १२ भावना, २२ परीषह और ५ चारित्र कुल ५७। शुभाशुभ कर्मास्रव को रोकने के कारण संयम या चारित्र को भी संवर कहते हैं। आस्रव की विपरीत सारी प्रवृत्ति संवर का कारण है। इसके मुख्य भेद सम्यक्त्व, व्रत, अप्रमाद, अकषाय और अयोग रूप से पांच हैं। मिथ्यात्व आदि पांच हेतुओं से होने वाला कर्मास्रव थोड़ी देर के लिये कल्पना कीजिए कि ११११९ का है। अब मिथ्यात्व का द्वार बन्द कर दिया जाय, तब ११११ बाकी रहते हैं। दश हजार का कर्ज कम हो गया। एवं अव्रत का दूसरा द्वार बन्द कर देने पर एक हजार कम हो गया, और प्रमाद एवं कषाय के संवरण कर लेने पर तो योग निमित्तक एक रुपया जितना ही कर्म बाकी रहता है। अतएव जो प्राणी मिथ्यात्व का द्वार बन्द कर चुके हैं, उनके लिये यहां हिंसा असत्य आदि त्याग रूप पांच संवर कहे गये हैं।

इन पांच संवरों के द्वारा अव्रत रूप दूसरा द्वार बन्द हो जाता है, और प्रमाद कषाय एवं योग के संकुचित हो जाने से उनके द्वारा होने वाला आस्रव भी अल्प हो जाता है। आस्रव घटने से आत्मा कर्मभार से हल्की रहती है। अतएव ये पांच संवर उपादेय हैं।

## ३ प्राणवध—

हिंसा का एक प्रसिद्ध नाम प्राणवध है, जिसको प्रकारान्तर से प्राणातिपात भी कहते हैं। प्राणवध का अर्थ है-प्राणों का नाश-अर्थात् अपने २ कायाधिष्ठान में सुघटित दश प्राणों का विघटित करना। लोक व्यवहार में जिसे जीव हिंसा कहते हैं उसको यहां प्राणवध के नाम से कहा गया है। कारण यह है कि आत्मा अरूप होने से किसी से मारी नहीं जा सकती केवल उसके प्राणों का नाश किया जा सकता है।

पाठक सोचेंगे कि हिंसा ऐसा सरल नाम न रखकर प्राणवध ऐसा क्यों लिखा? यदि स्पष्टता के लिये लिखना था तब भी जीव हिंसा लिखते? क्योंकि प्राण तो मारे जाते नहीं फिर प्राणवध कैसा?

उत्तर यह है कि वास्तव में आत्मा अमर है। यदि वही मर जाय तब तो भूत वादियों के कथनानुसार पुण्य पाप और परलोक का भी अभाव हो जायगा। दृष्टान्त के रूप में जानिए कि आपने किसी गृहस्थ का घर से बाहर कर दिया है,

उसके शरीर को कुछ भी क्षति नहीं पहुँचाई, फिर भी जब तक उसका जीवन है वह अन्यत्र रहकर भी आपसे बदला लेना चाहेगा। उसका हृदय वैर को नहीं भूल सकेगा, क्योंकि आपने उसका आश्रय छुड़ाया है। असमर्थ होकर भी जैसे जर्मन ब्रिटिश के साथ वैर नहीं भूला वैसे ही जिस प्राणी के प्राणों का अपहरण किया गया है वह जन्मान्तर में जाने पर भी अपने प्राण घातक के साथ वैरानुबन्ध नहीं भूलता। दूर बसे हुए भी शरणार्थिओं की तरह उसका हृदय वैर से कलुषित रहता है। प्राण छूटने पर भी उसके आश्रित जीने वाले प्राणी अमर रहते हैं। इस लिये कहा है कि--"पञ्चेन्द्रियाणित्रिविधं बलञ्च, उच्छ्वास निश्वासमथान्यदायु. प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्ता--स्तेषा वियोगी करणं तु हिंसा॥ पांच इन्द्रिया, ३ बल श्वास और आयु रूप दश प्राणों का जीव से वियोग करना ही हिंसा है। इसलिये हिंसा को प्राणवध कहा गया।

किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि दूसरों को कष्ट पहुंचाना हिंसा नहीं है। प्राण नाश का कारण होने से दु ख या क्लेश पहुँचाना भी वध कहा गया है। जैसे कि--'तप्पज्जाय विणासो, दुक्खुप्पातो य सकिलेसो य। एस वहो जिण भणिओ वज्जेयव्वो पयत्तेण॥ शरीर पर्याय का नाश और दु ख एवं सक्लेश उत्पन्न करना इसको तीर्थङ्करों ने वध कहा है जो प्रयत्न पूर्वक त्यागना चाहिए।

प्राणिवध भी व्यवहार दृष्ट्या प्राणवध को कहते हैं।

## ४. हिंसाके कारण—

अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग रूपसे हिंसा के प्रमुख दो कारण हैं। उनमें अन्तरङ्ग कारण क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति अरति, शोक, वैदिक अनुष्ठान अर्थ, धर्म, काम और जीत-रूढि पालन के लिये हिंसा की जाती है।

बहिरङ्ग कारण—

चमडा १ चरबी २ मास ३ मेद ४ रक्त ५ यकृत ६ फिप्फस-फेफडा ७ मस्तुलुंग-कपाल का भेजा ८, हृदय ९, आंत १० पित्त ११ फोफस १२ दात १३, अस्थि १४ मज्जा १५, नख १६ नेत्र १७, कान १८ स्नायु-नसें १९, नाक २० धमनी-नाडी २१ सींग २२, दाढ २३, पिच्छ या पूछ २४, विष २५, विषाण-हाथी दात २६ और बाल २७ इनके लिये गो महिष आदि पञ्चेन्द्रिय जीवों की हिंसा होती है। मधु-आदि के लिये चतुरिन्द्रिय भ्रमर आदि की, शरीर और उपकरण शुद्धि के लिये

तेइन्द्रिय जीवों की और घर वस्त्र की सफाई रंगाई तथा रेशम आदि के लिये पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा होती है।

इसके उपरान्त स्थावर जीवों की हिंसा के सैकड़ों कारण पृथक हैं खेती, वेवल, चैत्य आदि पृथ्वीकाय की हिंसाके कारण बताए गये हैं। इस प्रकार धर्म आदि धर्म या अनर्थ से अबुध लोग हिंसा करते हैं। यज्ञ याग एवं देवोपासना में की जाने वाली हिंसा को भी कर्मबन्ध का कारण कहा है। जैसे कि परलोकिक मे भी कहा- हिंसाजन्यश्च पापश्च लभते नात्र संशय' अर्थात धर्म के नाम पर भी की गई हिंसा पाप पैदा करती है। वधकर्ता हिंसा के बदले पापको पाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस आशय का तत्स्मृ विद्वानों ने ज़ोर शोर से समर्थन किया है। जैसेकि,-' देवोपहार व्याजेन यज्ञ व्याजेन येऽथवा। घ्नन्ति जन्तून् गतघृणा, घोरां ते यान्ति दुर्गतिम्॥ वेदान्ती भी कहते हैं -" अन्धे तमसि मज्जामः पशुभिर्ये यजामहे। हिंसा नाम भवेद्धर्मो-न भूतो न भविष्यति।

व्यासजी भी कहा है -" प्राणिघाताशु यो धर्म-मीहते मूढ मानसः। स वाञ्छति सुधावृष्टि, कृष्णाहिमुख कोटरात्॥

इत्यादि सहस्रों प्रमाण मनु स्मृति आदि ग्रन्थों के दिये जा सकते हैं, जो विस्तार भय से नहीं दिये गये हैं।

## ५ प्रमाद—

जिसके कारण लोक कर्तव्य का भान भूल, उसे प्रमाद कहते हैं। कोषकार अमरसिंह ने प्रमाद के लिए अनवधानता पद का प्रयोग किया है। जैसे कि— प्रमादोऽनवधानता-इत्यमरः, द्रव्य और भाव भेद से प्रमाद दो प्रकार का है। बोध की सुगमता के लिए आचार्यों ने प्रमाद के ५ एवं ८ भेद भी किये हैं। जैसे मद १ विषय शब्दादि २ कषाय ३ निद्रा और विकथा ४।५ ये प्रमाद के पांच प्रकार हैं। आठ भेद में प्रथम अज्ञान, दूसरा संशय, ३ रा मिथ्या ज्ञान, ४ राग, ५ द्वेष, ६ मति भ्रंश, ७ धर्म में अनादर और ८ मन वचन एवं काय की अशुभ प्रवृत्ति, यह आठवां प्रमाद है। कहा भी है—

अन्नाणं १ संसओ २ चेव, मिच्छानाणं ३ तहेव य। रागो दोसो ५ मइब्भंसो ६, धम्मम्मि य अणायरो। जोगाणं दुप्पणिहाणं पमाओ अट्ठहा॥

कुलकोडि—

जीवों की जाति विशेष को कुल कोटि कहते हैं। एकेन्द्रिय की ५७ लाख कु कोटि हैं।

जैसे कि— पृथ्वी काय की १२ लाख कुल कोटि,
अप्काय की ७ लाख,
तेउ काय की ३ लाख,
वायु काय की ७ लाख,
वनस्पति काय की २८ लाख,
बेइन्द्रिय की ७ लाख कुल कोटि,
तेइन्द्रिय की ८ लाख,
चौरिन्द्रिय जीवों की ९ लाख कुल कोटि है।

पञ्चेन्द्रिय जीवों में, जलचर की १२॥ साढे बारह लाख-कुलकोटि खेचर पक्षियों की १२ लाख कुलकोटि। चतुष्पाद-हाथी घोड़े आदि की १० ल कुलकोटि। उर.परिसर्प-छाती के बल से सरकने वाले सर्प आदि की १० ल कुलकोटि। मनुष्य पञ्चेन्द्रिय की १२ लाख कुलकोटि भुजा से चलने वाले च आदि की ९ लाख कुल कोटि॥ देवों की २६ लाख कुलकोटि। नारक जीवों २५ लाख कुलकोटि है। इन सब संख्याओं को मिलाकर एक करोड़ सतान लाख पचास हजार कुल कोटियाँ होती हैं।

जैसे कि कहा गया है—" एगिंदिएसु पंचसु, बारस सत्त तिगसत्त अट्ठवी य। विगलेसु सत्त अडनव जल खह चउप्पय उरग भूयगे॥ १॥ अट्ठ-तेरस बा दस दस नवगं नरामरे नरए। बारस छव्वीस. पणवीस हुँति कुल कोडी क्खाइं॥ २॥

## ६. मृषावादी—

हिंसा की तरह मृषावाद भी पाप बन्ध का एक बड़ा कारण है। इसके बो वालों की कोई स्वतन्त्र जाति नहीं होती। उच्च से उच्च कुल में जन्मा हुआ भी झूठ बोलता है तो वह मृषावादी है। सूत्र में असत्य पूर्ण व्यवहार और सिद्धान्तों की अपेक्षा मृषावादियों के दो वर्ग किये गये हैं। एक लोक व्यवहार

आजीविका निमित्त या मोह वश झूठ बोलने वाले और दूसरे सैद्धान्तिक जगत में तत्वों का मिथ्या स्वरूप बताने वाले।

प्रथम प्रकार के मिथ्यावादी इस प्रकार हैं- क्रोध, लोभ, भय, और हास्य व झूठ के मूलकारण हैं। क्रोध द्वेष का और लोभ राग का अंश है, और राग द्वेष मोह के प्रधान अङ्ग हैं। अतएव मोह अज्ञानादि सारे हेतु इनमें समाविष्ट हो जाते हैं। अर्थ, धर्म और काम को इन्हीं क्रोध लोभ रूप दो भागों में अन्तर्हित समझना चाहिए।

क्रोध लोभादि वृत्ति वाले लोगों को गिनाते हैं—१ असंयमी २ अविरती, ३ कपट से कुटिल और चञ्चल भाव वाले, ४ साक्षी, ५ चोर, ६ चारभट, ७ खंडरक्षक, ८ जूगी लने वाले, ९ जीतने वाला जुआरी, १० धरोहर दबाने की इच्छा वाले, ११ वञ्चना के लिये मीठे बोलने वाले, १२ कुलीर्थिक—वष मात्र धारी, १३ वणिक् वाणिज्य करने वाले १४ कूटतुल कूटमानी—खोटा तोल माप करने वाले, १५ नकली सिक्के से जीने वाले या कूट धर्म से जीविका करने वाले, १६ पटकार बुनकर, १७ सुवर्णकार-सुनार १८ कारुक-कारीगर, १९ वञ्चक ठग, २० चारिक-चोर की खोज निकालने वाले, २१ चाटुकार खुशामद करने वाले, २२ नगर गुप्तक-कोट वाल, २३ परिचारक- मैथुन कर्म में दलाली करने वाले २४ दुष्टवादी—असत्य पक्ष लेने वाले, २५ सूचक-चुगलखोर २६ ऋणबल भक्षिता-बल से ऋण लेने वाले-कर्जदार, २७ पूर्व कालिक वचन दक्ष-दोनों बात के पहले ही अनुमान करके कहने वाले २८ साहसिक-बिना सोचे बोलने वाले, २९ लघु-तुच्छ हृदय वाले, ३० दुर्जन, ३१ गौरविक-ऋद्धि आदि के गारव वाले, ३२ असत्य की स्थापना में चित्त वाले, ३३ उच्छन्द-बढ़ापन में ऊंचे अभिप्राय वाले, ३४ निरङ्कुश वचन वाले ३५ नियम रहित या स्वजन रहित, ३६ इच्छानुसार बोलने वाले, अथवा स्वेच्छा से अपने को सिद्ध कहने वाले, भिन्दक मस्करी आदि ये लौकिक मृषावादी हैं।

*लोकोत्तर मृषावादियों का परिचय दिया जाता है* –

## ७ नास्तिक वादी—

नास्तिकवाद में असत्यांश की अधिकता है, अतः प्रथम नास्तिकवादी को कहा गया है। इस जगत से भिन्न जो आत्मा परमात्मा और धर्म अधर्म आदि तत्त्वों को नहीं मानते उनको नास्तिक कहते हैं, जैसे कि—"नास्तिजीव परलोको वा इत्येवं

मतिर्यस्य स नास्तिक. ।" जो जीव और परलोक को नहीं मानता है वह नास्तिक है। लोकायतिक या सद् भूत भी जीवादि पदार्थों को नहीं मानने से वामलोक वादी कहाते हैं। दिखने वाले भौतिक जगत के अतिरिक्त ये परलोक को नहीं मानते। न पञ्च भूतों से पृथक् आत्मा नाम का पदार्थ ही मानते हैं। जैसा कि, उन्होने कहा है-

एतावानेव लोकोऽयं, यावानिन्द्रिय गोचरः ।
भद्रे ! वृक पदं पश्य, यद्वदन्त्यविपश्चितः ॥ १ ॥
पिब, खाद च चारु लोचने ! यदतीतं वरगात्रि ! तन्न ते ।
नहि भीरु ! गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरम् ।२।

भाव यह है कि जितना प्रत्यक्ष दिखता है, उतना ही यहलोक है इससे भिन्न जो स्वर्ग नरक आदि कहे जाते हैं वे सब मात्र प्रलोभन या भय के लिये ही हैं। उनमें कुछभी तत्त्व नहीं है। इसलिये ये लोग खाना, पीना और मौज मनाना ही जीवन का सार समझते हैं। इन नास्तिकोंका -यह सिद्धान्त है-" यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋण कृत्वा घृतपिबेत् । भस्मीभूतस्य-भूतस्य पुनरागमन कुत" ॥ अर्थात्- जबतक जीओ, सुखसे जीओ ऋण लेकर भी घी पीओ, देह भस्मीभूत होने पर फिर मिलने का कहा है ?। और भी इन का कहना है-" स्वागमार्थेऽपि मास्थाऽस्मिन्, तीर्थिका विचिकित्सय । ततमाचरताऽऽनन्द स्वच्छन्दं यं यमिच्छथ ॥. अपने आगम रूप अर्थ में संशयात्मा बनकर स्थिर न रहो। उसी आचरण को करो जो कि तुम करना चाहते हो। इस प्रकार स्वच्छन्द आचरण को करो, आगम के विधि निषेध में न पडो।

ये नास्तिक वादी अपने पक्ष की सिद्धि मे कहते हैं कि प्रत्यक्ष आदि किसी प्रमाण से आत्मा की सिद्धि नहीं होती और न परलोक की सत्ता ही साबित होती है। जिसका प्रत्यक्ष नहीं उसका अनुमान भी नहीं होता । अत पञ्चभूत का बना यह जगत ही सत्य है। पञ्चभूत-पृथ्वी जल अग्नि वायु और आकाश-से पृथक् आत्मा कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है

उनका कहना है कि पञ्चभूतों में प्रत्यक्ष नहीं दिखने वाली भी चेतना शक्ति-' किण्वादिभ्यो मदशक्ति वत् जैसे गुड महुआ आदि के मिलने पर मादकता आती

है, वैसे-ही पञ्चभूतों के सम्मिलित होने पर प्रकट होजाती है। शरीर ही प्राण वायु संयुक्त सभी क्रियाओं को करते दिखाई देता है। हिंसा, झूठ, चोरी और पर दार गमन में कोई पाप नहीं है।

कहा जाता है कि बृहस्पति ने अपने पुत्र की रक्षा के लिये सब मृत्युञ्जय मन्त्र और मृत्संजीवनी का साधन कर के भी सफलता प्राप्त नहीं की। तब पुत्र वियोग से विकल उनके हृदयमें पुण्य पाप और जप तप आदि को झूठा घोषित किया। जैसे कि उसने कहा है-

> अग्नि होत्र त्रयीदण्डं, त्रिदण्डं भस्म पुण्ड्रकम्।
> प्रज्ञा पौरुषहीनानां, जीवो जल्पति जीविकाम्॥

भाव यह है कि-

अग्नि होत्र-नियमपूर्वक हवन करना, त्रयी ऋक् यजु, साम इन तीनों वेदोंका सांङ्ग अध्ययन करना, दण्डी या त्रिदण्डी बनना, भस्म लगाना, और मुद्रा अङ्कित करना ये सब बुद्धि और पुरुषार्थ से हीन लोगों की जीविका-जीवन यापन की योजना मात्र है और कुछ इन में सार नहीं है, ऐसा बृहस्पति कहता है। बृहस्पति से प्रचारित होने के कारण इस मत को बार्हस्पत्य मत भी कहते हैं। व्यापक रूप में तो आज नास्तिक वाद का प्रचार हजारों मनुष्यों में मिलेगा। पश्चिमी-साम्यवाद की वायुने सर्वत्र यह प्रचार कर रक्खा है कि मुलवाद और पुनर्जन्म भिन्न आत्मा परमात्मा तथा परलोक वास्तव में नहीं है। नैतिक नियमों का पालन भी ये लोग समाज व्यवस्था के लिये ही करते हैं।

आज के प्रचलित कुण्डा पंथ और वाम मार्ग इसी नास्तिक मत के रूपान्तर हैं अथवा इसी के भयङ्कर परिणाम हैं। आस्तिक दर्शनों से इसकी चाल सर्वथा भिन्न है। इस नास्तिकों की दुश्चर्या जानकर "सापरा विपरीतारचेद् राक्षसा एव केवलम्" यह संस्कृतोक्ति याद आती है। ये लोग अधिकता से सागर हैं। वे शिव को देव मानते। इसकी चक्र्‌पूजा ही उपासना है। इस चक्र पूजा में नर-नारी उपस्थित होते हैं। इनका कहना है अन्य मत में निर्वाण कौटिका गति से कदाचित् होता है किन्तु वाम मार्ग से यह निर्वाण गरुड गति से अवश्य प्राप्त होता है। इसके पांच मकार मोक्षप्रद माने गए हैं।

जैसे--"मद्यं मांसं च मीनञ्च, मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पञ्च मकारा स्युर्मोक्षदाहि युगे युगे ॥ १ ॥ ( काली तन्त्र )

इनके अनेकों तन्त्र ग्रन्थ है। वाम मार्ग की साधना--इसके साधक गण किस रीति से करते थे ? ऐसा परिचय जिन्हे प्राप्त करना हो, वे वाणभट्टकृत कादम्बरी मे चन्द्रा पीड़ के कैलास गमन प्रकरण को पढ़ें।

स्वानुभूति से सिद्ध योग शक्ति निष्णातो के वचनों से प्रमाणित विश्व प्रसिद्ध ऐसे आत्म तत्त्व एव धर्माधर्म का निषेध करने से ये मृषावादी कहे गये हैं।

## ८. पञ्चस्कन्ध–

कुछ लोग पञ्चस्कन्ध को ही सब कुछ मानते हैं, उनके विचारानुसार पञ्च-स्कन्ध से भिन्न आत्मा कोई स्वतन्त्र वस्तु है ही नहीं। पञ्चस्कन्ध–"विज्ञान १, वेदना २, संज्ञा ३, संस्कार ४, और रूप ५ ये पाचस्कन्ध ही सब कुछ हैं। जैसेकि रूप स्कन्ध मे पृथ्वी आदि सभी धातु सारे रस आदि आजाते हैं, वेदना स्कन्ध मे सुख दु:ख आदि वेदनायें तथा विज्ञान स्कन्ध मे रूपरसादि विज्ञानों का समावेश हो जाता है, संज्ञास्कन्ध मे-प्रत्ययात्मक बोध आता है और संस्कार स्कन्धमे पुण्य पाप आदि अच्छे बुरे विचार आते हैं, इस प्रकार जगत् के पदार्थ मात्र इनमें-अन्तर्निहित होते हैं, इनसे भिन्न आत्मा नामका कोई छठ्ठा तत्त्व नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष या अनुमान मे से किसी भी प्रमाण द्वारा उसकी सिद्धि नहीं होती। पञ्च स्कन्ध भी क्षण योगी है अर्थात् क्षणमात्र स्थायी–क्षणिक–हैं, इस मत को मानने वाले बौद्ध हैं।

कुछ बौद्धाचार्य शरीर को चतुर्धातुक मानते हैं। उनके सिद्धान्तानुसार पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन चार धातुओं से यह शरीर बना है और कायरूप से इनकी परिणति को ही जीव नाम से कहा जाता है। जैसे कि कहा है–"चतुर्धातुक मिदं शरीरं नतद्व्यतिरिक्त आत्मास्तीति–चतुर्धातुक इस शरीर के अतिरिक्त आत्मा कोई तत्त्व नहीं है।

समय पाकर इन बौद्धों के चार भेद होगये–वैभाषिक १, सौत्रान्तिक २, योगाचार ३, और माध्यमिक ४। त्रिपिटक के मतानुसार वैभाषिक सभी तत्त्वों को प्रमाण मानते पदार्थ मात्र को क्षणिक तथा आत्मसन्तान परम्परा का छेद अर्थात्–आत्मा -

का मिट जाना ही उनके यहाँ मोक्ष माना गया है। प्रत्यक्ष और अनुमान को प्रमाण मानते हैं। मात्र लिङ्ग-स्वलक्षण अनुमान को ही प्रमाण मानते हैं। योगाचार सम्प्रदाय में अद्वैत की तरह संसार की सभी वस्तुएँ मिथ्या मानकर केवल आत्मज्ञान को ही सत्य माना है। वह ज्ञान क्षणिक अवश्य है। माध्यमिक-मध्यम सम्प्रदाय के बौद्ध जगत् के पदार्थ मात्र को शून्य मानते हैं। शून्य न सत् है न असत्, न सदसत् है न अनिर्वचनीय है। शून्य इन सभी विकल्पों से पृथक् तत्त्व है। आत्मा आदि सभी पदार्थ कल्पित अतएव भ्रमरूप हैं। कुछ बौद्धाचार्यों ने आत्मा और कर्म आदि को माना है फिर भी अधिकांश बौद्ध अनात्मवादी हैं। बौद्ध भिक्षु राहुल ने तो अपने अनात्मवादी विचारों का स्पष्ट उल्लेख किया है। यद्यपि सत्य, संयम और अहिंसा का बौद्धाचार्यों ने भी उपदेश किया है फिर भी क्षणिकवाद इनका सब मान्य है। बौद्ध की दृष्टि से संसार के सभी पदार्थ क्षणिक हैं। प्रथमक्षण का कार्य दूसरे क्षण में नहीं रहता। जैसे कि वे कहते हैं—"यत् सत् तत् क्षणिकम्, क्षणिकाः सर्वसंस्काराः आदि। आत्मा आदि मूल भूत तत्त्वों को नहीं मानने एवं सबको क्षणिक मानने से ये मृषावादी हैं। सबको क्षणिक मानने से संसार का कोई भी कार्य नहीं हो सकेगा। कार्य कारण व्यवस्था तो रहेगी ही नहीं, क्योंकि पूर्वक्षण का मृत्पिण्ड जब घट बनने के उत्तर क्षण में रहेगा ही नहीं तब वह मृत्पिण्ड उस घट का कारण कैसे होगा? सिवाय इसके सबको क्षणिक मान लेने पर देखे और सुने हुए का समय आने पर स्मरण न होना चाहिए किन्तु देखा जाता है कि मनुष्य को बचपन की बात वृद्ध अवस्था में भी याद रहती है। माता पिता का सुनना और बाद गुरु का उपदेश कथन भी ज्ञान का कारण नहीं होगा। इस प्रकार में मन्दिर आदि का बनाना और ब्याह शादी का विधान भी नहीं हो सकेगा। क्योंकि मन्दिर बनाने के क्षण तथा व्याह करने के दूसरे क्षण भिन्न हैं। जब पूर्व क्षण का कर्ता उत्तर क्षण में रहेगा ही नहीं तब आगे भी। पाप पुण्य का फल भोगने वाला भी दूसरे क्षण में नहीं रहा। इसी का भाग भी उत्तर क्षण में नहीं रहता क्योंकि कर्म करने वाला क्षण में नष्ट हो गया। फिर कौन स्वर्ग और नरक में जाएगा। स्वयं ही कर्ता है। अतः सुख दुःख परिणामी है। ये सब पदार्थ नाना रूप में परिणामी हैं। यहाँ सब पदार्थों का परिणाम सिद्ध है।

# अंडकाओ संभूओलोको—

कर्तृत्व वादी कहा करते है कि यह संसार एक अंडे से उत्पन्न हुआ है और भगवान् स्वयम्भूने इस का निर्माण किया है। अंड सृष्टि के मुख्य दो प्रकार हैं। एक बहुत प्राचीन है, जो छान्दोग्योपनिषत् में बताया गया है। दूसरा प्रकार मनुस्मृतिमे दिखलाया है। दोनों की प्रक्रिया भिन्न २ है और दोनों मे बडा अन्तर है। उपनिषत् में अंड के साथ स्वयम्भू का कोई सम्पर्क नही है जबकि मनुस्मृति की सृष्टिमें स्वयम्भू अंडे में प्रवेश करके सृष्टि का निर्माण करते है। "संभूओ अडकाओ लोगो" प्रश्न व्याकरण के इस वचनानुसार प्रथम छान्दोग्योपनिषत् की प्रक्रिया ही उपयुक्त ज्ञात होती है। अतः उपनिषद् के अनुसार प्रथम स्वयम्भूत अडसृष्टि का उल्लेख करके फिर मनुस्मृति की अडसृष्टि बतायी जायगी। छान्दोग्योपनिषत् ३, १६ में लिखा है-

## असदेवेदमग्र आसीत्—

अर्थ-"सृष्टि से पहले प्रलय कालमें यह जगत असत् अर्थात् अव्यक्त नाम रूप वाला था। तत्सदासीत्-वह असत् जगत् सत् यानी नाम रूप कार्य की ओर अभिमुख हुआ।

तत्समभवत्-अङ्कुरी भूत बीज के समान कमसे कुछ थोडासा स्थूल बना। तदाण्डं निरवर्तत-आगे चल कर वह जगत् अडे के रूपमे बना। तत्संवत्सरस्य मात्रामाशयत-" वह एक वर्ष पर्यन्त अण्डरूपमें रहा। तन्निरभिद्यत-वह अण्डा एक वर्ष के पश्चात् फूटा। ते आण्ड कपाले रजत च सुवर्णञ्चाऽभवताम्-अडे के दोनों कपालों में से एक चादी का और दूसरा सोने का बना। तयद् रजतं सेयं पृथिवी -उनमें जो चादी का था उसकी पृथ्वी बनी। यत्सुवर्ण सा द्यौ -जो कपाल सोनेका था उसका ऊर्ध्वलोक स्वग बना। यज्जरायु ते पर्वता -जो गर्भका वेष्टन था उसके पर्वत बने यदुल्व स मेघो नीहार -जो सूक्ष्म गर्भ परिवेष्टन था वह मेघ और तुपार बना। या धमनय , तानद्य -जोधमनिया थीं वे नदिया बन गईं। यद् वास्तेयमुदक स समुद्र. जो मुत्राशय का जल था उसका समुद्र बना। अथ यत्तद् जायत सोऽसावादित्यः-अन्तर अंडे में से जो गर्भ रूप में पैदा हुआ वह आदित्य बना।

यह अंडे की आमूल चूल स्वतन्त्र सृष्टि है। इसमें स्वयम्भू-ईश्वर या विष्णु आदि का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। जहांतक वैदिक साहित्य से हमारा परिचय हुआ है यह इस रंग ढंग का वर्णन छान्दोग्योपनिषद् में उपलब्ध है।

सयंभुणा सयंच निम्मिओ—

## महर्षि मनु की अंड सृष्टि

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं, प्रसुप्तमिव सर्वतः। ५।
ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादि वृत्तौजा प्रादुरासीत्तमोनुदः। ६।
योऽसावतीन्द्रिय ग्राह्य, सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्य, स एव स्वयमुद्बभौ। ७।
सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधा प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ, तासु बीजमवासृजत्। ८।
तदण्डमभवद्धैमं, सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिन्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा, सर्वलोक पितामहः। ६।
आपो नारा इति प्रोक्ता, आपो वै नरसूनव।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृत। १०।
यत्तत्कारणमव्यक्तं, नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते। ११।
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा। १२।
ताभ्यां स शकलाभ्यां च, दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्। १३।
मनु प्र० अ०।

अर्थात्--पहले यह संसार अंधकार रूप था, न किसी से जाना जाता और न कोई इसका लक्षण था, तर्क से परे और चारो ओर से गाढ़ निद्रावान् की तरह अज्ञेय था ॥ ५ ॥

तब अव्यक्त रहे हुए भगवान स्वयंभू पच महाभूतो को प्रकट करते हुए स्वयं प्रकट हुए ॥ ६ ॥

जो यह अतीन्द्रिय, सूक्ष्म, अव्यक्त, सनातन और सर्वान्तर्यामी अचिन्त्य परमात्मा है, वही स्वयं ( इस प्रकार ) प्रकट हुआ ॥ ७ ।

उसने ध्यान करके अपने शरीर से अनेक प्रकार के जीवों को बनाने की इच्छा से सर्व प्रथम जल का निर्माण किया और उसमें बीज डाल दिया ॥ ८ ॥

वह बीज सूर्य के समान प्रभावाला सुवर्णमय अंड बन गया। उससे सब लोक के पितामह ब्रह्मा स्वय प्रकट हुए ॥ ९ ॥

नर-परमात्मा से उत्पन्न होने के कारण जलको नार कहते हैं, वह नार इसका पूर्व घर ( अयन ) है इसलिये इसको नारायण कहते हैं ॥ १० ॥

जो सबका कारण है, अव्यक्त और नित्य है तथा सत् व असत् रूप वाला है, उससे उत्पन्न वह पुरुष लोक में ब्रह्मा कहाता है॥ ११ ॥

एक वर्ष तक उस अंड में रहकर उस भगवान ने स्वयं ही अपने ध्यान से उस अंड के दो टुकडे कर दिये ॥ १२ ॥

उन दो टुकड़ों से उसने स्वर्ग और पृथ्वी का निर्माण किया। मध्य भाग में आकाश, आठ दिशाएं और जल का शाश्वत स्थान निर्माण किया ॥ १३ ॥

इसमें बताया गया है कि पहले भगवान स्वयभू प्रकट हुए और जगत बनानें की इच्छा से अपने शरीर से जल पैदा किया, उसमें बीज डालने से वह अंडाकार बन गया।

ब्रह्मा या नारायण ने अंडे में प्रकट होकर उसको फोड दिया, जिससे यह सारा संसार प्रकट हुआ।

**पयावइणा इस्सरेण य कयंति——**

प्रजापति-ब्रह्मा ने स्वय तपस्या करके मनु के द्वारा संसार का निर्माण किया। जैसा कि मनुस्मृति में कहा है—

—"द्विधा कृत्वात्मनो देह–मर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ।

अर्द्धेन नारी तस्यां स, विराजमसृजत्प्रभुः । ३२ ।

ब्रह्मा ने अपने देह के दो टुकड़े किए। एक टुकड़े का पुरुष बनाया और दूसरे आधे टुकड़े की स्त्री बनाई। फिर स्त्री में विराट् पुरुष का निर्माण किया।

मनु अ० १ श्लो० ३२

तपस्तप्त्वाऽसृजद् यं तु, स स्वयं पुरुषो विराट् ।

स मां वित्ताऽस्य सर्वस्य, स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥

उस विराट् पुरुष ने तप करके जिसका निर्माण किया वह मैं हूँ अर्थात् वही मैं मनु हूँ हे श्रेष्ठ द्विजों ? निम्नोक्त समस्त सृष्टि का निर्माता मुझे समझो।

मनु अ० १ श्लो० ३३

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु, तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।

पतीन् प्रजानामसृजं महर्षी–नादितो दश । म० अ० १ श्लोक ३४ ।

मनु कहते हैं कि दुष्कर तप करके प्रजा सर्जन करने की इच्छा से मैंने आरम्भ में दश महर्षि प्रजापतियों को उत्पन्न किया।

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।

प्रचेतसं वशिष्ठं च, भृगु नारदमेव च । म० अ० १ । ३५ ।

उन प्रजापतियों के नाम ये हैं—( १ ) मरीचि ( २ ) अत्रि ( ३ ) अङ्गिरस् ( ४ ) पुलस्त्य ( ५ ) पुलह ( ६ ) क्रतु ( ७ ) प्रचेतस् ( ८ ) वशिष्ठ ( ९ ) भृगु और ( १० ) नारद ॥

एत मनूंस्तु सप्तान्यान्–असृजन्भूरितेजसः ।

देवान् देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः । १ । ३५ ।

अर्थ—इन प्रजापतियों ने बहुत तेजस्वी दूसरे सात मनुओं का, देवों का, देवों के स्थान स्वर्गादिकों का तथा अपरिमित तेज वाले महर्षियों को उत्पन्न किया।

## १० ईश्वर सृष्टि

सूर्या चन्द्रमसौ धाता, यथा पूर्वमकल्पयत्—

दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः । ऋग् १० । १९० । ३ ॥

अर्थ--यथा पूर्व-पूर्व के समान विधाता ने सूर्य चन्द्र, आकाश, पृथ्वी इन दोनों के मध्यवर्ती भुवन और बाद में सब से ऊपर स्वर्लोक को बनाया।

न्याय दर्शन में निम्न प्रकार से कहा है--

--"ईश्वरः कारणं पुरुष कर्मा फल्यदर्शनात्--न्या० सू० ४। १। १६॥

अर्थ--मनुष्य का प्रयत्न न जावे इसलिये कर्म फल प्रदाता के रूप में ईश्वर को कारण मानना आवश्यक है।

--' न पुरुष कर्माभावे फलाऽनिष्पत्तेः। न्या० सू०। ४। १। २०॥

अर्थ--वादी कहता है--यह बात अर्थात् कर्म फलदाता के रूप में ईश्वर की सत्ता की बात नहीं है। क्योंकि पुरुष कर्तृक कर्म के अभाव में फल प्राप्ति नहीं होती है इसलिये फल प्राप्ति में कर्म कारण है किन्तु ईश्वर नहीं।

ईश्वर वादी का कथन--

--"तत्कारितत्वादहेतुः--न्या० सू० ४। १। २१।

वह कर्म भी तो ईश्वर प्रेरित ही होता है। इसलिये कर्ताधीन कर्म और कर्माधीन फल मानना हेत्वाभास है, सद्धेतु नहीं।

पुनश्च--

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म। ५।
तै० उप० भृगुवल्ली अनु० १।

अर्थ- जिससे ये प्राणी उत्पन्न होते हैं और जिसी से जीवित रहते हैं। अन्त में सदा के लिये जाते हुए, जिसमे सम्यक् प्रवेश करते हैं, उसी को जानो वही ब्रह्म है।

इस उपरोक्त अल्प उद्धरणों से उपनिषद् श्रुति, स्मृति एव न्याय सूत्रों से सृष्टि के विषय में विचार प्रस्तुत किये गये। इनसे भिन्न भी वेद और पुराणों की प्रतिपाद्य विविध प्रकार की सृष्टियां हैं।

जैसे प्रजापति सृष्टि, आत्म सृष्टि, प्रस्वेद सृष्टि, परस्पर सृष्टि और ॐकारसृष्टि, आदि इसका परिचय अणु भाष्य में है। इन विषयों को विशेषतया जानने के लिये भारत भूषण शतावधानीजी श्री रत्नचन्द्रजी महाराज कृत सृष्टिवाद और ईश्वर पढ़ें।

कर्तृत्व वादियों की विचारणा भ्रान्त और रुचि के अनुसार कल्पित हैं। युक्ति शून्य हो जाने से ये सारी धारणायें झूठी हैं।

इनकी असत्यता के लिये देखिए श्रीकृष्ण के उद्गार—

प्रकृतिं पुरुषञ्चैव, विद्ध्यनादी उभावपि,
विकारांश्च गुणांश्चैव, विद्धि प्रकृति सम्भवान्।
कार्य कारण कर्तृत्वे, हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते। गी० १३। १९। २०।

अर्थात्—प्रकृति और पुरुष ये दोनों अनादि हैं। विकार १६ और गुण २४ अथवा ३ इसी प्रकृति से उत्पन्न समझो। कार्य एवं कारण के कर्तृत्व में प्रकृति ही कारण कही जाती है। सुख और दुःखों को भोगने के लिये पुरुष हेतु है। इस प्रकार प्रकृति और पुरुष की अनादिता से सारा संसार अनादि सिद्ध होता है।

## १२ "विष्णुमय जगत"—

ईश्वर को सर्वव्यापक माननेवाले कहते हैं कि—

जले विष्णुः स्थले विष्णुः विष्णुः पर्वत मस्तके।
ज्वाला मालाकुले विष्णुः, सर्वं विष्णुमयं जगत्॥१
अहंच पृथिवी पार्थ! वाय्वग्नि जलमप्यहम्।
वनस्पतिगतश्चाऽहं, सर्वभूतगतोऽप्यहम्।

अर्थात् जल में स्थल में पर्वत के मस्तक पर और ज्वालायुक्त अग्नि में विष्णु है। सब जगत् विष्णुमय है। हे अर्जुन! मैं पृथ्वी हूँ और वायु अग्नि जल भी मैं ही हूँ। वनस्पति में और सब भूतों में भी मैं रहा हुआ हूँ। इस प्रकार ईश्वर को सब में व्याप्त मानना साधित है। यदि 'व्याप्नोतीति विष्णुः' इस व्युत्पत्ति से आत्मा को विष्णु मान कर कहा जाय तो सत्य हो सकता है, किन्तु दुःखमय जगत् को सच्चिदानन्द रूप विष्णुमय मानना अनुभव विरुद्ध है। इसलिये जड़ चेतन-जगत् को एकान्त विष्णुमय कहनेवाले मृषावादी हैं।

"एक आत्मा अकारक:—

अद्वैतवादी कहते हैं कि—"एक एव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जल चन्द्रवत्॥ अर्थात्—प्रत्येक प्राणी में एक ही आत्मा

रही हुई है, वह जल मे चन्द्रविम्ब की तरह एक और अनेक रूप से दिखाई देती है वास्तव मे वह एक और अकारक है। आत्मा मे शुभाशुभ कर्म का कर्तृत्व नहीं है। वह मात्र भोक्ता है।

उनकी दृष्टि से आत्मा का स्वरूप निम्न प्रकार है--

अमूर्तश्चेतनो भोगी, नित्यः सर्वगतोऽक्रियः
अकर्ता निर्गुणः सूक्ष्म आत्मा कापिल दर्शने ॥षड्दर्शन

अर्थात् कपिल दर्शन मे आत्मा अमूर्त, चेतन, भोक्ता, नित्य सर्वव्यापी और अक्रिय है। अकर्ता सत्व, रज, तम गुणो से रहित और अति सूक्ष्म है।

उपरोक्त कथन प्रमाण से बाधित है। संसार में कोई सुखी तो कोई दुखी देखा जाता है। सब में एक ही आत्मा हो तो सब की एक ही स्थिति होनी चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं है। इस तरह आत्मा को कर्म का कर्ता न मान कर मात्र भोक्ता ही मानना विरुद्ध है। क्योंकि कर्तृत्व के विना भोक्तृत्व नहीं होता। विना किये भोग मानने पर कृत नाश और अकृताभ्यागम रूप दोषापत्ति हो जायगी जिससे चोरी न करने पर भी साहूकार को दण्ड पाना होगा जोकि अनुभव विरुद्ध है। दूसरी बात भोग भी तो एक क्रिया है। भोगते समय भी भोग क्रिया का कर्ता तो कहा ही जायगा। अत. आत्मा को एकान्त रूप से एक अकारक और भोक्ता कहनेवाले मृषावादी हैं।

सांख्य आचार्य भी इसी विचार सरणि के हैं। जैसे कि--"प्रकृति. कर्त्री, पुरुपस्तु पुष्कर पलाशवन्निर्लेपः।

संग्रह नय की दृष्टि से समानता को लक्षित कर के जैनागम में भी 'एगे आया, आत्मा को एक माना है। किन्तु व्यक्तित्व की दृष्टि से उनकी पृथक् सत्ता का निषेध नहीं किया गया है। अतएव वह सत्य है। ऐसे निश्चय नय की दृष्टि से शुद्ध आत्मा कर्मो का कर्ता और भोक्ता भी नहीं है, किन्तु अशुद्ध दशावाली यानी माया युक्त आत्मा कर्म का कर्ता और भोक्ता है। एकान्त कथन में अपेक्षा नहीं रहती। अत वह मिथ्या है।

टीकाकार ने इसका प्रतिवाद निम्न प्रकार से किया है--

तथा--अकारकः---'सुखहेतूनां पुण्य पापकर्मणामकर्ताऽऽत्मेत्यन्ये वदन्ति, अमूर्तत्व नित्यत्वाभ्यां कर्तृत्वाऽनुपपत्तेरिति। कुदर्शनता चास्य

संसार्यात्मनो मूर्तत्वेन परिणामित्वेन च कर्तृत्वोपपत्ते । अकर्तृत्वे चाऽकृताभ्यागम प्रसंगात् । तथा वेदकश्च–प्रकृतिजनितस्य सुकृत दुष्कृतस्य च प्रतिबिम्बोदय न्यायेन भोक्ता । ह्यमूर्तत्वाद्धि कदाचिदपि वेदकता न युक्ता आकाशस्येवेति कुदर्शनता चास्य । तथा सुकृत दुष्कृतस्य च कर्मणः करणानीन्द्रियाणि कारणानि हेतव सर्वथा सर्वप्रकारैः सर्वत्र च देशे काले च न वस्त्वन्तरं कारणमिति भाव' करणान्येकादश, तत्र वाक् पाणि पाद पायूपस्थ लक्षणानि पंच कर्मेन्द्रियाणि, स्पर्शनादीनि तु पंच बुद्धीन्द्रियाणि एकादशं च मन इति । एषां चाऽचेतनावस्थायामकारकत्वात्पुरुषस्यैव कारकत्वेन कुदर्शनत्वमस्य ।

यदाह—"नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावक ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुत ॥१॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्य सर्वगत स्थाणु–रचलोऽयं सनातन' ॥२॥

असच्चैतत्—'एकान्त नित्यत्वे हि सुख दु ख बन्ध मोक्षाभावप्रसंगात् । तथा निष्क्रियः–सर्व व्यापित्वनाऽवकाशाऽभावात्—गमनाऽऽगमनादि क्रियावर्जित । असच्चैतत्—देहमात्रोपलभ्यमान तद्गुणत्वेन तभियतत्वात् । तथा निर्गुणश्च–सत्वरजस्तमोलक्षण गुणत्रय व्यतिरिक्तत्वात् । प्रकृतेरेव येते गुणा इति । यदाह—'अकर्ता निर्गुणो भोक्ता आत्मा कापिलदर्शने । इति । असिद्धता चास्य सर्वथा निर्गुणत्वे, चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमित्यभ्युपगमात् । तथा अनुपलेपकः कर्मबन्धन रहित । आह च—'यस्माच बध्यते नापि मुच्यते नापि संसरन् । संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः । इति । एतदप्यसत्—मुक्ताऽमुक्तयोरविशेषप्रसंगात् ॥ टी०

## १२. अट्ठारस कम्मकारणा—

### चोर और चोर के १८ प्रसूति स्थान—

चौरः १ चौरापकौ २ मन्त्री ३ भेदज्ञः ४ काणकक्रयी ॥
अन्नदः ६ स्थानदश्चैव ७ चौरःसप्त विधःस्मृतः ॥ टीका ॥

अर्थात् १ स्वय चोरी करनेवाला, २ चोरी करानेवाला, ३ चोर को गुप्त सलाह देनेवाला, ४ चोरी के लिये भेद बतानेवाला या चोर के भेद को छिपाने वाला, ५ चोरी का माल खरीदनेवाला, ६ चोर को अन्न देनेवाला, ७ चोर को स्थान देकर रखनेवाला सात प्रकार के ये सब चोर कहे गये हैं।

### १८ चोर के प्रसूति स्थान

भलनं१कुशलं२तर्ज्जा३राजभागोऽ४वलोकनम्५ ।
अमार्गदर्शनं६शय्या७पदभङ्गस्तथैव च ॥ १ ॥
विश्राम ८पादपतनम्९आसनं१०गोपनं११तथा ।
खण्डस्य खादनं१२चैव तथाऽन्यन्माहराजिकम् ।
पद्याऽ१५ग्न्यु१६दक१७रज्जूनां१८प्रदानं ज्ञानपूर्वकम् ।
एता प्रसूतयो ज्ञेया अष्टादश मनीषिभि ॥ ३ ॥

१ तुम क्यों डरते हो ? सब कुछ निपट लूंगा इत्यादि वचन से चोर को प्रोत्साहित करने को भलन कहते हैं। २ मिलने पर कुशल वार्ता पूछना। ३ हाथ आदि से चोरी के लिये चोर को सकेत करना, ४ राज्य के महसूल को छिपाना-नहीं देना। ५ चोरी के लिये सन्धि आदि देखना या चोरी करते देखकर चुप रह जाना, ६ खोजनेवालों को चोरों के गलत मार्ग बताना, ७ चोरों को सोने के लिये शय्या आदि देना, ८ चोर के पद चिह्नों को मिटाना, ९ चोर को घर में विश्राम देना, १० चोर को प्रणाम करना-सत्कार देना, ११ चोर को बैठने को आसन देना। १२ चोर को छिपा कर रखना, १३ चोर को पक्वान्न खिलाना, १४ माहराजिक-चोर को आवश्यक पदार्थ गुप्त रूप से पहुँचाना, १५ थकावट मिटाने के लिये चोर को गर्म पानी व तैल आदि देना, १६ अन्न सिझाने के लिये चोर को अग्नि देना, १७ पीने के लिये चोर को ठंडा पानी देना, १८ चुरा कर लाये हुए पशुओं को बांधने

के लिये चोरी करना। ये अठारह कर्म करनेवाले भी चोर गिने जाते हैं। इसलिये इन कर्मों को चोरी के प्रसूति स्थान कहते हैं।

## १३ अरिहंता—

राग द्वेष आदि विकारों को जीतकर जिन्होंने वीतरागता प्राप्त की है, केवल ज्ञान विशिष्ट उन जिनेन्द्रों को अरिहंत कहते हैं। शब्दार्थ के अनुसार सामान्य केवली भी अरिहन्त होते हैं। किन्तु यहां उनसे अभिप्राय नहीं है। तीर्थङ्कर नाम कर्म को भोगने वाले धर्मोत्तम पुरुषों से यहां प्रयोजन है। वे सुरेन्द्र व नरेन्द्र के पूजनीय एवं अष्ट महाप्रातिहार्य के धारक होते हैं। उनका जन्म माता पिताओं का ही नहीं किन्तु त्रिलोकी के संज्ञी मात्र को प्रमोद उत्पन्न करता है। वे जन्म काल से ही तीन ज्ञान का संकर आते हैं। दीक्षा ग्रहण करने पर चौथा मनःपर्याय ज्ञान उत्पन्न होता है। फिर भी जब तक कैवल्य प्राप्त नहीं होता। तब तक उपदेश नहीं देते। तपस्या के द्वारा अज्ञान और मोह को उप शमवा क्षय कर लेते तब वीतराग दशा को पाकर ही कल्याण मार्ग का उपदेश देते हैं। और चतुर्विध तीर्थ की स्थापना करते हैं।

जगत के चराचर पदार्थ मात्र के ज्ञाता और द्रष्टा होने से वे सर्वज्ञ कहाते हैं। इनके ज्ञान पर किसी प्रकार का आवरण नहीं रहता। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में यहां क्रमशः २४ अरिहन्त होते हैं।

विदेह क्षेत्र में न्यूनातिन्यून भी २० तीर्थङ्कर सदा विराजमान होते हैं जो विहरमान कहलाते हैं, किन्तु भारत भूमि में सदा अरिहन्त नहीं होते। गत काल में यहां २४ अरिहन्त हो गये हैं। उनके नाम प्रसिद्ध हैं। विशेष जानने के लिये समवायाङ्ग आदि शास्त्र देखना चाहिए।

## १४ चक्रवट्टी—चक्रवर्ती—

चक्ररत्न के द्वारा दिग्विजय करनेवाला सार्वभौम राजा को चक्रवर्ती कहते हैं। वे षट्खण्ड रूप समस्त भारत के स्वामी होते हैं। लौकिक पुरुषों में इनसे बढ़ कर पुण्यवन्त्वाला दूसरा नहीं होता। भरत, ऐरवत और महाविदेह, विजय—इन सब क्षेत्रों में पृथक २ चक्रवर्ती होते हैं।

भरत और ऐरवत की अपेक्षा एक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी काल में १२ चक्र

वर्ती होते हैं। महाविदेह की तरह यहां सर्वदा इनकी सत्ता नहीं रहती। नव निधान, १४ रत्न और करोड़ों ग्रामों के ये अधिपति हैं। चक्रवर्ती की दो ही गति है। राज्य और कामभोगों को त्याग कर ये दीक्षा ग्रहण करलें तो मोक्ष या देवलोक में जाते हैं। जो दीक्षा ग्रहण नहीं करे तो नरक में जाते हैं, किन्तु कुछ कर्म अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल के बाद तो वे भी मुक्ति प्राप्त कर लेते है। अभी गत काल में यहां १२ चक्रवर्ती हो गये हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं--

१ भरत, २ सगर, ३ मघवा, ४ सनत्कुमार, ५ शान्तिनाथ, ६ कुंथुनाथ, ७ अरनाथ, ८ सुभूम, ९ महापद्म, १० हरिषेण, ११ जय, १२ ब्रह्मदत्त। (समवायांग)

## १५. चौदह रत्न

अपनी जाति के सर्व श्रेष्ठ पदार्थ को रत्न कहने की रीति है। पार्थिव रत्न की तरह ये भी चौदह है। इनमे ७ पञ्चेन्द्रिय रत्न हैं और सात एकेन्द्रिय रत्न हैं।

जैसे--(१) सेनापति रूपरत्न, (२) गाथापति रत्न, (३) पुरोहित रत्न, (४) अश्व रत्न, (५) वर्द्धकि रत्न, (६) गज रत्न, (७) स्त्री रत्न, (८) चक्र रत्न, (९) छत्र रत्न, (१०) चर्म रत्न, (११) मणि रत्न, (१२) कागणि रत्न, (१३) खड्ग रत्न, (१४) दण्ड रत्न। प्रत्येक रत्न की हजार२ देव सेवा करते हैं। अतुल पुण्य से ये चक्रवर्ती को प्राप्त होते हैं।

## १६. नवनिहि–नवनिधि

विशाल एव अक्षय खजाने को निधि कहते हैं। जो संख्या मे नौ प्रकार की है, और (ये निधियां) तपस्या के द्वारा चक्रवर्ती को सिद्ध होती हैं। देवाधिष्ठित होने के कारण पुण्य हीन को सुलभ नहीं होती।

गंगा नदी का आरम्भ इनका मूल स्थान हैं। इनके नाम इस प्रकार है--

नेसप्पे पंडुयए, पिंगलते सव्वरयण महापउमे।
कालेय महाकाले, माणवय महानिही संखे॥

जैसे--(१) नैसर्प निधि, (२) पाण्डु निधि, (३) पिङ्गल निधि, (४) सर्व रत्न, (५) महापद्म, (६) काल, (७) महा काल, (८) माणवक, (९) शख निधि। विशेष परिचय के लिए स्थानाङ्ग सूत्र के नवमस्थान को देखें।

## १७ बलदेवा—

ये त्रिखण्ड के भोक्ता वासुदेव के बड़े भाई होते हैं इनके गर्भ में आने पर माता को चार उत्तम स्वप्न दिखाई देते हैं। चक्रवर्ती की तरह ये भी प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में नौ होते हैं। बलदेव वासुदेव का भ्रातृ प्रेम आदर्श होता है। ये सब स्वर्ग या मोक्ष के ही अधिकारी होते हैं। इस अवसर्पिणी काल में नौ बलदेव हो गये हैं। उनके नाम निम्न प्रकार हैं—

( १ ) अचल बलदेव, ( २ ) विजय ( ३ ) भद्र, ( ४ ) सुप्रभ, ( ५ ) सुदर्शन, ( ६ ) आनन्द, ( ७ ) नन्दन, ( ८ ) पद्म बलदेव ( ९ ) बलराम-बलदेव।

## १८ वासुदेव—

अपने बलवीर्य से तीन खण्ड का साम्राज्य भोगने वाले उत्तम पुरुष को वासुदेव कहते हैं। इनके जन्मकाल में माताएँ सात स्वप्न देखती हैं। इनकी ऋद्धि चक्रवर्ती से आधी होती है। १६ हजार राजा इनके अधीन होते हैं। बलदेव की तरह ये भी नौ होते हैं। १६ हजार देव इनकी सेवा करते हैं। प्रति वासुदेव को मार कर ये राजा बनते हैं। पूर्व जन्म में नियाणा करके ये वासुदेव होते हैं। इसलिये व्रत ग्रहण नहीं कर पाते हैं भारतवर्ष में इस काल ९ वासुदेव हो गये हैं। उनके नाम निम्न लिखित हैं—

( १ ) त्रिपृष्ठ ( २ ) द्विपृष्ठ ( ३ ) स्वयम्भू ( ४ ) पुरुषोत्तम ( ५ ) पुरुष सिंह ( ६ ) पुरुष पुण्डरीक ( ७ ) दत्त ( ८ ) लक्ष्मण और ( ९ ) श्रीकृष्ण।

## १९ लक्खण वंजण—

लक्षण व्यञ्जन और गुणों से उत्तम होने पर ही उत्तम पुरुष कहाते हैं। चक्रस्वस्तिक आदि शरीर के अंगों पर स्वस्तिक आदि जो शुभ चिन्ह होते उनको लक्षण कहते हैं। तिल और मष व्यञ्जन कहलाते हैं धैर्य। औदार्य गाम्भीर्य आदि गुण हैं। प्रकारान्तर से मान उन्मान और प्रमाण से युक्त होना लक्षण कहा गया है।

जैसे कि—"माणुम्माणप्पमाणादि लक्खणं वंजणं तु मसमाई।
सत्तं च लक्खणं, वंजणं तु पच्छा समुप्पण्णं॥

अर्थात्—मान, उन्मान और प्रमाण आदि लक्षण तथा मष, तिल व्यञ्जन

कहाते हैं। अथवा सहज जन्म से होने वाले को लक्षण और पीछे होने वाले को व्यञ्जन कहते हैं।

### माणुम्माण प्पमाण—

मनुष्य की श्रेष्ठता समझने के लिये तीन बातें बताई गई हैं। मान, उन्मान और प्रमाण। इन तीनों से जो परिपूर्ण हो वह श्रेष्ठ समझा जाता है। इनका स्वरूप निम्न प्रकार है—जिस पुरुष की परीक्षा करनी हो उसको जलसे भरे हुए कुण्ड में बिठाया जाय। जब उस कुण्ड में से एक द्रोण प्रमाण पानी बाहर निकल जाय, तब उस पुरुष को मानोपेत समझना चाहिए। दूसरी बात उन्मान—पुरुषों को तुला में बैठा कर तोला जाय यदि वह तुलने में अर्द्धभार प्रमाण हो तो उन्मान युक्त समझना चाहिए। तीसरी परीक्षा प्रमाण से है डोरी से नापने पर जो मनुष्य अपनी अङ्गुल से १०८ अङ्गुल ऊंचा हो तो उसे प्रमाणोपेत कहा गया है।

जैसे कि—"जलदोण १ अद्धभारं २, समुहाई समूसिओवजो णवउ।
माणुम्माणप्पमाणं, तिविहं खलुलक्खणं एयं॥

इसी मानोन्मान प्रमाण- सम्पन्नता को लक्षण भी कहा गया है।

## दसार

१ समुद्र विजय २ अक्षोभ ३ स्तिमित ४ सागर ५ हिमवन्त ६ अचल ७ धरण ८ पूरण ९ अभिचन्द्र और १० वसुदेव। ये दश दशार कहलाते हैं*।

## २०. बहत्तर कलायें

कल्यते-सख्यायते वैशिष्ट्य मनया सा कला–जिस के द्वारा क्रिया में विशिष्टता–सुन्दरता–समझी जावे उसको कला कहते हैं। पुरुष की बहत्तर कलायें-कही गयी हैं। विभिन्न शास्त्रों में उसके विभिन्न नाम मिलते हैं। इसके समाधान में समवायाङ्ग के वृत्तिकार अभयदेव सूरि लिखते हैं कि—बहुतराणि च सूत्रे तन्नामान्युपलभयन्ते, तत्र च कासाचित् कासुचिदन्तर्भावोऽवगन्तव्य इति।"

१ लेखन कला २ गणितकला ३ रूप निर्माणकला ४ नाट्यकला ५ गीत–गान कला ६ वाद्यकला ७ स्वर ज्ञान ८ पुष्कर–मृदंग आदि संगीत ज्ञान ९ समताल ज्ञान १० द्युतज्ञान ११ जनवाद १२ पर काव्य-आशु कवित्वकला १३ अष्टपद ज्ञान

* मैथुन मूलक कथा देखें परिशिष्ट में देखें।

१४ एक सुत्रिका १५ पाक ज्ञान १६ पान विधि १७ वस्त्र विधि १८ शयन विधि १९ आर्या २० प्रहेलिका २१ मागधिका २२ गाथा २३ श्लोक निर्माण २४ गन्ध युक्ति २५ मधुसिक्थ २६ आभरणविधि २७ तरुणी परिकर्म २८ स्त्री लक्षण २९ पुरुषलक्षण ३० हय (अश्व) लक्षण ३१ गज लक्षण ३२ गोण (गो-आदीन) लक्षण ३३ कुक्कुट लक्षण ३४ मेढा लक्षण ३५ चक्र लक्षण ३६ छत्र लक्षण ३७ दण्ड लक्षण ३८ असि लक्षण ३९ मणि लक्षण ४० काकणी लक्षण ४१ चर्म लक्षण ४२ चन्द्र लक्षण ४३ रवि-चर्या ४४ राहुचर्या ४५ ग्रहचर्या ४६ सौभाग्यकर ४७ दुर्भाग्यकर ४८ विद्यागत ४९ मन्त्र गत ५० रहस्यगत ५१ सभा संचार ५२ व्यूह ५३ प्रतिव्यूह ५४ स्कंधावार निवेश ५५ नगरमान ५६ वस्तुमान ५७ वास्तु निवेश ५८ नगर निवेश ५९ इषु शास्त्र ६० त्सरु प्रवाद ६१ अश्व शिक्षा ६२ हस्ती शिक्षा ६३ धनुर्वेद ६४ हिरण्यपाक ६५ सुवर्णपाक ६६ मणिपाक ६७ धातुपाक ६८ युद्ध (बाहुयुद्ध, दण्डयुद्ध, मुष्टियुद्ध, यष्टि युद्ध, महायुद्ध) ६९ सूत्र खेल वट्ट खेल, नालीका खेल, चर्म खेल ७० पत्र छेदन, कट छेदन, ७१ संजीवन निर्जीवकरण ७२ शकुनरुत।

(पंचम अंग समवायांग ७२ पृ ७८)

समिति के समवायांग में टीकाकार लिखते हैं कि कला विभाग लौकिक शास्त्रों से जानना चाहिये। यद्यपि शिष्ट कलाओं से जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के दूसरे वक्षस्कार में ७२ कलाओं का उल्लेख कुछ भिन्न प्रकार से मिलता है तथापि अर्थ की दृष्टि से दोनों का एक दूसरे में अन्तर्भाव हो जाता है।

## २१ महिला—गुण

१ नृत्य कला २ औचित्य कला ३ चित्रकला ४ वादित्र ५ मन्त्र ६ तन्त्र ७ ज्ञान ८ विज्ञान ९ दण्ड १० जलस्तम्भ ११ गीतगान १२ तालमान १३ मेघवृष्टि १४ फल कृष्टि १५ आराम रोपण-बगीचा लगाना १६ आकार गोपन १७ धर्म विचार १८ शकुन विचार १९ क्रिया कल्पन २० संस्कृत भाषण २१ प्रसाद नीति २२ धर्म नीति २३ वाणी वृद्धि २४ सुवर्ण सिद्धि २५ सुरभि तैल २६ लीला संचारण २७ गज तुरग परीक्षण २८ स्त्री पुरुष लक्षण २९ सुवर्ण-रत्न भेद ३० अष्टादश लिपि ज्ञान ३१ तत्काल बुद्धि ३२ वस्तु सिद्धि ३३ वैद्यक क्रिया ३४ काम क्रिया ३५ घट भ्रम ३६ सार परिश्रम ३७ अंजन योग ३८ चूर्ण योग ३९ हस्तलाघव ४० वचन पटुता ४१ भोज्य विधि ४२ वाणिज्य विधि ४३ मुख मण्डन ४४ शालि खण्डन ४५ कथा कथन ४६ पुष्प

मथन ४७ वक्रोक्ति जल्पन ४८ काव्य शक्ति ८६ स्फार वेश ५० सकल भाषा विशेष ५१ अविधान ज्ञान ५२ आभरण परधान ५३ नृत्योपचार ५४ गृहाचार ५५ शाठ्य करण ५६ परनिराकरण ५७ धान्यरन्धन ५८ केश बन्धन ५६ वीणादिनाद ६० वितण्डावाद ६१अङ्कविचार ६२ लोकव्यवहार ६३ अन्ताक्षरिका ६४ प्रश्नप्रहेलिका।

( कल्पसूत्र ६ चतुर्थसूत्रगत २१० )

## २२. नवकोटि

अहिंसा व्रत की शुद्धि के लिये साधु साध्वी नवकोटि विशुद्ध भिक्षा ग्रहण करते हैं। जैसे-१ हिंसा करना नहीं, २ कराना नहीं, ३ करते हुए का अनुमोदन करना नहीं, ४ स्वय भोजन पकाना नहीं, ५ पकवाना नहीं, ६ पकानेवाले का अनुमोदन भी करना नहीं, ७ खरीदना नहीं, ८ खरीदवाना नहीं, ६ और खरीदनेवाले का अनुमोदन करना नहीं।

उपरोक्त नवकोटिया मन, वचन और काय रूप तीनों योग से समझनी चाहिए।

## २३. एषणा के दश दोष—

आहार आदि ग्रहण करने को ग्रहणैषणा अथवा एषणा कहते हैं इसके दश दोष हैं। जैसे कि--'संकिय[मक्खिय-निक्खित्त,-पिहिय साहरिय-दायगुम्मी से। अप- रिणय लित्त-छड्डिय, एसण दोसा,दस हवंति ॥१॥

(१) संकिय-आधा कर्म आदि दोषों की शङ्कावाले आहार आदि को लेना शङ्कित दोष है। (२) मक्खिय-सचित्त वस्तु से स्पर्शयुक्त भरे हुए हाथ या चम्मच आदि से दिये गये आहार आदि को लेना म्रक्षित दोष है-म्रक्षित के दो भेद हैं, सचित्त म्रक्षित और अचित्त म्रक्षित। पृथ्वी, जल और वनस्पति की अपेक्षा सचित्त म्रक्षित के तीन प्रकार हैं। सचित्त मट्टी से हाथ आदि भर जाना पृथ्वीकाय म्रक्षित है। अप काय में पुर कर्म है--दान के पहले साधु के निमित्त हाथ आदि सचित्त पानी से धोना पुर कर्म है। दान देकर यदि धोया जाय तो पश्चात्कर्म है। देते समय हाथ आदि थोड़े से गीले हों तो स्निग्ध दोष है। जल का सम्बन्ध हाथ आदि पर स्पष्ट दिखे तो वह उदकार्द्र दोष है। हाथ आदि में यदि कुछ समय पहले काटे हुए फल या पत्ती आदि का अंश लगा हो तो वनस्पतिकाय म्रक्षित है। अचित्त म्रक्षित दो तरह का है। गर्हित और अगर्हित। हाथ आदि में कोई घृणित वस्तु लगी हो तो

यह गर्हित है। घृत, दुग्ध आदि लगा हो तो वह अगर्हित है। सचित्त म्रक्षित साधु के लिए सर्वथा अकल्पनीय है। अचित्त म्रक्षित में केवल घृणित वस्तुवाला गर्हित अकल्पनीय है, किन्तु घृतादि से सना अगर्हित नहीं।

(३) निक्खित्त—सचित्त पर रक्खी हुई वस्तु लेना निक्षिप्त दोष है, सचित्त के पृथ्वी आदि छः प्रकार हैं।

(४) पिहिय—देने योग्य वस्तु सचित्त के द्वारा ढकी हो तो उसे लेना पिहित दोष है।

(५) साहरिय—असूजती-संघट्टे वाली-वस्तु निकालकर उस बरतन से दिया हुआ आहार लेना साहरिय दोष है।

(६) दायक—बालक आदि अयोग्य दाता से आहार आदि लेना दायक दोष है। घर के मालिक स्वयं बालक से दिलावें तो दोष नहीं।

(७) उम्मीसे—सचित्त या मिश्र के साथ मिला हुआ आहार लेना उम्मिश्र दोष है।

(८) अपरिणत—जिसमें पूरा शस्त्र परिणत नहीं हुआ हो ऐसी वस्तु लेना अपरिणत दोष है।

(६) लित्त—तत्काल की लिपि हुई भूमि से लेना लिप्त दोष है। प्रवचन सारोद्धार में दूध-दही आदि लेपवाली वस्तु लेने में लिप्त दोष माना है। किन्तु यह ठीक नहीं लगता। प्राचीन उदाहरण और परम्परा से वह बाधित ठहरता है, अतः प्रथम अर्थ ही ठीक है।

(१०) छड्डिय—जो अंश रूप से नीचे गिर रहा हो, ऐसा आहार लेना छर्दित दोष है। इसमें जीव हिंसा का भय है।

ये दस दोष साधु और गृहस्थ दोनों के निमित्त से लगते हैं।

दायक दोष ४ प्रकार के कहे गये हैं जिसमें बाल, वृद्ध, उन्मत्त, अन्ध, गुर्विणी बालवत्सा आदि प्रमुख हैं।

## २४ उग्गमुप्पायणेसणासुद्धं

उद्गम, उत्पादन और एषणा दोषों से रहित शुद्ध भिक्षा ही मुनि को ग्रहण करनी चाहिए। यहां तीन प्रकार के दोष कहे गये हैं जो उद्गम, उत्पादना एषणा के नाम से समझे जाते हैं। इनको गवेषणा और ग्रहणैषणा के दोष भी

हते हैं। उत्पत्ति स्थान मे गृहस्थो के द्वारा लगने वाले दोष उद्गम कहाते है। जो
ई प्रकार के है, जैसे कि--

आहाकम्मुद्देसिय पूईकम्मे य मीसजाए य।
उवखा पाहुडियाए, पाओयर कीय पामिच्चे ॥ १ ॥
परियट्टिए अभिहडे, अब्भिन्न मालोहडे इय।
अच्छिज्जे अणिसिट्ठे, अज्झोयरए य सोलसमे ॥ २ ॥

( १ ) आधाकर्म--किसी एक खास साधु के निमित्त से पट्काय का आरम्भ रके सचित्त या अचित्त वस्तु को सिझाना आधाकर्म कहलाता है। यह दोष चार कार से लगता है। प्रति सेवन –आधा कर्मी आहार का सेवन करना। प्रति-वरण--आधाकर्मी आहार के लिये निमन्त्रण स्वीकार करना। संवसन-आधाकर्मी भोगने वालो के साथ बसना। अनुमोदन-आधाकर्मी भोगने वालो की प्रशसा करना, यह आधाकर्म दोष है।

( २ ) औद्देशिक--समस्त याचको के लिये तैयार किये गये आहार को औद्दे-शिक कहते हैं। इसके दो भेद है। ओघ और विभाग। इनमे अपने लिये होती हुई रसोई मे भिक्षुकों के लिये भी और अधिक मिलाना ओघ है। विवाह आदि उत्सव में याचको के लिये अलग निकाल कर रखना विभाग है। ( यह उद्दिष्ट, कृत और कर्म के भेद से तीन प्रकार का है। फिर प्रत्येक के उद्देश, समुद्देश आदेश और समादेश इस तरह चार २ भेद हैं। ) किसी साधुके लिये बनाया गया। आहार अगर वही साधु ले तो आधा कर्म। दूसरा ले तो औद्देशिक है। आधा कर्म पहले से ही किसी खास निमित्त से बनाया जाता है किन्तु औद्देशिक पहले या बाद में साधारण दान के लिये कल्पित किया जाता है।

( ३ ) पूतिकर्म--शुद्ध आहार मे आधाकर्मादि अशुद्ध-आहार का अश मिलना पूतिकर्म है। पूतिकर्म दोष से दूषित आहार ही नहीं किन्तु वह पात्र भी सयमी के लिये अकल्पनीय है।

( ४ ) मिश्र जात--अपने और साधु उभय के लिये पकाया हुआ आहार मिश्र जात है। यावदर्थिक, पाखडि मिश्र और साधु मिश्र ये मिश्रजात के तीन भेद हैं। अपने और सभी याचको के लिए बना हुआ आहार यावदर्थिक है। स्व के निमित्त

और साधु सन्यासियों के निमित्त बना हुआ पाखंडि मिश्र है तथा केवल अपने लिये और साधु के लिये बनाया हुआ आहार साधु मिश्र है।

( ५ ) स्थापन--साधु को देने के लिये आहार को अलग रख देना स्थापना दोष है।

( ६ ) प्राभृतिका—साधु को सरस आहार बहराने के लिये जीमनवार के समय को आगे पीछे करना प्राभृति का दोष है।

( ७ ) प्रादुष्करण—अन्धेरे में रक्खी हुई आहार की वस्तु लाने के लिये उजाला करना। अथवा अन्धेरे में से प्रकाश में लाना प्रादुष्करण दोष है।

( ८ ) क्रीत—साधुओं के लिये आहार खरीद कर लाना क्रीत दोष है।

( ९ ) प्रामित्य ( पामिच्चे )—साधु के लिये उधार लिया हुआ आहार लेना प्रामित्य दोष है।

( १० ) परिवर्तित--साधु के लिये अदल बदल करके लिये हुए आहार में परिवर्तित दोष होता है।

( ११ ) अभिहृत—साधु लिये गृहस्थ द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान में लाए हुए आहार में अभिहृत दोष है।

(१२) उद्भिन्न--साधु को घी आदि देने के लिये कुप्पी आदि का मुख खोल देना उद्भिन्न दोष है।

(१३) मालापहृत—सुविधा से हाथ नहीं आ सके ऐसे ऊँचे नीचे स्थान से निसरणी आदि साधनों के द्वारा उतारकर देना मालापहृत दोष है। इसमें ऊपर नीचे, बाम, दक्षिण इन चार स्थानों के होने से मालापहृत चार प्रकार का है। इन चारों में प्रत्येक के जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम रूप तीन २ भेद हैं। एड़ी उठाकर छींके आदि से उतारके देना जघन्य और निसरणी पर से लाकर देना उत्कृष्ट है। शेष मध्यम मालापहृत समझे।

(१४) आच्छेद्य- दुर्बलों से या आश्रितों से बल प्रयोग पूर्वक लेकर साधुजी को देना आच्छेद्य-दोष है। इसके तीन भेद हैं। स्वामिविषयक, प्रभुविषयक, और स्तनविषयक। समस्त ग्राम का मालिक स्वामी तथा अपने घर का मालिक प्रभु कहा जाता है। चार और दूसरों को स्तेन कहते हैं। इनमें कोई किसी से छीन कर साधुजी को दे तो क्रमश: तीन दोष लगते हैं।

(१५) अनिसृष्ट--किसी वस्तु के एक से अधिक मालिक होने पर सब की इच्छा बिना देना अनिसृष्ट दोष है।

(१६) अध्यवपूरक--साधुओं का आगमन सुन कर अपने लिये होती रसोई में अधिक सामग्री मिला देना अध्यवपूरक दोष है।

उपरोक्त उद्गम के १६ दोषों का निमित्त दाता होता है।

## २५. गवेषणा उत्पादना के १६ दोष—

**धाई दूई निमित्ते, आजीव वणीमगे तिगिच्छाय।**
**कोहे माणे माया, लोभे य हवंति दस एए॥ १॥**
**पुव्वि पच्छा संथव, विज्जा मंते य चुण्ण जोगेय।**
**उप्पायणाइ दोसा, सोलसमे मूलकम्मे य॥ २॥**

(१) धात्री--धाई माता के जैसे कार्यों को स्वयं करके अथवा धाई माता को नौकरी दिला कर आहार लाभ करना धात्री दोष है।

(२) दूती--दूती कर्म--गुप्त या प्रकट सन्देश पहुंचाकर आहार पाना दूती दोष है।

(३) निमित्त--शास्त्र से या कल्पना से शुभ अशुभ निमित्त बता कर आहार लाभ करना निमित्त दोष है।

(४) आजीव--प्रकट या अप्रकट रीति से अपनी जाति एवं कुल का परिचय देकर आहार लाभ करना आजीव दोष है।

(५) वनीपक--जैन, बौद्ध, वैष्णव आदि में जहां जिसका आदर हो, वहां वैसा बन कर अथवा अपनी दीनता दिखाकर आहार लाभ करना वनीपक दोष है।

(६) चिकित्सा--वैद्यवृत्ति से आहार पाना चिकित्सा दोष है।

(७) क्रोध--क्रोध करके अथवा गृहस्थ को शाप आदि का भय दिखाकर आहार लाभ करना क्रोध दोष है।

(८) मान—अभिमान से अपने को प्रतापी, तेजस्वी, बहुश्रुत बताते हुए प्रभाव जमाकर आहार लाभ करना मान दोष है।

(९) माया--वञ्चना या छल आदि से आहार लाभ करना माया है।

(१०) लोभ--आहार में लोभ करना, आहार के लिये जाते समय लालच से

निश्चय कर के जाना कि आज तो अमुक वस्तु ही खायेंगे उस वस्तु के न मिलने पर उसके लिये भटकना यह लोभ दोष है।

(११) प्राक् पश्चात् संस्तव—आहार देने के पहले या पीछे देनेवाले के गुण को गाना अर्थात् प्रशंसा करना यह प्राक्पश्चात्संस्तव दोष है।

(१२) विद्या—देवी जिसकी अधिष्ठात्री हो और जप या हवन से जो सिद्ध हो, वह विद्या कही जाती है, उस विद्या के प्रयोग से आहार लाभ करना विद्यापिण्ड दोष है।

(१३) मन्त्र—पुरुष प्रधान अक्षर रचना, जिसके जप मात्र से सिद्धि सुलभ हो, उसे मन्त्र कहते हैं। मन्त्र के प्रयोग से आहार लेना मन्त्रपिण्ड रूप दोष है।

(१४) चूर्ण—वशीकरण करनेवाले सुरमे आदि के प्रयोग से जो आहार लाभ किया जाय, उसे चूर्णपिण्ड दोष कहते हैं।

(१५) योग—पैर में लेप आदि सिद्धियां दिखाकर जो आहार लाभ किया जाय, उसे योग पिण्डदोष कहते हैं।

(१६) मूल कर्म- गर्भस्तम्भ, गर्भाधान गर्भपात आदि भव भ्रमण के हेतु भूत सावद्य कर्म मूल कर्म कहे जाते। इसके द्वारा आहार लाभ करना मूल कर्म दोष है।

उत्पादना के १६ दोष साधु को लगते हैं इनका निमित्त साधु ही होता है।

## २६ दश विध सत्य-

—"जणवय १ सम्मय २ ठवणा ३ नामे ४ रूवे ५ पडुच्च सच्चेय ६। ववहार भाव ७ ८, जोगे ९ य दसमे ओवम्मसच्चे १०॥ १॥

—जनपद सम्मत स्थापना नामरूप प्रतीतसत्यञ्च

व्यवहार भाव योगाश्च दशम मौपम्य सत्यञ्च॥ १॥

जो वस्तु जिस रूप में हो उसी रूप से उसे कहना यह सत्य का स्वरूप है। वक्ता की इच्छा के भेद से यह सत्य दश प्रकार का होता है।

जैसे कि (१) जन पद सत्य किसी देश में बाप को पिच्च, माता को भाई और पिता को माई कहते हैं यह उस देश के लिये सत्य है। इसे जनपद सत्य कहते हैं।

(२) सम्मत सत्य या सम्मत सत्य- जैसे पङ्कज-कीचड़ से पैदा होनेवाली वस्तु, जैसे कि मेंढक, सीप शैवाल आदि हैं किन्तु पङ्कज से केवल कमल लिया जाता है, यह

सम्मत सत्य हैं। (३) स्थापना सत्य--रूप से मिले या न मिले किन्तु किसी भी पदार्थ में किसी जीव अजीव का संकेत करना जैसे शतरञ्ज की मोहरो मे हाथी घोड़ा आदि कहना यह स्थापना से सत्य है। (४) नाम सत्य--जैसे किसी निर्धन को लक्ष्मीधर कहना कमजोर को भी महावीर कहना नाम सत्य है। (५) रूप सत्य--गुण न होने पर भी वेषमात्र से असाधु को साधु कहना यह रूप सत्य है। (६) प्रतीत-सत्य-अर्थात् अपेक्षा स सत्य जैसे हाथ की अगुलि को एक की अपेक्षा बडी दूसरी की अपेक्षा छोटी कहना यह प्रतीत सत्य है। (७) व्यवहार सत्य--जैसे चल कर पहुँची है गाडी, किन्तु लोक कहते है कि गांव आ गया यह व्यवहार सत्य है। (८) भाव सत्य--गुणों की विविधता में भी एक को प्रधान मान कर कहना जैसे शुक मे लाल वर्ण होने पर भी उसे हरा कहना भाव सत्य है। (९) योग सत्य--व्यक्ति कोई और है, किन्तु दण्ड छत्र पगडी आदि मे किसी के सयोग होने से उसे दण्डी, छत्री आदि नाम से पुकारना योग सत्य है। (१०) उपमा सत्य-जैसे तुलनात्मक दृष्टि से किसी का कोई अवयव जिसमे मिलता हो उसे उसी नाम से पुकारना जैसे नाक ऊंची हों तो गरुड, गरदन लम्बा हो तो ऊंट, आख बड़ी २ हो तो कमलनयन आदि कहना यह उपमा सत्य है।

## २७. द्वादश भाषा—

बोलकर या लिखकर जिसके द्वारा अपने भाव समझाये जाय, उसको बोली या भाषा कहते है। इनमें कोई २ विद्वान् भेद कहते हैं जैसे कि साहित्यादि से अपुष्ट बोली है और साहित्य से परिपूर्ण भाषा है। जो कुछ हो, किन्तु यहा भारत की प्रसिद्ध भाषाओ से मतलब है। यों शास्त्रों में १ सत्य भाषा, २ मृषाभाषा, ३ मिश्र और ४ व्यवहार भाषा, ऐसे चार प्रकार करके इनमें तीन को दश दश प्रकार की बताई है और व्यवहार भाषा को १२ प्रकार की कही है। लेकिन यहा प्राचीन समय की आर्य भाषा की गणना है, जो सस्कृत, प्राकृत, सौरसेनी, मागधी, पैशाची और अपभ्रश, ये छ भाषायें गद्य तथा पद्य भेद से बारह प्रकार की गिनी गई है। १८ देशों की भाषा इनसे भिन्न प्रकार की हैं।

## २८. सोलह वचन

उच्यतेऽनेन इति वचनम्--वाणी के प्रयोग को वचन कहते हैं। जैसे (१) एक

वचन -जैसे—जिण, जिन, द्रव्यम् आदि। इसके द्वारा एक ही पदार्थ का कथन होता है। (२ द्विवचन—यह द्विवचन दो संख्याओं में वस्तु का कथन करता है। जैसे—पुरुषौ।

(३) बहुवचन—बहुत के लिये कहा गया वचन बहुवचन है जैसे-नमो जिणाणं, सिद्धा, इत्यादि।

(४) स्त्री वचन—-यह स्त्रीलिंगवाची पद को कहता है। जैसे मही, वाणी आदि।

(५) पुरुष वचन- पुल्लिङ्ग को कहनेवाला पद पुरुष वचनहै जैसे—अयं जिनोऽयं लोक।

(६) नपुंसक वचन—नगरं भरतक्षम् आदि नपुंसकलिंगवाली वस्तु जिस वचन से कहा जाय।

(७) अध्यात्मवचन—बिना इच्छा के सहसा मन की बात निकल जाना अध्यात्म वचन है।

(८ उपनीत वचन—प्रशंसा वचन जैसे यह साधु क्रिया पात्र है।

(९) अपनीत वचन—जिसके द्वारा वस्तु के दोष प्रकट किये जांय जैसे—यह रिश्व मवती। है।

१ ) उपनीतापनीत वचन- प्रशंसा के साथ निन्दा करना जैसे- मुनिराज ध्यानध्यानी अच्छे हैं किन्तु क्रिया में शिथिल हैं।

(११) अपनीतोपनीत वचन—बुराई बता कर भलाई कहना। जैसे यह मुनि विद्वान् तो नहीं किन्तु क्रियापात्र हैं।

( १२ ) अतीत वचन—-जिसके द्वारा भूतकाल की बात कही जाय। जैसे भगवान महावीर दीपावली को मोक्ष पधारे थे।

( १३ ) प्रत्युत्पन्न वचन—इसके द्वारा वर्तमान काल की बात कही जाती है जैसे- वन्दामि पच्चन करता हूं।

( १४ ) अनागत वचन—यह भविष्य काल की बात कहता है। जैसे कृष्ण १२वें तीर्थङ्कर होंगे।

( १५ ) प्रत्यक्ष वचन—-जिसके द्वारा समक्ष की बात कही जाय। जैसे एष लोगो, अयं पुरुष।

( १६ ) परोक्ष वचन—परोक्ष की बात कहना परोक्ष वचन है जैसे वह विदेह मे जन्म लेगा।

उपरोक्त सोलह वचनों से वस्तु का यथार्थ कथन किया जाता है। उपयोग पूर्वक इन वचनो का प्रयोग करने वाले मुनि उपदेश देने में अधिकारी माने गये हैं।

देखिए आचाराङ्ग सूत्र।

## २६. उपधि उवगरणं—

उप-सामीप्येन संयम दधाति-पोषयति चेत्युपधि —अर्थात् संयम की साधना मे सहायक होनेवाले पदार्थो को उपधि या उपकरण कहते हैं। कर्म-शरीर और बाह्य भाण्डोपकरण तथा सचित्त अचित्त और मिश्र रूप तीन प्रकार की उपधि मे से यहां बाह्य भाण्ड उपकरण रूप अचित्त उपधि से ही प्रयोजन है। अचित्त उपकरण भी औधिक और औपग्रहिक दो प्रकार के होते है। सामान्य रूप से सब के उपयोगी उपकरणों को औधिक और समय विशेष व व्यक्ति विशेष के लिये काम आनेवाले को औपग्रहिक कहते हैं। यहां स्थविर कल्पी की दृष्टि से औघिक उपकरण गिनाये हैं। जैसे –१ पात्र, २ पात्र बन्धन-झोली, ३ पात्र केसरिका–कम्बल का टुकडा, ४ पात्र स्थापन-पात्र रखने का कपडा, ५-६-७ तीन पटल-पात्र ढकने के वस्त्र, ८ रजस्त्राण–पात्र मे लपेटने का वस्त्र जिसको आज रस्तान कहते हैं, ९ गोच्छक-पूजनी, १०-११-१२ प्रच्छादक-ओढने के तीन वस्त्र जिनमे दो सूती और एक उनी, १३ रजोहरण, १४ चोलपट्टग धोती के स्थान पर बाधन का वस्त्र, १५ मुखानन्तक–मुखवस्त्रिका आदि।

जिन कल्पी के लिये औधिक-उपकरणों का ही विधान मिलता है अधिक से अधिक उनके लिये १२ उपकरण बताये गये हैं। जैसे कि--१ पत्तं २ पत्ता बंधो ३ पायट्ठवणंच ४ केसरिया। ५ पडलाइ ६ रयत्ताण ७ गोच्छओ ८-९-१० पायनिज्जोगे तिन्नेवय पच्छागा ११ रयहरण चेवहोई १२ मुहपत्ति। एसो दुवालसविहो, उवही जिणकप्पियाणतु ॥२॥

कम से कम भी रजोहरण मुहपत्ती तो विशेष प्रकार के जिन कल्पी को भी रखना ही चाहिए। कहा भी है--

जिण कप्पिया उदुविधा, पाणीपाता पडिग्गहधराय।
पाउरण मपाउरणा, एक्केका ते भवे दुविधा ॥

दुगतिग चतुक्कपणगं, णवगं दस एगदसगं ।
एते अट्ठ विगप्पा, जिण कप्पे होंति उवहिस्स ॥

जिन कल्पी मुनि दो प्रकार के हैं, करपात्री और पात्रधारी। सवस्त्र एवं अवस्त्र ऐसे प्रत्येक के दो दो प्रकार होते हैं। जो करपात्री हैं उनके रजोहरण मुखवस्त्रिका रूप जघन्य दो उपधि हैं। पात्र नहीं रख कर भी जो वस्त्रधारी हैं उनके ३ ४ या ५ उपधि होती हैं। पात्रधारी जिन कल्पी के वस्त्र रहित ९ प्रकार की उपधि होती हैं। वस्त्रधारी जिन कल्पी के उत्कृष्ट १२ प्रकार की उपधि होती हैं।

स्थविरकल्पी साधुओं के लिये उपरोक्त १२ के अतिरिक्त एक प्रतिग्रह और चोल पट्ट ऐसे चौदह उपकरण बताए हैं। आर्यिकाओं के लिये ११ उपकरण विशेष हैं जैसे—अवग्रहानन्तक १ पट्ट २ अर्धोरुक ३ चलनिका ४ अभ्यन्तर निवसनी ५ बहि र्निवसनी ६ कञ्चुक ७ औपकक्षिकी ८ एक कक्षिकी ९ संघाटी और स्कंधकरणी १० ११ सब मिल कर पचीस कहे गये हैं।

औपग्रहिक ग्रहिक उपकरण यष्टि आदि जो वृद्धावस्था आदि कारण से लिये जाते हैं, ये अनेक प्रकार के हैं। नखशोधनी दन्तशोधनी आदि। जैसे कि कहा है--

दंडए लट्ठिया चेव, चम्मए चम्मकोसए।
चम्मच्छेयणपट्टे चिलिमिली धारए गुरु॥

अर्थात् दण्ड, लाठी, चम चमकोश, चमच्छेदन, चिलमिली गुरु धारण करते हैं।

फिर—"सेज्जाए सेज्जभूमि पत्ताणं कप्पति दंडगया १ भंडगया २ छत्तगया ३ मत्त गंवा ४ लट्ठिगाएवा ५ भिसिया ६ चेलंवा ७ चलचिलि मिलियावा ८ चम्मएवा ९ चम्म कोसंवा १० चम्मपलिच्छेयणयंवा ११ अविरहिए उवासि ठवत्ता गाहावति कुलं भत्ताएवा पाणाएवा प विसित्तएवा निक्खमित्तएवा।

वर्तमान में जो पुस्तक पट्टी लेखनी आदि रक्खे जाते हैं वे भी ज्ञानदर्शन की रक्षा में साधन होने से औपग्रहिक उपकरण हैं।

## ३० वेयावच्च—

सेवा भाव का वैयावृत्य कहते हैं। अर्थात् धर्म साधना के लिये विधि पूर्वक अन्न पान व वस्त्रादि प्रदान करना यह वैयावच्च का भाव है। जैसे कि—

'वेयावच्चं वावडभावो इहधम्म साहणनिमित्तं ।
अन्नाइमाण विहिणा सम्पायण मेस भावाओ ।'

सेवनीय की अपेक्षा सेवा-वैयावच्च के भी दस प्रकार है। जैसे कि-आयरिय १, उवज्झाय २, थेर ३, तवस्सी ४, गिलाण ५, सेहाण ६, साहम्मिय ७, कुल ८, गण ६, संघ १० सगयं तमिह कायव्व ।

अर्थात्--१ आचार्य, २ उपाध्याय, ३ स्थविर, ४ तपस्वी, ५ ग्लान-रोगी, ६ शिष्य, ७ स्वधर्मी, ८ कुल, ६ गण-अनेक कुल, १० संघ-गण समूह। इनकी योग्य सेवा करनी चाहिये।

शास्त्र में सामान्य और विशेषरूप में अत्यन्त बाल आदि वैयावृत्य के क्षेत्र बताये है। आगे लिखा है कि बिना किसी मतलब के निर्जरार्थी मुनि दस प्रकार की वैयावच्च को बहुत तरह से करे। यहां 'गण संघ चेइयट्ठे य निज्जरट्ठी' पद दिया गया है। टीकाकार अर्थ करते हुए लिखते हैं कि 'गण-कुल समुदाय, कोटिकादिक संघ स्तत्समुदाय रूप चैत्यानि-जिन प्रतिमा एतासा योऽर्थ प्रयोजनं स तथा। तत्र च निर्जरार्थ कर्मक्षयकाम'। अर्थात् गण, संघ और जिन प्रतिमा के प्रयोजन पर निर्जरार्थी सेवा करे। ऐसा अर्थ किया है। लेकिन 'चेइयट्ठे य निज्जरट्ठी' इसमे चेइयट्ठे य और निज्जरट्ठी ऐसे तीन पद है, परन्तु उपरोक्त अर्थ से केवल दो पदों का ही बोध होता है, तीसरे का नहीं। अन्न पानादि से उपष्टम्भ करने रूप वैयावच्च का अर्थ भी प्रतिमा के साथ घटित नहीं होता। इसलिये इसके वास्तविक अर्थ की गवेषणा करनी आवश्यक है। चित् संज्ञाने धातु से ण्यन्त में चेतित रूप बनता है और जिसका प्राकृतिक रूप 'चेइय' होता है। जिसका अर्थ है ज्ञान। हरिभद्रसूरि ने चित्त से भी 'चित्तस्य भाव कर्म वा' इस अर्थ में ष्यञ् करके चैत्य बनाया है। जैसे कि वे लिखते हैं--'चित्तम्-अन्त करण तस्य भावे कर्मणि वाष्य-ञिकृते चैत्यं भवति, तत्रार्हता प्रतिमा-प्रशस्त समाधि चित्तोत्पादनादर्हच्चैत्यानि भण्यन्ते'। (आव० हरीभद्री वृ० पृ० प० ५८७)

अन्य टीकाकारों ने भी 'चित्ताल्हादकत्वाच्चैत्यम्' माना है। इस प्रकार प्रमोदभाव या चित्त मे हर्ष उत्पन्न करनेवाले साधु, ज्ञान और प्रतिमा आदि मे चैत्य शब्द का अर्थ घटित हो सकता है। यहां पर भी बहुतसे आचार्य 'चेइयट्ठे' आदि पदों का अर्थ ज्ञान के लिये निर्जरार्थी सेवा करते है, किन्तु प्रीति भी चित्त का भाव

है इसलिये कुल गण और संघ के प्रीत्यर्थ निर्जरार्थी ऐसा अर्थ करना अधिक संगत होगा। इसलिये यहां प्रसङ्गता के लिये ऐसा अर्थ किया है। क्योंकि चैत्य की वैयावृत्ति अन्य किसी भी मूल शास्त्र में उपलब्ध नहीं होती। दशविध वैयावच में भी चैत्य का स्थान नहीं है। अतः प्रमाणित होता है कि चैत्य मूर्ति की वैयावृत्ति मानना मौलिकता से बाहर है। (६५ पृ० का०)

## ३१ उग्गह

रहने के लिये गृहपति से स्थान आदि की अनुमति लेने को अवग्रह कहते हैं। वैसे वसति स्थान भी अवग्रह कहाता है। अनुमति लेने रूप अवग्रह पांच प्रकार का है। जैसे—१ इन्द्रावग्रह २ राजावग्रह ३ गाथापति-अवग्रह ४ सागारिक अवग्रह ५ स्वधर्मी अवग्रह।

प्रतिदिन मुनि इसीलिये अनुज्ञा लेते हैं कि उनका अचयव्रत विशुद्ध बना रहे। इनमें ऊपर ऊपर का अवग्रह नीचे वाले से बाधित होता है। जैसे—किसी देश में वहां के राजा की अनुमति के अभाव में इन्द्र का अवग्रह काम नहीं देगा वैसे ही राजा की अनुमति के स्थान में गाथापति और गाथापति की अनुमति जहां आवश्यक है वहां शय्यातर, तथा शय्यातर के अधीन वस्तु के लिये स्वधर्मी साधु की अनुमति कार्य साधक नहीं होगी।

## ३२ उपाश्रय

उपाश्रीयते-सेव्यते संयमात्मपालनाय, शीतादित्राणाय वाऽनेन स उपाश्रयः अर्थात् जहाँ आत्मा और संयम की रक्षा हो वैसे स्थान को उपाश्रय कहते हैं। साधु के लिये निम्नोक्त उपाश्रय प्रशस्त कहे गये हैं। १ देवकुल-देहरा, २ सभा ३ प्रपा-प्याऊ, ४ आवसथ मठ, ५ वृक्षमूल, ६ आराम-बगीचा, ७ कन्दरा ८ आकर-खान ९ पहाड़ी गुफा, १० कर्म-कर्मशाला ११ उद्यान-फूलवाड़ी १२ यानशाला-रथशाला १३ कुप्यशाला-किराणा रखने का घर, १४ मण्डप १५ शून्य घर १६ श्मशान १७ लयन-पर्वत में कोरा हुआ घर और १८ दुकान इस प्रकार अन्य भी प्रासुक घर जीव रहित सहज बने हुए निर्दोष स्थान मुनियों के लिये ग्रहण करने योग्य हैं।

## ३३ विगई—

विकृति पैदा करने वाले पदार्थों को विगई कहते हैं। ये सब नौ हैं जिनके यहां निगाय दूध पदार्थ गया है।

जैसे कि-१ क्षीर, २ दही, ३ सर्पि-घृत, ४ नवनीत, ५ तेल, ६ गुड-खाँड, ७ मत्स्यण्डी-मिश्री, ८ मधु, ९ मद्य और १० मास, इनमे नवनीत, मधु मद्य और मास सर्वथा वर्जनीय है।

नोट—तीन दड से लेकर ३३ आशातना तक के बोलों का परिचय श्रमणावश्यक सूत्र की टिप्पणी मे दिया है। अत जिज्ञासु पाठक उनको सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल ( जयपुर ) से प्रकाशित श्रमणावश्यक सूत्र में देखें।

## ३४. प्रवचन माता

द्वादशांग रूप प्रवचन को माता के समान रक्षण करने वाली प्रवृत्तियाँ प्रवचन माता कहाती हैं जो आठ हैं। जैसे—१ ईर्यासमिति २ भाषा समिति ३ एषणा समिति ४ आदान निक्षेपणा समिति ५ परिष्ठापनिका समिति ६ मनोगुप्ति ७ वाग्गुप्ति ८ कायगुप्ति। कल्याणमार्ग की साधना मे इनकी जानकारी अत्यावश्यक मानी गई है। क्षयोपशम की विचित्रता से किसी साधक को विशिष्ट श्रुत का ज्ञान नहीं हो तो भी इतना-अष्ट प्रवचन माता का-ज्ञान तो होना ही चाहिये।

विशेष परिचय के लिये उत्तराध्ययन का २४वाँ अध्याय देखें।

## ३५. अष्ट कर्मग्रन्थि—

१ ज्ञानावरणीय २ दर्शनावरणीय ३ वेदनीय ४ मोहनीय ५ आयु ६ नाम ७ गोत्र और ८ अन्तराय है।

इन आठ कर्मों की आत्मा से सम्बन्धित वर्गणा ही ग्रन्थि कहाती है। इनमे ४ घाती कर्म हैं, जिनमें मोह प्रधान है। मोह कर्म के मन्द होने पर ही यह ग्रन्थि शिथिल पड़ती है। जैसेकि कहा है—

गंठिति सुदुब्भेओ, कक्खड-घण-रूढगूढ गंठिव्व।
जीवस्स कम्मजणिओ, घणरागदोस परिणामो॥



# कथा-विभाग

## सीता निमित्तक संग्राम कथा—

मिथिला नगरी के राजा जनक को विदेहा नामक भार्या और भामण्डल नामक पुत्र तथा आनन्दी सीता नाम की कन्या थी। विद्याधरों ने देवाधिष्ठित एक धनुष को स्वयंवर मण्डप में लाकर रक्खा था। तथा सीता ने भी प्रतिज्ञा की कि जो इस धनुष को तोड़ेगा मैं उसी को वरण करूंगी। जनक आकाश विहारी और स्वर्गीय देव समूह भी इस प्रसंग में कुतूहल दर्शन को आये हुए थे। विविध भूपतियों के बल प्रदर्शन के पश्चात् अयोध्यापति महाराज दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण ने सब के मनोरथ भग्न कर दिये और देखते ही देखते राम ने धनुष को गुण सहित तोड़ दिया, फिर क्या था, उसी समय साधुवाद के संग सीता राम के साथ व्याही गई।

महाराजा दशरथ वृद्ध हो चुके थे, अतएव वृद्धावस्था के कारण राम को राज्य देकर उन्होंने सन्यास ग्रहण करना चाहा। किन्तु भरत की मां कैकेयी ने छल पूर्वक राजा का पूर्व प्रतिज्ञात दो वरदानों की याद दिला कर उन्हें अपने वश में कर लिये। पितृवचन को पालन करने के लिये श्रीराम ने सहर्ष बनवास स्वीकार किया और राज्य भरत के लिये छोड़ दिया। लक्ष्मण और सीता भी राम के वनविहार में साथ थे। दण्डकारण्य में विहार करते हुए लक्ष्मण ने एक आकाशस्थ खड्गरत्न देखा, क्षत्रियोचित स्वभाव से उन्होंने खड्ग लेकर कुतूहल से बांस जाल पर मारा। सहसा उसके बीच में चन्द्रनखा का बेटा और रावण का भागिनेय शम्बुक नाम का विद्याधर जो विद्या साधन कर रहा था कट गया। पश्चाताप करते हुए लक्ष्मण ने इस दुर्घटना का वर्णन राम को सुनाया। इधर चन्द्रनखा को पुत्र की मृत्यु से बड़ा क्रोध हुआ। वह खोज करते राम की कुटिया के पास आई। राम लक्ष्मण के रूप को देख कर मोहित हो गई। उसने राम और लक्ष्मण के सम्मुख अपनी मांग प्रस्तुत की। किन्तु उन दोनों ने चन्द्रनखा की याचना स्वीकार नहीं की। फलतः खरदूषण को उसने अपने रंग में रंग कर सारी घटना निवेदन कर दी। खरदूषण बदला लेने को लक्ष्मण से युद्ध करने चला आया। इधर परम्परा से रावण को भी अपने भानजे की मृत्यु की खबर प्राप्त हुई। आकाश मार्ग से आते हुए वन में अनिन्द्य

सुन्दरी सीता के रूप को देख कर वह सारा हाल भूल गया। काम की विकलता से उसने कुल की मर्यादा और सहज विवेक को छोड कर सीता के हरण का निश्चय किया। विद्या के प्रभाव से वह इच्छानुसार रूप बना सकता था। इसलिये लक्ष्मण के संग्राम स्थल में राम को छलने के लिये उसने सिंहनाद किया। आवाज सुन कर जब राम उधर दौडे, तब रावण मायामृग के छल में अकेली सीता को हरण कर अपनी नगरी ले चला। मार्ग में राम के प्रीत्यर्थ उससे जटायु ने युद्ध किया। उसको पक्षहीन कर दिया गया। रावण के द्वारा सीता को वश में करने का हर प्रकार से प्रयत्न किया गया। लेकिन वह अनुकूल न हुई। पीछे राम ने सीता की गवेषणा करनी आरम्भ की। रत्नजटी के मुख से हनुमान ने सीता का कुशल समझ कर राम को निवेदन किया। राम भी भाई लक्ष्मण और हनुमान, सुग्रीव, भामण्डल आदि विद्याधरों के साथ समुद्र बाँध लंका गये। वहां रावण के साथ सीता के लिए युद्ध किया। रावण को सकुल नाश कर अपने पक्ष में स्थित उसके भाई विभीषण को लंका का राज्य देकर सीता के साथ अपनी नगरी लौट आये। यह सीता निमित्तक युद्ध का संक्षिप्त परिचय है।

## २—"द्रौपदी के लिये संग्राम"

कंपिलपुर में द्रुपद नाम का राजा था। उसकी राणी का नाम चुलनी था। उसके पुत्र का नाम धृष्टार्जुन और पुत्री का नाम द्रौपदी था।

समय पाकर स्वयंवर विधि से युधिष्ठिर आदि पांच पाण्डों के साथ द्रौपदी का विवाह हुआ।

पूर्वकृत निदान कर्मके कारण पांच पाण्डवोंकी पत्नी होने परभी वह सती कहलायी। पाण्डु महाराज अपने अन्तःपुरमें बैठहुए एकदिन महारानी कुन्तीऔर पाण्डवों के साथ गोष्ठी कर रहे थे। इस बीच में वहां नारद ऋषि आकाश मार्ग से उतर आए। सपरिवार पाण्डु राज ने उनका उचित सत्कार किया। किन्तु द्रौपदी ने मिथ्यादृष्टि तथा वेषमात्र का ऋषि समझ कर उनका सम्मान नहीं किया। इस पर नारद बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने अपना चमत्कार दिखाना चाहा। किसी समय वे धातकी खंड के पूर्व भरत में अमरकंका नामक राजधानी के राजा पद्मनाभ की सभा में जा पहुँचे। राजा ने ऋषि का अभ्युत्थान आदि सत्कार किया और बोला कि ऋषिवर? आप विविध स्थानों में घूमते हो। क्या मेरे अन्तःपुर जैसा अन्य

किसी के यहाँ भी स्वर्ग का सौन्दर्य सार देखा है? ऋषि ने उत्तर दिया-राजन्! आप कूपमण्डूक की बात कर रहे हो। हस्तिनापुर के राजा पाण्डु की पुत्र वधू के सामने तुम्हारी रानियाँ सौन्दर्य आदि प्रशंसोचित गुणों में नगण्य हैं। उसके पदांगुष्ठ के बराबर भी तुम्हारी रानियाँ नहीं हो सकती हैं।

यह सुनकर द्रौपदी के प्रति पद्मनाभ का अनुराग बढ़ गया और पूर्वसांगतिक देव की सहायता से वह सोती हुई द्रौपदी को ला अपने बगीचे में रखवा लिया। जागृत होने पर द्रौपदी ने देखा कि एक राजा कामुक बनकर सामने खड़ा है, और कुछ कह रहा है। उसकी प्रबल काम वृत्ति देखकर वह बोली कि राजन! मैं अपने पति से पृथक् होकर दुखी हूँ। मुझे कम से कम छः मास का अवकाश मिलना चाहिए। राजा ने स्वीकार किया। इधर द्रौपदी ने बेले की तपस्या और पारणे में आयंबिल की प्रतिज्ञा कर ली।

उधर हस्तिनापुर में द्रौपदी के नहीं मिलने से सन्नाटा छा गया। कुन्तीजी ने द्वारिका जाकर श्रीकृष्ण को सब निवेदन किया। कृष्ण ने गवेषणा आरम्भ की। एक दिन नारद से मालूम हुआ कि पद्मनाभ के महल में द्रौपदी के समान आकृति नजर पड़ी थी। कृष्ण ने उसकी सारी बात समझली। वे पाण्डवों को साथ लेकर द्रौपदी को लाने के लिए चल पड़े और समुद्रतट पर जाकर समुद्र के अधिपति सुस्थितदेव का आराधन किया। उसके द्वारा मार्ग मिलनेपर श्रीकृष्ण पाँचों पाण्डवों को लेकर रथ सहित अमरकंका के बाग में जा पहुँचे। पद्मनाभ को जतलाने के लिए कृष्ण ने पहले दारुक सारथि को भेजा। पद्मनाभ ने दूत का तिरस्कार कर युद्ध के लिए भेरी बजवा दी। विशाल सैन्य और शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो उसने पाण्डवों के साथ भयङ्कर युद्ध किया, पाण्डव हार कर श्रीकृष्ण के चरणों में उपस्थित हुए। तब स्वयं भी कृष्ण युद्ध के लिए चल पड़े। उन्होंने शंख फूंका। जिससे सैन्य का तृतीयांश भाग फूटा। शार्ङ्गधनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर टङ्कार करते ही दूसरा भाग भी मैदान छोड़ दिया। अब मात्र एक तिहाई बल शेष बचा तो पद्मनाभ प्राण भय से नगर में प्रवेश कर गया। तब श्रीकृष्ण ने नरसिंह का रूप धारण कर भूमि पर पैर मारा तब नगर कोट कंगुरे और राजमहल भङ्ग हो धराशायी कर भूमि पर गिर पड़े। राजा भयभीत होकर द्रौपदी के चरणों में शरण रूप से आ गिरा। द्रौपदी के निर्देश हुए उपाय से जब पद्मनाभ ने कृष्ण के पास क्षमा मांगी और द्रौपदी को

लौटा दी। तब कृष्ण ने भी उसे जीवन दान देकर मुक्त कर दिया। द्रौपदी को साथ लेकर पाण्डव अपनी नगरी चले आये।

यह द्रौपदी के लिये युद्ध की संक्षिप्त कथा है।

## ३ "रुक्मिणी के लिए संग्राम"

कुण्डनपुर नगरी के नृपति भीष्मक को रुक्मिण नाम का पुत्र था, तथा रुक्मिणी नाम की कन्या थी। प्रसंगवश किसी समय नारदजी कृष्ण की महारानी सत्यभामा के घर द्वारिका आये। कार्यान्तर मे व्यग्र (लगी) रहने के कारण सत्यभामा ने ऋषि का समुचित सत्कार नहीं किया। इस पर सहज क्रोधी नारद अत्यन्त क्रुद्ध हो गए और कुण्डनपुर आकर रुक्मिणी को कहने लगे कि तुम कृष्ण की प्रियतमा बनो तभी तुम्हारे जीवन की सार्थकता है। नारद ने कृष्ण का वर्णन इस प्रकार से किया कि रुक्मिणी का अनुराग कृष्ण के प्रति सहज ही जग गया। साथ ही रुक्मिणी का चित्र द्वारिका लाकर कृष्ण को दिखाया। जिससे कृष्ण का अनुराग भी रुक्मिणी के प्रति जग गया।

कृष्ण ने रुक्मिणी के लिये याचना की, किन्तु उसके भाई रुक्मिण ने स्वीकार नहीं किया। उल्टे महाबली शिशुपाल को आमन्त्रित कर उसके साथ अपनी बहन के व्याह की तैयारी करने लगा। रुक्मिणी ने किसी तरह यह संवाद कृष्ण को भिजवाया। खबर पाकर बलदेव के सग कृष्ण भी उस नगर में पहुँच गये। इधर रुक्मिणी भी देवपूजन के बहाने सखिओं के सग बाहर आई। दोनों के दिल मिले थे ही, फिर क्या था, कृष्ण रुक्मिणी को रथपर बैठाकर द्वारिका के लिए चल पड़े। दूतिओं के द्वारा समाचार पाकर अभिमानी रुक्मिण ने कृष्ण से युद्ध करना चाहा, शिशुपाल ने भी विशाल सैन्य को लेकर साथ दिया। युद्ध में बलदेव के हलमुसल रूप दिव्यास्त्र से दोनो के सैन्य भाग छूटे। रुक्मिण और शिशुपाल ने दीन भाव से अपने प्राण बचाये।

'यह रुक्मिणी के लिये युद्ध हुआ'।"

## ४ पद्मावती के लिये संग्राम—

अरिष्ट नगर मे महाराज हिरण्यनाभ नामक राजा राज्य करते थे ये बलराम के मामा थे। उनकी पुत्री का नाम पद्मावती था। बड़ी होने पर राजाने उसके लिये

स्वयंवर का आयोजन किया। निमन्त्रण पाकर बड़े २ राजा और राम केशव के साथ कई राजकुमार भी उस स्वयम्वर में उपस्थित हुए। हिरण्यनाभ की भ्रातृ सुता (भतीजी) का सम्बन्ध बलराम के साथ पहले ही कर दिया था। पद्मावती के लिये स्वयम्वर में उपस्थित सभी राजा अभिलाषी थे, किन्तु उसने कृष्ण के गले में वरमाला डाल दी। रुष्ट होकर सभी राजाओं ने युद्ध में कृष्ण को जीतकर पद्मावती छीन लेना चाहा। परिणाम स्वरूप कृष्ण के साथ राजाओं का भयङ्कर संग्राम हुआ। कृष्ण युद्ध करके सभी को हरा दिया। पद्मावती को लेकर अपनी राजधानी गए।

यह पद्मावती के लिये संग्राम का संक्षिप्त वर्णन हुआ।

## ५ तारा निमित्तक युद्ध—

किष्किन्धापुर में आदित्यरथ नामक विद्याधर के दो लड़के थे, एक का नाम बालि और दूसरे का नाम सुग्रीव था। आदित्यरथ के पुत्र बालिने अपना राज्य सुग्रीव को देकर स्वयं दीक्षा धारण करली। राज्य का स्वामी सुग्रीव बना। उसकी स्त्री का नाम तारा था। वह बड़ी सुन्दरी थी। किसी समय तारा की ख्याति से दीवाना हुआ साहसगति नामक विद्याधर ने सुग्रीव का रूप बनाकर उसके अन्तःपुर में प्रवेश किया। तारा ने चिन्हों से जानकर मन्त्रि मण्डल को अवगत कराया। उसने अपनी काम सिद्धि के लिये आने वाले सुग्रीव को नकली कहकर रुकवा दिया। वे सब दोनों सुग्रीव के रूप को देखकर आश्चर्य में पड़ गए। ठीक निर्णय नहीं होने से दोनों को घर से बाहर निकाल दिये। वे ईर्ष्यावश लड़ने लगे लड़ाई में दोनों बराबर रहे। तब कृत्रिमरूपधारी असत्य सुग्रीव और सत्य सुग्रीव दोनों ने हनुमान नामक विद्याधर राजा के पास जाकर निवेदन किया वह आया और दोनों को बराबर नहीं समझ सकने के कारण बिना कुछ उपकार किये ही अपने घर लौट गया।

जब लक्ष्मण के द्वारा पाताल लंका जीत लेने पर श्रीराम वहीं पर राज्य सम्भालने लगे तब इस बात को जानकर श्रीराम के चरणों में प्रार्थना की गई। तत्काल लक्ष्मण सहित राम-किष्किन्धापुर आये। उधर सुग्रीव ने सुना पर बाल मारा जिसको सुनकर वह नकली सुग्रीव रथारूढ़ होकर रसिक बना हुआ चला आया। उन दोनों में कोई अन्तर नहीं देखने से रामचन्द्र महाराज सोचते खड़े रहे। सत्य सुग्रीव की सहायता नहीं दे सके। अब सत्य सुग्रीव दूसरे से दुःखी किया गया।

तब राम के पास आकर उसने निवेदन किया कि देव ! आपके देखते भी मुझको कष्ट मिल रहा है तो मुझे कौन बचाएगा ? रामने कहा कि तुम अपना चिन्ह बता कर फिर युद्ध करो। वैसा करने पर झूठे सुग्रीव को रामने शर प्रहार से मार दिया। सत्य सुग्रीव बहुत दिनों तक तारा के साथ सांसारिक सुख का अनुभव करता रहा। रामचन्द्र के द्वारा युद्ध में कृत्रिम सुग्रीव के मारे जाने पर तारा और सुग्रीव का संकट टल गया। वे रामका उपकार मानने लगे।

( यह तारा निमित्तक युद्ध का संक्षिप्त वर्णन है )

## ६ रक्त सुभद्रा के लिये संग्राम—

सुभद्रा कृष्ण वासुदेव की बहन थी। वह पाण्डुपुत्र अर्जुन पर कामानुरक्त थी इसलिये उसका नाम रक्त सुभद्रा पड़ा। वह एक दिन अर्जुन के समीप आई। कृष्ण ने उसको लौटाने के लिये बलराम को भेजा। किन्तु सुभद्रा पर अनुरक्त हुए अर्जुन ने रण रसिकता से बलराम को हराकर सुभद्रा के साथ शादी करली। पीछे अभिमन्यु नामक बालक पैदा हुआ।

यह रक्त सुभद्रा के लिये संग्राम का संक्षिप्त वर्णन हुआ।

## ७ सुवर्ण-गुलिका के लिये संग्राम

सिन्धु सौवीर देश के नृपति उदायन की राजमहिषी का नाम प्रभावती था। देवदत्ता नामकी उसकी एक दासी थी। किसी समय देवदत्ता को दिव्य प्रभाव वाली गुटिकायें प्राप्त हुईं, जो अद्‌भुत चमत्कार से भरी थी। उसके खाने से कुरूप सुन्दर तथा मूक वाचाल बन जाते थे। कल्पतरु के समान वह अभिलषित फल देने वाली थी। गोली में से एक खाकर देवदत्ता स्वर्णवर्ण देह वाली हो गई। इससे लोग उसको स्वर्ण-गुलिका कहने लगे। देह की सुन्दरता पाकर वह चिन्ता करने लगी कि अब मैं किससे व्याह करूंगी, क्योंकि उदायन मेरे पिता तुल्य हैं और शेष लोग गुण की कमीके कारण मेरे योग्य हैं ही नहीं। इस तरह केवल उज्जयिनीपति राजा चण्डप्रद्योतन ही उसके मनमुताबिक जचे। उनको ध्यानमें रखउसने फिर दूसरी गोली खाई। इधर गोली के चमत्कार से चण्डप्रद्योतन को भी सुवर्णगुलिका की कार्यवाही ज्ञात हुई। वे हाथी पर चढ रात में सुवर्णगुलिका के द्वार पर चले आये। बुलाकर उसको अपने साथ चलने को कहा। (कुछ शर्तों पर) वह भी राजी हो गई और चण्ड

प्रद्योतन के साथ उज्जयिनी चली गई। प्रातःकाल उदायन को पता चला कि सुवर्ण गुलिका का किसी ने अपहरण कर लिया और विशेष खोज से यह भी ज्ञात हुआ कि सारा खेल चण्डप्रद्योतन राजा का है। इससे उदायन बड़ा क्रुद्ध हुआ, और अन्य दसों दश राजाओं के संग वह उज्जयिनी पर चढ़ आया। चण्डप्रद्योतन के द्वारा दासी को नहीं लौटाने पर दोनों में भयङ्कर युद्ध हुआ। धनुर्वेद के प्रभाव से चण्डप्रद्योतन के हाथी पर चोट कर उदायन राजा ने चण्डप्रद्योतन को अपने वश कर लिया। जब उदायन विजय मिलाकर अपने देश की ओर पीछे आने लगा तब पर्यूषण पर्व के दिन निकट आ गये थे। अतः दशपुर—मन्दसौर के पास उसने सैन्य सहित अपना पड़ाव किया। संवत्सरी के पहले दिन सैन्य को बुलाकर आदेश दिया कि इसे कल महापर्व है। अतएव किसी भी जीव को कष्ट नहीं पहुँचाना। फिर रसोइये से कहने लगे—कल संवत्सरी महापर्व होने से मैं तो दिन भर पौषधव्रत की आराधना करने वाला हूँ किन्तु यह चण्डप्रद्योतन जो अभी मेरे बंधन में है, फिर भी राजा होने से इसको भोजन में कोई कष्ट नहीं होने देना। इसकी इच्छा के अनुसार भोजन बना देना। कितनी धर्म की निष्ठा ? सुवर्णगुलिका के लिए लड़ने वाला उदायन भूपति पर्वाराधन में शत्रु को भी मित्र समझता है। क्षमापना करते समय उसने चण्डप्रद्योतन की प्रीति के लिये दासी सहित उसे बन्धन मुक्त करना स्वीकार किया और दूसरे दिन चण्डप्रद्योतन के मस्तक पर मयूरपिच्छ से दासीपति यह नाम अंकित कर ( विदा किया ) छोड़ दिया।

उदायन की क्षमापना आदर्श है।

## ८ रोहिणी के निमित्त संग्राम

अरिष्टपुर नगर में रुधिर नामका राजा राज्य करता था। उसकी सुमित्रा नाम की रानी तथा हिरण्यनाभ नाम का पुत्र और रोहिणी नामकी एक कन्या थी। राजाने पुत्रीके विवाह करनेको स्वयंवर करनेकी घोषणा की। जरासंध और समुद्रविजय आदि विविध राजा स्वयंवर में उपस्थित हुए। उचित आसन पर बैठकर रोहिणी की प्रतीक्षा करने लगे। समय पर रोहिणी स्वयंवर मंडप में आई और प्रतिबिम्ब में धाय मा के द्वारा राजाओं का परिचय करती हुई आगे बढ़ी। शुभ लग्न में वसुदेव ने वाद्यध्वनि द्वारा अपना परिचय दिया। जिससे रानी भी इस भावना वसुदेवके गलेमें वर माला डाल दी। इससे उपस्थित सभी राजा क्रुद्ध हुए। क्योंकि एक बाजे बाले से

लड़कर रोहणी को अधीन करना चाहा। वसुदेव भी रोहणी की सहायता से जोरों से लड़ा और सबको परास्त कर रोहणी को ले चला।

नोट--काञ्चना, अहिन्निका, किन्नरी, सुरूपा और विद्युन्मती की कथाएं अज्ञात हैं। ऐसा टीकाकार का कहना है। फिर भी विद्वानों को गवेषणा करनी चाहिए।

( अनुवादक )

# म्लेच्छ जाति और अनार्य देश

१ आन्ध्र देश २ अरोप ३ अरुक ४ आभाषिक ५ अरब ६ उद्र ७ कुहण ८ कुलाक्ष ९ केकय १० कोकणक-कोंकण ११ क्रौंच )१२ खस १३ खासिक १४ गाय १५ गौड- (बङ्गाल) १६ गंधहारक-गाधार १७ चिलात-चिरात १८ चीन १९ चुंचुक २० चू लेक २१ जल्ल २२ डोबिलक २३ डोब्र २४ तित्तिक २५ द्राविड-द्रविड २६ नेहर २७ पक्कणि २८ पन्हव २९ पारस ३० पुलिन्द्र-पुलिद भोपाल से उत्तर ३१ पोकण ३२ बकुश ३३ बर्बर ३४ बह्लीक ३५ बिल्वल ३६ भडक ३७ मलय ३८ महुर ३९ महाराष्ट्र ४० मरुक ४१ मालव ४२ माष ४३ मुरंड ४४ मूढ-मौष्टिक ४५ मेद ४६ यवन-(यूनान) ४७ रुरु ४८ रोम ४९ रोमन ५० ल्हासिक ५१ शक जाति ५२ शबर जाति ५३ सिंहल-लंका ५४ हूण जाति (चतुर्थ सूत्र)

इस प्रकार म्लेच्छ जाति और देशों को मिला कर ५४ संख्या गिनाए गए हैं।

# महापुरुषों के उत्तम लक्षण

१ सूर्य २ चन्द्र ३ शखवर ४ चक्र ५ स्वस्तिक ६ पताका ७ यव ८ मत्स्य ९ कूर्म १० रथ ११ योनि १२ भवन १३ विमान १४ तुरग १५ तोरण १६ गोपुर-पुरद्वार १७ मणि १८ रत्न १९ नन्दावर्त नवकोण का स्वस्तिक २० मूसल २१ हल २२ कल्प-वृक्ष २३ सिंह २४ भद्रासन २५ सुरूपि-आभरण २६ स्तूप २७ मुकुट २८ मुक्तावली २९ कुण्डल ३० गज ३१ वृषभ ३२ द्वीप ३३ मन्दिर अथवा मेरु ३४ गरुड ३५ ध्वजा ३६ इन्द्रकेतु ३७ दर्पण ३८ अष्टापद-पाशा ३९ धनुष ४० बाण ४१ नक्षत्र ४२ मेघ ४३ मेखला-कन्दोरा ४४ वीणा ४५ जुआ ४६ छत्र ४७ माला ४८ दामिनी ४९ कम-डलु ५० कमल ५१ घंटा ५२ जहाज ५३ सूची ५४ सागर ५५ कुमुद ५६ मगर ५७ हार ५८ पृथ्वी ५९ अंकुश ६० शृंगार ६१ घाघर ६२ नूपुर ६३ नग ६४ नगर ६५ वज्र ६६ किन्नर ६७ मयूर ६८ राजहंस ६९ सारस ७० चकोर ७१ चक्रवाक ७२ चामर

७३ खंद ७३ पण्यिसक-थाए ७५ वीणा ७६ तालवृन्त-पंखा ७७ अभिषेक ७८ खड्ग ७६ कलश ८० वर्द्धमान-शरावा (तृतीय सूत्र)

(प० भा० द्वा०)

## स्त्रियों के बत्तीस लक्षण

१ छत्र २ ध्वजा ३ यूप ४ स्तूप ५ दामिनी-डोरी ६ कमण्डलु ७ कलस ८ वापी ६ स्वस्तिक १० पताका ११ यव १ मत्स्य १३ कूर्म १४ प्रधान रथ १५ कामदेव १६ चक्र १७ माल १८ अंकुश १६ अष्टापद २० सुप्रतिष्ठक २१ देव या मयूर २२ लक्ष्मी का अभिषेक २३ तोरण २४ पृथ्वी २५ समुद्र २६ प्रधान भवन २७ प्रधान गिरि २८ दर्पण २६ गज ३० वृषभ ३१ सिंह ३२ चामर। ( प० भा० द्वा० )

## देवों के नाम

### भवनपति जाति के देव

१ असुर कुमार २ नाग कुमार ३ गरुड़ कुमार ४ विद्युत् कुमार ५ अग्नि कुमार ६ द्वीप कुमार ७ उदधि कुमार ८ दिक्कुमार ६ पवन कुमार १० स्तनित कुमार।

### व्यन्तर जाति के देव

१ अणपन्निक २ पणपन्निक ३ ऋषिवादिक ४ भूतवादिक ५ क्रन्दित ६ महा क्रंदित ७ कुष्मांड ८ पतंगदेव ६ पिशाच १० भूत ११ यक्ष १२ राक्षस १३ किंनर १४ किंपुरुष १५ महोरग १६ गन्धर्व। ४, ५, प्रथम द्वार

### ज्योतिष्क देव

१ बृहस्पति २ चन्द्र ३ सूर्य ४ शुक्र ५ शनिश्चर ६ राहु ७ धूमकेतु ८ बुध ६ मंगल

### कल्पों के नाम

१ सौधर्म २ ईशान ३ सनत्कुमार ४ माहेन्द्र ५ ब्रह्मलोक ६ लान्तक ७ महाशुक्र ८ सहस्रार ६ आणत १० प्राणत ११ आरण १२ अच्युत। (प० भा० द्वा०)

### आहार के दोष

१ उद्दिष्ट २ स्थापित ३ रचित ४ पर्यवजात ५ प्रकीर्ण ६ प्रादुष्करण ७ अपमित्य ८ मिश्रजात ६ क्रीतकृत १० प्राभृत ११ दानार्थकृत १२ पुण्यार्थ कृत १३ श्रमणार्थ कृत १४ वनीपकार्थ कृत १५ पश्चात् कर्म १६ पुरः कर्म १७ नैत्तिक कर्म १८ मृक्षित १६

अतिरिक्त २० वाचालता युक्त २१ आहित २२ स्वयंगृह ( स्वगृहीत ) २३ मृत्तिकोपलिप्त २४ अच्छेद्य २५ अनिसृष्ट २६ अन्तर्वहिर्वा स्थापित २७ हिंसा सावद्य युक्त कृत कारित।

## ब्रह्मचर्य की ३२ उपमायें—

१ नक्षत्र मण्डल में जैसे चन्द्रमा प्रधान है वैसे व्रतो मे ब्रह्मचर्य व्रत बड़ा और प्रधान है। २ मणि आदि रत्नों की खानो मे समुद्र के समान। ३ मणियों में वैडूर्य मणि के समान। ४ आभूषणों में मुकुट के समान। ५ वस्त्रों में कपास के वस्त्र के समान। ६ पुष्पों में कमल के समान। ७ चन्दनों मे गोशीर्ष चन्दन के समान। ८ औषधि स्थानों में हिमवान के समान ६ नदियों में शीतोदा नदी के समान। १० समुद्रों मे स्वयंभूरमण के समान। ११ माण्डलिक पर्वतो में रुचक पर्वत के समान। १२ हाथियों में ऐरावत हाथी के समान। १३ जंगली पशुओं में सिंह के समान। १४ सुपर्णकुमारों में वेणुदेव के समान। १५ नागकुमारों में धरणेन्द्र के समान। १६ बारह देवलोकों में ब्रह्मदेव लोक के समान। १७ सभाओ में सुधर्म सभा से समान। १८ स्थितियो में अनुत्तर विमानवासी देवों की स्थिति के समान। १९ दानों में अभयदान के समान। २० कम्बलों में रत्न कम्वल के समान। २१ शरीर के सहननों में वज्र ऋषभनाराच सहनन के समान। २२ संस्थानों में समचतुरस्र संस्थान के समान। २३ चार ध्यानो में शुक्ल ध्यान के समान। २४ पाच ज्ञानों में केवल ज्ञान के समान २५ छह लेश्याओं में शुक्ल लेश्या के समान। २६ मुनियों में तीर्थंकर के समान। २७ क्षेत्रों में महाविदेह क्षेत्र के समान। २८ पर्वतों में सुमेरु पर्वत के समान २६ वनों में नन्दन वन के समान। ३० वृक्षों में जम्बू वृक्ष के समान। ३१ तुरगपतिओ में राजा के समान। ३२ रथिकों में महारथी के समान ब्रह्मचर्य व्रत सब व्रतों में बड़ा और प्रधान है।

## ऐतिहासिक पुरुष

राम, केशव, वासुदेव, देवई–देवकी, रुक्मिणी, रक्त सुभद्रा, रोहिणी, पद्मावती द्रौपदी, सीता, समुद्रविजय, प्रद्युम्नकुमार, प्रदीपकुमार, सम्भकुमार, अनिरुद्ध कुमार निसर्ग कुमार, उल्मुक कुमार, गज कुमार, सारंगकुमार, सुमुखकुमार, दुर्मुख कुमार, चाणूरमल्ल, महाशकुनि, पूतना, कंस, जरासध, केशरीसिंह दम नाग–काली नाग, अरिष्टवृषभ, स्वयंभू, प्रजापति, महावीर, जम्बू कुमार, वसुदेव।

## वाद्य

१ मुरज २ मृदंग ३ पणव-पखहा ४ दर्दुर ५ कच्छभि ६ वीणा ७ विपंचि ८ वल्लकी वीणा विशेष ९ बद्धीसक १० सुघोष-घंटा ११ नंदी-बारह प्रकार का तूर्य नाद १२ सुस्वरा १३ परिवादिनी १४ वंश-बांसुरी १५ तूणक १६ पर्वक १७ तंत्री १८ तलताल-हस्तताल १९ त्रुटित।

किसी वाद्य-कला के आचार्य से इनका परिचय प्राप्त करना चाहिये।

## सुगन्धित द्रव्य—

१ पुष्प २ कोष्ट ३ तगर ४ पत्र तमाल पत्रादि ५ त्वचा-छाल ६ दमनक ७ मरुआ ८ एलारस ९ पिक्कमंस-पका हुआ गंध १ गोशीर्ष-सरस चन्दन ११ कपूर १२ लवंग १३ अगर १४ कुंकुम १५ कंकोल १६ उशीर १७ श्वेत चन्दन १८ सारंग इत्यादि।

(पंचम संवर द्वार)

## जलाशय

१ क्षुल्लिका २ पुष्करणी ३ वापि-चतुष्कोण वावड़ी ५ दीर्घिका ६ गुंजालिका ७ सर ८ सरपंक्ति ९ सागर १० बिल कुआ ११ खाई १२ नदी १३ तालाब-खोद के बनाया हुआ १४ वनिद्र-नहर, बम्बारा।



# प्रश्न व्याकरण सूत्र की पाठान्तर सूची !

| मूलपाठ | पाठान्तर | प्रति |
| --- | --- | --- |
| पाणवहं | पाणिवहं | अ |
| पाणवहो | पाणिवहो | ” |
| मरणावेमणस्सो | मरणाचेव मणस्सो | ” |
| कोलसुणक | कोलसुणका | ” |
| दीविया | दीविय | ” |
| सरब | सरग | ग० |
| गोधुदर | गोधूदुर | अ |
| मुगुस | मुंगुसी | ” |
| खाडहिल | खडहिला | ” |
| घाउप्पइय | घाउप्पिय | ग० |
| सेताय | सेतीय | अ |
| चक्कीव | कीव | ” |
| सउण पिपीलिय | सउण पीविय | ग० |
| जीवजीवक | जीव जीवग | अ |
| कपोयक | कवोयकाग | ” |
| वेसर | मेसर | ” |
| सालग ( करक ) | कर करक | ” |
| दलट्ठा | दतट्ठी | ” |
| चितिवेतिय खातिय | वेदिखातिय | ग० |
| जलावरण | जलग जलावरण | अ |
| केते | किते | ” |

| मूलपाठ | पाठान्तर | प्रति |
|---|---|---|
| | | ग० |
| मुरंडा धमरूग | मुरंडो डडु भरूग | ख |
| विस्सव | चिस्सव | " |
| मडुर | मग्गर | ख |
| मुड्डिय भारव | मुड्डिय मरहाठा मडा भारव | " |
| मसगा | मसग | " |
| रुहिरमिणिएस | रुहिरा किम | " |
| सस्सासेव | सस्ससित | " |
| मुयइ ममरामि | मुच्चमे मरामि | ख |
| गंडूसय | तहेव चेंदियेसु गडूमस | ख |
| मग्गयगासय | मच्छय तालय गालय | ख |
| अंधमगा | आंधजगा | ख |
| हीणाहीणसत्ता | हीण हीण सत्ता | ख |
| मणा व नत्थि अहियाहि | मणंति सुणंति नत्थि | " |
| भाइडा | भाइड्डा | ख |
| विरयणं अलिय | विरयणं माया अलिय | ख |
| पुणब्भवकरं | मव पुणब्भवकरं | " |
| चउरंग विमत्तबल | चउरंग समत्तबल | ख |
| गावकन्न सप्पहारणुब्भयकरे | गावदूल्लपहार कर णुब्भयकरे | " |
| वरिय | दम्मिय | " |
| मपाडु | माणाइय | " |
| रप्पवरकेहि | हत्थवरकहि | " |
| कर कहितपहसिव | कहकहकरतपहसिम | ख |
| कास | कस्स | ग |
| संकोड मोडणाहि | संकोडण मोडणाहि | ख |
| मेवप्पहारसय | पतप्पहारसत | ख |
| कन्नरपहार संभमा | कण्णरपहार पायकिया संभमा | ख |
| मम्मपाण भीता | मम्मपाणभीया | |

| मूलपाठ | पाठान्तर | प्रति |
|---|---|---|
| खरफरुसएहिं | खरकर सएहि | |
| समभिद्दुत्ते | समभिभूए | अ |
| पुणोविपवज्जति | पुणोविपडिवज्जति | ब |
| सायगारवो वहार गहिय कम्मपडि० | सायगारवो असुहज्झवसायहि अपहार कम्म पडिवद्ध० | ब |
| रुद्दं | रु द्द | अ |
| अफलवतकाय | अपघतकाय | ,, |
| मणसंखेवो | मणसंखोभो | ,, |
| चाणूर मूरगा | चूरगा | ,, |
| सद्दूलसिंह | सद्दूलरिसह | ,, |
| सुपइट्ठ अमरसिरिया० | सुपइट्ठमयूर'सिरिया | ब |
| लोभकलिकसाय | लोभकलिसगामकसाय | ,, |
| भवनवर विमाण | भवन वाणव्वतर विमाण | |
| चउत्थभत्तिएहिं एवं जावछम्मास भत्तिएहिं- | चउलयभत्तिएहिं छट्ठ भत्तिएहिं अट्ठभत्तिएहिं दसम भत्तिएहिं एवं दुवालस चोद्दस सोलस अद्धमास दोमास तिमास चउमास पच मास छम्मास भत्तिएहिं। | ब |
| पावियाते पावग न किंचिवि | पावियाते पावक अहम्मिय दारुणं निसस चहवध परिकिलेस बहुलं जरामरण परिकिलेस सकिलिट्ठं न कयायि वहए पावियाएउ पावगं किंचिवि | अ |
| अक्खोवंजणानु लेवणभूय | अक्खो वजणवणाणु लेवण भूयं | ग |
| महासमुद्दमज्झेविमूढा | महासमुद्दमज्झेचिठति न य निमज्झति मूढा | अ |
| असिपञ्जरगया | असिपजर सत्तिपजरगया | ,, |

| मूलपाठ | पाठान्तर | प्रति |
|---|---|---|
| मुरंडा चमडग | मुरंडा चड्ड मडग | ग० |
| विस्सास | विस्सास | ख |
| महुर | ममार | ' |
| मुट्ठिय मारव | मुट्ठिय मरहाटा मट्ठा म र ठ | ख |
| मसगा | मसग | " |
| रुहिरकिण | रुहिरा किम | " |
| वस्सासेव | वस्ससित | " |
| मुयइ ममरामि | मुच्चम मरामि | " |
| गंड्सम | वहेद पेंदियेसु गड्डयस | ख |
| भग्गणगासण | भग्गम तासण गासण | ख |
| श्रीयवगा | श्रीयडगा | ख |
| हीणाहीणमत्ता | हीण हीणमत्ता | ख |
| भगं व नत्थि भद्दियाहि | भणंति सुप्पति नत्थि | ख |
| भाइवा | भाइट्ठा | " |
| विरयणं भलिय | विरयणं माया भलिय | ख |
| पुणुब्भयकरं | भव पुणुब्भयकरं | ख |
| घउरग विमसवस | घउरग ममसपस | " |
| गाढरदढ धापहारगुरुभयकर | गाढरुप्पहार कर गुरुभयकरे | ख |
| हरिय | हरिपय | " |
| अपाइ | भागइद्य | " |
| दन्दतरफदि | दन्यतरफदि | " |
| फद क दिलपहमिम | कहकदकस्सपहमिप | " |
| कास | कास | ख |
| संकाह माहणादि | संकाहड माहणादि | ख |
| भत्तपहारसय | पतत्पारसन | ख |
| कालरपहार संमग | कालरपहार पायविया संमग | ख |
| कारणाग भीमा | कारणाणभीमा | ख |

| मूलपाठ | पाठान्तर | प्रति |
|---|---|---|
| खरफरुसएहिं | खरकर सएहिं | |
| समभिद्दुत्ते | समभिभूए | अ |
| पुणोविपवज्जति | पुणोविपडिवज्जति | ब |
| सायगारवो वहार गहिय कम्मपडि० | सायगारवो असुहज्झवसायहिं अपहार कम्म पडिवद्ध० | ब |
| रुद्दं | रुद्द | अ |
| अफलवतकाय | अपचतकाय | ,, |
| मणसखेवो | मणसंखोभो | ,, |
| चाणूर मूरगा | चूरगा | ,, |
| सद्दूलसिह | सद्दूलरिसह | ,, |
| सुपइट्ठ अमरसिरिया० | सुपइट्ठमयूर'सिरिया | ब |
| लोभकलिकसाय | लोभकलिसगाभकसाय | ,, |
| भवनवर विमाण | भवन वाणव्वतर विमाण | |
| चउत्थभत्तिएहि एवं जावछम्मास भत्तिएहिं– | चउलयभत्तिएहिं छट्ठ भत्तिएहि अट्ठभत्तिएहिं दसम भत्तिएहिं एवं दुवालस चोद्दस सोलस अद्धमास दोमास तिमास चउमास पच मास छम्मास भत्तिएहिं । | ब |
| पावियाते पावगं न किंचिवि | पावियाते पावक अहम्मिय दारुणं निससं वहवध परिकिलेस बहुलं जरामरण परिकिलेस सकिलिट्ठं न कयावि वइए पावियाएउ पावग किंचिवि | अ |
| अक्खोवजणानु लेवणभूयं | अक्खो वजणवणाणु लेवण भूयं | ग |
| महासमुद्दसज्झेविमूढा | मज्झेचिठति न य र मूढा | अ |
| असिपञ्जरगया | र सत्तिपजरगया | ,, |

| मूलपाठ | पाठान्तर | प्रति |
|---|---|---|
| सुपणिहियं एव जाव भावियं | सुपणिहियं इमेहिं पंचहिवि कारणेहिं मणवयकाय परिक्खिएहिं णिच्चं आमरणं तं च जोगो णेयव्वो धिईमयामईमया अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्साई असंकिलिट्ठा सव्वजिणमणुण्णाओ एवं तइयं संवरदारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं अणुपालियं आणाए आराहियं भवइ एवं णायमुणिणा भगवया पण्णवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धवर सासण मिणं आघवियं | क |
| सुभासियं | सुभाहिय | ग |
| धीर सूर | वीर सूर | ,, |
| सुकयमज्झत्थ | सुकयरक्खण मज्झत्थ | क |
| संनद्धोच्छइय | संनद्धबद्धच्छगिय, समद्धबद्धोच्छगिय | क-ख |
| महिय चुभिय | महियमहिय चुभिय १-महिय चुभिय | ग |
| वाउसिक ( य ) हसिय | वाउसिक म वत्थ केस समारयणा इय हसिय | ख |
| अविरतिसुय एव | अविरतीसुय अणोसुय एव | ,, |
| विसुद्ध मूलो | विसुद्धबद्ध मूलो | क |
| घस निविड पीण पवर | घसनिविड पीण पीवर | ,, |
| तव संजम | तवसंवर संजम० | ख |
| जगमाण दिट्ठा | जगाणं दिट्ठा | क |
| हंसमसगसीय परिरक्खणट्ठयाए | हंसमसग सीयसिणपरिक्खणट्ठयाए | ख |
| सोमभावयाए | सोमभावणाए | ,, |

| मूलपाठ | पाठान्तर | प्रति |
| --- | --- | --- |
| पयपर निकये | पयपर पर निकये | ख |
| निम्मंमि | निम्मम्मि | ग |
| छुहिय | खुहिय | घ |
| नरभियव्वं जाव न सइं | नरंभियव्वं न गिज्झियव्वं न मुच्छियव्वं न विणिघायमावज्जियव्वं न लुभियव्वं न तुसियव्व न हसियव्वं न सइं | घ |
| अंतरप्पा जाव चरेज्ज | अंतरप्पा मणुण्णा मणुन्न सुब्भि दुब्भि राग दोस पणिहियप्पा साहू मण वयण कायगुत्ते संवुडे पणि-हिइंदिए चरेज्ज | घ |
| रूसियव्वं जाव | रूसियव्वं न हीलियव्वं जाव | ख |
| न सुब्भियव्व न विणिग्घायं | न सुब्भियव्व न हसियव्वं न लुभियव्वं न तुसियव्व न विणि-घाय | ” |
| छियचंत मज्जण | छिय चंत दंत भंजण | ” |
| एगक्खरगा | एका रसगा | ” |
| दसमुद्देवद्दियसेसु | पण्णरसमुद्देवद्दियस्सेसु | ” |



# पाठान्तर-सूची

| पृ० | पं० | मूल पाठ हस्त० | पाठ भेद प्रा० मंदिर |
|---|---|---|---|
| १ | १६ | उद्देइ २ त्ता | उद्देइत्ता |
| १ | १९ | उवागच्छइ १ | उवागच्छइत्ता |
| १ | २० | करेइ २ | करेइत्ता |
| २ | १० | नमंसइ | नमसइत्ता |
| २ | २२ | आगम | मंति आगास |
| २ | २७ | अज्ज सुहम्म थरे | अज्ज सुहुम्मथेरे |
| ८ | २७ | विसामो | विसाखो |
| ११ | ० | विहायाक रूए | विहायारूप |
| ११ | १६ | का उदर | का ओदर |
| ११ | २१ | आदामेतीय | आदामती |
| ११ | २१ | सउण दिपीलिय वीयिय | सउण वीयिय (पीलिय) |
| ११ | १८ | एपमारी | एवमायी |
| १२ | १६ | पुढविमये | पुढवीमय |
| १२ | १६ | पुढविसंसिए | पुढवीसंसिये |
| १२ | १ | सुरमुह | सूयीमुह |
| १२ | ४ | पोंडरीय सालग करक | पाडरीय सालग (करक) |
| १२ | १४ | वरयोहर | वरयोहार |
| १४ | १५ | देसिन्या | देसिहस्या (वीसिया) |
| १६ | ११ | तिमिम्मगु | तमिम्मगु |
| १ | १९ | अगुमगुकलविसइं | अगुमगंधादुकलविसइं |
| १४ | ५ | गामिमाय | गामिमाम |
| १५ | १६ | दगंता | पामंता |
| १६ | १ | गुपर | गुम्मप |
| १६ | ११ | विगुणिगमंगा | विगू पिगंगमंग (निगार्यगजाबा पा.) |
| २० | १४ १८ | दारुगाणि य दगंगण | दारुगाणि य दगाम |
| २० | १८-१९ | निमत्रणाणि | निमत्रणाणि य |

| पृ० | पं० | मूल पाठ हस्त० | पाठ भेद आ० मंदिर |
|---|---|---|---|
| ४६ | २४ | संपउत्ता (तद्देव वेइंदिएसु | निमज्जणाणिय संपउत्ता |
| ४७ | ४ | पुणो २ तहिं २ | पुणे तहिं |
| ४७ | ६ | भज्जण | मज्जण |
| ४७ | १५ | मूकाय | मूकाय (अविग्रजल मूया पा |
| ४७ | १६ | विणिहय सचिल्लया | विणिहय रुप्पे (पिस पा |
| ४७ | १६ | णारगाओ उव्वट्टिया | णारगाओ उव्वट्ट ति |
| ४७ | २२ | पारलोइओ | परलोइओ |
| ४८ | २ | मरणवेमणस्सो | मरणवेमणसो |
| ५६ | २० | कूड कवड मवत्थुग | कूड कवड मत्थुगंच |
| ५६ | २५ | नियर्यी (डी) | नियर्यी |
| ५६ | २६ | अवहीय | अवहीयं (अवायिअं पा.) |
| ५६ | २७ | अणुवलेवओत्ति | अणुव (अओअपा) लेवओत्ति |
| ६० | १-२ | एयं जदिच्छाएवा | एय वा जदिच्छाएवा |
| ६० | ३ | किंचि कयकं तत्त | किंचि कयकतत्तं |
| ६० | ६ | इमो विविस्सभवाइओ | इमोवि विसधायओ |
| ६० | १७ | अहरगति गमणं अन्न पि | अहरगति गमणं कारणं अन्न पि |
| ६० | १८ | परमट्ठ भेदकमसकं (असत्कं) | परमट्ठ भेदकमसकं |
| ६० | २१ | अलियाहिं सधि सनि० | अलिया हिंसति सनि० |
| ६१ | ५ | साहिंति मगराणं | साहिंति मगराण (मग्गिणं) |
| ६१ | ६ | वालवीणं | वालवीणं (वायलियाणं पा.) |
| ६१ | ६ | वध वध जायणंच | वधवध जावणंच |
| ६२ | २ | दुज्जतु | दुज्झतु |
| ६१ | २ | साहिंति य | साहंति |
| ६१ | १६ | आहेवण आविं | आहेव (हिव्व पा) ण आविं |
| ६१ | १८ | पावकम्म करणं | पावकम्म कराणं |
| ६१ | १८ | गामघातियाओ | गामघातवाओ |
| ६१ | २५ | पियय दासि | पियय (खादत, पिबतुदृत्तच पा) दासि |

| पृ० | पं० | मूल पाठ हस्त० | पाठ भेद/प्रा० मंदिर |
|---|---|---|---|
| ६१ | १७ | करितु कम्मं | करिसु (करितु पा) कम्मं |
| ६१ | १८ | वक्कराई उत्तय | वक्कराई (दिव्याणामखिलभूमि वक्कराणि पा) उत्तय |
| ६१ | ६ | सप्पणिग्गंतु | सप्फणिग्गंतु |
| ६२ | १० | मुहुत्तेसु नक्खत्तेसुतिहिसु | मुहुत्ते सु तिहिसु |
| ६२ | १४ | पूवायकार | पूवायकर |
| | | भक्खियाणा | भक्खियप्पाणो |
| ६२ | १-२२ | होति | होति |
| ७० | २१ | बहिर भयाय | बहिर भमूयाय |
| ७१ | २२ | भक्त विक्कय करणा | भत्ते (क्त पा) त विक्कयकरणा |
| ७७ | २८ | भणितुसर | भणितुसर |
| ८२ | १३ | पत्थाइ महर्य | पत्थाइ महर्य |
| ८४ | १० | कुरिकर्त | कुरिकर्त (कुसदुयकर्य पा) |
| ८४ | ११ | तक्करत्तणाति | तक्करत्तणति |
| ८४ | ११-१२ | हत्थतलताङ्, चर्ण | हत्थतलत्तर्ण (तहुच पा) |
| ८६ | १३ | भोगीओ | भ (प भो, गोओ |
| ८६ | १७ | लोकवक्खा | प्रोक्तवक्खा |
| ८७ | १ | सप्पियाहिं सेन्नेहिं सपरिवुडा | सप्पियाहिं (सेन्नहिं पा) संपरिवुडा |
| ८६ | १२ | पक्खा हय | पक्खा हय |
| ८६ | १-३ | मारिवरवम्म गुंडिया | मारिवर (गुड़ पा) वम्मगुंडिया |
| ८६ | ५ | सुयंत घय | सुयत मंत पा) घय |
| ८६ | १३ | समरसवा भावविय | समर सवावविय |
| ८६ | १४ | फुरफक्कगावरणं | पुरफक्कगावरणं |
| ६० | १ | कुष्पिकरतासिय | कुष्पिक विवासिय |
| ६० | २० | कल्लोल संकुलं | कल्लोल संकुलबलं |
| ६० | २१ | दूर सुम्मंत गंभीर | दूर सुम्मंत गंभीर |
| ६० | २१ | घुग घुगंत सद्दं | घुगु घुगंत सद्दं |

| पृ० | प० | मूलपाठ हस्त० | पाठ भेद आ० मंदिर |
|---|---|---|---|
| ६१ | ५ | हृत्थदच्छ तरकेहिं | हृत्थ तरकेहिं |
| १०२ | २३ | भेसणगभयाभिभूया | भेसणगा ( गभया पा० ) भिभूया |
| १०३ | १ | मद पुरणा | मद पुन्ना |
| १०३ | ७-८ | उक्खोडी दिन्नगाढ | उक्खडो दिन्न गाढ |
| १०३ | २३ | तुरिय उग्घाडिया पुरवरे | तुरिय उग्घाडिया पुरवरे |
| १०४ | ८-६ | वुज्झयाण भीता | वज्झयाण पीया (याण भीता पा०) |
|  |  | तिल तिलचेव- | तिलं तिलं चेव |
| १०४ | २४ | निर्रिक्खया | निरिक्खि ( रक्कि ) या |
| १०४ | २५ | ( अलज्जाविया ) अलज्जा—अलज्जा |  |
| १०४ | २६ | वेयण दुग्घट्ट घट्टिया | वेयण दुग्घ ट्टिया |
| १०५ | ७ | सयणस्स वि | सयण रस विय |
| ११३ | २२ | कहिंपि | कहिंचि |
| ११४ | १३-१४ | पधावित्त वसण | पधावित (वाहिय पा० वसण |
| ११४ | १८ | अत्ताणा सरण | अत्ताणऽसरण |
| ११४ | २४ | गमण कुडिल | गमण कडिल |
| ११५ | २६-२७ | उम्मग्ग निमग्ग | उम्मुग्ग निमुग्ग |
| ११५ | २८ | उब्बुड्ड निबुड्डयं | उब्बुड्ड निबुडड्य |
| ११६ | १-२ | अदिण्णा दाणं हरदह | अदिन्नादाण हरदह |
| ११६ | ४ | समत्त तिवेमि | समत्त तिवेमि |
| ११५ | १३ | छोभा सिप्प | शाभा सिप्प |
| ११३ | २६ | संसारावत्त | ससार ( रा ) वत्त |
| १२५ | ११ | चिर परिगय मणुगय | चिर परिचित मणुगयं |
| १२६ | १६ | सेवणाधिकारो | सेवणाधिक्कारो |
| १२८ | ९-१० | उस्सरणा तामसेण | उस्सरण तामसेण |
| १२८ | ५ | कोसेज्ज सोणी सुत्तक | को० सो० सु० (कुंडलपा०) |
|  |  | विभूसियंगा | गय |
| १२६ | ७ | रइत मालकउग गय | र०मा०क० ( कुंडलपा ) गय |

| पृ० | पं | मूल पाठ हस्त० | पाठ भेद आ० मंदिर |
|---|---|---|---|
| १ ६ | १९-२० | अणु मवेत्ता ते वि | अणुमवेत्ता (न्ता) तेवि |
| १३४ | २१ | मायरो सपरिमा | मा० सुपरिसा |
| १३५ | ५ | पिक्खुम मुनिविजया | पिक्खुव पमुविस जया |
| १३५ | १२ | महुर भणिया अन्नुजग | महुर म णिया (महुर परिपुण्ण-सध्य वयणा पा०) अम्मुवग। |
| १३५ | १८-१६ | असंसिय माण मइयातेहिम अविरत्त | अ०मा म०ते(अम्म पउस पिग सुअ सहिपा०) अविरत्त |
| १३६ | ४-५ | विसरगंधुदुपूयामिरामाहि | मिर्ध्वा पयामि रामाहि |
| १ ६ | ६-७ | हस मुस च कणग पाणो | ह० मु० (कणग पा०) पाणी |
| १३६ | ७ | पव कमल मुकन विमल | प० मुकंल वि० |
| १३६ | १३ | अयोगवास सयमामुपंतो | अ गाग वास सयमातुवंतो |
| १३६ | १८ | अणु मवेत्ता | अणु मवेत्ता (न्ता) |
| १४१ | २४ | मणुमविचा | अणुमविचा (न्ता) |
| १४२ | २० | पायचारिणो | पाव चारिणो |
| १४३ | २ | अणु पुन्न सुसंहयंगुलीया | अणु सुसं (आयपवर पा) गु |
| १४३ | ४ | समुग्ग निसग्ग | स० निमग्ग |
| १४३ | ९ | कउल निहुनवा | कउल निइ गावका |
| १४३ | १३ १४ | सवूहल सीह | सवूहल सिह |
| १४४ | ४ | तबणिज्जरत्त सलावालु जीहा | तबणिज्जरत्त तलताल जीहा |
| १४४ | १७ | पयाहिणावतमुदसिरया सुंबाव सुविभत्त संग पंगा | पयाहिणावत्त मुद्धया सु० सु० संगयंग सगा |
| १४४ | १६-१७ | सीहस्सरा (घोष)सरामेघसरा | सीहस्सरावग्घ (घोष) सरा मेघसरा |
| १४४ | २३ | तिपलिअोबमट्ठितिका | तिपलिअोबमट्ठीतीका |
| १४४ | २४-२५ | अविलत्ता कामार्या | अविलित्ता कामार्या |
| १४५ | १५ | सम सहिय लट्ठ सुकुम आमेलग | सम सहिय लट्ठ सुकुम आमेलग |

| पृ० | पं० | मूल पाठ हस्त० | पाठ भेद आ० मंदिर |
|---|---|---|---|
| १ ६ | ४ | मच्छ कुम्भ रहवर मकर | म. कु रथवर मकर |
| १५९ | २८ | हम्मति, विसुणिया | हम्मति विमुणिया |
| १६० | २ | मारेंति एक्केक्क | मारेंति एक्कमेक्कं |
| १६० | ५ | पावेति अयसकित्ति | पावेंति अ (जस पा.) कित्ति |
| १६० | ७ | परस्स दाराओ | परस्स दारओ |
| १६५ | ५ | णाणामणिरयणकणग | णाणामणि कणग रयण |
| १६७ | २७ | लोहप्पा, महड्ढी | लोहप्पा महड्ढ (ड्ढी पा.) |
| १६६ | १२ | असुर भुयग गरुल विज्जु-जलण | असुर भु० ग० सुवण्ण विज्जु-जलण |
| १७५ | १७ | परिग्गहस्स य अट्ठाए | परिग्गहस्सेव य अट्ठाए |
| १७५ | १८ | सउणरुयावसाणाओ, चउसट्ठि | स० रु० गणियप्प हाणाओ चउ० |
| १७५ | २० | अत्थ सत्थ इसत्थच्छ रुप्पगयं | अत्थइसत्थच्छ रुप्पवाय |
| १७५ | २७ | कामगुण अरहगाय | कामगुण अरहवगा |
| १७८ | २५ | न य अवेतिऽत्ता | न अवेतति त्ता |
| १७८ | २५ | अत्थिहु मोक्खोत्ति | अत्थिहु मोक्खेत्ति |
| २८० | ११ | पचहिं असंवरेहि | पंचहिं असंवरहिं |
| १८० | ११ | रयमादिणत्तु अणु समयं | रयमादिणितु मणुसमयं |
| १८० | १२ | चउव्विहगति पेरतं | चउविहगइ पज्जतं |
| १८० | १५ | काईति अणंत ए- | कार्हिति अणंतए |
| १८० | १६ | सोऊणयजे पमायंति | सुणिऊण यजे पमायंति |
| १८० | १८ | मिच्छादिट्ठीणरा (यजेणरा अवुद्धीया | मिच्छादिट्ठीय जे नरा अहमा |
| १८१ | १ | पंचेवय उज्झिऊणं | पंचेवउज्झिऊणं |
| १८४ | २५ | महव्वयाइ लोकहिय-सव्वयाइं | महव्वयाइं (लोकहिसवयाइ) |
| १८५ | ३ | कापुरिस दुरुत्तराइ सप्पु-रिस निसेवियाइं | कापुरिस दुरुत्तराइं (सुपरि-सतीरियाइं पा० ) वियाइ |
| १८५ | ४ | मग्ग सग्ग पणाय गाइम, सवरदाराइं | मग्ग सग्गप्पणायकाइ (याण गाइं पा० ) संवरदाराइ |
| १८६ | ८ | अस्सासो | असासो |
| १८६ | १२ | अडवी भज्भेविसत्थगमण | अ० म० सत्थगमण |

| पृ० | पं० | मूल पाठ हस्त० | पाठ भेद आ० मंदिर |
|---|---|---|---|
| १८९ | १६ | सुद ठु दिट्ठा | सुन्दु दिट्ठा ( उपलब्धा ) |
| १९० | १४ | अन्तजीविहिं विचित्त जीविहिं | अंतजीवीहिं विचित्त जीवीहिं |
| १९ | ५ | पडिमं ठाइहिं | पडिम ठाइहि |
| १९ | ६ | निच्छयववसाय पञ्चत्तकयमतीया | नि० व० ( पर्याय पा० ) पञ्चत्तकय मतीया |
| १९४ | ७ | न निसज्ज | ननिसिज्ज |
| १९१ | ८ | निमित्त कद कप्पठत्तं | निमित्त कद्दप्पठत्तं |
| १९४ | २१ | विसममणं | विउपसमण |
| २०१ | १६ | पागएणं पावगं | अपागएण पावर्क |
| २०१ | ११ | पावियाव पावग | अपावियाव पावर्क |
| २ २ | १० | अणाइस अतुद्धे | अणाइस अकुद्धे |
| २ ७ | ४ | आदान निक्खेवण समिई | आदाण निक्खेवणा समिई |
| २०७ | १६ | एय नाय मुणिणा | एयं नाय मुणिणा |
| २१२ | १४ | महासमुद्दमज्झेविमुक्का खियाविं | महासमुद्दमज्झेवियिट्ठ विनिमज्जंतिमुक्काणियाविं |
| २१३ | २-३ | परिग्गाहिया असि पंजरगया | परिग्गहीया असि पंजरगया |
| २१३ | ४ | निद्दति अणाहा | निर्यति अणाहा |
| २१५ | १ | समयप्पहिम देविन्द नरिन्द | समयप्पहिन्न (महरिसि समयपइन्न चिन्नं पा ) देविन्द नरिन्द |
| २ ५ | ११-१२ | आरयागण्ण समयासिद्ध विज्ज | आरयागमण समयासिद्ध विज्ज |
| २ ५ | २० | अणगजं | अणुत्वं वज्जं |
| २१५ | ६ | अभत्त वा एगमाहियस्स | अभत्स वा एगस्सवा (एग माहियस्सवा पा ) |
| २५ | २४ | सुवेसित | सुदसियं |
| २८० | १६ | रयमंतरगतं वा किंची | रय (अल मलगयं जेच पा ) मंतरगतं वा किंचि |
| २३१ | १ | मासइ अं च सुकयं | ना. (सो) अं च सु |
| २३१ | २ | मच्छरितं च | मच्छरित च |
| २३८ | १ | विभोव समयं | विभो समयं |
| २३८ | १-२ | तसियस्स होंति | तसियस्स थयस्स होंति |
| २३८ | ८ | अत्य मद्दकती | अत्यबहूती |
| २३ | १४ | सेज्जोवहिस्स अट्ठा | से च अट्ठे |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २३८ | १५ | गेण्हिउं जे, हरिणि | गिण्हेउं जेहरिणि |
| २४२ | १६ | सजमण समियं | सजमणं स० |
| २४२ | २१ | साहारण पिंडपातलाभे | सा० पिंडवाय लाभे |
| २४२ | २२ | अदिन्नादाणवयनियमवेर-मणं (विरमणवय नियमणं) | अदिन्नादाण ( विरमणवय नियमणं वय नियमवेरमण पा. ) एव |
| २४३ | १ | गुरुसु साहूसु | गुरुसु साहूसु विणओ |
| २४७ | ५ | जवू ! एत्तो | जवु एत्तो |
| २४७ | ८ | पसत्थ गभीर थिमित मज्झ | पसत्थ गभीर अतुच्छथि-मित मज्झ |
| २४७ | २१ | तारगाणं वा | तारगाणं व |
| २४७ | २४ | हिमवंतो चेव ओसहीणं | हिमवंतोचेव नगाणं ओस-हीण |
| २४८ | २ | पव्वकाए चेव | पवकाए चेव |
| २४८ | ५ | किमिराउच्चेव | किमिराओचेव |
| २४८ | १२ | एक्कमि बंभचेरे | एकमि बभचरे गुणे |
| २४८ | १२-१३ | आराहिय वयमिणं सव्वं | आ० व० सव्व |
| २५४ | १३ | वे लवक जाणिय | वे० जाणिय |
| २५४ | १७ | मूणवयकेसलोएय | मूणवयकेसलोय |
| २५७ | २५ | चउत्थयस्स होति | चउत्थवयस्स होति |
| २५८ | ६-७ | जितेन्दिए बभचेर गुत्ते | जिर्तिदिए बंभचेर गुत्ते |
| २५८ | १२ | कहाओ सिंगार कलुणाओ | (अ) सिंगार कहाओ कलु-णाओ |
| २५८ | १६ | हसित भणित चेट्ठिय विप्पेक्खियतइ | हसित भणित चे० वि० गइ. |
| २६६ | ८ | छज्जीव निकाया, छच्चलेसाओ | छजीव नि० छच्च० ले० |
| २६६ | ११ | भिक्खु पडिमा | भिक्खूण पीडमा |
| २६६ | २२ | गय गवेलगवा (च)न जाणजुग्ग | गय गवेलग कवल जाणजुग्ग |
| २६६ | २५ | मणिसिंग सेल | मणिसिंग सेल (लेस पा०) |
| २७३ | ६ | आदेण कुम्मासगंज | ओ० कु० गज |
| २७३ | ६-७ | वेढिम वर सरक चुन्न | वेढिम वसरक चुन्न |
| २७३ | १३ | मट्टि उवलित्त खतं दंते य हि भिरते | मट्टि ओवलित्त ख० द० य हिय (धितिपा) निरते |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २७३ | २ | छिन्न गंधे निरुवलेवे | छि गंधे (मोप पा०) नि० |
| २७४ | ६ | हरयो विव समिय भावे | हरयविव समिय तावे |
| २७६ | १७-१८ | गामे गाम एगरायं नगरे २ य पंचरायं | गामे एक रायं नगरेय पंच रायं |
| २८६ | १८-१६ | निब्भओ, विऊ सच्चित्ता | नि० वि० (सुद्धो पा०) सच्चित्ता |
| २८६ | २० | जीविय मरणास विप्पमुक्के | जी० मरणास भय वि० |
| २८६ | २० | निस्संधि, निव्वणं | निस्सधिं नि० |
| २९१ | १२ | गथिम वेढिम | गठिम वेढिम |
| २९३ | १६ | पउम परिमंडियाभिरामे | पउमसर परिमंडियाभिरामे |

## अभिधान राजेन्द्र में मुद्रित प्रश्न० के पाठान्तर

| | |
|---|---|
| खीरकसरंग | खीरल सरंग (अभि को ५ भा पृ ८३४) |
| सुगुंस | सुगुंसा ,, ,, |
| पीरालिय | परोसिम ,, ,, |
| कादंबक बक बलाका | कादंब कक बकलाका ,, ,, |
| भिंगिग | भइग |
| बिहगभिग्गासि | बिहंग भयणासिय |
| कुलिय संवरण | कुलिय संवरण |
| विच्छुमकंकनिवातो | विच्छुय कंकक निवातो ,, (३८) |
| पायालसहस्स सू० ११ | पातालकलससहस्स (अभि को १ भा पृ ५२८) |
| मायवचर | पाइय (पासिय) बर— ,, २६ |

## दूसरा आस्रव का टिप्पण—

'मणं च मणजीविया—

(१ कुछ बौद्धाचार्य पञ्चस्कन्धोंके अतिरिक्त मनको ही जीव तरीके मानते है। ये ोग रूपादिज्ञान लक्षणों का उपादान मनको मानकर परलोक का स्वीकार करते है। र्वथा साथ नहीं जाने वाले मनको जीव मान लेने से परलोक की सिद्धि नहीं होती, योंकि यह मन क्षणान्तर के समान क्षणिक है। मनोमात्र को जीव मानना परलोक ी असिद्धि से मृषा है।

हा परलोक में साथ जाने वाले मनमें यदि जीवत्व मान लिया जाय तो किसी रह यह सत्य हो सकता है।

( २ ) वायु जीवी-

कुछ आचार्य उच्छ्वास आदि लक्षण वायु को ही जीव मानते हैं, परन्तु वायु के जड़ होने से चैतन्यरूप जीवका उसमें योग नहीं हो सकता। अत. यह कथन भी मृषा है।

( ३ ) नास्तिक का प्रकार—

शरीर सादि और सान्त है, केवल यह भव ही एक भव है, अन्य नही। इसमें सर्वथा जन्मान्तर का अ ाव मानने से मृषावादिता है।

( ४ ) स्वभाव, काल, या पुरुषार्थ आदि को एकान्त कार्य कर मानना भी इसी प्रकार मृषा समझना चाहिए।

पूज्य श्री हस्तिमल्लमुनि निर्मितच्छायाऽनुवादोपेतं पंचमगणधर श्री सुधर्माचार्य विरचित सिरि पण्हावागरणसुत्त समाप्तिमगात्।

—•—